

धी सूर्यमकाश प्रिन्टिंग प्रेसमां मुळचंदभाइ त्रीकमलाले छाप्यु
काल्पुर टंकशाल अमदावाद. (कन्याशालानी नजीकमां.)

卐 卐

श्री जैन श्वेताम्बर तीर्थ धूरेवा नगर विभूषण



श्री केशरीयानी (ऋषभदेवजी) भगवान्.

卐

卐

प्रस्तावना.

आमूल ग्रंथ मागधी गाथाबंध छे, तेनी संख्यानुं प्रमाण पण कर्ताए ५४० जुं बता-
वेळुं छे; उपरांत आशिर्वादात्मक अने मिथ्यादुष्कृत सूचक वे गाथाओ प्रांते अने बीजी
वे गाथाओ मध्यमां कोइ पण स्थळे क्षेपक छे, एकंदर ५४४ गाथाओनुं प्रमाण थयेळुं छे.

आ प्रकरण कहो के ग्रंथ कहो, तेना कर्ता भगवंत श्रीमहावीर स्वामीना हस्तदी-
क्षित शिष्य श्रीधर्मदास गणि अण ज्ञानना धारक हता. तेमणे प्रथम तो जो के पोताना
पुत्रना हित माटे आ ग्रंथ बनाव्यो हतो, परंतु ते अनेक भव्य जीवोना हित माटे थयो
छे. आ ग्रंथमां एटला वधा हितना वाक्यो समावेळां छे के तेनुं पृथक् पृथक् वर्णन
करवा वेसीए तो पार आवे तेम नथी. उपदेशना विषयनी पृथकता बताववा माटे
अनुक्रमणिका करतां जुदा जुदा २५० विषयो बताववामां आख्या छे; परंतु जुदी-जुदी
विवक्षा करवा वेसीए तो तेथी विशेष विषयो पण उपलब्ध थइ शके तेनुं छे. अनुक्र-
मणिकामां विषय संख्या ३२३ नी आपेली छे, परंतु तेमां प्रथमना अण विषय अने मध्यमां
आवेली ७० कथाओ सूचक ७० अंक बाद करतां विषयसंख्या २५० नो रहे छे.

आ ग्रंथना कर्ता श्रीमान् धर्मदास गणि भगवंतना हस्तदीक्षित शिष्य हता के केम ?
ए संबंधमां केटलाएक शंका उठावे छे, परंतु प्रथम दृष्टिए आ ग्रंथमां आवेला उपदेशनी
गौरवता, प्रौढता, गंभीरता, विशालता विगेरे जोता वांचनार बंधुओने स्वतः एम जणाइ
आवे तेनुं छे के, एमां लेश पण शंका उठाववा जेवुं नथी. कारण के आवी गौरवशाली
वाक्यरचना भगवंतना समयना ग्रंथकर्ताने माटेज घटमान छे.

बीजुं प्रबल कारण ए छे के आ उपदेशमालानी उपर संख्याबंध टीकाओ थयेली
छे, जेमा कर्ता एवाः महापुरुषो, सत्यपरायण अने बुद्धिचातुर्यमां अद्वितीय पंडितो छे
के जेमने अंशमात्र पण शंका पडी होत तो तेआ निदरपणे पोतानी टीकामां तेनुं
सूचन कर्था शिवाय रहेतज नहीं.

बीजुं कारण ए पण सबळ छे के आ ग्रंथना प्रारंभमां आवेळुं धर्मदास गणिना
सांसारिक पुत्र रणसिंह कुमारनुं दृष्टांत जे घणी टीकाओमां विस्तारथी आपेळुं छे ते
बहुं कृत्रिम होय ते तदन असंभविन छे.

चोथुं कारण ए छे के शंका उठावनारनो मुख्य मुद्दो पांचमा आराना पण केटला-
एक महत्वशाली पुरुषोना दृष्टांतो आ ग्रंथमां आपवामां आख्या छे ते तयार पडीना कर्ता
होय तेनुं बतावे छे ते छे परंतु ते बातमां समजफेर थाय छे, केमके अबधिज्ञान त्रिकाळ

विषयी होवाची एवां दृष्टांतो जाणवानी तेमनी शक्ति होय छे, एटळे तेवां दृष्टांतो आपी शके छे. कदि ते ते दृष्टांतो साथे आपेळा क्रियापदोने माटे एम कहेवामां आवे के तेमां भविष्यत् काळ वापरवामां आवेल नथी; परंतु सिद्धांतमां पण एवा घणा पुरावा मळी शके छे के जेमां भविष्यत् काळनी हकीकतने माटे पण क्रियापद वर्तमान काळना वपरायेळा छे.

पांचहुं अने छेळुं कारण ए छे के वर्तमान समयमां वर्तता सर्व शुनि महाराजाओ आ संबधमां तहन एकज मत घरावे छे, तेमां कोइनो मत जुदो पढतो नथी. जेमणे अनेक सिद्धांतो, पंचांगीओ, ग्रंथो, प्रकरणो अने कथानको वांचेळां छे एवा बहुश्रुतो व्पारें एमां शकानो अवकाश गणता नथी त्यारें आपणे पण तेमना विचारनेज अनुसरुं ए आपणी फरज छे. 'महाजनो येन गतः स पंथाः' ए सूत्र अहीं खास स्मरणमां राखवा योग्य छे.

आ प्रकरण उपरनी अनेक टीकाओ पैकी आ भाषांतर आरामविजय गणिनी करेली टीकानुं करवामां आव्युं छे. एना कर्त्तए टीकाने छेहे पोतानुं नाम पण सुचव्युं नथी, प्रशिस्त पण लखी नथी, तेमज संवत विगेरें पण जणाव्युं नथी; तेथी वीजो विशेष निर्णय बतावी शकीए तेहुं नथी, तोपण एटळें जणावीए छीए के आ टीकाना कर्त्ता श्रीहीरविजय सूरि महाराजनी परंपरामां थयेला छे, तेमना शुश्रुं नाम श्रीसुमति विजयजी छे, अने तेओ उपाध्यायजी श्रीमद्यशोविजयजीना समयमांज थया छे. एओ व्याख्यानकळामां बहु प्रवीण हता. एमनी प्रशंसा सांभळीने एक वखत श्रीमद्यशोविजयजी पण एमनुं व्याख्यान सांभळवा गया हता, अने सांभळीने बहुज प्रसन्न थया हता एम कहेवाय छे. एमणे श्रंशान्तिनाथजीनो रास-सवत १७८५ मां वनाव्यो छे, तदुपरांत बीहुं शुं वनाव्युं छे ते चोक्स जाणवामां नथी. एक पंच कल्याणकनुंस्त. वने एमनुं करेळें प्रसिद्ध छे. आ ग्रंथना टीकाकार तरीके एओ छेळा थयेला जणाय छे.

आ भाषांतरना कार्य माटे पन्यासजी श्री गंभीरविजयजीए आपेली टीकानी प्रत, पन्यासजी आणंद सागरजीनी टीकानी प्रत तथा एक बहु प्राचीन मूळ गाथाओ परना टवानी प्रत, अमदावादमां छपायेळ उपदेशमाळानो बाळावबोध इत्यादिनी सहाय छेवामां आवी छे, अने तेने अनुसरीने दरेक गाथाना पाठांतरो नोटमां जणाव्या छे भागधीनी संस्कृत छाया जाणवाना अभिलाषीने माटे केटळाएक अपरिचित मागधी शब्दोनी संस्कृत अर्थ टीका अनुसार नोटमां आपवामां आव्यो छे, तेमज गाथा उपरथी अर्थ करनारने सबळ पडवा माटे अन्वयनां अंको पण गाथाओमां मुकवामां आव्या छे, अने अर्थनी अंदर विशेषार्थ कौसमां आपवामां आवेल छे. जेम वने तेम विशेष उप-

योगी यह पडे तेम करवा माटे बनतु-कर्तुं छे. घणी साध्वीओ अने श्राविकाओः आ उपदेशमाळा आली कंठे करे छे, तेमने अथ धारवा सबळ पडे तेवो दरेक प्रयत्न करवामां आव्यो छे.

आ प्रकरणनी टीकामां प्रारंभमां आपेली रणसिंहकुमारनी विस्तृत कथा उपरांत बीजी ७० कथाओ जुदा जुदा प्रसंगने लहने आपवामां आवी छे. गाथाओनी अंदर तो तेथीं वधारे नामो लभ्य थाय छे, परंतु ते शिवायनां नामोनी कथाओ उपरनी कथामां अंतर्गत यह जवाना कारणथो, प्रथम आवी गयेळ होवाना कारणथी, अथवा विशेष प्रसिद्ध होवाना कारणथी आपवामां आवी नहीं होय एम जणाय छे. ७० कथाओ पैकी ६५ कथाओ तो २८३ गाथा सुधीमां आवी जाय छे, एटले पाडली गाथाओ २६१ मां मात्र पांचज कथाओ छे, परंतु एकलो उपदेशज भरेलो छे के जे उपदेशजुं मूल्य यह शके तेम नथी.

आ टीकानी अंदर १ चंदनबाळा, २ संवांधन राजा, ३ भरत चक्री, ४ प्रसन्न-चंद्र राजर्षि, ५ बाहुबलि, ६ सनत्कुमार, चक्री, ७ ब्रह्मदत्त चक्री, ८ उदायिनृपमारक, ९ जासा सासा, १० मृगावती साध्वी, ११ जंबूस्वामी, १२ चिळाती पुत्र, १३ हंडण कुमार, १४ स्कंदक सूरिना शिष्यो, १५ हरिकेशी मुनि, १६ वज्र मुनि, १७ वसुदेवना जीव नंदिवेण, १८ गजमुकमाल, १९ स्थूलभद्र, २० सिंहशुफावासी मुनि, २१ पीठ महापीठ मुनि, २२ तामलि तापस, २३ शाळिभद्र, २४ अवंतिमुकुमाल, २५ मेतार्य मुनि, २६ वज्रस्वामी, २७ दत्त मुनि, २८ मुनसप्त मुनि. २९ परदेशी राजा, ३० कालिकाचार्य, ३१ महावीर स्वामीना पूर्वभवो, ३२ वळभद्र मुनि, मृग अने रथकारक, ३३ पूरण तापस, ३४ वरदत्त मुनि, ३५ चंद्रावतंसक राजा, ३६ सागरचंद्र कुमार, ३७ कामदेव श्रावक, ३८ हुमक, ३९ हृदमहारी, ४० सहस्रमल्ल, ४१ स्कंद कुमार, ४२ चूलणी राणी, ४३ कनककेतु राजा, ४४ कोणिक राजा, ४५ चाणाक्य, ४६ परशुराम ने मुभूष चक्री, ४७ आर्य महागिरि, ४८ मेघकुमार, ४९ सत्यकी विद्याधर, ५० कृष्ण, ५१ चंद्रकाचार्य ने तेनो शिष्य, ५२ अंगारमर्दकाचार्य, ५३ पुष्पाचूला, ५४ अर्णिकापुत्रःआचार्य, ५५ मरुदेवा माता, ५६ सुकुमालिका, ५७ मंगू सूरि, ५८ गिरिशुक ने पुष्पशुक, ५९ सेलकाचार्य ने पंथक शिष्य, ६० दश दशने प्रतिबोधनार नंदिवेण, ६१ कंडरिक ने पुंडरीक, ६२ शशिमभ राजा, ६३ शिवभक्त पुलिंद, ६४ श्रेणिक राजा ने विद्यादाता चंडाळ, ६५ त्रिदंढी, ६६ कपटक्षप तपस्वी, ६७ दुर्दुरांक देव, ६८ मुलस, ६९ जमालि अने ७० कूर्मनी कथा मळी सिचेर कथाओ आवेली छे. तेमां केटलीक तो

१ अनुक्रमणिकामां पण कथाना नाम साये तेना अंक चढता मुक्या छे, तेवी सादेलाप्र जोथी शक्या तेम छे.

जंबूस्वामींनी कथा जेवी बहु विस्तारवाळी छे, अने उपदेशवटे तो तयार कयाओ भरपूर छे.

आ ग्रंथज उपदेशनी माळारूप होवाथी तेमां अमुक उपदेश विशेष ग्राह्य छे एम कहेवा जेजुं नथी, तोपण खास ध्यान खेंचवा लायक स्थळो आ नीचे दर्शाव्या छे. ते उपर वचारे ध्यान आपवुं.

१ माता, पिता, बंधु, स्त्री, मित्र अने स्वजनो पण स्वार्थने माटे प्राणात कष्ट आपनार थाय छे, ते विषे पृष्ठ २०० थी २१८. दरेक संबंधपर कथा साये.

२ जीवने सामान्य उपदेश गाथा २०३ थी २१७.

३ पासध्यादिजुं स्वरूप-तेना लक्षण विगेरे. गाथा २२२ थी २२९ ने ३५४थी ३८२.

४ श्रावक केवा होय ? तेनी करणी-कर्मव्य विगेरे. गाथा २३० थी २४६.

५ चारे गतिना दुःख. गाथा २७९ थी २८७.

६ चारित्र्यां समिति विगेरेमां यत्न करवा संबंधी तथा कषाय गारवादि तजवा संबंधी दश द्वार. गाथा २९६ थी ३४८. तेमां क्रोधादि चार कषायना पर्याय नामो विगेरे बहु हकीकत समावेली छे.

७ अगीतार्थ ने अवहुश्रुत संबंधी विचार. गाथा ३९८ थी ४१८.

८ गाथा ४९६ पछीनो प्रांत भागनो अमूल्य उपदेश.

आ ग्रंथ उपरथी केटलाएक क्रियामार्गथी खसी गयाजुं कहेवामां आवे छे; परंतु तेम जो बन्धु होय तो तेमां वांचनारनी बुद्धिनोज दोष जणाय छे. कारणके अमने तो आमां स्थाने स्थाने व्यवहारगार्गनी पुष्टिज दृष्टिए पडे छे. वळी शिथिल थयेलाए वेष छोडी दइ संविज्ञ पक्षी थवा वाचतनो उपदेश एटलो वधो सयुक्तिक आपेला छे के जो ते प्रमाणे वर्तन करवामां आवे तो अवश्य आत्महित थायज. बाकी एकांत खेंचवामां आत्रे तो पछी संसारवृद्धि करे ने करावे तेमां कांइ पण संशय जणातो नथी.

आ ग्रंथमां समावेलो उपदेशजुं महत्व अमे केटळुं लखी शकीए ? ग्रंथकार पोतेज ६३४ थी गाथामां कहेले के-“ आ प्रकरण साद्यंत सांभळया छतां पण जे धर्ममां उद्यमी न थाय तेने अनंत संसारी जाणवो. ” आटळुं कथनज तेना महत्व माटे बस छे.

आ ग्रंथजुं भाषांतर शास्त्री पासे करावीने, तेने टीका साये अक्षरशः मेळवी सुधारवामां आव्युं छे मूळ गाथाओना अर्थ माटे जाते पण प्रयास करवामां आव्यो छे. भाषांतर यथार्थ ने सरल थवा माटे बनतो प्रयास करैलो छे.

आ माळो पुरुषवर्ग करतां स्त्रीवर्गने वचारे उपयोगी होय एवुं वीळकुळ जणाहुं नथी, छतां तेजुं भणजुं गणजुं साध्वीओ अने श्राविकाओ विशेवे करती होवाथी श्रीबुद्धि-विजयजी (बुटेरायजी) महाराजका परिवार मांहेना साध्वीजी लामश्रीए संवत १९६२ मां भावनगरमां चतुर्मास रहेला ते प्रसंगे उपदेश वटे प्रयास करीने श्राविकावर्णजुं

चित्त ते तरफ दोर्युं, जेयी श्राविकाओमांयी आ ग्रंथ माटे एक सारी रकम उत्पन्न कर-
वामां आवी, जेनुं लीस्ट आ ग्रंथना प्रांते आपवामां आव्युं छे. ते सहायने लइने आ
ग्रंथनुं भाषांतर कराववानुं अने छपाववा विगोरेनुं काम हाथ धरवामां आव्युं छे. अने
तेनुं परिणाम पण तेमना लाभमांज लाभवामां आव्युं छे. अर्थात् सहायक वर्धनेने, अन्य
उत्तम श्राविकाओने तेमज साध्वीसंछुदायने आ चुक मेट दाखल आपवानुं निर्माण
करवामां आव्युं छे अन्य शहरेनी श्राविकाओए तेमज श्रीमंत गृहस्थनी स्त्रीओए ज्ञाना-
वरणी कर्म श्रोडवा माटे ज्ञाननो उद्धार अने ज्ञाननुं दान करवा रूप आ कार्य अनुकरण
करवा योग्य छे.

आ ग्रंथनुं भाषांतर तपास्या छातां तेगां मतिदोष दृष्टिदोषादि कारणधी काई पण
भूक थइ होय तो तेने माटे मिच्छादुकडनी याचना छे.

आ परम उत्कृष्ट, सिद्धांतनी सरस्वामणीमां मुकना लायक अने तेज प्रकारनी योग्यता
धरावनारो ग्रंथ छे, तेयीज काळवेळाए आ ग्रंथनुं पठन पाठन करवानुं निषेधेळुं छे, माटे
ज्ञानाचारना प्रथम अविचारने ध्यानमां राखीने तेनुं योग्य अवसरेंज पठन पाठन करवुं अने
आ ग्रंथने विनय पूर्वक लेवो, मुकवो ने वांचवो, के जेयी तेमां रहेछो अमूल्य उपदेश हृदयपर
भुभ तेमज दृढ असर करै अने ते प्रमाणे वर्तन करवाधी भव्य आत्मानुं कल्याण थाम.

प्रस्तावनानुं वधाई कंधाण न करतां अनुक्रमणिका तरफ दृष्टि करवानी—तेने सा-
धंत वांची जोवानी भळामण करो समाप्त करवामां आवे छे. ते साथे आशा रालवामां
आवे छे के जो अनुक्रमणिका साधंत वंचाशे तो आ ग्रंथ वांच्या शिवाय रहेवाशेज
नहीं एवी अमने खामो छे. इत्यकं विस्तरेण.



निवेदन.

उपरनी हकीकतयी जणायुं हशे के-आ उपदेशमाळा नामनो ग्रंथ भावनगर श्री जैन धर्मप्रसारक सभा तरफयी १९६६ नी सालमां बहार पडथो हतो. तेने आज लांबो वखत थइ गयो छे-अत्र अमदावादमां रहेता जैन श्वेतांबर ज्ञाते वीसापोरवाड शेटजी प्रसिद्ध नाना माणेकना कुटुंबमां थइ गयेला महुंम शेट वाढीलाल लल्लुभाइनी विधवा ब्हेन चंचल ब्हेन अति धर्मबुस्त छे. जे शेटजीना जीवन चरित्रयी जणाशे. तेमने साधुसाधवी तेमज तेमनी सोवतमां बेसनारी श्रावीका वर्गमांयी उपदेश मलयो के-उपदेशमाळा नामनुं पुस्तक अती उपयोगी छे. अने अत्यारे ते मलतुं नथी. ते माटे तयो द्रव्यनो सदुपयाग करी आ पूस्तक जर छपावी भेट तरीके आयो तो बहुज लाभ थशे ते सौनी प्रेरणायी तेमनी इच्छा थइ अने प्रसारक सभानी छपावेली नकल मने मेळवी आपी. जेना संयोगे करी. आ उपदेश माळा नामनो ग्रंथ अत्र अमदावादयी बहार पाठवामां आव्यो छे. जो के आ पूस्तक प्रथम सभानी खंतयी अने मुंबाइना छपरखानामां छपावेलुं जेथी परम शुद्ध अने सुंदर छपावेलुं छे. परंतु आ आवृत्ति तो अमदावादमां कोपी दु कोपी प्रमाणेज छपावेल छे छतां पण प्रेसो साधारण होवायी शुद्धी तरफ संपूर्ण कालजी राख्या छतां पण काना, मात्रा, विलंटीओं विगेरेनी अशुद्धिनो संभव छे तो ते वांचनार वर्ग सुधारिने वांचशे. एम भलामण पूर्वक तेमज आ ग्रंथ तैयार करनार श्री जैन धर्म प्रसारक सभानो, तेमज आ ग्रंथ पोतानां नाणां सद्गामां वापरी ज्ञानने उचेजन आपनार महुंम वाढीलाल लल्लुभाइनी सद्गुणी विधवा के जेओनी इच्छायी आ ग्रंथमां पोताना स्वामीनुं नाम जालवी राखवा तेओ साहेबनुं फोटा सहित दुंहुं जीवनचरित्र तथा देव शुद्धभक्ति नीमोत्ते महात्माओ के जे अत्यारे अमदावादमांज विचरे छे श्रीमान् विजयनेमी सूरिश्वरजी तेमज श्रीमान् विजयसीद्धी सूरिश्वरजीना फोटा तथा तेमनुं दुंहुं जीवनचरित्र प्रसिद्ध करावी पोताना आत्मातुं हित इच्छनार ब्हेन चंचल ब्हेननो आभार मानी अशुद्धि के जीनाज्ञा विरुद्ध लखाण आदिमां दोषो रखा होय तो तेनी क्षमा याची मिच्छादुःष्कृत दइ अत्रे विरहं छुं. एज सुश्रेष्ठ कौबहुना.

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ली. प्रसिद्ध कर्ता.

संवत् १९८० ना
कार्तिक सुदि ६.
सौभाग्यपंचमी
मंगळवार,

मास्तर उमेचंद रायचंद.

ठेकाणुं पांजरापोळ-अमदावाद.

स्वपरसमयपारिवारपारोग-शासनसम्राट-तीर्थरक्षाप्रवण-
 परोपकारै-कारिणिकरण-तपोगच्छाधिराज
 सुरिचक्रचक्रवर्ति-



आचार्य श्रीविजयनेमिसूरीगः

जन्म सं. १९२९ वीक्षा सं १९४५ गणित सं. १९६० पद्मसदन सं १९६०
 कार्तिक शु. १ ज्येष्ठ शु. ७ कार्तिक कृष्ण. ७ माघशर शु. ३
 सुरि सं. १९६४-ज्येष्ठ शु. ५

તપાગચ્છાધિપતિ તીર્થરક્ષક શાસન પ્રભાવક પૂજ્યપાદ આચાર્ય
મહારાજ શ્રી વિજયનેમિસૂરીશ્વરજીનું

ટુંક જીવનવૃતાંત.

આ મહાપુરુષનો જન્મ કાઠીઆવાઢમાં આવેલા પ્રસિદ્ધ મહુવા નામે ગામમાં થયો હતો. મહુવાની ભૂમી ઉત્તમ વિદ્વાનોની ઉત્પતિ માટે અભિમાન ધરાવે છે, કેમકે ત્યાંના નિવાસી ઘણાક પ્રસિદ્ધ વક્તાઓ અને લેખકોનાં નામો વારંવાર સાંભળવામાં આવ્યાં છે.

આપણા આ પૂજ્ય સૂરીશ્વરની પણ વક્તૃત્વ કલા અને ઉપદેશ છટા ઇટલી વધી તો રસાક અને અસરકારક છે કે જે સાંભળતાં પાષાણ પણ પાણીરૂપ યદ્ જાય તો પછી કોમલ દિલના માનવીઆ તેમની અમૃત વાણીથી પોતાના આત્માનો ઉદ્ધાર કરી શકે તેમાં તો કહેવાનુંજ શું.

તેમના ચારિત્રનો ઉત્તમતા અને દૃઢતા અવર્ણનીય છે..વાર વર્ષની નાની વયમાંથી પોતે ચારિત્ર લઈ અઘાપી મુઘો નીરાવાધ નીષ્કલંક પાઢ્યું છે, અને હજુ પણ તેવીજ રીતે નિર્મલ્લતાથી તેનું પાલન કરે છે.

તેમના અલંદ વાઢ બ્રહ્મચારીપણાનો પ્રતાપ ઇટલો વધો તો પ્રચંદ છે કે, શાસન દ્રોહી ધ્રુવઢો તેમનો પાછલ મલે ચીચીઆરીઓ કરે, પરંતુ તેમની સામે તો દૃષ્ટિ સરસ્વી પણ કરી શકે તેમ નથી.

બ્રહ્મચર્યની શ્રેષ્ઠતા અને પવિત્રતાનો પ્રતાપ ઇટલો વધો તો પ્રભાવશાઢી છે કે, દરેક-દર્શનવાઢાઓ વગર આનાકાનીષ તેનો ઇકાંત સ્વીકાર કરે છે, તો તેની છત્ર છાયામાં રહેનાર માણસ આ લોકમાં ઉજ્જવલ યશ અને પરલોકમાં આત્મકલ્યાણની પ્રાપ્તિ કરે તેમાં તો શું આશ્ચર્ય.

પૂજ્યસૂરીશ્વરજીની સ્વસિદ્ધાન્ત તથા પરદર્શનના ન્યાયાદિ શાસ્ત્રોમાં અકુંઢ તીક્ષ્ણ મુદ્ધિ માટે તો કોઈ વે પળે ચાલનારનો વિસંવાદ છેજ નહિ વઢી આ પૂજ્ય સૂરીશ્વર કાઠીઆવાઢ ગુજરાત, મારવાઢ, મેવાઢ, માઢવા વિગેરે ઘણા દેશોમાં ગામોગામ વી-ચરી પોતાની ઉપદેશ છટાથી જનસમુદાયના મૂન ઇટલા વધા તો હરી સીધા છે કે, શાસન દ્રેષી અને કદાગ્રહીજનો શીવાય દરેક જણ પોતાના સ્વરા અંતઃકરણથી તેમનું યશોગાન હમેશાં ગાયા કરે છે.

આજના સાધુ સમુદાયમાં અત્યારે શાસનદ્રોહી કંટકોને નિર્મૂલ કરવાની સ્ત્રી હીંમત, જો કોઈ પણ સાધુ મુનિરાજે ધરાવી હોય તો તે આજ શ્રીમદ્વિજય નેમિસૂરીશ્વરજીજ છે, અને તેને સ્ત્રીને તેવા ધર્મદ્રોહીઓ અને તેના લાગતા વઢગતાઓ ઇક એક સાધારણ વ્યક્તિને પણ ન ઘટે તેવા તુચ્છ આક્ષેપો તેમની ઉપર ઘણી વસ્ત કર્યા છે; પરંતુ જેમ

सूर्यनो उदय यतां नीशाचर घुवडीआ उडी जाय तेवीज रीते आ मुनीश्वर तरफयी सूत्र सिद्धांतनो खरेखरो खुलासो यतां अने सत्यासत्यनो प्रकाश पढता, अत्यारे एक पण धर्मद्रोही जाहेरमां देखवामां आवतो नथी.

समाजना अगर शासनना नेचा पुरुषोने घणी वस्ते तुच्छ लोको तरफयी अण-घट्टी मुखेलीओ भोगवकी पडे छे, तथापी तेनी उन्नति एज जेनुं साध्य विंदु छे एवा अग्रगण्य पुरुषो तेवा दुर्वीनीत मनुष्यो तरफ जरा पण लक्ष आपता नथी.

अत्यारे आ महापुरुष अमदावाद राजनगरनी भुमी उपर विचरे छे, के ज्यां आगळ श्रोताओ घणी मोटी संख्यामां भेगा मळी तेमना उपदेशासृतनुं पान करी आनंद पावे छे, अने अन्यदर्शन वाळाओ पण तेमनी वाणीनुं रहस्य विचारता थका छक थइ जाय छे.

पूज्यसूरीश्वरजी महाराजना श्री सिद्धगिरि-गिरनारजी समेतशिवरजी-अंतरी-कजी-तारंगजी विगेरे आपणा परम पवित्र तीर्थ रक्षण माटे कराता सतत प्रयासो श्री कापरवाजी-शेरीसाजी-कलोल-श्री स्तंभतीर्थ विगेरे तीर्थ भूमीयो नो उद्धार तथा प्रतिष्ठाओ-भेवाड विगेरेमां तेरापंथ विगेरे पारखंड मतोमां भली गयेला श्रावक भाइओना धार्मिक जीवननो पुनरुद्धार विगेरे विगेरे असीम उपकारना कार्योंनो आभार समग्र जैन कौमथी आ चन्द्रदिवाकर पण भुली शकाय तेम छेज नहि ?

राजनगरमां आ महा पुरुषना भक्तोमां जैन आगेवान घनाढ्यो घणा सेवको छे. के जेनुं वचन अलंघनीय एटले जरा पण आनाकानी कर्या वगर जैन शासनना गमे तेवा काम-करवाने तैयार रहे छे. अने ते केम पार उतरै तेहुं स्वतथी ध्यान आपता आच्या छे अने हाल पण आपे छे आ महापुरुष मारा पण घणाज उपकारी छे के जेमना वडे हुं पण यत् किंचित् ज्ञानादि धर्म सारी रीते पायी शक्यो छुं, आ पुस्तक प्रगट करावनार बाइ चंचल बहेननी पण संपूर्ण पूज्यश्री तरफ भक्ति होवाथी तेओ साहेबना फोटा सहित तेमनुं जीवनचरित्र अत्रे प्रकट करवामां आव्युं छे. आवा शासन रक्षक परोपकारी महापुरुषना जेटला गीतगान करूं तेटला ओछा छे. कारणके लाखो जिह्याथी जेना गुण गणी शकाय नहीं त्यां मारा जेवा पामर प्राणीनी एक जीभथी तेमनां गुण शी रीते जणावी शकाय. हुंकामां अत्यारे आ महापुरुष जैन शासन माटे महान् उपकारी छे. अस्तु.

हालमां पण अनेक शासनप्रभावना कार्यों अहर्निश करी रखा छे अने तेज प्रमाणे शासन प्रभावना कार्यों करवा माटे चिरकाल जयवंता वर्ता.

ली. प्रसिद्धकर्ता.

नररत्न महर्षि शेट. वाडीलाल लल्लुभाइ.



जन्म.
संवत् १८९८ ना
महा सुद १५

अवसान
संवत् १९६१ ना
पौष सुद १५

महंम शेठ बाळीलाल लल्लुभाइइ टुंक जीवन वृत्तांत.

आ नररत्ननो जन्म संवत १८९८ ना महा सुद १५ मे अमदावादमां ठेकाणुं कालूसींगनी पोलमां श्री जैन श्वेताम्बर आम्नायमां-ज्ञाते वीसापोरवाडमां घणा सुप्र-सिद्ध एवा नाना माणेकना कुटुंबमां थयो हतो. बाल्यावस्था वित्या वाद केलवणी छेवामां केटलोक वखत गया पछी शेठजीनी उमर आशरे (२०) वीस वरसनी थवा आवतां तेमना पिताश्री देवलोक पायी गया के जेथी घर विगेरेनो बोजो तेमना शीर उपर आवी पडयो. तेओ साहेबने सराफीनो धंधो हतो. पोताना धंधामां पोते संपूर्ण काबेल हता तेना प्रतापे साधारण लक्ष्मी पण सारी संपादन करी हवीं अने ते लक्ष्मीवडे शेठजी साहेब घणी उदारता तथा परोपकारना काम पण हमेशा कर्या करता हता. दरेक वर्षे तीर्थयात्रा-देवदर्शन गुरुभक्तिमां तत्पर रहेता हतां. अने हमेशा बाख्यानादि सांभलवानी रुचीवाला होबाथी जीवदया तरफ तेमनो संपूर्ण प्रेम हतो जेथी अमदावादमां आवेला खोडा ढोरना पांजरानो वहीवट पण शेठजी साहेब करता हता वली तेओ साहेबे खोडाढोरना पांजरामां पोतानी जग्या पण वास्तिव तरीके आपेली छे. तेओ साहेब गरीब लाचार माणसो तेमनी पासे आवता तो तेमने योग्य ठेकाणे पाडवा तथा बनती मदद पण करवा चुकता नहोता. शेठजी साहेब जाते दयाळु सरल स्वभावी आनंदी अने सौ साथे हलीमलीने चालवावाला हता. तेओ साहेबे भोयणीजी तीर्थमां श्री मल्लीनाथजी महाराजनी प्रतिष्ठा करवामां पोते अग्र भाग लीघो हतो विगेरे दरेक वर्षेना काममां सारो भाग लेता हता. शेठजी साहेबनी तेमनी जींदगीमां चार झीयो एक पछी एक थयेली छे. संतती कंडक थयेली परंतु लांबा वखत सुधी कोइ टकेळुं नथी अर्थात कंड पण संतती ह्यात नथी. शेठजी साहेब तेमनी छेल्ली एटले चोथी छाने आशरे २१ वर्षनी नानी उमरमां विधवा मुकीने संवत १९६१ ना पोस सुद १५ मे आशरे ६३ वर्षनी उमरे देवलोक पडोच्या छे. के जे विधवानुं नाम चंचल ब्हेन छे

शेठजी साहेबनां तेमना उपर संपूर्ण प्रेम अने विश्वास होवाथी पोतानी सर्वे मीलकत त्रष्टीओ तथा कुटुंबीओ विगेरेने नहीं सोंपता पोतानी खीनेज सोंपी गया छे. आ चंचल ब्हेन पण तेमना सहवासमां आख्या त्यारथी धर्म उपर संपूर्ण प्रीतीवाला हता जेना परिणामे पोतानी २१ वरसनी नानी उमरे वैधव्यपणुं आख्या छनां पण आवाइ धर्म ध्यान आदि सारा संस्कारोमां जोढायेला होवाथी आजे तेमनी उमर लगभग ४० वरसनी थवा आवी छे छतां पण कोइ जातनुं कलंक के कहेवत विना तेमने धर्ममय जींदगी गुजारी छे. वैधव्यपणुं थया पछी लगभग एकाद वर्षमांज अत्रे सुप्रसिद्ध नगर शेठना मामानी दीकरी ब्हेन सीता ब्हेननी तेमने सोवत थइ हती तेओ धर्मशील अने बुद्धीवाळी होवाथी आ ब्हेनने धर्म मार्गमां जोढवामां सारी सहाय करेलो छे.

शेठजी साहेब गुजरी गया पछी आ ब्हेने-त्रीजेज वर्षे एटले १९६३ नी शालमां सारी धामधुम साथे उजमणुं माडयुं हतुं. तेमां हंमेशा पूजा प्रभावना विगेरे अट्टाइ ओच्छव तथा स्वामीवत्सल विगेरे पण करवामां आख्युं हतुं. वली आ ब्हेन पालीताणा जइ चोमासु पण करी आवेला छे ते चोमासामां त्यां अट्टइनी तपस्या करी :वामीवत्सल पण कर्युं हतुं. वली शेत्रुजयगीरीनी नवाणुं जात्रापण करी हती. वली अमदावा-दना डोसीवाडानी पोलना विद्याशालाना वहीवट करनार शेठ जेशींगभाइ हठीसिंगे शेत्रुजय तीर्थनो संघ छरीपालता काढेलो तेमां पण छरीपालता शेत्रुजयगीरीनी जात्रा पण करेली छे. विगेरे, हंमेशां धर्मक्रीयाओ करवामां तत्पर रहे छे जेना प्रतापे महात्मा गुरुषोना वाख्यानादि सांभलवा बनी शक्ति तपस्या तेमज पोसह प्रतिक्रमणादि दरेक आवश्यक क्रीयाओ यथाशक्ति करवामां जेमनुं मन लागेलुंज रहे छे दरेक वर्षे तीर्थयात्राओ बनी शके तेवी स्वामीभक्ति गुरुभक्ति आदि दरेक धर्मना काममां अग्र भाग छे छे. जेना परिणामे तेओ जैनोजा दरेक तीर्थ जेवा के शेत्रुजय, गीरनार, आवुजी, तारंगजी, केसरीयाजी. समेतशीखरजी, अंतरीकजी आदि नाना मोटा दरेक तीर्थनी जात्राओ करेली छे. अने हजु पण वर्षमां एकवे वखत तो तीर्थयात्राओ करेज छे अने यथाशक्ति दानादिक परौपकारना कार्य पण कर्याज करे छे. वली हमणां चारपांच वर्षथो परमपूज्य गुरुणीजी महाराज श्री सौभाग्यश्रीजीनी शिष्याओ चंपासरीजी तेमनी शिष्या प्रभासरीजी आदिनो पण सारो संबंध थयेलो छे. हंमेशां ज्ञानावरणी कर्म तोढ-

वामां ज्ञाननुं आराधन अने तेनी भक्ति तेनुं उत्तेजन करवायीज थाय छे तेवो उपदेश-प्रसंगोपात तेमने मल्याज करतो हतो. तेवा संयोगोमां आ उपदेशमाळा नामनुं पुस्तक भावनगर श्री जैन धर्मप्रसारक सभाए प्रसिद्ध करेल्लं पण ते बुको पुरी. यवाथी कोइ ठेकागे मलती न होती. अने घणा साधुसाध्वीओ तेमज श्रावीकाओनी मागणी हती. जेथी तेमनी पासे रहेला सीताव्हेन तथा साध्वीजी श्री चंपासरीजी तथा प्रभासरीजी आदिनी प्रेरणाथी आ पुस्तक छपाववानी तेमनी इच्छा थइ अने संवत १९६६ मां छपायेली उपदेशमालानी नंकल मने वतावी. पछी तेना खर्च विगेरेनो अंदाज करी नकलो ११०० छपाववानुं नकी करी आ सर्व बुको भेट तरीके साधु साध्वी अने तेना खपी जीवोने आपवानुं नकी थवाथी आ बुक आ चंचल व्हेननी संपूर्ण आर्थीक सहायताथीज वहार पाडवामां आनी छे. साथे तेमना महुमू पति श्रेठ वाढीलाल लल्लुभाइनुं नाम जालवी राखवा माटे तेओ साहेबनो फोटो तथा एमनुं जी. अनचरित्र तेमज देवगुरु भक्ति नीमीचे केसरीयाजी दादानो तेमज जैन शासनना स्थंभरूप आचार्य महाराज श्री विजयनेमीसूरीश्वरजी महाराजनो फोटो तथा तेमनुं हुंक जीवनवृत्तांत पण आ पुस्तकमां दाखल करवामां आव्युं छे. एज. ३० शान्तिः शान्तिः शान्तिः

की. प्रसिद्ध कर्ता.



अनुक्रमणिका.

विषय.	गाथा.	पृष्ठ.
१ टीका करवानो हेतु... ..		१
२ उपदेशमाळाना कर्त्ताना पुत्ररणासहजुं चमत्कारिक चरित्र-		१
३ उपदेशमाळा पारंभ. टीकाकारजुं मंगळाचरण.		२६
४ ग्रंथकर्त्ताजुं मंगळाचरण.	१- ६	२६
५ विनयनी प्राधान्यता...	६- ७	२७
६ गुरुजुं महत्त्व-गुरुजुं स्वरूप.	८- १२	२८
७ साध्वीने विनयनो उपदेश-पुरुषनी प्राधान्यता.	१३- १४	३०
८ चंदनबाळानी कथा. (१)		३१
९ साध्वी करतां साधुनी श्रेष्ठता...	१५- १६	३५
१० संबाधन राजाजुं दृष्टांत. (२)...	१७- १८	३६
११ पुत्रने अभावे द्रव्यजुं राजग्राह्यपणुं.	१९	३७
१२ आत्मसाक्षीए धर्म....	२०	३८
१३ भरतचक्रीजुं दृष्टांत (३)		३८
१४ प्रसन्नचंद्र राजर्षिजुं दृष्टांत. (४)		४१
१५ एकला वेषनी अप्रामाण्यता-वेष पण धर्मनो हेतु छे...	२१- २२	४७
१६ आत्मसाक्षीए धर्म-प्राणामानुसार कर्मबंध...	२३- २४	४८
१७ अभिमान बडे धर्म थतां नथी	२५	४८
१८ बाहुबलिजुं दृष्टांत. (५)		४९
१९ परञ्चरण उपदेश.	२६- २८	५७
२० सनत्कुमार चक्रीजुं दृष्टांत. (६)		५८
२१ आयुष्यनी आनत्यता.	२९- ३०	६१
२२ गुरुनो उपदेश भारैकर्मीने लागतो नथी.	३१	६१
२३ ब्रह्मदत्त चक्रीनी कथा. (७)...		६२
२४ उदायी नृपने मारनारजुं दृष्टांत. (८)		७१
२५ उपरना दृष्टांतनो उपनय.	३२	७२
२६ केटलाएक प्राणीनां पापकार्यो प्रगट कहेवार्ता पण नथी.	३३	७२
२७ जासा सासानुं दृष्टांत. (९)...		७३
२८ पोताना दोषनी क्षमापनाथी निराचरणपणुं प्राप्त थाय छे.	३४	७५

अनुक्रमणिका.

विषय.	गाथा.	पृष्ठ.
२९ युगावतीनुं दृष्टांत. (१०)		७५
३० सराग संथमीमां सर्वथा अकषायीनो असंभव.	३५	७६
३१ कषायनां कडवां फळ.	३६	७७
३२ भोग तजवानां अनेक कारणो....	३७	७७
३३ जंबूस्वामीनुं दृष्टांत. (प्रासंगिक १६ दृष्टांत युक्त) (११)		७७
३४ रौद्रध्यानी.जीवो पण धर्मना प्रभावथी प्रतिबोध पामे छे.	३८	९४
३५ चिळानी पुत्रनी कथा (१२)....		९४
३६ अलाभ परिसह सहन करवानुं फळ.	३९	९७
३७ ढंढणकुमारनी कथा. (१३)		९७
३८ मुनिपणानु स्वरूप	४०- ४२	९९
३९ स्कंदक शिष्योनुं दृष्टांत. (१४)....		१००
४० दुष्टो नो करेलो उपद्रव सहन करवो ते मुनिनो धर्मज छे.	४३	१०३
४१ धर्ममर्मा कुळनु प्रधानपणुं नथी....	४४	१०३
४२ हरिकेशि मुनिनी कथा. (१५)....		१०४
४३ कुळाभिमान न करवानां कारणो.	४५- ४७	१०९
४४ साधुए निर्लोभी यहुं....	४८	११०
४५ वज्रमुनिनुं दृष्टांत. (१६)		१११
४६ चारित्रि इच्छनुं तो पारग्रह तजवो-चारित्रि ने परिग्रहनुं विरोधीपणुं-४९- ५२		११५
४७ तप ने सदनुष्ठाननुं फळ	५३- ५४	११६
४८ वसुदेव थयेला नंदिषेणनी कथा. (१७)		११७
४९ मुनिए उत्कृष्ट क्षमा धारण करवी.	५५	१२१
५० गजसुकुमाळनी कथा. (१८)....		१२२
५१ मुनियोग्य उपदेश	५६- ५८	१२४
५२ तीव्र चतुर्थ व्रत धारण करवा विषे.	५९	१२४
५३ स्थूळभद्रनी कथा. (१९)		१२५
५४ मुनिए तपपंजरमां वसवुं.	६०	१३२
५५ शुक्नी आज्ञानो अनादर न करवो.	६१	१३२
५६ सिंहशुफावा नी मुनिनुं दृष्टांत. (२०)		१३२
५७ ब्रह्मचर्यनी श्रेष्ठता	६२- ६५	१३५
५८ मुनिए परशुणने सहन करवा-मत्सर न करवो.	६६- ६८	१३६

विषयः	गाथा	पृष्ठ.
७५९ पीठ अने महापीठश्रुति (ब्राह्मी सुंदरीना जीवनी कथा) (२१)		१३७
६० आत्मस्थिति-परनिंदा न करवा विवे.	६९- ७३	१३७
६१ शिष्य केवा होय ?...	७४- ७८	१३९
६२ श्रुति केवुं बोले ? ...	७९- ८०	१४०
६३ अज्ञान तपनुं अल्प फळ.	८१	१४०
६४ तामलि तापसनी कथा (२२)....		१४१
६५ ज्ञानयुक्त तप करवा विगेरेनो उपदेश.	८२- ८४	१४१
६६ हजु मारे माथे पण बीजो स्वामी छे ?	८५	१४२
६७ शालिभद्रनुं हृष्टांत (२३)		१४२
६८ शालिभद्रना चरित्र उपरथी उपदेश.	८६- ८७	१४५
६९ सांभळतां पण रोमो-कैप थाय तेवी अवंती मुकमाळनी कथा (२४) ८८		१४६
७० जीव अन्य ने शरीर अन्य-एवी श्रुतिनी मान्यता होय छे....	८९	१४७
७१ एक दिवसना चारित्रनुं फळ ...	९०	१४८
७२ प्राणांत उपसर्ग करनार उपर पण क्षमा करवी.	९१	१४८
७३ मेतार्थ श्रुतिनी कथा. (२५)		१४८
७४ श्रुति भक्ति ने अभक्ति करनार पर समभाव राखे छे....	९२	१५३
७५ गुरुना वचनपर श्रद्धा राखवी....	९३	१५४
७६ वज्र स्वामीनुं हृष्टांत. (२६) ...		१५४
७७ गुरुना वचननुं बहुमान-तेथी यतो शिष्यने परम लाभ....	९४- ९८	१५५
७८ गुरुनो पराभव करवाथी हानि	९९	१५६
७९ दत्त श्रुतिनी कथा (२७)		१५६
८० गुरुउपर भक्तिराग केवो होवो जोइए ? ...	१००	१५७
८१ सुनक्षत्र श्रुतिनुं वृत्तांत (२८)....		१५८
८२ गुरुने देवनी जेम सेववा-तेथी यतुं फळ.	१०१- २	१६०
८३ केशि गणधर ने प्रदेशी राजानो संबंध (२९)		१६०
८४ आचार्यनो प्रभाव-तेमनी शिक्षा.	१०३- ४	१६५
८५ प्राणांत कष्टना संभवमां पण सत्यज बोलवुं....	१०५	१६५
८६ कालिकाचार्यनी कथा (३०)....		१६५
८७ यथास्थित सत्य न बोलवाथी बोधिलाभनो विनाश थाय छे. १०६		१६८
८८ महावीर स्वामीना पूर्वभवोनो संबंध- (३१)		१६८

अनुक्रमणिका.

१७

विषय.	गाथा:	पृष्ठ.
८९ प्राणति पण मुनि पोताना नियम विराधता नयाः	१०७	१७१
९० करण करावणने अनुमोदननुं समान फळ....	१०८	१७१
९१ बळदेव, रथकार ने मुगनी कथा. (३२)....	१७१
९२ दयारहित अज्ञानतपनुं तुच्छ फळ.	१०९	१७४
९३ पूरण तापसनुं वृत्तांत. (३१)....	१७४
९४ नित्यवासी थवुं पडे त्यारे मुनिप केवी रीते रहेवुं ?	११०-१११	१७४
९५ जपाश्रयने घर न मानवुं.	११२	१७५
९६ गृहस्थनो अल्प प्रसंग पण मुनिने हानि करे छे.	११३	१७५
९७ वरदत्त मुनिनुं दृष्टांत (३४)	१७५
९८ स्त्रीनो परिचय तप, शील ने व्रतादिनो नाश करे छे	११४	१७९
९९ मुनिप तजवा योग्य कार्य.	११५-११७	१७९
१०० प्राणति पण गृहित अभिग्रह न तजवो.	११८	१८०
१०१ चंद्रावतंसक राजानुं दृष्टांत. (३५)	१८०
१०२ मुनिप परिसहो सहेवा-तेज तेनो धर्म छे	११९	१८१
१०३ गृहस्थ पण व्रतमां दृढ होय छेतो मुनि केम न होय ?	१२०	१८१
१०४ सागरचंद्र कुमारनुं दृष्टांत. (३६)	१८१
१०५ देवकृत उपसगथी श्रावक पण चळता नयीं.	१२१	१८४
१०६ कामदेव श्रावकनुं दृष्टांत. (३७)	१८४
१०७ भोगने भोगच्या विना इच्छा मात्रथी दुर्गति पामे छे....	१२२	१८८
१०८ दुमकनुं दृष्टांत. (३८)	१८८
१०९ जिन वचनना आराधनमां प्रमाद न करवो.	१२३	१८९
११० रागद्वेषनुं त्याज्यपणुं-तेनां कडु फळ	१२४-१२९	१८९
१११ कुशिक्ष्य चारित्रने निष्फळ करे छे.	१३०	१९०
११२ क्रोधनुं त्याज्यपणुं-तेनां कडु फळ.	१३१-१३४	१९१
११३ प्रमादनुं त्याज्यपणुं-तेनां फळ	१३५	१९२
११४ मुनिप आक्रोशादि सर्व सहन करवुं.	१३६	१९३
११५ दृढमहारीनुं वृत्तांत. (३९)	१९३
११६ मुनि अपकारी मत्ये पण अपकार करता नयीं.	१३७	१९५
११७ सहस्रमल्लनी कथा. (४०)	१९५
२१८ मुनिनी क्षमा अने सहनशीलता.	१३८-१४०	१९६
११९ मुनि वंशुवर्गना स्नेहासमां वंधाता नयीं....	१४१	१९७

विषय	गाथा.	पृष्ठ.
१२० स्कंदकुमारनुं दृष्टांत. (४१)	१९७
१२१ वैशुवर्गना स्नेहनुं त्याज्यपणुं	१४२-१४३	१९९
१२२ माता पिता विगेरै संबधीओ आ भवमां अनेक दुःख आपे छे.	१४४	२००
१२३ माता पण पुत्रनुं अहित करै छे....	१४५	२००
१२४ चुलणी राणीनु दृष्टांत. (४२)....	२००
१२५ पिता पण पुत्रनुं अश्रेय करै छे....	२०३
१२६ कनककेतु राजानी कथा (४३)....	२०४
१२७ भाई पण भाईने हणे छे.	२०६
१२८ स्त्री पण पतिने विष आपे छे	१४८	२०६
१२९ पुत्र पण पिताने दुःख आपे छे....	२०७
१३० कौणिक राजानुं दृष्टांत. (४४)	२०७
१३१ मित्र पण मित्रने हणे छे.	२०८
१३२ चाणाक्यनुं दृष्टांत (४५)	२०९
१३३ स्वजनो पण स्वजनोनुं अनिष्ट करै छे.	१५१	२१३
१३४ परशुराम ने झुभुष चक्रीनी कथा. (४६)	२१४
१३५ श्रेष्ठ मुनिओ अनिश्चापज विचरै छे. ...	१५२	२१८
१३६ आर्य महागिरि प्रबंध. (४७)	२१८
१३७ सांसारिक सुंदरतामां मुनि लोभाता नथी....	१५३	२१९
१३८ कुळवान-मुनिओ मुनिजनो नो संपद खमे छे.	१५४	२१९
१३९ मेघकुमारनुं दृष्टांत. (४८)	२२०
१४० मुनिष् गुरुकुळमांज वसतुं-एकाकी विचरतुं नही	१५५-१६१	२२२
१४१ तजवा योग्य स्त्रीओ....	१६२-१६३	२२३
१४२ विषयरागना परवशपणाथी जीव संसारमां भमे छे	१६४	२२४
१४३ सत्यकी विद्याधरनी कथा (४९)	२२५
१४४ मुनिराजनी सेवाभक्तिथी अशुभ कर्म शिथिल थाय छे-	१६५	२२५
१४५ श्रीकृष्ण प्रबंध (५०)	२२६
१४६ साधु मत्ये करेला वंदना नमस्कारादिथी पापकर्मनो क्षय थायछे. १६६	२२८
१४७ मुशिष्यो गुरुनी श्रद्धाने पण दृढ करै छे.	१६७	२२८
१४८ चहृदुदाचार्ये ने तेना शिष्यनी कथा. (५१)	२२९
१४९ मुशिष्योथी परवरेलो कृगुरु-राजपुत्रोए करावेछे तेनुं मोचन. १६८-१६९	२३०
१५० अंगार मर्दकाचार्यनी कथा. (५२)	२३१

विषय.	गाथा.	पृष्ठ.
१५१ स्वप्नमां पण संसारस्थित जोवाची जीव बोध पामे छे....	१७०	२३२
१५२ पुष्पचूलानी कथा. (५३)	२३२
१५३ अंतावस्थाए षण जे धर्म करे छे ते आत्महित साधे छे.	१७१	२३५
१५४ अग्निकापुत्र प्रबंध. (५४)	२३५
१५५ कर्मनी लघुता होय तोज भोगो तजी शकाय छे.	१७२-१७३	२३७
१५६ प्राणांत कष्ट आपनार उपर पण मुनी द्वेष चिंतवता नथी.	१७४-१७६	२३७
१५७ वधादिक पापकर्मनो जघन्य ने उत्कृष्ट उदय केटलो थाय छे ?	१७७-१७८	२३८
१५८ मरुदेवा मातानुं अवलंबन ग्रहण करवा योग्य नथी.	१७९	२३८
१५९ मरुदेवा मातानी कथा. (५५)....	२३९
१६० मत्येकबुद्धनुं अवलंबन पण ग्रहण करवा योग्य नथी	१८०-१८१	२४०
१६१ अस्थिशेष रहे तो पण विषयनो विश्वास करवो नहीं....	१८२	२४०
१६२ मुकुमालिकानी कथा. (५६)...	२४१
१६३ नीरंकुश आत्मा वश करातो नथी-आत्मदमननी आवश्यकता.	१८३-१८८	२४४
१६४ वीषयसुखना सेवनथी तृप्ती धती नथी.	१८९-१९०	२४४
१६५ रसशुद्ध प्राणी परीणामे दुःख पामे छे. ...	१९१	२४५
१६६ मंगुसुरीनी कथा. (५७)	२४५
१६७ आत्मपरीताप	१९२-१९६	२४७
१६८ जीवे ग्रहण करीने मूकेलां शारीरादी-तद्वारा उपदेश....	१९७-२०२	२४८
१६९ जीवने उपदेश	२०३-२१७	२५०
१७० श्रद्धारहीत धर्माचरण मोक्षने साधनारु थतुं नथी	२१८-२१९	२५४
१७१ केवा यतीओए घरमात्रज वदल्युं कहैवाय ?	२२०	२५४
१७२ उत्सूत्र आचरणनुं फळ	२२१	२५६
१७३ पासध्यादीनो संग न करवो	२२२-२२६	२५६
१७४ शीलवीकळने वर्जवा ने शीलमां उद्यमी यवुं.	२२७	२५६
१७५ गिरिशुक अने पुष्पशुकनी कथा. (५८)....	२५७
१७६ परमार्थना जाण पासध्या सुविहित साधुने वांदवा देता नथी.	२२८	२५८
१७७ सुविहित मुनि पासे वंदन करावनार पासध्याने थतुं फळ.	२२९	२५८
१७८ श्रावक केवा होय ? तेनी करणी-तेमनुं कर्तव्य विचारे.	२३०-२४६	२५९
१७९ उत्तम शिष्यो प्रमादी गुरुने पण ठेकाणे लावे छे.	२४७	२६३
१८० सेलकाचार्य ने पथक शिष्यनी कथा. (५९)	२६६
१८१ निकाचीत कर्मनो भोग अती वळवान छे....	२४८	२६६
१८२ दश दशने प्रतिबोधक नंदिवेणनी कथा. (६०)	२६६

विषय.	गाथा	पृष्ठ.
१८३ कर्मना वशवर्तिपणाथी जीव जाणतो छतो मोह पामे छे.	२४९-२५०	२७०
१८४ अंते थता अशुभ शुभ परीणामनुं फळ तादृश मळे छे....	२५१-२५२	२७१
१८५ कंदरीक ने पुंडरीकनी कथा. (६१)	२७२
१८६ चारीत्रने वीराधनार मुनी प्रमादने तजी शकतो नथी....	२५३-२५४	२७३
१८७ चक्रवर्ती छ खंडनी ऋद्धी तजी शके छे पण शीथील थ- येळ शीथीलपणुं तजी शकतो नथी.	२५५ २७४
१८८ मनुष्यभवमां मुखलंपटने नरकमां थयेळ पश्चात्ताप	२५६	२७४
१८९ शशीप्रभ राजानी कथा. (६२)	२७४
१९० सुरप्रभदेवे शशिप्रभनें आपेल उत्तर ने तेनुं रहस्य.	२५७-२५८	२७५
१९१ संयम योगमां करेला प्रमादनुं फळ.	२५९	२७६
१९२ शोक करवा लायक कया जीवो छे ?	२६०	२७६
१९३ उत्तम उपदेश.	२६१-२६४	२७६
१९४ ज्ञानदाता गुरुने शुं अदेय छे ?...	२६५	२७७
१९५ शिवभक्त पुलिंद (भिल्ल)नी कथा. (६३)	२७८
१९६ विद्याना इच्छके गुरुनो विनय अवश्य करवो. ...	२६६	२७९
१९७ श्रेणिकुने विद्या आपनार चंडाळनी कथा. (६४)	२७९
१९८ विद्यागुरुनो अपलाप करनार नष्टविद्य थाय छे.	२६७	२८३
१९९ त्रिदंडीनी कथा. (६५)	२८३
२०० एक जीवने बोध प्रमादनार सर्व जीवलोकमां अमारि पटह बगडावे छे.	२६८ २८४
२०१ समकित दाता गुरुनो प्रत्युपकार थइ शकतो नथी.	२६९	२८४
२०२ समकितनुं फळ.	२७०-२७२	२८४
२०३ प्रमादथी समकित मलिन थाय छे.	२७३	२८५
२०४ सो वर्षना आयुष्य साये पुण्य पापथी थतां बंधनी वहेचण. २७४-२७६	२८५
२०५ धर्ममां प्रमादीने श्रेष्ठ मुखनी प्राप्ति न होय....	२७७	२८५
२०६ देवताना मुख मुखे कही शकाय तेम नथी.	२७८	२८६
२०७ नरक गतिनां दुःख....	२७९-२८०	२८७
२०८ तिर्यच गतिनां दुःख.	२८१	२८७
२०९ मनुष्य गतिनां दुःख. ...	२८२-२८४	२८८
२१० देव गतिनां दुःख.	२८५-२८७	२८८
२११ स्वामीपणुं स्वाधीन छतां दासपणुं कोण स्वीकारे ?....	२८८	२८९

विषय.	गाथा.	पृष्ठ.
२१२ आसन्नसिद्धि जीवोनुं लक्षण....	२८९-२९०	२९०
२१३ धर्म करवानी आवश्यकता.	२९१-२९३	२९०
२१४ यतनानी आवश्यकता—तेनुं निरूपण-दशद्वार.	२९४-२९६	२९१
२१५ पांच समितितुं पालन केवी रीते थाय ? (प्रथम द्वार).	२९६-३००	२९२
२१६ क्रोधादि दश छेसरूप छे. (द्वितीय द्वार)....	३०१	२९३
२१७ क्रोधना पर्यायो	३०२-३०३	२९४
२१८ मानना पर्यायो.	३०४-३०६	२९४
२१९ मायाना पर्यायो.	३०६-३०७	२९५
२२० लोभना पर्यायो.	३०८-३०९	२९६
२२१ कषायो तजवा संबधी उपदेश.	३१०-३१६	२९६
२२२ हास्यादि षट्कने तजवा संबधी उपदेश.	३१६-३२१	२९८
२२३ कर्मने पराधीन थयेल जीव अकार्य करे छे....	३२२	३००
२२४ अनुभव रहित बहुश्रुत भोक्षमार्गनो आराधक थतो नथी.	३२३	३००
२२५ जणे गारव तजवा विषे. (३)	३२४-३२६	३००
२२६ इंद्रिय द्वार. (४)	३२७-३२९	३०१
२२७ मद त्याज्य द्वार. (५)	३३०-३३३	३०२
२२८ ब्रह्मचर्य गुप्ति द्वार. (६)	३३४-३३७	३०३
२२९ स्वाध्याय द्वार. (७)	३३८-३४०	३०४
२३० विनय द्वार. (८)....	३४१-३४२	३०६
२३१ तप द्वार. (९)	३४३-३४४	३०६
२३२ मुनिप रोगोत्पत्ति समयेकेम वर्तवुं ? वैयावच कोनी कोनी करवी ? (शक्ति न गोपववा संबधी १० मुं द्वार.)	३४५-३४८	३०६
२३३ लिंगधारीनुं स्वरूप विगेरे.	३४९-३६३	३०७
२३४ पार्श्वस्थादिकनां लक्षणो.	३६४-३८२	३०९
२३५ आ काले कोई साधुओ ज नथी ? एवी शंकांनुं निवारण	३८३-३८४	३१७
२३६ मायावीनुं स्वरूप-तेनुं परिणाम.	३८५-३८६	३१७
२३७ कपटक्षप तपस्वीनी कथा. (६६)	३१८
२३८ विराधकनुं स्वरूप ...	३८७	३१९
२३९ आराधकनुं स्वरूप ...	३८८	३२०
२४० एक स्थाने केवा मुनि रहे ? ...	३८९-३९१	३२०
२४१ सर्वाणुंज्ञा के सर्व निषेध जिन प्रवचनमां नथी	३९२	३२१
२४२ धर्ममां मायानो अवकाश ज नथी.	३९३-३९४	३२१

विषय.	गाथा.	पृष्ठ.
२४३ लाभालाभनो विचार करनारै वस्तुने ओळखवी.	३९५	३२२
२४४ चारित्राचारना बे प्रकार	३९६-३९७	३२२
२४५ अमीतार्थ गच्छने प्रवर्तवितो अनंत संसारी थाय.	३९८	३२२
२४६ शिष्ये पुढेलुं तैनुं कारण.	३९९	३२२
२४७ शुद्धमहाराजनो उत्तर-अमीतार्थ आराधक थइ शकतो नथी ४००-४११		३२३
२४८ अवहुश्रुत(अल्पश्रुत)पण मोक्षमार्गमां यतना करी शकतो नथी ४१२-४१८		३२६
२४९ गुरुपर्वक्रमधीज विद्या प्राप्त थाय छे	४१९	३२८
२५० ज्ञानीज क्रियामां बराबर प्रवर्ती शकें छे,	४२०	३२८
२५१ ज्ञान साथे क्रियानी आवश्यकता.	४२१-४२६	३२९
२५२ चारित्रने अंगे विविध उपदेश	४२७-४३५	३३०
२५३ गुणविना आहंवर व्यर्थ छे.	४३६	३३३
२५४ साधुना छेत्तामां कोंण गणाय छे ?	४३७	३३३
२५५ मात्र कायावडे कांइ गुण प्राप्त थता नथी.. .	४३८	३३३
२५६ केटलाकनुं मरवुं,केटलाकनुं जीववुंने केटलाकनुं वने श्रेष्ठ छे अने केटलाकनुं मरवुं जीववुं वने अहितकारक छे.	४३९	३३४
✓ २५७ दर्दुरांक देवनी कथा. (६७)....		३३४
२५८ केटलाकनो परलोक,केटलाकनो आलोकने केटलाकना वने लाक सारा होय छे अने केटलाकना वने लाक नष्ट होय छे.	४४०-४४४	३४०
२५९ सुविहित पुरुषो परने पीडा करता नथी....	४४५	३४१
२६० मुलसनी कथा. (६८)		३४२
२६१ उपकरणो मेळव्या छतां यतनाज न करे तो मेळववुं व्यर्थ छे.	४४६-४४७	३४३
२६२ जिनेश्वर बळात्कारे धर्म करावता नथी, उपदेशज आपे छे.	४४८-४४९	३४४
२६३ जिनेश्वरना उपदेशनुं फळ	४५०-४५३	३४४
२६४ आत्महितकारक धर्मानुष्ठाननुं फळ विगेरे....	४५४-४५८	३४५
२६५ धर्मानुष्ठान न करवायी निंदा पात्र थवाय छे.	४५९	३४६
२६६ जमालिनी कथा (६९)		३४७
२६७ सामान्य उपदेश	४६०-४६५	३४९
२६८ पंचेन्द्रियपणा विगेरेनी दुर्लभता.	४६६	३५१
२६९ धर्म रहित जीवने अंत समये शोक थाय छे.	४६७-४६९	३५२
२७० धर्माचरण करनारने अंत समये चिंता न होय.	४७०	३५२
२७१ मासाहस पक्षीनी जेम उपदेश देवामां कुशल पण आचरणमां तत्पर नहीं एवा केटलाक जीवो होय छे. ...	४७१-४७२	३५२

अनुक्रमणिका.

२३

विषय.	गाथा.	पृष्ठ.
२७२ केटलाएक नटनी जेम मात्र उपदेश करनारज होयछे....	४७३-४७४	३६३
२७३ आत्महित करनारना विचार.	४७५	३६४
२७४ प्रमादीनुं संयम केवुं होय ? ...	४७६-४७७	३६४
२७५ पापीना जीवितने धिक्कार छे. ...	४७८	३६५
२७६ धर्मयुक्त व्यतित थयेला दिवसादिकज लेखे छे. ...	४७९-४८०	३६५
२७७ अनेक युक्ति दृष्टांतोयी उपदेश आप्या छतां प्रतिबोध न पाये तो तेनी भवितव्यताज एवी समजवी. ...	४८१	३६५
२७८ शिथिल थया पछी उद्यग अशक्य छे माटे शिथिल थवुं नहीं.	४८२	३६६
२७९ योगने उन्मार्गे प्रवर्तवा देवा नहीं. ...	४८३-४८४	३६६
२८० कूर्म (काचवा) नी कथा (७०)....	...	३६६
२८१ साधु केवी भाषा न बोले. ...	४८५	३६७
२८२ मनने स्थिर करवुं. ...	४८६	३६८
२८३ भारेकर्मीनां लक्षण ...	४८७-४८९	३६८
२८४ जाणतां छतां प्रमादी थाय तेने कोण उपदेश आपे ?...	४९०	३६९
२८५ भगवैते वे मार्गज कहेला छे.	४९१	३६९
२८६ भावपूजाथी भ्रष्ट थाय तेजे द्रव्य पूजामां उद्यमी थवुं....	४९२-४९३	३६९
२८७ द्रव्यपूजाथी भावपूजा श्रेष्ठ छे.	४९४	३६०
२८८ खेहुतने आपेला वीजनुं दृष्टांत ने उपनय....	४९५-५००	३६०
२८९ चारित्रं तजनारे त्रण भूमिनो त्याग करवो....	५०१	३६२
२९० साधुपशुं धारी शकाय नहीं तो श्रावक थइ जनुं पण वेषने लजववो नहीं. ...	५०२	३६२
२९१ सर्व सावधनो त्याग करीने बोलेछुं पाळवुं....	५०३-५०४	३६२
२९२ जिनेश्वरनी आज्ञानो भंग न करवो. ...	५०५	३६३
२९३ चारित्र्यी भ्रष्ट थया छतां वेषमात्रथी आजीविका चला- वे छे ते अनेत संसारी थाय छे. ...	५०६	३६३
२९४ दीक्षा लइने असत्य बोळवुं नहीं. ...	५०७-५०८	३६३
२९५ लीधेलां व्रतोने तजीने अन्य तपादि करे छे ते मूर्ख छे.	५०९	३६४
२९६ पासस्थादिनुं स्वरूप जाणीने मध्यस्थ थवुं. ...	५१०	३६४
२९७ मुनिवेष मात्र आधाररूप थतो नथी ?	५११	३६४
२९८ निश्चय नये चारित्रनाशे ज्ञानदर्शन नष्ट थाय छे. व्यवहार नये तै वेनी भजना होय छे. ...	५१२	३६५

विषय.	गाथा.	पृष्ठ.
२९९ कोण कोण शुद्ध थाय छे.	५१३	३६५
३०० संविज्ञ पक्षीनां लक्षण....	५१४-५१६	३६५
३०१ पोते शिथिल छतां वीजाने दीक्षा आपे छे ते थुं करे छे ?	५१७	३६६
३०२ उत्सृज प्ररूपक थुं करे छे ?	५१८	३६६
३०३ त्रण प्रकारना मोक्षमार्गे ने त्रण प्रकारना संसारमार्गे....	५१९-५२०	३६६
३०४ द्रव्यलिंगयी अर्थसिद्धि यती नथी.	५२१	३६७
३०५ वेपना आग्रहीए संविज्ञ पक्षी थवुं....	५२२	३६७
३०६ प्रबल कष्टमां पण मुनिए कर्तव्य अवश्य करवुं	५२३	३६७
३०७ संविज्ञ पक्षनुं दुर्लभपणुं.	५२४	३६८
३०८ पासथयाओ जिनवचनथी बाह्य छे.	५२५	३६८
३०९ विशुद्ध प्ररूपकने थतो लाभ.	५२६	३६८
३१० गीतार्थ मुनि लाभ तोटानो विचार करे.	५२७	३६९
३११ संविज्ञ पक्षीनी यतना प्रमाण छे.	५२८	३६९
३१२ आ उपदेशनी माळा कोने माटे छे ?	५२९-५३३	३६९
३१३ आ प्रकरण सांभळीने पण जे धर्ममां उद्यमी थतो नथी तेने अनंत संसारी जाणवो.	५३४	३७१
३१४ गह कर्मिने आ उपदेश गुण करतो नथी....	५३५	३७१
३१५ उपदेशमाळा जाणवा विगेरेथी थतो गुण....	५३६	३७१
३१६ कर्त्तानुं नाम सूचवणार गाथा.	५३७	३७१
३१७ जिनवचनरूप कल्पवृक्ष जयवंत छे.	५३८	३७२
३१८ आ उपदेशमाळाने योग्य कोण ?	५३९	३७२
३१९ उपदेशमाळा शा माटे-कोने माटे करी छे ?... ..	५४०	३७२
३२० आ प्रकरणनुं व्याख्यान महा फलदायी छे.	५४१	३७२
३२१ गाथानी संख्या.	५४२	३७३
३२२ उपदेशमाळाने आशिष.	५४३	३७३
३२३ अक्षरमात्राना हीनाधिक कथन माटे क्षमा याचना.	५४४	३७३
३२४ श्री शैलेश्वर पार्श्वजिनजीनुं स्तवन	३७४
३२५ श्री महावीर निर्वाण सहाय.	३७५
३२६ श्री आत्मरक्षा नवकार मंत्र शब्धात् पानुं.	२५
३२७ श्री नवकार मंत्रनो छंद	२५
३२८ अथ श्री गौतम स्वामिनो छंद	२६

श्री आत्मरक्षा नवकारमंत्र.

ॐ परमेष्ठिनमस्कारं, सारं नवपदात्मकं । आत्मरक्षाकरं वज्र-पंजराय स्मराम्यहं ॥
 ॥ १ ॥ ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितं । ॐ नमो सबसिद्धाणं, मुखे
 मुखपटांबर ॥ २ ॥ ॐ नमो आयरियाणं, अंगरक्षातिशायिनी । ॐ नमो ज्वझायाणं,
 आयुषं हस्तयो हृदं ॥ ३ ॥ ॐ नमो लोए सबसाहणं, मोचके पादयोः शुभे । एसो
 पंचनमुकारो, शिलावज्रमयी तले ॥ ४ ॥ सबपावप्पणासणो, वमो वज्रमयो वहिः ।
 मंगलाणं च सबेसिं, खादिंरंगारघातका ॥ ५ ॥ स्वाहांतं च पदं ज्ञेयं, पदमं हवइ मंगलं ।
 वमोपरि वज्रमयं, पिधानं देहरक्षणे ॥ ६ ॥ महामभावी रक्षेयं, छुद्रोपद्रवनाशिनी ।
 परमेष्ठिपदोद्भूता । कथिता पूर्वैस्सरिभिः ॥ ७ ॥ यथैने-कुस्ते रक्षां, परमेष्ठिपदैः सदा ।
 तस्य न स्यादुभयं व्याधिराधिश्चापि कदाचन. ॥ ८ ॥

श्री नवकार मंत्रनो छंद.

॥ दुहा ॥

बंधित पूरे विधिधरे, श्री.जिनशासनसार; निश्चे श्री नवकार नित्यं, जपतां जय-
 जयकार ॥ १ ॥ अडसठ अक्षर अधिकफल, नवपद नवेनिधान, वीतराग स्वयं मुख बदे,
 पंचपरमेष्ठि प्रधान ॥ २ ॥ एकजअक्षर एकचित, समयां संपत्ति थाय; संचित सागर
 सातनां, पातक दूर पलाय ॥ ३ ॥ सकलमंत्रशिर मुकुटमणि, सद्गुरुभाषितसार; सोभा-
 वियां मनशुद्धं, नित्य जपीये नवकार ॥ ४ ॥ छंद-नवकार धकी श्रीपाल नरेश्वर,
 पाम्या राज्य प्रसिद्ध; श्मशान विषे शिवनाम कुमरने, सोवनपुरिसोसिद्ध; नवलाल
 जपता नरकनिवारं, पासे भवनो पार; सोभवियां भक्ते चोरके चित्ते, नित्य जपीये नव-
 कार ॥ ५ ॥ बांधी बडशाखा शिके बेसी, हेठळ कुंड हुताश; तस्करने मंत्रसमर्प्यो,
 उडयो ते आकाश; विधि रीते जपतां विषधर विष टाले, ढाले अमृतधार सो० ॥ ६ ॥
 बीजोरा कारण रायमहाबल, व्यंतरदुष्टविरोध; जेणे नवकारे हत्या टाळी, पाम्यो यज्ञ
 प्रतिबोध; नवलाल जपतां थाये जिनवर, इस्यो छे अधिकार सो० ॥ ७ ॥ पल्लीपति
 शिल्यो मुनिवर पासे, महामंत्र मन शुद्ध; परभव ते राजसिंह प्रथिवीपति, पाम्यो परि-
 गल रिद्ध, ए मंत्रथकी अमरापुर पहातो, चारुदत्त मुविचार सो० ॥ ८ ॥ सन्यासी
 काशी तप साधतो, पंचाशि परजाले; दीगे श्री पासकुमारै पन्नग, अधवलतो ते टाले,
 संमलाव्यो श्री नवकार स्वयंमुख, ईंद्रमुखन अवतार. सो० ॥ ९ ॥ मन शुद्धे जपतां
 मयणासुंदरी, पामी प्रीयसंयोग; इणे ध्यान थकी कष्ट टल्यो जंवरनो, रक्तपित्तनो रोग;
 निश्चेथुं जपतां नवनिधि थाये, धर्मतणो आधार. सो० ॥ १० ॥ घटमांही कृष्ण मुजं-
 गमपाल्यो, धरणीकरवाघात; परमेष्ठिमभावे हारफुलनो, वसुधा मांही विख्यात. कथ.

लावतिष् (कलावतिष्) पिंगलकीधो, पापतणोपरिहार, सो० ॥ ११ ॥ गयणां गण-
जाति राखीग्रहीने, पाढी वाण प्रहार; पदपंच सुणंतां प्रांडुपति घर, ते थइ कुंता नार;
ए मंत्र अम्लखमहिमामंदिरं, भवदुःख-भंजणहार. सो० ॥ १२ ॥ कंबल संबले कादव
काढया, शकट पांचशें मान; दीधे नवकारे गयां देवलोके, विलसे अमर विमान ॥ ए
मंत्र थकी संपत्ति वसुधा लही, विलसे जैनविहार. सो० ॥ १३ ॥ आगे चोवीशी हुइ
अनंती, होशेवार अनंत; नवकारतणी कोइ आदि न जाणे, एम भाखे अरिहंत, पूरव
दिशि चार आदि प्रपंचे, समयां संपत्ति सार. सो० ॥ १४ ॥ परमेष्ठि सुरपद ते पण
पामे, जे कृतकर्म कठोर; पुंडरगिरि उपर प्रत्यक्ष पेखो, मणिधर ने एक मोर; सहयुह
सन्मुख विधिये, समरंता, सफळ जनम संसार. सो० ॥ १५ ॥ शुलिकारोपण तस्कर
कीधो, लोहखरो परसिद्ध; तिहां श्रेठे नवकार मुणाव्यो, पाम्यो अमरनी रिद्धि; शे-
ठने घर आवी विघ्न निवारयां, सुरे करी मनोहार. सो० ॥ १६ ॥ पंचपरमेष्ठि ज्ञानज
पंचह, पंचदान चारित्र; पंच सज्जाय महाव्रतपंचह; पंचसमिति समकित; पंचममाद
विषय तजो पंचह, पालो पंचाचार. सो० ॥ १७ ॥ कलश-छप्पय ॥ नित्य जपीये
नवकार, सार संपत्ति सुखदायक; सिद्धमंत्र ए शाश्वतो, एम जंपे श्री जगनायक; श्री
अरिहंत सुसिद्ध, शुद्ध आचार्य भणी जे; श्री उवज्ञाय सुसाधु, पंच परमेष्ठियुणी जे;
नवकार सार संसार छे, कुशल लाभवाचक कहे; एक चित्ते आराधतां, विविधरीद्धि
वांछितलहे. ॥ १८ ॥

अथ श्री गौतम स्वामीनो छंद.

वीरजिणेश्वर केरो शिष्य, गौतम नाम जपो निश्चदिश ॥ जो कीजे गौतमनुं ध्यान,
तो घर विलशे नवे निधान ॥ १ ॥ गौतम नामे गिरिवर चढे, मनवंछित हेला संपदे,
गौतम नामे नावे रोग, गौतमनामे सर्व संजोग ॥ २ ॥ जे वैरी वीरुआ बंकडा, तस
नामे नावे हुंकडा ॥ भूत प्रेत नवि मंडे प्राण, ते गौतमना करु वखाण ॥ ३ ॥ गौतम
नामे निर्मळकाय, गौतम नामे वाधे आय ॥ गौतम जिनशासन ज्ञणगार, गौतमनामे
जयजयकार ॥ ४ ॥ शाल दाळ सुरहा धृत गोळ, मनवंछित कापड तंबोळ ॥ घरसु ध-
रणीं निर्मळ चित्त, गौतम नामे पुत्र विनीत ॥ ५ ॥ गौतम उग्यो अविचळ भाण, गौ-
तम नाम जपो जगजाण ॥ म्होटा मंदिर मेरु समान, गौतम नामे सफळ वीहाण ॥ ६ ॥
घर मथगळ घोडानी जोड, वारु पहाँचे वंछित कोड ॥ महियळ माने म्होदाराय, जो
त्रुठे गौतमना पाय ॥ ७ ॥ गौतमप्रणम्या पातोळ टळे, उत्तम नरनी संगत मळे ॥ गौ-
तमनामे निर्मळज्ञान, गौतम नामे वाधेवान ॥ ८ ॥ पुन्यवंत अवधारो सहू, शुस्सौतमना
शुण छे बहु ॥ कहे लावण्य समय करजोड, गौतम तूठे संपत्ति कोड ॥ ९ ॥

श्री धर्मदासगणि विरचित.

श्री उपदेशभाषा भाषांतर.

श्रेय करवावाळा, इच्छित वस्तुने आपवावाळां अने जेणे कर्मसमूहने जीत्यो छे एन्ना वीरभगवानने प्रणमीने उपदेशमाळा नामना ग्रंथमां आवेला पदोना अर्थमात्रने स्फुट करवा वडे किंचित मात्र तेनुं विवरण रचुं छुं. जोके आ ग्रंथनी अनेक टीकाओ छे तोपण जगतने विषे चंद्रमा प्रकाशमान थये सते शुं घरने विषे वीवो करवामां आवतो नथी ? आवे छे. तेवी रीते हुं आ ग्रंथनी अर्निष्ट एवी टीका करं छुं. श्री धर्मदासगणीए पोताना पुत्रने बोध आपवा अर्थ अनेक जनोने उपकार करनारो तथा भय्यजीवोना कल्याण रूप आ मुखे बोध थाय तेवो ग्रंथ रच्यो छे. भारंमयां धर्मदासगणिना पुत्र 'रणसिंहनुं, कर्मनो क्षय करनारं शुभ चरित्र कहुंछुं.

जंघुद्दीपने विषे भरतक्षेत्रमां समृद्धिवान 'विजयपुर' नामनुं नगर छे. त्यां 'विजयसेन' नामनो राजा राज्य करतो हतो. तेने 'अजया' ने 'विजया' नामनी बे राणीओ हती. तेमां विजया राणी नृपने अति बल्लभ हती. ते स्वपतिसाथे विषय सुखनो आनंद छेती सती गर्भवती थइ. तेने गर्भवती थयेली जोइने तेनी शोक अजयाने विचार थयो के- 'मारे पुत्र नथी, तेथी जो विजयाने पुत्र थयो तो ते राज्याधिपति थयो.' एहुं विचारी तेणे द्वेषथी 'मसूतिकारिकाने बोलावी पुण्कळ धन आपीने कहयुं के- 'ज्यारे विजयाने पुत्र थाय त्यारे कोइ मृत पुत्रने लाबीने तेने वताववो अने ते पुत्र मने आपवो.' ए प्रमाणे तेणे मसूतिकारिकानी साथे विचारप्रबंध कर्यो. त्यार पछी विजया राणीने पूर्ण मासे पुत्र जन्म्यो. ते समये पापी सूवाणीए कोइ मृत बाळकने लाबीने तेने वताव्यो, अने तेना पुत्रने तेनी शोक अजयाने स्वाधीन कर्यो. तेणे एक दासीने बोलावीने कहुं के- 'बाळकने बनने विषे कोइ अंध कूवामां नांखी आव.' दासी ते बाळकने लइ बनमां गइ अने कूवा समीप आवी, एटछे तेने विचार थयो के- 'मने हुष्ट कर्म करनारीने धिक्कार छे के हुं आ बाळकने मारी नांखवा तंपर थइ छुं. आ मोंहुं पाप छे. आ कृत्यथी मने कोइ प्रकारनी अर्थसिद्धि थवानी नथी; पण उलटो नरकादि गतिनी प्राप्ति थवा रूप अनर्थ तो उवाडो छे.' एहुं विचारी कूवाने कांठे धासवाळी जग्यामां ते बाळकने

सूकी दइने ते पाछी आवी, अने अजया राणीने जणाव्युं के 'में ते बाळकने कूवामां नांखी दीथो.' पोतानी शोकना पुत्रने मारी नंखाववाथी अजयाने घणो हर्ष थयो.

ते अवसरे सुंदर नामनो एक कौटुंबिक घास लेवाने माटे ते वनमां आव्यो त्यां तेने पेळा रोता बाळकने जोइने दया आवी, तेथी घणा हर्षथी घरे लावी ते बाळक पोतानी मियाने आपीने कहुं के—'हे सुंदर लोचनवाळी स्त्री ! वनदेवताए आपणने आ मनोहर बाळक अर्पण करेल छे, तेथी तारे तेनुं पुत्रवत् रक्षण करवुं ने पालणपोषण करवुं.' ते पण तेनुं सम्यक प्रकारे पालणपोषण करवा छागी अने रणने विषे मालुम पडवाथी तेणे ते बाळकनुं नाम 'रणसिंह' पाड्युं. ते दिनप्रतिदिन बीजना चंद्रनी जेम वृद्धि पामवा लाग्यो.

हवे केटलाक दिवस पछी कोइए विजयसेन राजाने तेना पुत्रने मारी नंखाववाळुं सर्व वृत्तांत कहुं; तेथी तेने घणुं दुःख उत्पन्न थयुं. ते विचारवा लाग्यो के—'जेणे मारा पुत्ररनने मारी नंखाव्यो ते दुष्ट राणीने धिक्कार छे ! आ संसारस्वरूपने पण धिक्कार छे के जेनी अंदर रागद्वेषथी पराभव पामेला प्राणीथो स्वार्थवृत्तिने वण थइने आवां दुष्ट कर्म आचरे छे, तेथी एवा संसारमां रहेवुं तेज अघटित छे. आ लक्ष्मी चलित छे, प्राण पण चळ छे, आ गृहवास पण अस्थिर ने पाण रूप छे; तेथी प्रमाद छोडीने धर्मने विषे लघम करवो जोइए. कहुं छे के 'संपदा जळना मोजाना जेवी चपल छे, यौवन त्रण चार दिवसनुं छे, आयुष्य शरदऋतुना वादळाना जेवुं चंचळ छे, तो धनथी शुं काम छे ? अनिष्ट एवो धर्मज करो.' वळी 'एवी कोइ कळा नयी, एवुं कोइ औषध नथी, अने एवुं कोइ विज्ञान नथी के जेथी काळसर्पे खवाती एवी आ कायाळुं रक्षण करी शकाय !' आ प्रमाणे वैराग्यपरायण थयेला विजयसेन राजाए पोतानी प्रिया विजया तथा 'सुजय' नामना तेना भाइ सहित पोताना कोइ वंशजने राज्य सोंपीने वीरभगवाननी पासे चारित्र अंगीकार कर्तुं. भगवंते स्थविरोने सोंपी दीधा. अनुक्रमे विजयसेन नामना नवदीक्षित मुनि सिद्धांतना अध्ययने करीने महाज्ञानी थया. तेमनुं 'धर्मदासगणि' एवुं नाम राखवामां आव्युं, अने तेना साळा सुजयनुं नाम 'जिनदासगणि' राखवामां आव्युं.

अन्यदा भगवंतनी आज्ञा लडने बहु साधुओथी परचरेला तेओ पृथ्वीने विषे भव्य जीवोने बोध करता सता विहार करवा लाग्या.

हवे पेळो रणसिंह नामे बाळक बाल्यावस्थामां पण राजक्रीडा करतो सतो बौध्दावस्था पाम्यो, अने सुंदरने घरे रहीने तेनां क्षेत्र संबंधी कार्ये करवा लाग्यो तेना क्षेत्र समीपे चिंतामणी यक्षथी अधिष्ठित थयेळुं श्री पार्श्वनाथजोनुं चैत्य आ-

वेळुं छे. त्यां विजयपुरना घणा लोको आवीने हमेशां श्रद्धा पूर्वक पूजा स्नान आदि करे छे अने तेओनां मनोवांचित ते यक्ष पूरा पाडे छे.

एक वखत कौतुक जोवाने अर्थे रणसिंह पण त्यां गयो. त्यां प्रतिमाना दर्शन करतो लभो हतो तेवामां चारणऋषिओ त्यां वंदना करवाने आठ्ठा. रणसिंह पण तेओने वंदन करीने तेमनी पासे वेठो. मुनिप पण 'आ योग्य छे' एवुं जाणीने तेने धर्मनो उपदेश दीधो, ते आ प्रमाणे—

“आ संसारमां प्रथम तो मनुष्योने वालपणायां स्त्रीनो कुक्षिने विषे दुःख छे, त्यारपछी वाल्यावस्थामां पण शरीर मलथी खरडायेळुं रहे छे, तेमज स्त्रीनुं स्तनपान करवुं पडे छे. ते पण दुःख छे. तरुणवयमां विरहथी उत्पन्न ययेळुं दुःख भोगवजु पडे छे अने वृद्धावस्था तो वदन मुखरहितज छे; तेथी हे मनुष्यो ! संसारमां कंइ पण सुख होय तो कहो.” आ प्रमाणे सांभळीने रणसिंहे कळुं के—‘आपे कळुं ते सत्य छे.’ साधुए रणसिंहने धर्म उपर खचिवाळो जाणीने पूछयुं के—‘हे वत्स ! तुं हमेशां आ प्रासादने विषे पूजा करवा आवे छे ? त्यारे तेणे जवाव आप्यो के—‘हुं अहीं आवीने रोज पूजा कर एवुं मारुं भाग्य क्यांथी ?’ साधुए कळुं के—“जिनपूजातुं मोडुं फळ छे. कळुं छे के—‘सोगणुं प्रभुनी प्रतिमाने प्रमार्जन करवामां पुण्य छे, हजारगणुं विलेपन करवामां, लाखगणुं पुष्पनी माळा पहेराववाथी पुण्य छे अने गोल वाजिजादिनुं अनंत गणुं पुण्य छे.’ तेथी जो दररोज तुं पूजा करवाने असमर्थ हो तो देवदर्शन कर्या पछी भोजन छेवु एवो अभिग्रह कर. एवा अभिग्रहथी पण तुं सुखनुं भांगन थइस.” आ प्रमाणे सांभळीने रणसिंहे ते प्रमाणे अभिग्रह लीधो, अने चारणऋषिओ आकाशने विषे उत्पती गया.

हवे रणसिंह हमेशां ज्यारे क्षेत्रने विषे पोताने माटे भोजन आवे छे त्यारे हळ छोडीने क्रूरकरवादि नैवेद्य लइने श्री पार्वनाथ प्रभुनां दर्शन करवा जाय छे अने पछी भोजन छे छे. ए प्रमाणे अभिग्रह पाळ्तां तेना वहु दिवसो निर्गमन थया. एक दिवस चिंतामणि यक्ष तेनी परीक्षा करवाने माटे सिंहनुं रूप लइने देरासरनां द्वारनी आहो वेठो. ते अवसरे रणसिंह कुमार पण नैवेद्य ग्रहण करीने जिनदर्शन करवाने माटे आठ्ठा; त्यां सिंहने जोइने ते विचार करवा लाग्यो के ‘ग्रहण करेला नियमनो भंग तो प्राणांते पण करवो योग्य नहि. वळी जो आ सिंह छे तो हुं पण रणसिंह छुं. ए मने शुं कररो ?’ ए प्रमाणे शुरवीरपणाथी तेणे सिंहने हाक मारी के ‘छेते खसो जा, मारे अंदर जवुं छे.’ तेनुं आवुं साहस जोइने, ते सिंह अदृश्य थयो. पछी जिनभक्ति करीने, रणसिंहे पोताना क्षेत्रे आवी भोजन कर्युं. एकदा त्रण दिवस सुधी अति मेघदृष्टि

थई, तेथी नदीमां पूर आववाने लीधे त्रण दिवस-सुधी घरेथी भात पण आव्यो नहि. चोथे दिवसे भात आव्यो, एटछे जिनशृहे जइ नैवेद्य घरी जिनदर्शन करीने पोताना क्षेत्रे आबी विचार करवा लाग्यो के ' जो कोइ अतिथि आवे, तो तेने भावपूर्वक कांइक आपीने पछी पारणु करूं. ' एवो विचार करे छे, तेवामां बे मुनिओ भाग्यवचात् त्यां आबी चड्या. ते तेओने पगे लाग्यो अने शुद्ध अन्न व्होराल्युं. तेना मनमां घणो आनंद थयो, तेमज पोताने धन्य मानवा लाग्यो के ' अहो ! आवे अवसरे मने साधुनां दर्शन थयां अने तेमनी भक्ति पण थइ. ' तेना माहात्म्यथी चिंतामणि यक्ष प्रत्यक्ष थयो ने बोल्यो के- ' हे वत्स ! तारूं सत्य जोइ हुं संतुष्ट थयो छुं माटे तुं वरदान माग. ' रणसिंहे कहुं के- ' हे स्वामी ! आपनां दर्शन ययां तेथी मने तो नव निधि प्राप्त थइ छे, जेथी मने कांइ न्यूनता नथी. ' त्यारे यक्षे कहुं के- ' देवदर्शन मिथ्या थतुं नथी, तेथी कांइक तो माग. ' त्यारे तेणे कहुं के- ' मने राज्य आपो. ' यक्षे कहुं के- ' आजथी सातमे दिवसे तने राज्यप्राप्ति थशे; पण तारे कनकपुर नगरने विषे कनकशेखर राजानी राणी कनकमाळानी पुत्री कनकवतीनी स्वयंवर थशे त्यां जरूर जवुं. हुं तने त्यां आश्चर्य वतावीश ते तुं जोजे. वळी हवे पछी जन्म पर्यंत तारे कांइ पण काम आबी पडे, तो मारूं स्मरण करवुं. " आ प्रमाणे कही यक्ष अहृदय थयो. हवे रणसिंह कुमार बे नाना बळदने हळे जोडी, तेना उपर बेसीने कनकपुर आव्यो. त्यां अनेक राजकुमारो प्रथमथी मळेल हता. रणसिंह जरा दूर उभो रह्यो. ते अवसरे जेणे नूपुर तथा कंकण धारण कर्यां छे अने घणी वेटीओथी जे परिहृत थयेली छे एवी कनकवती स्वयंवरमंडपमां आवी. पछी वन्ने बाजुए वेटेला राजाओने जोती जोती, तेओने नहि पसंद करती ते ज्यां रणसिंह कुमार हळ तजीने खेडुतना वेपमां उभो छे त्यां गइ, अने तेना कंठने विषे वरमाळा आरोंपी. ते जोइने सर्वना मनमां एक साथे क्रोध उत्पन्न थयो. तेओ कनकशेखरने ठपको आपवा लाग्या के ' हे राजन् ! जो तारी इच्छा हाखिक (खेडुत) ने पुत्री आपवानी हती, तो अमने बोळवीने तें शामाटे अपमान कर्युं ? ' कनकशेखरे जवाब दीघो के ' तेमां मारो कांइ अपराध नथी. कारणके मारी पुत्रीए तेनी इच्छानुसार वर पसंद कर्यो, तेमां अयोग्य थुं कर्युं छे ? ' ए प्रमाणे सांमळीने सर्व कोपायमान थया अने लालचोळ थइ, आयुध धारण करी रणसिंहने घेरी लीघो, अने बोल्या के- ' हे रंक ! तुं कोण छे ? तारूं कुळ कयुं छे ? ' रणसिंहे कहुं के- ' हाळ कुळ कहेवानो अवकाश नथी, अने कदि जो हुं कहीश तोपण तमने विश्वास आवशे नहि; माटे संग्राम करवा-

थीज मारा कुळनी परीक्षा थशे. ' ए प्रमाणे सांभळीने सर्वे युद्ध करवाने सज्ज थया. रणसिंह पण हळ.उपादीने सामे धस्यो. परस्पर युद्ध थये सते देवप्रभाव-वडे हळना प्रहारथी सर्व राजाव्यो जर्जरोभूत थइने नासी गया. ते जोइने चमत्कार पावेल्ला कनकशेखरे रणसिंह कुमारने विज्ञप्ति करी के- ' हे स्वामिन् ! आपे मोट्टु आश्चर्य वटाव्युं छे तो हवे तमारुं रूप पण प्रकाशित करो. ' ते वरवत यक्षे प्रत्यक्ष थइने रणसिंह कुमारतुं सर्व चरित्र कही संभळाव्युं. ते सांभळीने कनकशेखर अति हर्षित थयो अने घणी वामधुमथी पोतानी पुत्रीनो विवाह कर्यो. वीजा सर्व राजा-ओतुं पण पहेरामणी आपवावडे सन्मान कर्युं. पछी तेओ पोतपोताने देश गया. कनकशेखरे एक देशतु राज्य जमाइने अर्पण कर्युं. एटछे त्यां रहीने ते कनकवतीनी साथे विषयसुरखनो अनुभव करवा लाग्यो. पछी सुंदर खेडतने बो-लावी तेने योग्य राज्यकार्यमां अधिकारी कर्यो.

ए अवसरे सोमा नामनी मोटी नगरीने विषे, पुरुषोत्तम नामे राजां राज्य करतो हतो. तेने रत्नवती नामनी पुत्री हती. ते कनकशेखर राजानी बेननी पुत्री (भाणेज) थती हतो. तेणे कनकवतीना पाणिग्रहणनो सर्व वृत्तांत जाण्यो. तेथी ते रणसिंह कुमारनी उपर अरुरागवाळी थइ, अने तेणे रणसिंह विना अन्य वर नहि करवानो नियम लोधो. ए प्रमाणे पोतानी पुत्रीनी इच्छा जाणीने, पुरुषोत्तम राजाए पोताना प्रधानपुरुषोने रणसिंह कुमारने बोळाववा मोकल्या. त्यां जइने तेओए आमंत्रण कर्युं, एटछे रणसिंह जवाव आप्यो के ' ए सधळें कनकशेखर जाणे, हुं कांइ जाणतो नथी. ' एटछे प्रधान पुरुषोए कनकशेखरने विदित कर्युं; त्यारे तेणे विचार्युं के ' मारी भाणेजनो विवाह करी आपवो ए मने उचित छे. ' ए प्रमाणे चितवी रणसिंह कुमारने बोळावीने कहुं के ' तमे रत्नवतीना पाणिग्रहमाटे जाओ. ' तेणे ते कबुल कर्युं. पछी मोटा परिवार साथे रत्नवतीने परणवा माटे जतां मार्गमां पादलीखंड नगरनी समीपना उपवनमां चीतामणि यक्षना देरा पास ते आव्यो. एटछे यक्षमंदिरमां जइने तेणे यक्षने प्रणाम कर्यो. त्यां तेनी जमणी आंख फरकी, एटछे ते मनमां चिन्तवन करवा लाग्यो के ' अहीं कोइ इष्टनो मेळाप थशे. ' ते सभये पादलीखंड नगराधीश कमलसेन राजानी राणी कमलिनीनी कुक्षिने विषे उत्पन्न थयेळी कमलवती नामनी कुंवरी सुगंधी पदार्यो तथा पुष्य विगेरे पूजानी वस्तुओ लइने, सुमंगळा दासी सहित ते यक्षना मंदिरमां आवी. त्यां रणसिंह कुमारने जोइने ते काम-विहळ थइ गइ. कुमार पण तेने जोइने मोहित थयो. तेओ वने नेत्रतुं मटकुं पण मार्यां शिवाय, एकीनजरे परस्परने सरुनेह जोतां उभां रखां. पछी कमल-वतीए यक्षनी पूजा करीने प्रांते प्रार्थना करी के- ' स्वामिन् ! तमारी कृपाथी आ पुरुष मारो भर्ता थायो. एना दर्शनथी हुं तेना पर अति रागवती थइ छुं.

माटे तमे प्रसन्न थइने ए राजकुमारने मारा भर्तारपणे आपो.' त्यारे यक्षे कळुं के- 'हे वाला ! आ राजपुत्र हुं तने अर्पण करुं छे. एनो साथे तुं इच्छानुसार संसारतुं सुख भोगव.' ए प्रमाणे सांभळीने तेने घणो आनंद थयो. पळी कमलवती सेवकद्वारा तेतुं नाम विगेरे पृच्छीने, स्नेहदृष्टीने तेने फरीफरीयी जोती पोताने घरे गइ. कुमार पण पोताना मुकामे आव्यो. बीजे दिवसे पण कमलवती पूजा करवाने आवी. कुमारे, तेने जोइ. पूजा कर्या वाद बीणावादन पूर्वक संगीत करीने ते घरे गइ. कुमार तेतुं गान तथा बीणानो स्वर सांभळीने मनने विषे चिन्तववा लाग्यो के 'जो आ वालाने परणुं तोज मारो जन्म सफळ छे, नहितो आ जीवितथी शुं ?' ए प्रमाणे तेना रागे बाह्यो सतो त्यांज रल्लो. मुकाम उपाढयो नहि. एकदा पुरुषोत्तम राजाना प्रधानोए आवीने विज्ञप्ति करी के 'स्वामिन् ! अत्र विलंब करवातुं शुं कारण छे ?' कुमारे कळुं के- 'मारे अहीं कांइ काम छे, तमे आगळ जाव्यो, हुं तमारी पाळळ जलदीयी आवुं छुं.' ए प्रमाणे कुमारानो उत्तर सांभळीने तेओ सोयापुरीए पुरुषोत्तम राजा समीपे गया अने कुमार पाळळ आवे छे एम कळुं, हवे रणसिंह कुमार तो कमलवतीना रूपथी मोहित थइने त्यांज रहेछो छे. ते अवसरे एक भीम राजानो पुत्र पण कनकसेन राजानी सेवा करे छे, ते कमलवतीतुं रूप जोइने तेना पर मोहित थयो छे; परंतु कमलवती तेने जरा पण इच्छती नथी. एक वखत कमलवतीने यक्षपूजाने अर्थ गयेली जाणीने ते भीमपुत्र तेनी पछवाढे गयो. तेणे धार्युं के 'ज्यारे ते यक्षमासादयांथी वहार नीकळ्छे, त्यारे हुं मारा मननी सर्व अभिलाषा तेने जणावीश.' ए प्रमाणे विचार करतो सतो ते द्वारयांज उभो रल्लो. कमलवतीए पण तेने जोयो, एठछे तेणे सुमंगला दासीने कळुं के- 'आ पुरुष जे द्वारने विषे उभो छे ते जो अंदर आवे तो तेने तारे रोकवो.' ए प्रमाणे कहीने ते मंदिरनी अंदर गइ अने दासीने द्वार पासे उभी राखी. पळी एकांते जइ एक जडो कान उपर वांघवाथी पुरुषरूपे थइने ते मासादना द्वार पासे आवी. त्यारे कुमारे तेने पूछ्यु के- 'हे देवपूजक ! कमलवती हजु केम वहार आवी नहि ?' त्यारे तेणे कळुं के- 'में तो आ दासीने एकलीनेज मासादने विषे जोइ छे, बीजी कोइ पण स्त्री अंदर नथी.' ए प्रमाणे कहीने ते पोताने घेर आवी. पळी कर्ण उपरथी जटिकाने दूर करी एठछे मूळरूपे थइ गइ. पाळळ भीमपुत्रे मासादनी अंदर घणी तपास करी, पण कमलवतीने नहि जोवाथी ते खिन्न थइने पोताने स्थाने गयो. सुमंगला दासी पण घेर आवी. त्यां कमलवतीने तेणे पूछ्युं के- 'हे स्वामिनी ! तमे अहीं केवी रीते आव्यां ? में तमने वहार नीकळतां तो जोया नहि.' त्यारे तेणे जटिकांतुं सर्व स्वरूप कही बताव्युं. ते वखते दासीए कळुं के- 'हे स्वामिनी ! एवी जटिका तमने क्यांथी मळी ?' कमलवतीए कळुं के- 'सांभळ, पूर्वे हुं एक वखत यक्षने मंदिरे गइ हती. ते

वखते त्यां एक विद्याधर ने विद्याधरीतुं जोडूं आव्युं इतुं. मने जोडने विद्याधरी मनमां चिन्तववा लागी के ' जो आ अद्भुत रूपवाली स्त्रीने मारो पति जोजे तो ते तेना रूपथी मोहित थड जशे. ' एवु धारिने हुं न जाणुं तेम तेणे मारा कर्ण उपर एक जटिका बांधी दीधी. हुं यक्षनी पूजा करवाने माटे गड त्यां मारा पुरुषवेषने जोडने हुं विस्मित थड, अने सर्व शरीरने अवलोकतां एक जटिका कर्णउपर जोवामां आवी. ते जटिका दूर करी एटछे हुं मूलरूपमां आवी. त्यार-पल्ली ते जटिकाने आदरथी ग्रहण करिने में मारी पासे राखी छे. तेना प्रमा-वथी पुरुषवेष धारण करिने हु आज यक्षप्रासादमांथी ब्रह्मर नीकळी हती. ' ए प्रमाणे कमलवतीए पोतानी दासीने जटिकानुं स्वरूप निवेदन कर्युं.

हवे भीम राजाना पुजे तेने माटे घणा उपायो कर्यां, परंतु एक पण उपाय कामे लाग्यो नहि. त्यारे तेणे कमलवतीनी माताने पोतानो अभिप्राय जणाच्यो तेणे विचार कर्यो के ' आ महान राजपुत्र छे तो आनी साथे मारी पुत्रीना लग्न थाय तो ते शुक्त छे ' ए प्रमाणे विचारीने तेणे पोताना स्वामीने ते हकी-कत निवेदन करो. तेणे पण ते कबल कर्युं वीजे दिवसेज लग्न लीधां. ज्यारे कमलवतीए ते वात जाणी, त्यारे तेणे घणुं दुःख उरपन्न थयुः तेथी ते खाती नथी, सुती पण नथी, बोलती नथी अने हसती पण नथी. ते मनमां विचार करे छे के ' ते यक्षनी पासेज जडने तेने उपालंभ दशने तेनोज आश्रय लवं, ते शि-वाय मारी वोजी गति नथी. ' आ प्रमाणे विचारीने रात्रिए गुप्त रीते नीकळी यक्षमंदिरमां आवीने तेने ओळभो आपवा लागी के " हे यक्ष ! तपारा जेवा मुख्य देवोतुं वचन अन्यथा नीवडे ए घटित गणाय नहि. कारणके सत्पुरुषोने तो एकज जीव होय छे. कहुं छे के ' सत् पुरुषोने एक, सर्पने वे, प्रजापतिने चार, अग्निने सात कार्तिक ऋषिने छ, रावणने दश, शेषनागने वे हजार अने दुर्जनोना मुखमां हजारो ने लाखो जीव होय छे. ' जोके ए प्रमाणे छे छतां तपारी वाणी अन्ददा नीवडी. परंतु मारो जीव तो मारा हाथपां छे. " ए प्रमाणे कहीने रणसिंह कुमारना मुकामनी पासे जद मोठा वृक्षने विषे गळेफांसा बांधीने बोली के-" हे वनदेवताओ ! मारुं वचन सांभळो; में रणसिंह कुमारने परणवाना इच्छाथी आ चिन्तामणि यक्षतुं बहु रीते आराधन कर्युं. तेणे मने वचन पण आप्युं परंतु पाळ्यु नहि, तेथी हु आत्मघात करुं छुं. जो आ भवनें विषे ए मारा पति न थया तो आवता भवने विषे ते मारा बल्लभ थाओ. " ए प्रमाणे बोली वृक्ष उपर चडीने कंठमां फांसो नांखीने लटकी रहो. तेवामां सुमं-गला दासी नेन पगळे पगळे त्यां आवी. तेणे कमलवतीनी ए प्रकारनी अवस्था जोडने शोरबनोर करी मूक्यो. ते सांभळीने रणसिंह कुमार पोताना सुमित्र मित्र

सहित त्यां सत्वर आग्यो. दासीए गळानो फांसो छेदी नांख्यो, एटळे कमलवती बेशुद्ध अवस्थायामां नीचे पडी. शीत पवन विगेरेना उपचारथी ते स्वस्य थइ, त्यारे कुमारे पूछ्युं के- ' हे सुंदरी ! तुं कोण छे ? तें शा माटे गळे फांसो नाख्यो हतो ? तें आ साहस शा हेतुए कर्तुं ? ' सुमंगलाए उचर आप्यो के- " स्वामिन् ! शुं हजु आपे आने न ओळखी ? तमारामां जेनुं विच लीन थयुं छे एवीं आ राजपुत्री कमळवती छे. तेना पिताए तेने भीम वृपना पुत्रने आपवाथी ते आत्मघात करीने मरण पामवा इच्छती हती, तेनुं में गळाफांसो कापी नांखी रक्षण कर्तुं छे. " ते सांभळीने रणसिंह कुमार अति हर्षित थयो. त्यारपळी सुमित्र बोल्यो के- ' हे मित्र ! कयो छुधातुर माणस मिष्ट अन्न खावानुं मळते सते विलंब करे ? ते माटे आ बाळानुं पाणिग्रहण करीने तेनो मन्मथसमुद्रमांथी उद्वार करो. ' ए प्रमाणेनुं मित्रनुं कथन सांभळीने रणसिंहे तेज वखते तेनो साथे गांधर्व लग्न कर्तुं. कमलवती पण मनमां अति आनदित थइ. पळी कमळवती रात्रि-एज सुमित्रनी साथे पोताने घेर आवी. ते समये विवाहकार्यना अति हर्षमां पोताना कुटुंबपरिवारहु मन व्यग्र छे, एवुं जाणीने कमलवतीए पोतानो स्त्रीवेष सुमित्रने पहेराव्यो, अने पोते पुरुषवेष धारण करीने रणसिंह कुमारनी सत्रीपे गइ. कुधारे पण तेने स्नेहदृष्टिची वे हतवडे गाढ आलिंगन करीने पोतानी पासे बेसादी.

हवे लग्न वखते भीमपुत्र हाथी उपर स्वारी करीने मोटा आढवरथी परणवा आव्यो; अने महोत्सव पूर्वक कमळवतीनो वेप जेणे धारण कर्तो छे एवा सुमित्रनी साथे पाणिग्रहणकरी तेने लइने पोतानेस्थाने आव्यो. पळी कामना आवेशथी कोमळ आलाप पूर्वक नवीन वधूने पुनःपुनः बोलाववा लाग्यो; पण ते जरा पण बोलती नथी; चूप थइने बेसी रही छे. अति कामना आवेशमां तेणे हस्त बडे तेना अंगनो स्पर्श कर्तो. ते स्पर्शथी ते तां पुरुष छे एवुं जाणीने तेणे पूछ्युं के- ' तुं कोण ? ' तेणे उचर आप्यो के- ' हु तारी वधू छु. ' कुमारे पूछ्युं के- ' तुं वधू कयां छे ? तारा देहस्पर्शथी जणाय छे के तु पुरुष छे. ' त्यारे वधूनो वेप धारण करनार सुमित्रे जवाब आप्यो के- ' हे माणनाथ ! आ शुं लवो छो ! शुं तमे तमारु चेष्टित प्रकट करो छो ! विवाहना उत्सवथी परणेली एवी मने चेटकविद्याथी पुरुषरूप करो छो; तेथी हुं हमणां मारा पिता पासे जइने कहोश के- हु कुमारना प्रभावथी पुत्रीपणाने तजी दइने पुत्र थइ छुं ' ए प्रमाणे बोलवाथी ' आ केम वऱ्युं ? ' एम विचारतो भीमपुत्र व्यग्र चित्तवाळो थयो. ते अवसरे स्त्रीवेष धारण करनार सुमित्र रणसिंह कुमार पासे आव्यो, अने रात्रिनुं सर्व दृष्टांत कशुं. ते कौतुक सांभळीने तेओ सर्व हस्तताळीं दइने इसवा लाग्या

अहीं भीमपुत्रे कनकसेन राजा पासे आवीने कब के- ' मारी साथे तमारो जे पुत्रीना लग्न थया ते तो पुत्र देखाय छे. ' ते सांभळाने तेना साष्टु ससराए कहुं के- " शुं आ जमाइ गांडो थइ गयो छे के आ प्रमाणे लवे छे ? अथवा शुं भुतथी आवेशवान

थी छे के जेथी आ प्रमाणे असंबंध बोले छे ? एकज भवने विषे जीव लीपणु तजी हइने पुरुषत्व प्राप्त करे. एवा प्रकारनी प्रवृत्ति कोइ दिवस यइ नथी अने यज्ञे पण नहि, तेमज एवी वात सांभळवामां पण आवी नथी. तेम आ जमाइ पण असत्य शमापटे बोले ? माटे ए पुरुषवेषे कोइ धूर्त देखायछे." ए प्रमाणे कही राजाए कमलवतीनी सर्वत्र शोध करावी, एण तेनो पत्तो कोइ जग्याए मळ्थो नहि. त्यारे राजा अति शौकातुर यइ गर्रो, अने राणी पण पुत्रीना मोहने लीछे रुदन करती सती सेवको प्रत्ये कहेवा लागी के 'जे कोइ मारी पुत्रीने छावी आपणे तेनी अभिलाषा हुं पूर्ण करीश.' तेथी सेवको पण सर्वत्र भ्रम्या, परंतु पत्तो न लागवाथी खिन्न यइने पाछा आव्या.

मातःकाछे पत्तो मेलवेला कोइ पुरुषे कनकसेन राजा पासे आवीने. कह्युं के—'हे स्वामिन् ! मे कमलवतीने लग्नवेषमां रणसिंह कुमारना मुकामे क्रीडा करती जोइ छे.' ते सांभळीने क्रोधथी जेनां नेत्रो लालचोळ थइ गयां छे एवो कनकसेन राजा भीमपुत्र सहित गोडु लरकर लइने त्यां आव्यो, अने रणसिंह कुमारनी साथे युद्ध आरभ्युं. रणसिंह पण सिंहनी माफक युद्ध करवा लाग्यो. रणसिंह कुमारो पोते एकलो छतां देवनी सहायथी भीमपुत्र सहित कनकसेन राजाने जीती लइने तेमने पकडो लीधा, ते बखते कमलवतीनी दासी सुमगळाए आवीने सर्व वृत्तांत जणाव्यो. पछी कमलवती पण आवी अने पिताने प्रणाम करी वे हाथ जोडी उथी रही. कनकसेन राजाए भीमपुत्रसुं सर्व स्वरूप सांभळ्यु; तेथी तेनापर क्रोधायमान थइने तेनो घणो तिरस्कार कर्यो. कमलवतीण भीमपुत्रने पण छोटावी भूक्यो. कनकसेन राजां रणसिंह कुमारसुं कुल, धर्म विगेरे जाणीने अति हर्षित थयो. पछी मोटा आहंवरथी कमलवतीनो विवाह कर्यो. हस्तमेळाप समये घणा हाथी घोडा विगेरे आप्या. रणसिंह पण त्यां चिरकाल सुधी रह्यो. त्यारपछी कमलवतीने लइने पोताने देश पाछो फर्यो; अने कनकवती तथा कमलवतीनी साथे विषयसुख भोगवतो सुखमां काळ निर्गमन करवा लाग्यो.

अहीं सोमापुरीने विषे पुरुषोत्तम राजानी पुत्री रत्नवती विचार करवा लागी के "अरे ! मारा पाणिग्रहण अर्थे अहीं आवतां रणसिंह कुमार रस्तामां कमलवतीने परग्या अने तेनामां अति लुब्ध थया, एटलुंज नहि पण ते मारा वल्लभे मने एवी विस्मृत करी दीधी के अहीं मने परणवाने पण आव्या नहि. इमणा तो ते कमलवती विना वीजा कोइ तरफ नजर पण करता नथी; तेथी तेणे कांइ कामण कर्युं होय एम जणाय छे. भर्तांतुं हृदय कमलवतीना स्नेहथी अति भरपूर थयेळुं देखाय छे के जेथी मारा स्नेहनो तेमां अवकाश थइ शकतो नथी. परंतु हुं त्यारे खरी के ज्यारे कोइ पण लंपाये करी तेना उपर कलक चडावीने तेना उपरथी भर्तारनां चिचने खतारी नखावुं." ए प्रमाणे विचार करीने तेणे पोतानी मा-

ताने ए वात जणावी. तेणे पण 'तारी इच्छाजुसार कर' एवी रजा आपी.पत्नी त्यां एक दुष्ट 'मंघमूढिका' नामनी कामण तथा वशीकरण विगेरेमां कुशल एवी स्त्री रहती हती. तेने बोलावोने रत्नवतीए कळुं के- 'हे माता! तुंमारुं एक कार्य कर, ते कार्य ए छे के रणसिंह कुमार कमलवतीना उपर अति लुब्ध थयेला छे, तेथी एवुं करो के जेथी तेने कलंकथी दूषित मानीने कुमार घरमाथी काढी मुके.' ते सांभळीने परिव्राजिकाए ते वात कबूल करी अने बोळी के- 'एमां ते शुं मोहुं काम छे ? ते हुं अल्प काळमां करीश.' ए प्रमाणे वचन आपीने ते थोडा दिवसमां रणसिंह कुमार हाता ते नगरमां आवी. त्यां ते अंतःपुरमां कनकवतीना मंदिरमां गइ, अने तेने रत्नवतीना कुशल समाचार विगेरे निवेदन कयुं. रत्नवतीना तरफथी समाचार छावेळी होवाथी वनकवतीए तेने सन्मान आप्युं. पळो ते हमेशां अंतःपुरमां जवा लागी, अने कुतूहल विनोद विगेरे वार्तां करवा लागी; ते कमलवतीनी साथे विशेष घातचित्त करती हती, अने जेय कमलवतीनी तेना पर बघारे विश्वास उत्पन्न थाय तेम करती हती. दररोज जवा भाववातुं करतां तेणे एक दिवस कूट विद्याथी कमलवतीना मंदिरने विषे परपुरुषने आवतो कुमारने बताव्यो. पण तेना मनमां जराए आव्युं नहि; ते तो विचार करवा लाग्यो के- 'कमलवतीनुं शील सर्वथा निष्कलंकित छे.' ए प्रमाणे घणीवार परपुरुषने आवतो जोवाथी कुमारने विचार्युं के 'शुं कमलवतो शीलथी लंघित थइ हरो ? के जेथी हुं हमेशां तेना मंदिरमां परपुरुषने आवतो जतो प्रत्यक्ष जोळं छुं.' तेणे कमलवतीने पूछ्युं के- 'हुं हमेशां तारा मंदिरने विषे परपुरुषने आवतो जोळं छुं तेनुं शुं कारण ?' ते सांभळी कमलवती बोळो के- 'हे प्राणनाथ ! हुं कइ पण जाणती नथी. ज्यारे तमे परपुरुषना संचारनुं स्वरूप पूछो छो त्यारे ते मारां कर्मनो दोष छे. ज्यारे तमे एवुं जुओछो त्यारे हुं जरूर मंदभाग्यवती छुं. प्राटे जो आ पृथ्वी मार्ग आपे, तो तेना विषे समाइ जाळं के जेथी एवुं अश्राव्य वचन सांभळवुं न पडे.' आ प्रमाणे उत्तर सांभळीने कुमार विचार करवा लाग्यो के- 'खेरखर ए भूत आदिनुं विलसित जणाय छे. आनामां कोइ पण प्रकारनी कुचेष्टा जणाती नथी. जोके सुंदर भ्रुकुटीवाली स्त्री यौवनावस्थामां तीक्ष्ण कटाक्ष फेकीने परना मनने मोहित करेछे, परंतु ते पुरुषोनी साथे हमेशां संगम केवी रीते संभवे ? तेमां पण विशेषे करीने अंतःपुरने विषे तो ते संभवेज नहि. केमके अकाल मृत्युनो अभिलाषी एवो कोण अहीं हमेशां आवे ? ए प्रमाणे विचार करवाथो कुमारने ते सत्य जणायुं नहि, पण मननी अंदर शंकायुक्त रह्यो; तेथी काइक स्नेह तो घट्यो. पेळी दुष्टाए विचार कर्यो के- 'इजु पण आनुं विच तेना उपरथी विरक्त थयुं नहि, तेथी हवे वीजा उपायथी तेमना स्नेहनो भंग करं.' एवु घारीने वांबूळ-

भोजनना उपाये करी मंत्रचूर्णादिना योग करीने तेणे कुमारतुं मन विरक्त कर्युं. कुमारतुं मन जे पूर्वे कमलवतीना उपर गाढ प्यारमां लग्न हल्लं तेने मंत्रचूर्णादिना प्रययोगथी तेना प्रत्ये ज्वलायमान कर्युं. कुमार लोकापवादथी डरीने विचार करवा लाग्यो के 'आ कमलवतीने तेना पिताने घरे भोकळी दळं, अहीं राखवा लायक नथी.' ए प्रमाणे विचारीने तेणे सेवकोने बोलावी आज्ञा करी के 'तमे कमलवतीने रथमां बेसारीने तेना पिताने घेर सूकी आवो.' ए प्रमाणे सांभळीने सेवको विचार करवा लाग्या के-'आ आवुं अघटित केम करे छे? पण आपणने तो स्वामीतुं वाक्य उल्लंघन न थइ शके तेवुं छे.' ए प्रमाणे विचारीने तेओ कमलवतीनी पासे आवी बोल्या के-'हे स्वामिनी ! तमारा पति वाटिकाने विषे गयेला छे ने तमने त्यां बोलावे छे, माटे रथमां बेसीने शीघ्र चाळो.' ए प्रमाणे असत्य बोलीने तेओए तेने रथमां बेसारी. ते बलते कमलवतीनी जमणो आंख फरकी, तेथी ते विचारवा लागी के-'अत्यारे शुं अशुभ यशे ? पण स्वामी मने बोलावे छे माटे जखर जुनुं, जे वनवातुं होय ते वनो.' ए प्रमाणे विचारी व्यग्र विचे ते रथमां बेठी. सेवकोए रथने सत्वर चलाव्यो. कमलवतीए पूछ्युं के-'मारा स्वामीथी अलंकृत थयेळुं उपवन केदळं दूर छे?' त्यारे सेवके उत्तर आप्यो के-'वन क्यां अने तमारो स्वामी पण क्यां ? कुमारे तमारा पिताने घेर तमने सूकी आववानी अमने आज्ञा आपो छे.' कमलवतीए कळुं के-"भंछे, ज्यारे कुमारे आवुं वगरविचार्युं तेमज परीक्षा कर्यां विनातुं कार्यं कर्युं छे तो पछवाडेथी तेने घणो पश्चात्ताप यशे, वाकी मारे तो जे कर्म उदयमां आवो पदंयुं ते भोगवतुंज जोइए. कळुं छे के 'करेला कर्मोनो क्षय करोडो वर्षे करीने पण यतो नथी. शुभ वा अशुभ जे कर्म कर्युं होय, ते अवश्य भोगवतुंज पडे छे.' परंतु हुं निरपराधी प्रत्ये आ शुं आचर्युं ?" आ प्रमाणे विचारती ते थोडा दिवसमां पादलीखंडपुर समीपे आवी पहांची. एदळे कमलवती बोळी के-'हे सारथी ! तुं अहींथीज रथने पाळो वाळ. हवे अहीं तारुं कंड काम नथी. आ स्थानथी हुं परिचित छुं. अहींथांथी सन्मुखज पादलीखंडपुरतुं उपवन देखाय छे, तेथी हुं एकळी मुखेथी जइश.' ए प्रमाणे सांभळी सारथी प्रणाम करीने आंखमां अशु ल्हावी बोल्या के-"हे स्वामिनी ! तमे साक्षात् शील रूपी भूषणने धारण करनारा लक्ष्मी छो, ने हुं अघम आज्ञानो करवावाळो कर्मचंडाळ छुं, के जेथी तमने अरण्यमां तजी दळं छुं. दुष्ट कर्म करनार एवा मने धिकार छे !" ए प्रमाणे धोळता सारथीने कमलवतीए कळुं के-'हे सत्पुरुष ! आमां तारो अपराध नथी. जे सेवक छे ते तो स्वामीनी आज्ञा प्रमाणे करेज छे. पण ते मंदभाग्यवंतने मरुं

एक वचन कहेजे के 'शुं आ कार्य कुलोचित करेलुं छे ?' ए प्रमाणे सांभळ्या बाद कमळवतीने वट तरुनी नीचे मूकीने सारथी रथ लइने पाछो वळयो. पछी एकाकी कमळवती रोती ने विलाप करती बोलवा लागी के—“ हे विधाता ! तें आ अति कूर कार्य शुं आचर्युं ? अकाळे वज्र पडवा रूप प्रियना वियोगथी उत्पन्न थतुं दुःख तें मने शामाटे आप्युं ? में तारो शो अपराध कर्यो हतो ! आ दुःख तो सर्व सहन थइ शके तेमं छे, परंतु असत्य कलंक चढावीने भर्ताए मने घरमांथी काढी मूकी छे; तेथी मने महद् दुःख थाय छे. हुं शुं करं ? क्यां जावं हे धाता ! अही आवीने दुःखदावाग्रिथी वळती तारी पुत्रीनुं रक्षण कर. अथवा तूं आवती नहि, कारण के मारं दुःख जोइने तारं हृदय फाटी जशे. हुं मंदभाग्यवंती छुं. कारण के हुं कुमारावस्थामां पिताने वर शोधवानी चिंतातुं कारण थइ हती. पाणिग्रहण वखते पिताने बंधन विगेरेतुं कष्ट प्राप्त कराव्युं हतुं. अत्यारे पणं आं सांभळीने ते पण दुःखी थशे. ” आ प्रमाणे अनेक रीते विलाप करती सुती मनने विषे विचार करवा छागी के—‘ प्रथम मारा स्वामीए मारा शीलनी सारी रीते परीक्षा करी हती. परंतु पतुं जणाय छे के कोइ निष्कारण वैरीए अथवा भूतराक्षस विगेरेए इंद्रजाळनुं स्वरूप बढावीने मारा स्वामिनुं मन व्युद्ग्राहित करी नांख्युं छे. तेथो हमणा कलंकयुक्त मारे पिताने घेर जनुं सर्वथा युक्त नथी. हमणां तो जटिकाना प्रभावथी पुरुष रूप धारण करीने रहुं. कारण के पाका बदरी फळना जेवा स्त्रीशरीरने जोइने कोण भोगववानी इच्छा न करे ? कहुं छे के “ वळावतुं पाणी पीवाने, तांबूल खावाने अने यौवनावस्थामां स्त्रीना शरीरने जोवाने कोण उरसुक न थाय ? ” मारे तो माणत्यागथी पण शीलनुं रक्षण करतुं ते श्रेष्ठ छे. कारण के आ संसारमां शील शिवाय बीजो परम पवित्र अने निष्कारण मित्र नथी. कहुं छे के—“शील ए निर्धननुं धन छे, अलंकाररहितनुं आभूषण छे, विदेशने विषे परम मित्र छे, अने आ भवमां तथा परभवमां सुख आपनावं छे.” वळी शीलना प्रभावथी प्रज्वलित अग्नि शांत थइ जाय छे अने सर्पआदिनो मय नाश पांसी जायछे. आगममां पण कहुं छे के—“ देव दानव, गंधर्व, यक्ष राक्षस अने किन्नर विगेरे ब्रह्मचारीने नमस्कार करे छे, कारणके ते दुष्कर कार्यना करनार छे.” वळी “कोइ क्रोडोगमे सौनैयातुं दान दे अथवा सोनातुं जिनशुवन करावे तो पण जेटळं पुण्य ब्रह्मव्रत धारण करनारने थाय छे तेतळुं तेने थतुं नथी.”

आ प्रमाणे विचार करीने ते जटिकाना प्रभावथी ब्राह्मणनो वेष धारण करीने पांडलीखंडपुरथी पश्चिम दिशाए आवेल ‘वक्रधर’ नामना गामनी समीपे चक्रधर देवताना मंदिरमां पूजारीपणे रही, अने सुखे काळ निर्गमन करवा लागी.

हवे सारथीए रणसिंह कुमार पासे जइने कमलवती संबंधी सर्व वृत्तांत कहुं, ते सांभलीने 'आ सर्व गंधमूषिकाना मंत्रादिनुं माहात्म्य छे' एवुं जाणी. कुमार अत्यंत पश्चात्ताप करवा लाग्यो के—'भैं अघमे कुळने अनुचित एवुं आ शुं आचर्युं ? के जेथी निर्दुषण एवी प्राणमियाने कळक चढाव्युं. ते मारी प्राणमिया कमळासी कमलवती शुं करती हरो ? हुं शुं करं ? तेना विना सर्व शून्य लागे छे. 'दीप छतां, अग्नि छतां तथा नाना प्रकारना मणि छतां. एक ते मृगासी-विना आ जगत् वधुं अंधकारमय लागे छे.' कोण जाणे ते मारी वल्लभा हवे मने-क्यारे मळो ? अधन्य एवो हुं लोकोने मुख शीरीते ववावी शकोस ? मने धिक्कार छे ! जे हृदयने विषे एवो माठो विचार आव्यो ते मारं हृदय-फूटी केम गयुं नहि ? अने ते मारी जीभ झतरखंड केम थइ गइ नहि, के जेणे तेने वनमां मूकी आववानी रजा आपी ! आ प्रमाणेनुं अकार्य करतां मारा माया उपर ब्रह्मांड केम जुटी पदयुं नहि ! अरे ! वगरविचारे करेलुं कार्य महा अनर्थने माटेज थाय छे. नीतिशास्त्रमां पण कहुं छे के "कोइ पण कार्य सहसा करहुं नहि. कारणके सहसा कार्य करनार अविचैकी परम आपदातुं स्थान थाय छे, अने विचारीने काम करवावाळा शुणल्लुब्ध प्राणीओ स्वयमेव संपदाने पामे छे." पण हवे आ प्रमाणे शोच करवावी शुं ? विचारवानी जर ए छे के आ कार्य कोनाथी ययुं ?" ए प्रमाणे विचार करता तेणे गंधमूषिका जती रहाना खबर सांभलथा, एटछे 'खरेखर आ कार्य तेणेज करेलुं छे' एम नःश्वास पूर्वक विचारवा लाग्यो.

हवे गंधमूषिकाए सोमापुरी जइने रत्नवती पासे कुमारनुं वधुं स्वरूप तथा कमलवतीनुं पण स्वरूप कही वताव्युं. रत्नवती हर्षवती थइ. पछो तेणे पोताना पिता पुरुषोत्तम राजाने कहुं के—'हे स्वामिन् ! रणसिंह कुमारने तेढावो.' एटछे पुरुषोत्तम राजाए पण कुमारने बोलाववाने कनकपुर कनकशेखर राजानी पासे पोताना सेवको मोकल्या. तेओए त्यां जइने कहुं के—'हे स्वामिन् ! रणसिंह कुमार रत्नवतीनुं पाणिग्रहण कर्या वगर रस्तेथीज पाळा वळथा ए वधुं अनुचित कर्तुं छे, तेणे अमने लज्जित कर्या छे; परंतु रत्नवती तो तेमना विषे एकविचवाळीज रही छे. तेथी हवे तेना पाणिग्रहण अर्थे कुमारने मोकळो." कनकशेखरे कुमारने बोलावी आज्ञा करी के—'रत्नवतीना विवाहमाटे जाओ.' कमलवतीना चिरहथी जोके तेनुं मन व्यग्र हतुं, तोपण पिताना आग्रहथी तेणे कबुल कर्तुं. शुभ दिवसे सैन्यसहित चाल्या. शुभ शुकून जोइ प्रयाण करतां पाडलीखंडपुर समीपे आव्या. एटछे मियानी शोष माटे फरतां फरतां चक्रधर नामनी समीपना उद्यानमां आवी, त्यां तंबू नांसी पडाव कर्यो. कुमार चक्रधरदेवनी

पूजा करवा चाल्या, ते बखते तेमनी जमणी चव्हु फरकी, तेथी ते विचारवा लाग्योके—‘आज कोइ इष्टनो संयोग थरो, परंतु कमळवती विना मने बीजुं कंइ इष्ट नथी; तेथी जो ते मळी आवे, तो खरो इष्ट लाभ प्राप्त थयो मातुं.’ ए प्रमाणे विचारे छे, तेबासां पुष्पवटुक रूपधारक कमळवतीए पुष्प लावीने कुमारना हस्तमां सूचयां. कुमारे तेने योग्य मूळ आप्युं. पछी पुष्पवटुके विचार्युं के—‘आरणासिंह कुमार रत्नवतीना पाणिग्रहणार्थे जाता जणाय छे.’ कमळवती कुमारने जोइ अति हर्षित थइ. कुमार पण पुष्पवटुक रूप धरनारी कमळवतीने पुनः पुनः जोतो सतो विचार करवा लाग्यो के—‘आ मारी प्राणवल्लभा कमळवतीना जेवो देखाय छे. एने जोईने माहं मन अति प्रफुल्लित थायछे.’ ए प्रमाणे चिन्तन करतो विस्मयथी तेने पुनः पुनः जोतां पण तप्त थयो नहि. कमळवती पण स्नेह करीने पोताना प्रियेने निरखवा लागी. पछी कुमार वटुकने साये छडने पोताना मुकामे आव्यो, अने भोजन विगेरेथी भक्तिपूर्वक तेतुं बहु सन्मान करीने तेने पोतानी पासे वेसाहयो. पछी कुमार तेने कहवा लाग्यो के—‘हे वटुक ! तारं अंग फरीफरीने जोतां छतां मने तृप्ति थती नथी. तारं दर्शन मने अतिशय इष्ट लागे छे.’ वटुक बोलयो के—‘हे स्वामिन् ! ए सत्य छे. जेय चंद्रनी कांतिना दर्शनथी चांद्रोत्पलप्रांथीज अमृत स्रवे छे, बीजांमांथी स्रवतुं नथी, तेम आ संसारमां पण जे जेनो बल्लभ होय छे, तेने जोवाथी तृप्ति थतीज नथी.’ कुमारे कहुं के—‘मारें आगळ जवातुं खांस कारण छे, परंतु तारा प्रेमनी शृंखलाथी वंधायेळ माहं मन एक पगळुं पण आगळ भरवाने उत्साहित थतुं नथी; तेथी कृपा करी तूं मारी साये चाल. पाछो हूं तने अहीं अवश्य लावीश.’ ए प्रमाणे सांभळीने वटुक बोलयो के—‘मारें अने इमेशां चक्रधर देवनी पूजा करवानी छे, तेथी माराथी केम आवी शकाय ? वळी दंभरहित व्रत धारण करनार मने त्यां आववातुं प्रयोजन पण थुं छे ?’ कुमारे कहुं के—‘जोके तारे कंइ पण कार्य नथी तोपण मारा उपर कृपा करीने तारे आववुं जोइए.’ कुमारना आग्रहथी तेणे ते कजुळ कर्तुं, अने तेनी साये आगळ चाल्यो. मार्गमां जातां कुमारने वटुकनी साये घणी श्रुति वंधाणी. एक क्षण पण ते तेनो संग छोडतो नथी. तेनी सायेज वेसतुं, उठवुं, चालवुं ने सुवुं विगेरे करे छे. शरीरनी छायानी जेम तेथीं बन्ने एक क्षण पण नोखा पडतां नथी. दूध ने जळनी जेवी तेथीने मैत्री थइ छे. कहुं छे के—‘दूधे पोतानी साये मिश्रित थयेळ जळने पोताना सर्व शुण आप्या. पछी दूधने ताप उपर चढायेळुं जोइने जळे पोतानी जातने अग्निमां नांवी, अर्थात् पोते बळबा मांडवुं; ते बखते पोताना भिजने आपचियां जोइने दूध जळळीने अग्निमां पडवा तैयार थयुं. तेने पाळुं

तेना मित्र साथे मेलच्युं अर्थात् पाणी लाट्युं त्वारे ते शांत थ्युं. सारा माण-
सोनी मैत्री एवा प्रकारनी होय छे. ”

एकदा कुमार बडुकने कहेवा लाग्यो के-‘हे मित्र ! मारुं मन मारी पासे
नथी.’ तेणे पूछ्युं के-‘ ते क्यां गथुं छे. ?’ कुमारे कहुं के-‘ ते मारी वल्लभा
कमलवतीनी साथे गथुं छे.’ तेणे पूछ्युं के-‘ कमलवती क्यां गइ छे ?’ कुमारे
कहुं के-‘ मारा जेवा मंदभाग्यवाळाना घरने विषे एवुं स्त्रीरत्न क्यांथी रहे ?
दैवथी जेजुं मन नष्ट थयेळुं छे एवा. में ते निरपराधी वाळाने काढो मूकी. ते
क्यां गइ ह्यो !’ बडुके कहुं के-‘ जेने माटे तुं आटलो बघो खेद करेछे ते केवी
हती ?’ कुमार नेत्रमां अश्रु सहित कहेवा लाग्यो के-‘ हे मित्र ! तेना गुणो एक
जीवथी गणवाने केवी रीते शक्तिवान थवाय ? सर्व गुणजुं भाजन ते स्त्री हती;
हचे तेना विना सर्व संसार शून्य लागे छे. परंतु तारा दर्शनथी मने आनंद
उत्पन्न थाय छे.’ त्वारे बडुके कहुं के-‘ हे सुंदर ! आटलो बघो पश्चात्ताप
करवो उचित नथी, कारणके विधिनिर्माण करेल कार्य निवारवाने कोण
शक्तिवान छे ? कहुं छे के-‘विधि अघटित घटनाने घटावे छे ने सुघटित घटनाने
जर्जरीभूत करे छे; जेने माटे मनुष्यजातने विचार पण आवी शकतो नथी तेवी
घटना विधि घटावे छे.’ तो आ प्रमाणे बहुं शोक करवाथी शो लाभ छे ?”

हचे घणा दिवसे कुमार मित्र सहित सोमपुरीए पहुँच्या. पुरुषोत्तम राजा
महा उत्सवथी तेनी सन्मुख गया, अने जमाइने मोटा आढवरथी पोताना नग-
रने विषे प्रवेश कराव्यो. पळी शुभ मुहूर्ते रत्नवतीजुं पाणिग्रहण करान्युं. पुरुषो-
त्तम राजाए पहेरामणीमां घणा हाथी तथा अश्वो विगेरे आप्यां. त्यां रणसिंह कुमार
अशुरे आपेल आवासमां रहेवो सतो रत्नवतीनी साथे विषयसुख भोगववा लाग्यो.

एकदा रत्नवतीए तेने पूछ्युं के-‘हे प्राणनाथ ! ते कमलवती केवी हती के जे
मरी गइ सती पण आपना चित्तने छोटती नथी, अने जेणे मारा पाणिग्रहणार्थे
अहीं आवतां आपने वश करी दइने पाछा वाळ्या हता ?’ कुमार वोल्यो के-‘हे
प्रिये ? आ त्रिभुवनने विषे एना जेवी बीजी कोइ स्त्री नथी. तेना अंमना लाव-
प्यजुं शुं वर्णन करुं ! ते मरी गये सते तने परणीने जे विषयसुखनो आनंद कळुं
ते आनंद, हुकाळ्यां गोधम, तंदुल आदि धान्य नहि मळवाथी हलकां कांग,
कोदरा, श्यामो विगेरे तृणधान्य खाइने जे आनंद मळे तेना जेवो छे. कहुं छे के-

‘हेळवीयो हीरे, रुडे रयणायरतणे; फूटरे फटिक तणे, मणिए मन माने नहि.’
“रत्नाकरना रुडा हीराथी हळेळा माणसजुं मन फुटडां के उजळां एवा फटकना
गणिथी माने नहि. ”

आ. प्रमाणेचा कुमारांना चषन सांभळीने रत्नवती रोषथी बोली. के- 'में कैतुं कर्तुं ? ते दुष्ट स्त्रीने केवी शिक्षा आपी ? अर्हीथी गंधमूषिकाने भोकळी, ते सर्व मॅज कर्तुं इतुं. जेवी ते तमारी इष्ट हती, तेवुं में कर्तुं; तो हवे तमे थुं सेवकनी पेडे तेना गुणो वारंवार गाया करोळो ?' ए प्रमाणे सांभळीने कुमार कमलवतीने तदन निष्फलक मानी, क्रोधथी लालचोळ थइ, रत्नवतीने हस्तथी पकडी, लात मारी, तिरस्कार करीने बोलयो के- 'हे मलिन कर्म करवावाळो ! तने धिक्कार छे । तें आज्ञा आपीने कुकर्म कराव्युं, पण तेथी तें तारा पोताना जीवनेज दुःख-समुद्रमां नांख्यो छे. तारा जेवी स्त्रीना करतां कुतरी पण वषारे सारी छे, के जै भसती होय पण अन्न आपवाथी वक्ष थाय छे ने भसती नथी. परंतु बहुमानिता एवी पण मानिनी (स्त्री) कदि पण पोतानी यती नथी. ?' ए प्रमाणे कहीने पळी विचारवा लाग्यो के- 'अरे ! वृथा कलंकचिंतामां पडेळी मारी भिया कमलवती जरूर मृत्युवक्ष थइ हशे, तो हवे मारा आ जीवनथी सखुं !' ए प्रमाणे विचार करी तेणे पोताना सेवकाने आज्ञा करी के- 'तमे मारा आवासनी पासे एक मोठी चिंता रचो, के जेथी कमलवतीना विरहथी दुःखी थयेलो हुं तेमां पडीने मरण पावुं.' ए प्रमाणे कही पराणे चिंता करावी, अने सर्व जणाए वार्यां छतां वळी मरवा चाल्यो. अर्ही पुरुषोत्तम राजाए ते वात सांभळी, एटछे प्रथम तो कुडकपटनी पेटी, मिथ्या कलक चढावनारी, अकार्य करनारी अने नरकगतिमां जनारी एवी गंधमूषिकाने घणी कदर्थना करावी, मानरहित करी, अपमान अपवावी रासभ उपर बेसाडीने नगरनी बहार काढी मूकी; स्त्रीजाति होवाथी मारी नंखावी नहि. पळी ते कुमार पासे आव्यो. त्यां तेणे तथा सार्थवाह आदि जनोएं कुमारने बहु प्रकारे वार्यां छतां ते चिंता समीप आव्यो. राजा आदि जनो विचार करवा लाग्या के- 'मोठो अनर्थ थशे, एक स्त्रीना वियोगथी आवुं पुरुषरत्न मृत्यु पावशे.' आ. प्रमाणे विचारी कुमारने चिंतामां पडवाने तैयार थयेलो जोइत्रे पुरुषोत्तम राजा बटुक समीपे जइ कहेवा लाग्यो के- 'हे आर्य ! आ कुमार तांर वाक्य उल्लंघन करता नथी, तेथी एवी विज्ञप्ति कर के जेथी ते आ पापकार्यथी पाछा फरे. पळी बटुक कुमार प्रत्ये बोलयो के- 'हे भद्र ! उत्तम कुळमां उत्पन्न थया छतां आवुं नीच कुळने उचित कर्म केम करो. छो ? तमारा जेवा सदाचारी पुरुषने ए घटित नथी. अग्निप्रवेश आदिना मृत्युथी अनंत संसारनी वृद्धि थाय छे. तेमां पण मोहातुर थइने मरवुं ते. तो अति दुःखदायी छे. वळी हे मित्र तमे मने प्रथम कहुं इतुं के 'हुं तने अक्रधर गामनी समीपे पाछो पहांचाढीश' ते तमारं वचन अन्यथा थाय छे. तेमजं मृत्यु पावेलो कमलवतीनी पाळळ मरवाने इच्छो छो, ते पण व्यर्थ छे.

कारण के जीव पोताना कर्मधीन परभवने विवे जाय छे. जीवोनी चोरोंसो लाख योनि छे; तेथी तेओनी गति एक नथी; कर्मने अनुसरीने जीवनी गति थाय छे. पंडित पुरुषे सारं अथवा मध्यम कार्य पण फळना परिणामनो विचार करीनेज करवुं जोइए. रभसहृषिण करेछु तथा वगर विचारे करेछुं कार्य आगळ उपर शस्यनी जेवुं दुःखदायक नीवडे छे. तेथी आ साहस करवाथी पाछा फरो; कारण के 'जीवतो नर सेंकडो भद्रने छुए छे.' बळी जो तमे मारी वात सांभळीने तमारा प्राणतुं रक्षण करशो, तो कदाचित् तमने कमलवतीनेो संयोग पण प्राप्त थशे; पण जो मूढपणाने लीधे प्राणत्याग करशो, तो तेनो संगम दुर्लभज छे. " आ प्रमाणेनी बडुकनी वाणी सांभळीने कमलवतीने मळवानी किंचित् अभिलाषा जेना हृदयमां सद्भवी छे एवो कुमार कहेबा लाग्यो के—' हे मित्र ! शुं तें मारी भिया-ने जोइ छे ? अथवा शुं ते जीवे छे एवुं कोइए तने कशुं छे ? अथवा ज्ञानना बळधी तुं जाणे छे के ते मळ्यो के नहि ? तुं मने अभिमां पडतो अटकावे छे तेतुं कारण शुं छे ? ते कहे.' बडुक बोल्थो के—' हे कुमार ! तमारी भिया कमलवती विधातानी पासे छे एम हुं ज्ञानथी जाणुं छुं, तेथी जो तमे कहो तो मारा आत्माने त्रिधाता-नी पासे थोकळीने कमलवतीने अहीं लइ आतुं.' त्यारे कुमारे-कहू-के—' जो ए सर्व सत्य होय तो तेसां जरा पण विलंब-कर नहि. थ्यारे-हुं कमलवतीने जोइथ त्यारे मारी आ जन्म कृतार्थ मानीक.' त्यारे बडुक बोल्थो के—' हे सुंदर ! दक्षिणा बिना मंत्रविद्या आदि केवी रीते-सिद्ध थइ थके ? ' त्यारे कुमारे कशुं के—' हे मित्र ! मग्नम में तने मारं मत्र अर्पण करेक छे, इवे मारा प्राण पण-तारे आधीन छे; तो कहे इवे तेथी वधारे बीजी श्री दक्षिणा आणुं ? ' बडुके कशुं के—' दीर्घायु थाओ, पण हुं ज्यारे जे काइ तमारी पासे माणुं ते-तमारे आपणुं पडशे.' कुमारे कशुं के—' हु तने वर आपुं छु-ते हुं-पाळीक. बहु कहेवाथी शुं ! परंतु तुं-इवे मारी मिय बल्लभाने सत्वर लाक.' ए प्रमाणे कहेवाथी बडुके संतो-बिनी नामनी जडी-सर्वने बतावी. पछी ते पढदानी अंदर ध्यान करतो वेठो. कुमार प्रण अति हर्षित थवा लाग्यो. राजा विगोरे पण कमलवतीने जेवाने उत्साहित थया. बळी 'सुसु पामेली कमलवती पाछी आवशे' तो मोडुं आश्वर्थ थशे; आ विम तो मोटो ज्ञानी जणाय-छे. 'ए प्रमाणे लोको पण परस्पर आ-ल्लादयुक्त आलाप करवा-जाग्या ते समये बडुके पैली जडी कर्णथी दूर करी एटले-कमलवती थइ गइ. पछो ते पढदामांथी बहार आवी-कुमारे-तेने अति हर्षथी जोइ, अने 'खेरस्वर आज-भासे-भिया-कमलवतो छे' एम कशुं. नेणे आमीने पोतना मियने प्रणाम कर्यां. सफळाओए, तेने जोइ. तेतुं रूप, लावण्य

अने सोभाग्य आदि जोइने लोको पण विस्मय पूर्वक कहेवा लाग्या के- 'जेवी रीते पितळ आगळ सुवर्ण शोभतुं नथी तेवी रीते आ कमलवती पासे रत्नवती पण शोभती नथी. कुमार एनी खातर साहस करता हता ते पण युक्तज हतु; ए कुमारने तेमज ए कमलवतीने वनेने धन्य छे.' ए प्रमाणे प्रशंसा करता लोको पोतपोताने रथानके गया. कुमार पण हपथी परिवार सहित महोत्सव पूर्वक कमलवतीने लइने पोताने आवासे आव्या;अने अलंकार तथा वस्त्रथी विशूषित एवी कमलवतीनी साथे पचविषयसख भोगवतासता पोतानाजन्मने साथक मानवालाग्या एकदा कुमारे कमलवतीने पूछयुं के 'हे सुलोचना ! कोइ एक विप्र तारी खातर विधातानी पासे आव्यो हतो तेने तें जोयो हतो के नहि ?' ए प्रमाणे सांभळी कमलवती विस्मय सहित बोली के- 'हे प्राणेश ! ते विप्रज हुं हतो.' एम कहीने तेणेजडीबुटीनुं सर्व वृत्तांत निवेदन कयुं. ते सांभळी कुमार अति संतुष्ट थयो. कमलवतीए विचार्युं के "आ वल्लभ रत्नवतीनी सामंजरा नजर पण करता नथी, तेना तरफ ते अत्यंत निःस्नेही थयेछा छे' पण तेमां मारोज-अवर्णवाद बोलाय. जोके तेणे अपराध कयौ छे तो पण मारे ते विषे विचार करवो योग्य नथी. कारणके उपकारीना प्रति प्रत्युपकार करवो एमां कांइ आश्चर्य नथी, पण अपकार करवावाळानी उपर उपकार करवो एज सत्पुरुषोनुं लक्षण छे." कहुं छे के- "उपकार करवाळा उपर वा मत्सर विनाना मनुष्य उपर दया वताववा-मां आवे तेमां विशेषपणुं शुं छे ! पण जे अहित करनार प्रति तेमज सहसा अपराध करनार प्रत्ये दया वतावे तेज सत्पुरुषोमां अग्रणी छे." ए प्रमाणे विचार करी कमलवतीए कुमार पासे वरदान माग्युं. कुमारे कहुं के- 'जे तारी इच्छा होय ते मागी छे.' कमलवती बोली के- 'जो तमे इच्छित वस्तुने अर्पण करता हो तो मारी उपर जेवा स्नेहवाळा छो नेवा रत्नवती प्रति स्नेहवंत थाथो जोके तेणे अपराध कयौ छे तो पण ते क्षमा करवा योग्य छे. कारणके तमे उत्तम कुळमां उत्पन्न थया छो अने कुळवान पुरुषोने चिरकाळ सुधी क्रोध राखवो घटतो नथी. कहुं छे के "कुळवान पुरुषने क्रोध यतो नथी, कदाच थाय तो ते लांवा काळ सुधी रहतो नथी, जो कदाच लांवा काळ सुधी रहे तो ते फळतो नथी. तेथी सत्पुरुषोत्रो कोप नीच जनोना स्नेह जेवो छे." वळी स्त्रीओनु हृदय मार्ये निर्दय होय छे. कहुं छे के- 'असत्य, साहस, माया, मूर्खत्व, अतिलोभ, अस्वच्छता अने निर्दयपणुं ए स्त्रीओना स्वाभाविक दोषो छे. पोताना स्वाथ सांघ वाने माटे ते नीच आचरण आचरे छे." आ प्रमाणे कमलवतीना कहेवार्थी कुमारे रत्नवतीनुं पण सन्मान कयुं. पछी केटलाक दिवस त्यां रहीने पुरुषोत्तम राजानी आज्ञा लइ कुमारे कनकपुर तरफ प्रयाण कयुं. पिताए रत्नवतीने घणा दास,दासी

अलंकार, द्रव्य विगेरे आंपीने विदाय करी अने कुमारने पण घणा हाथी, अश्व, रथ, पायदळ, सुवर्ण, मोती विगेरे अर्पण करी.

रणसिंहे रत्नवतीने लडने कमलवती सहित शुभ दिवसे प्रयाण कर्युं. अनुक्रमे पाहलीखंडपुर समीपे आल्या. त्यां जेणे पोतानी पुत्रीतुं सर्वदृष्टांत जाण्युं छे एवो कमलसेन राजा सन्मुख आंवी महोत्सव पूर्वक जमाइने पोताना घरे लड गयो. कमलवतीने पण बहु सन्मान आप्युं. नगरना लोकोए तेनी घणी प्रशंसा करी. तेनी माताए पण स्नेहवडे तेने आर्लिगन कर्युं. पछी घणा दिवसो त्यां रहीने कुमार कनकपुर तरफ चाल्यो. कनकशेखर राजा पण कुमारतुं आगमन सांभळीने आनंद सहित सन्मुख आव्यो. विस्मयपूर्वक मळयो अने कुमारने नगरमां प्रवेश कराव्यो. ते समये घणा पुरलोको तथा स्त्रीयो तेमने जीवाने आंव्या. तेओ परस्पर आनंद सहित बोलवा लाग्या के—“आ कमलवतीने जुओ के जे पोताना शीलना प्रभावथी यम समीप जइ तेना मुखमां धूळ नाखीने पण पाछो आबी. वळी तेना घुणथी रंजित थयेछो रणसिंह कुमार पण तेनी पाळळ मृत्युने आर्लिगन देवा तत्पर थयो. ए सतीमां मुख्य एवी कमलवतीने धन्य छे !” ए प्रमाणेनी प्रज्ञता सांभळता कुमार पोताना आवासे आव्या; अने ऋणे सुंदरीओनी साथे दोगंदुक देवनी जेम विषयसुख भोगववा लाग्यो. एकदां कुमारे विजयपुर नगरनी समीपे आवेला श्री पार्श्व प्रभुना प्रासादमां अष्टाद्विकोत्सव कर्यो. ते वखते चिंतामणि यक्षे प्रत्यक्ष थइने कहुं के—“हे वरस ! अहींथी जइने तारा पितातुं राज्य भोगव.” ए प्रमाणे यक्षतुं वाक्य सांभळी ते मोटा सैन्य सहित विजयपुर आव्यो. ते वखते स्वल्प सैन्यवाळो नगरमां रहेछो राजा दुर्ग मध्यज रह्यो; ते बहार नीकळयो नहि तेम नगर पण छोड्युं नहि. ते वखते यक्षे रणसिंह कुमारनी सेनाने आकाशवांथी उतरती तेने बतावी. ते सेनाने जोइने मध्य रहेछ राजा नगर तजीने नासी गयो. पछी कुमारे विजयपुरमां प्रवेश कर्यो. नगरजनो हर्ष पाय्या. सर्व प्रधान पुरुषोए मळीने कुमारने तेना पिता विजयसेनना स्थाने स्थापित कर्यो. रणसिंह राजा थंयो. ते सज्जन पुरुषोने मान आपतो हतो ने दुर्जनोनी तर्जना करतो हतो. तेमज रामचंद्रनी सदृश नोतिवान थइ पोताना राज्यतुं परिपालन करतो हतो.

एवा अवसरमां एक दिवस पासेना गाममांथी अर्जुन नामनो कोइ कणवी नगर तरफ आवता हतो तेने मार्गमां छुधा तथा दृषा लागवाथी तेणे स्वामिरहित वीभटाना क्षेत्रने जोइ त्यां वमणुं मूल्य मूकीने एक चीभडुं लीयुं, अने ते वस्त्रमां बींटीने कटिंए वांध्युं. पछी जेवो ते नगरमां प्रवेश करे छे तेवोज जे दुर्गपालको कोइ श्रेष्ठीपुत्रनो घात करी तेतुं मस्तक लडने नासी गयेछ चोरनी तपास करतां

अहीं वहीं करता हता तेओना जोबामां आव्यो. तेओए- तेने पूछयुं के- 'तारी केडे आं थुं बांध्युं छे ?' तेणे उत्तर आप्यों के- 'चोमडुं छे.' राजसेवकोए तपास- तां मस्तक दीठु एटछे तेने चोर घारी बाँधीने प्रधान समीपे लइ गया. प्रधाने कहुं के- 'अरे तने धिकार छे ! तें दुर्गतिना कारणरूप बाळकने मारवाजुं काम शा माटे कर्युं ?' तेणे कहुं के- 'स्वामिन् ! हुं कइ जाणतो नथी. ' आटछुं कहेवा उपरांत घडइ घडइचि एटछुं ते बोल्यो. तेथी तेने राजानी समीपे लइ जवामां आव्यो. राजाए पूछयुं के- 'अरे ! आ कार्यं तें शमाटे कर्युं ?' त्यारे तेणे ' घडइ घडइचि' एटलोम उत्तर आप्यो. राजाए कहुं के- ' अरे मूर्ख ! बारबार ' घडइ घडइचि ' ए शब्दो केम बोळे छे ? तेनो परमार्थ कहे. ' अर्जुन बोल्यो के- ' हे स्वामी ! आ स्थितिमां हुं तेनो परमार्थ कहीश तोपण ते कोण सत्य मानयो ? वळी कोण जाणे हजुं पण मारा कर्मथी पुनः थुं बनयो ? बांटे हुं काइ परमार्थ जाणतो नथी. ' ते सांभळो दुर्गपाळना पुरुषोए कहुं के- " आ कोइ घृष्ट जणाय छे, केमके अमे तेनी पासेबीज साक्षात् मस्तक कढाव्युं छे छतां ते सत्य बोलतो नथो ने 'घडइ घडइचि' एवो उत्तर आपे छे " राजाए पण क्रोधथी ' तेने शूलीये चढावो ' एवी आज्ञा आपी. सेवको तेने लइने शूली पासे आव्या. ते समये कोइ एक विकराळ रुपधारी पुरुष आबीने कहेवा लाग्यो के- 'हे माणसो ! जो तमे आने हणवो तो हुं तमने सर्वने हणी नाखीश. ' ए प्रमाणे कहेवाथो तेनी साथे राजपुरुषोने युद्ध थयुं. तेणे सर्वने हांकी काढया. तेओ नांसीने राजा पासे आव्या. तेओनी पासेथी बनेल वृत्तति सांभळो राजा पोते युद्ध करवा नीकळ्यो. ते वरवते तेने एक कोस प्रमाण पोताहुं शरीर विकृर्ष्युं. ते जोइ राजाए विचार कर्यो के- ' आ कोइ मनुष्य नथी, आ तो कोइ-यज्ञ के राक्षस होय एम जणाय छे; पछी धूप उखेववा विगेरथी तेनी पूजा करीने कहुं के- ' तमे अमारा; अपराधने क्षमा करो. ' एटछे ते प्रत्यक्ष थइ पोताहुं शरीर नातुं करीने बोल्यो के- 'हे राजन् ! सांभण मारुं नाम दुषमकाळ छे. लोको मने कछि एम कहेछे हमणा भरतक्षेत्रने विषे मारुं राज्य प्रवर्त छे. महावीर स्वामीना निर्वाण पछी त्रण वर्षने साढा आठ महिना बीत्या बाद मारुं राज्य प्रवर्ततेछुं छे; मारा राज्यमां आ खेडुते आवो अन्याय केम कर्यो ? कारणके तेणे शून्य क्षेत्रमां वमणुं मूल्य मूकीने एक चीमडुं शा माटे लीधुं ? तेथी ते मारो चोर छे. एटछे चीमडाने बदळे मस्तक वतावीने में प्रत्यक्ष एने शिक्षा आपो छे. हवे पछी कोइ पण एवो अन्याय करशे तो तेने हुं संकटमां नाखीश. " पछी श्रेष्ठीपुत्र पण जीवतो थयो, अने ते राजानी

સમીપે આવ્યો. રાજા પ તેને પોતાના સ્ત્રોત્કામાં બેસાડ્યો. અર્જુનનું પળ ઘણું સન્માન કર્યું; પછી કલિએ રાજાને પોતાનું સર્વ પ્રાણાત્મ્ય કહીને છેવટે કહ્યું કે— 'હે રાજન ! મારા રાંજમાં રામચંદ્ર રાજાની જેમ ન્યાયધર્મનું પાલન કેમ કરે છે ? હવે પછી જો તેમ કરીશ તો તે ન્યાયધર્માચરણના નિમિત્તેજ હું તને દુઃસ્ત્રી કરીશ.' આ પ્રમાણે કહીને તેણે રાજાને છોડ્યો. પછી કલિ અદમ્ય થયો. સર્વ પોતપોતાના સ્થાને ગયા. અર્જુન પણ પોતાને સ્થાને ગયો.

ત્યાંથી રણસિંહ રાજા પ્રત્યક્ષ અનીતિ જોઈને ન્યાયધર્મ તબી અન્યાય આચરણમાં તત્પર થયો. લોકોએ વિચાર્યું કે—'રાજાને શું થયું છે કે જેથી તે આવી અન્યાય આચરે છે ? તેને કારણને કોઈ સમર્થ નથી.' તે સમયે તેવી સ્થિતિમાં આવી પડેલા પોતાના માણેજ રણસિંહ કુમારને પ્રતિબોધ આપવાને માટે શ્રી જિનદાસ ગણિ તે નગરના ઉપવનને વિષે પધાર્યા. રાજા પણ પરિવાર સહિત તેમને કાંદવા ગયો. વિનય પૂર્વક નમસ્કાર કરી બે હાથ જોડીને તે આગળ બેઠો. શુભ પળ સકળ વ્હેણનો નાશ કરનારી દેવના આપ્તો. તેમાં કહ્યું કે—'હે રાજન ! કલિનું રૂપ જોઈને તારું મન ચલિત થઈ ગયું છે, પરંતુ આ અસાર સંસારને વિષે પુણ્ય પાપના નિમિત્તથીજ મુક્ત દુઃખ પ્રાપ્ત થાય છે.' કહ્યું છે કે—' કર્મના ઉદયથીજ અન્ય ભવમાં ગતિ થાય છે, ભવગતિથીજ શરીરની ઉત્પત્તિ થાય છે, શરીર-પ્રાણિથીજ ઈન્દ્રિયોના વિષયો ઉદ્ભવે છે, અને ઈન્દ્રિયોના વિષયથીજ મુક્ત દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે. પ્રાણાતિપાતાદિ પાંચ આશ્રવદ્વારને સેવતો સતોજ આ જીવ નિતાંત પાપકર્મથી છેપાય છે અને ભવસાગરમાં ડુબે છે હિંસા આદિ આશ્રવને તજ્યા વિના ધર્મ ક્યાંથી હોય ? કહ્યું છે કે—' હક્ષ્મીથી ગૃહસ્થપણું શોમે છે, નેત્રથી મુક્ત શોમે છે, રાત્રિથી ચન્દ્રમા શોમે છે, મતાંથી સ્ત્રી શોમે છે, ન્યાયથી રાજ્ય શોમે છે, દાનથી શ્રી શોમે છે, પરાક્રમથી રાજા શોમે છે, નિરોગીપણાથી કાયા શોમે છે, શુદ્ધતાથી કુલ શોમે છે, નિર્મલપણાથી વિદ્યા શોમે છે, નિર્દેશપણાથી મૈત્રી શોમે છે, અને દયાથી ધર્મ શોમે છે; વીની રીતે ધર્મ શોમતો નથી." એ કારણથી આશ્રવ ભવનો હેતુ છે અને સંવર નિવૃત્તિનું અસાધારણ કારણ છે એવા સિદ્ધાંત છે. તેટલા માટે હે વત્સ ! તારો સજ્જન સ્વભાવ કલિ પુરુષના-હલકી વિપરીત થયેલો છે; પરંતુ દુર્જનપણું શુક્ત નથી. કહ્યું છે કે—' કોપાયમાન સર્પના મુલ્લક્ષ્ય શુભાને વિષે હસ્ત નાંચવો એ સારો, ઉચ્ચિત અગ્નિના કુંદમાં પહવું સારું; પેટને વિષે શક્તિ અણી ઝોકવી એ સારી, પણ વિપત્તિનું ઘર પડું દુર્જનપણું પંદિતોને સારું નહિ." કલિ પુરુષના કહેવાયો હું પાપમતિ કારણ કરે છે, પરંતુ

दुषमाकाळ रूप कलि शं कहे छे तेनो तुं विचार करतो नथी. दुषमाकाळ ते वळी रूपधारी होय ? तेथी ए कोइ दुष्ट देव तरफथी उपद्रव थयेळो जणाय छे. तुं पण तेनाथी छेतरायो छे. कारण के कलि पुरुषना उपदेशथी करवामां आवेळां हिंसा आदि कर्मथी शं माणस नरकगतिमां जतो नथी ? शं कलियुगमां विष-मक्षणथी माणस मृत्युवश थतो नथी ? कलिकाळ्यां पण जेवुं कर्म करे तेवुं फळ प्राप्त थाय छे. ” ए प्रमाणे जिनदास गणिनां वचनो सांभळीने रणसिंहे चहु खोळीने नीतुं मुख कर्युं, अर्थात् शरमायो. एटळे जिनदास गणिए फरीने कहुं के-‘ हे वत्स ! तारा पितातुं वाक्य सांभळीने प्रतिबोध पाम. कलिपुरुषना दर्शनना हेतुवडे तारा उगायाना स्वरूपने अवधिज्ञानथी जाणीने श्री धर्मदास गणि नामना तारा पिताए तने प्रतिबोध आपवा माटे (उपदेशमाळा) रचेळी छे ते तुं सांभळ. तेमां कहेछुं छे के-“जेवी रीते राजा आज्ञा करेछे अने प्रधानआदि मङ्गळीमंडळ तथा सामान्य पौरलोको तेनी आज्ञाने मस्तके चढावे छे तेवी रीते शिष्ये पण गुरुनो आज्ञाने करकमळ जोडी श्रवण करवी. ” वळी वीतुं पण कहुं छे के-“ साधु मुनिराजनी सन्मुख जतुं, तेमने वंदन तथा नमस्कार करवा, शता पूछवी विगेरे करवाथी लांवा काळनां संचित करेळां पापकर्म एक क्षणमां नष्ट थाय छे. ” वळी तेमांज कहुं छे के-“ लाखो भवे पण जे पामवा दुर्लभ छे अने जन्म जरा ने मरण रूप समुद्रथी जे तारे छे एवा जिनप्रवचनने विषे हे गुणना भंडार ! एक क्षण पण प्रमाद करवो उचित नथी.”

आ प्रमाणे जिनदास गणि कहे छे तेवे समये विजया नामे साधवी जे रणसिंह राजानी माता थाय ते त्यां आव्या अने तेणे पण कहुं के-“ हे वत्स ! तारे माटे तारा पिता धर्मदास गणिए आ उपदेशमाळा वनावी छे तेनो तुं प्रथम अभ्यास कर, तेना अर्थनो विचार कर अने विचार करीने अन्याय धर्म तजी दइ मोक्षसुखने उपार्जन कर. तारा पिताना ए आदेशनो स्वीकार कर. ” आ प्रमाणेनां पोतानी मातानां वचनो सांभळीने रणसिंह राजाए तेतुं अध्ययन करवातुं कबूळ कर्युं. पछी प्रथम जिनदास गणि उपदेशमाळानी गाथा बोळे अने तयारपछी रणसिंह राजा ते प्रमाणे बोळे, ए रीते ते त्रण वार सांभळीने बोळी जइ तेणे आखी उपदेशमाळा कडे करी. पछी तेना अर्थने चित्तमां विचारतो सतो ते भावितात्मा वैराग्य पामीने चित्तववां लाग्यो के-‘ मने विकार छे ! में अज्ञानने बन्ने आ शं आचर्युं ? धन्य छे मारा पिताने के जेमणे मारा उद्धारने माटे अवधिज्ञानवडे आगामी स्वरूप जाणीने प्रथमयीज आ ग्रंथ वनाव्यो माटे हवे आ विद्युत्पात समान चंचण एवा विषयसुखवडे सर्युं ! कहुं छे के-

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणा-श्चलं चंचलयौवनं ।

चलाचलैस्मिन्संसारे, धर्म एको हि निश्चलः ॥

“ लक्ष्मी चपळ छे, प्राण चपळ छे, चंचळ एवुं यौवन पण चपळ छे; एवा चलाचळ संसारमां धर्म एकरुज निश्चळ छे. ”

आ प्रमाणे विचारी घरे आवीने रणसिंह राजा न्याय अने धर्मनी प्रतिपालना करवा लाग्यो पळी केटलेक काळे कमळवतीना पुत्रने राज्ये स्थापन करीने श्रीशुनिचंद्र मूरी पासे रणसिंह राजाए चारित्र ग्रहण कर्तुं; अने विशुद्धचारित्र्य आराधन करी काळधर्म पामोने देवलोकमां देवपणे उन्पन्न थया.

कमळवतीना पुत्रे पण आ उपदेशमाला कंठे करी अने सर्व लोकोए पण तेनुं पठनं पाठन कर्तुं. ए प्रमाणे अनुक्रमे पठन पाठनना क्रममां चालतो आ उपदेशमाला अद्यापि विजय पाये छे.

आ उपदेशमालामकरण पोताना पुत्रेने प्रतिबोध पमाडवा माटे श्रीधर्मदास गणिए रचेलुं छे; तेनुं रहस्य अन्य बुद्धिमान जनोए सम्यग् प्रकारे धारण करवुं. आ प्रमाणे वृद्धोक्त संमदाय वताव्यो. हवे ते उपदेशमापानी गाथाओनो अर्थ विगोरे कहेवामां आवशे.

इत्युपदेशमालायां प्रथम रणसिंहनृपस्यमूलसंबंधः।



इति उपदेशमाळानी प्रथम पीठिका
समाप्त.

श्री उपदेशमाला भाषांतर प्रारंभ.

(टीकाकारनुं मंगलाचरण)

नत्वा विभुं सकलकामितदानदक्षम् ।

शंखेश्वरं जिनवरं जनतासुपक्षम् ॥

कुर्वे सुबोधितपदामुपदेशमालाम् ।

बालावबोधकरणक्षमटीप्पनेन ॥ १ ॥

“ सकल इच्छित दान आपवामां कुशल तथा सुपक्षने उत्पन्न करमार (वताव-
मार) एवा जिनेश्वर श्री शंखेश्वर प्रभुने नमस्कार करीने बालजोवोने बोध थाइ शके
एवा (सरल) टीप्पन (टीका) वडे उपदेशमाला सुखे बोध थाय तेवा पदवाजी करुंछुं.”

मूल. गाथा..

नमिज्जण जिणवरिंदे, इंदनरिंदच्चिए तिलोअगुरु ॥

उवएसमाल मिणमो, वुच्छामि गुरुवएसैणं ॥ १ ॥

शब्दार्थ—“ देवेन्द्रो ने नरेन्द्रोए पूजेला अने तिलोकना गुरु एवा जिनवर-
न्द्रोने नमस्कार करीने तीर्थकर अने गणघर आदि गुरुओना उपदेशयी हुं आ
उपदेशमाला कहुं छुं.” १.

भावार्थ—आ गाथामां प्रथम पदे करीने श्री जिनेश्वरने नमस्कार करवा रूपं
मंगलाचरण कर्तुं छे. बीजा पदमां जिनेश्वरनां विगेपणो कर्त्तां छे. बीजा पदमां
अभिधेय वतावेळ छे, अने चोथा पदमां अहं ना अध्याहारवडे आ ग्रंथनी पो ।
शरआत करे छे एम वताव्युं छे. तेमां अहं एटले हुं धर्मदासगणि क्षमाश्रमण आ
उपदेशमाला रचुं छुं एम समजवुं. ते पण पोतानी बुद्धिए नहि पण तीर्थकर ग-
णघरादिना उपदेशवडे कहुं छुं. आम कहेवावडे ग्रंथनी आप्तवा वतावी छे.

बीजा गाथामां पण मंगलाचरण करे छे ते आ प्रमाणे—

जगचूळामणिज्जुओ, उसचो वीरो तिलोअसिरितिलओ ॥

एगो लोगाइचो एगो चरुवू तिहुअणस्स ॥ २ ॥

શબ્દાર્થ—“ જગતમાં મુકુટમાણિ સદૃશ શ્રી ઋષભદેવ તથા ત્રિલોકના-મસ્તકે તિલક સમાન શ્રી વીરભગવંત છે. તેમાં ઇક-લોકમાં સૂર્ય સમાન છે અને ઇક ત્રિમુવનના ચહુમૂત છે. ” ૨.

ઢાવાર્થ—આ અવસર્પિણિના ત્રીજા આરાને છેડે ધર્મના પ્રથમ ઉપદેશક હોવાથી શ્રી ઋષભદેવને જગતના મુકુટમણિ તુલ્ય વહ્લા છે તથા આસન્ન ઉપકારી ઇવા ચોવીશમા તીર્થકર શ્રી વીરપરમાત્માને તિલકની ઉપમા આપી છે. તિલકવહે જેમ મુલ શોભે તેમ શ્રી વીરભગવંતથી આ જગત વધું શોભે છે. વહ્લી સકલ માર્ગના દેશાહનારા હોવાથી પ્રથમ તીર્થકરને આદિત્યની ઉપમા આપી છે, અને જગતજીવોને જ્ઞાનનેત્રના ઢાતા હોવાથી ચરમ તીર્થકરને ચહુની ઉપમા આપી છે.

હવે તે વે પ્રચુનાં ચરિત્રવહે તપ કરવાનો ઉપદેશ આપે છે—

સંવહ્લર મુસન્નજિણો, ઢમ્માસા વહ્માણ જિણચંદો ॥

શ્ચ વિહરિયા નિરસણાં, જહ્જહ્ ઉવમાણેણં ॥ ૩ ॥

શબ્દાર્થ—“ ઋષભદેવ ઇક વર્ષ સુધી અને વર્ધમાન સ્વામી છે માસ સુધી-ઇ પ્રમાણે આહારપાણી રહિત વિચર્યા છે. તે દૃષ્ટાંતે કરીને (વીજાઓઇ પળ)-તપ-કર્મમાં પ્રવર્તવું—ઉદ્યમ કરવો. ” ૩.

ઢાવાર્થ—આ ગાથામાં સર્વ ગુણવહે પ્રધાન હોવાથી શ્રી વર્ધમાન સ્વામીને જિનચંદ્રની ઉપમા આપી છે. શ્રી ઋષભદેવ ને મહાવીર સ્વામીઇ કરેલા ઉત્કૃષ્ટ તપવું દૃષ્ટાંત આપીને શુરુશિષ્યને ઉપદેશ આપે છે કે ઇવા તીર્થકર ભગવંતે પળ આવો ઉત્કૃષ્ટ તપ કર્યો છે, તો તમારે પળ તપ કરવામાં યથાશક્તિ જરૂર ઉદ્યમ કરવો. કેમકે ઉચમ પુરુષના દૃષ્ટાંતવહે વીજાઓઇ પ્રવર્તવું યોગ્ય છે.

હવે વીરપરમાત્માના દૃષ્ટાંતવહે ક્ષમા રાઝવાનો ઉપદેશ આપે છે—

જહ્ તા તિલોચ્ચનાહો, વિસહહ વહુચ્ચાહ્ અસરિસ જણસ્સ ॥

શ્ચ જીથંતકરાહ્, ઇસ ઝમા સવ્વસાહૂણં ॥ ૪ ॥

શબ્દાર્થ—“ જો પ્રથમ ત્રણ લોકના નાથ-તીર્થકરોઇ અસદૃશ જનોના-નીચ જનોના જીવિતનો અંત કરે ઇવા ઘળા (ઢુહ છેદ્ધિતો) સહન કર્યા તો તેવી ક્ષમા સર્વ સાધુઓઇ પળ કરવી. ” ૪.

भावार्थ—संगमादि देवोने करेला तेमज वीजा गोपादिना करेला प्राणांत करे तेवा उपसर्गो भगवंत श्री महावीर स्वामीए अनंत शक्तिमान छतां सहन कर्या क्षमा राखी—तेना पर क्रोध कर्यो नहि. ए प्रकारनी क्षमा सर्व मुनिओए पण धारण करवी, एटळे भगवंतनु अनुष्ठान हृदयमां धारण करीने प्राकृत जनोना करेला ताडन तर्जनादि मुनिओए पण सहन करवा. इत्युपदेशः

भगवंतनी दृढता संवधे कहे छे—

न चञ्ज्ज् चालेउं, महइ मह्हा वरुमाण जिणचंदो ॥

उवसग्ग सहस्सेहिंवि, मेरु जहा वायगुंजाहिं ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—“ मेरु पर्वत जेम गुंजारव करता प्रबळ वायुथी चलायमान न थाय तेम महइ एटळे मोक्षने विवेज करी छे मति जेमणे एवा महान बर्द्धमान जिनचंद्र हजारो उपसर्गवडे पण चलावी शकाया नहि. ” ५.

भावार्थ—मेरु पर्वतनी जेम देवमनुष्यना करेला हजारो उपसर्गो पण वीरप्रभु चलायमान थया नहि: कारण के तेमने ध्यानथी चलाववाने—क्षोभ पमाडवाने कोइ पण शक्तिवान नथी. तेथीज तेमनुं नाम देवोए ‘वीर’ एवुं पाडथुं छे. आ दृष्टांत ध्यानमां राखीने अन्य साधुओए पण प्राणांतकारी उपसर्ग थंया छतां ध्यानथी चळवुं नहि. इत्युपदेशः

हवे विनय गुणनी प्राधान्यता बताववा मांटे कहे छे—

भद्रो विणीयविणञ्चो, पढमगणहरो समत्तसुअनाणी.

जाणंतोवि तमथं, विम्हिअहिअञ्चो सुणइ सवं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—“ भद्र अने विशेष विनयवान प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी समस्त श्रुतज्ञानी एवा ते अर्थने जाणतां छतां प्रभु ज्यारे कहे त्यारे ते सर्वे विस्मित हृदयवाळा थइने सांभळे छे. ” ६.

भावार्थ—भद्र एटळे कल्याणकारी—भंगळरूप अने अत्यंत विनयो गौतम स्वामी श्रुतज्ञानना पारगामी—श्रुतकेवळी छतां एटळे सर्व भावने जाणनारा छतां प्रथम पूछायेला अर्थने फरीने पण भगवंत ज्यारे कहे त्यारे कौतुकवडे प्रफुलित. लोचनवाळा थइने सांभळे छे. आ प्रमाणे वीजा शिष्योए पण विनय पूर्वकं गुरुने पूछवुं ने ते जे कहे ते सांभळवुं. इत्युपदेशः

गाथा ५—सहस्सेहिवि. वायुगुंजाई. * मोक्षे कृतमतिः महति. * विशेषेण नीतः प्राप्नो विनयो येन.

વિનય ઉપર લૌકિક દૃષ્ટાંત આપે છે-

જં આણવેઈ રાયા, પગઈઓ તં સિરેણ ઇચ્છંતિ ॥

ઈઅ ગુરુજણમુહજણિઅં, કયંજલિઉમેહિં સોયઠવં ॥ ૭ ॥

શબ્દાર્થ- 'રામા જે આજ્ઞા કરે છે તે તેનું પ્રકૃતિમંડલ-સેવક વર્ગ મસ્તકે કરીને ફરે છે; તે પ્રમાણે ગુરુજનના મુસથી કહેવાયછું (શિષ્યોએ) હાથ જોડીને સાંભલવું.' ૭.

માર્થ-સપ્તાંગ' સ્વામી' રાજા જે કહે છે તે તેનો સેવકવર્ગ માંથે હાથ જોડીને પ્રમાણ કરે છે તે પ્રમાણે ગુરુમહારાજ શાસ્ત્રોપદેશાદિ જે કહે તે મક્તિ-વડે કરકમલ જોડીને વિનય પૂર્વક શિષ્યવર્ગે સાંભલવું. આમ કહેવાવડે શિષ્યોને વિનયનીજ માધ્યાન્યતા છે એમ ઉપદેશ આપ્યો છે.

ગુરુના મહસ્ત્વને બતાવે છે-

જહ સુરગણાણ ઇંદો, ગહગણતારાગણાણ જહ ચંદો ॥

જહ ચ પયાણ નરિંદો, ગણસ્સવિ ગુરુ તહા ણંદો ॥ ૮ ॥

શબ્દાર્થ-" દેવતાઓના સમૂહમાં જેમ ઇંદ્ર ગ્રહગણ^૨ ને તારાઓના સમૂહમાં જેમ ચંદ્ર અને પ્રજામાં જેમ રાજાં શ્રેષ્ઠ છે તેમ ગણ (સાધુસમૂહ) માં આનંદકારી ગુરુ શ્રેષ્ઠ છે " ૮.

માર્થ-દેવતાઓ, જ્યોતિષીઓ અને મનુષ્યોમાં જેમ ઇંદ્ર, ચંદ્ર ને નરેંદ્રની આજ્ઞાનો અમલ થાય છે તેમ ગણમાં ગુરુની આજ્ઞાનો અમલ થવો જોઈએ; તેમજ દેવતા વિગેરેને જેમ ઇંદ્રાદિ આજ્ઞાદ ઉત્પન્ન કરનારા છે તેમજ ગણમાં ગુરુ-મહારાજ પણ આનંદ ઉપજાવનારા હોય છે.

વાલ્કયના ગુરુને માટે કહે છે-

વાલ્કુત્તિ મહીપાલો, ન પયા પરિજવઈ ઇસ ગુરુ ઉવમા ॥

જં વા પુરશ્ચો કાલં, ત્રિહરંતિ મુણી તહા સાવિ ॥ ૯ ॥

શબ્દાર્થ-" આ વાલ્ક છે એવી વુઢિએ જેમ રાજાને પ્રજા પરામર્થ કરતી નથી તે ઉપમા ગુરુને પણ આપવી; અને જેમ ગોતાર્થને આગલ કરીને મુનિ વિચરે છે તેમ વાલ્ક એવા ગુરુને પણ માનવા." ૯.

૧ સ્વામી, અમાત્ય, સુહૃત, મંદાર, દેશ, કિલ્લા અને લડકર પ રાજ્યનાં સાત ભાગો છે. ૨ ગ્રહમંગલાદિ ૮૮ છે. ૩ તારાઓ ક્રોડાક્રોડની સંખ્યાવાલા છે, ગાથા ૯-પરિદશર. પુરુષો.

भावार्थ—ब्रह्म अने दीक्षा पर्यायवडे हीन छातां पण ज्ञानवडे श्रेष्ठ एवा गुरूपणे स्थापेला वाळवयना आचार्यनी आज्ञामांज घुनिओए वर्तवुं, कारण के ते गीतार्थ होवार्थी गच्छमां दीपक तुल्य छे. आने माटे लौकिक दृष्टांत आपे छे के—कोइ वखत राजा वाळक होय तोपण प्रजा ‘आ वाळक छे’ एम कही तेतुं अपमान करती नथी पण तेनी आज्ञामां वर्ते छे. ते प्रमाणे गच्छने माटे पण समजवुं.

हवे गुरुतुं स्वरूप कहे छे. गुरु केवा होय ?

परिव्रजो तेयस्सी, जुगप्पहाणागमो महुरवक्रो ॥

गंभीरो धीमंतो, उवएसपरो अ आयरिओ ॥ १० ॥

अपरिस्तावी सोमो, संगहसीलो अभिग्रहमर्श्य ॥

अविकंचणो अचवलो, पसंतहिंयओ गुरु होइ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—“ तीर्थकरादिना प्रतिर्विव जेवा तेजस्वी, युगप्रधानागम, मधुर वक्ता, गंभीर, घृतिमान, उपदेश देवामां तत्पर—एवा आचार्य होय. १०. वळो अग्रविश्रावी, सौम्य संग्रहशील, अभिग्रह करवानी बुद्धिवाळा, बहु नहि वोलनारा, स्थिर स्वभाववाळा ने प्रशांत हृदयवाळा गुरु होय. ” ११

भावार्थ—आचार्य भगवंत आकृतिमां तीर्थकर गणधरादि जेवा अति सुंदर होय, कांतिमान होय, वर्तमानकाळे वर्तता समग्र शास्त्रना पारगामी होय अथवा अन्य लोकांनी अपेक्षाए सर्वथी विगेष ज्ञानवान होय, जेतुं वचन मधुर लागे एवा होय, अतुच्छ हृदयवाळा होय के जेथी पर तेना हृदयने जाणी न शके, धैर्यता-वाळा—संतोषवाळा—निष्प्रकंप चित्तवाळा होय, भव्य जीवोने उपदेश देवामां तत्पर होय एटले सद्बचनोवडे मार्गमां प्रवर्तावनारा होय. १०. निश्छिद्र शैल भाजननी जेय अग्रविश्रावी होय एटले छिद्रविनाना पत्थरना भाजनमां नांखेळं जळ जेम नीचे गळे नहि तेम कोइए कहेल पोतातुं गुह्य रूपजळ जेना हृदयमांथी स्रवतुं नथी अर्थात् अन्यनी पासे प्रकाशता नथी, सौम्य एटले देखवा मात्रवडेज आह्लादकारी होय—बोलवायो तो विशेष आह्लाद करे तेमां नवाइज शुं ! शिष्या-दिकने माटे बल्ल पात्र पुस्तकादिनो संग्रह करवामां तत्पर होय ते मात्र धर्मवृद्धिनेज माटे—लोलताथी नहि, वळी द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी ने भावथी एम चारे प्रकारना अभिग्रहो करवानी बुद्धिवाळा होय, कारण के अभिग्रह पण तप रूपज छे; वळी बहुवोला न होय—पोतानी प्रशंसा तो कदि पण न करे, स्थिर

धीमंतो—घृतिमान. गाथा ११—अपरिस्ताविश.

स्वभाववाळा होय—चंचळ परिणामवाळा न होय, प्रशांत हृदयवाळा होय एट्ठे क्रोधादिकथी रहित चिचवाळा—ज्ञांतमूर्ति होय—आवा गुरुना गुणे करीने शोभता गुरु होय. एवा गुरु विशेषे करीने मानवा योग्य जाणवा. ११.

हवे आचार्यवडे शासन प्रवर्ते छे ते कहे छे—

क^१श्यावि जिणव^२रिंदा, प^३त्ता अय^४रामरं प^५हं दा^६उं ॥

आय^१रिण^२हिं प^३वय^४णं, धारि^५ज्ज^६इ संप^७यं सय^८लं ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—“कोइ काळे जिनवरेंद्र मार्ग (भव्य जीवोने) आपीने अनरामर स्थानने पाम्या छे. सांपत काळे सकळ प्रवचन आचार्योथी धारण कराय छे अर्थात् आचार्य धारण करे छे.”

भावार्थ—कोइ काळे एट्ठे पोतपोताना आयुष्यने अंते तीर्थंकर भगवंतो ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मार्ग भव्य जीवोने आपीने—वतावीने—उपदेशीने भोक्षस्थान के ज्यां जन्म, जरा के मृत्यु नथी तेने पाम्या छे. तेमने विरहे संपत्तिकाले चतुर्विध संघ रूप तीर्थ—प्रवचन अथवा द्वादशांगी रूप प्रवचन आचार्योथीज धारण कराय छे, अर्थात् आचार्योज शासननी रक्षा करे छे. तेथी तीर्थंकरने विरहे आचार्य भगवंत तेमनी समान माननीय—पूजनीय छे. इत्युपदेशः

हवे साध्वीने विनयनो उपदेश आपे छे.

अणु^५गम्म^१ई भगव^२ई, राय^३सु अज्जा सह^४स्सविदेहिं ॥

तह^१वि न कर^२इ माणं, परि^३यच्छ^४इ तं तहा नूणं ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—“भगवती राजपुत्री आर्या चंदनवाळा हजारोना वृंदोए परवरेली छतां ते अभिमान करती नथी. कारण के ते निश्चये तेने (तेना कारणने) जाणे छे.” १३.

भावार्थ—दधिवाहन राजानी पुत्री साध्वी चंदनवाळा हजारो लोकोना समूहे परवरेली रहे छे, अर्थात् हजारो लोको तेनी सेवा माटे तेनी पाछळ भमे छे तथापि ते किंचित् पण गर्व—अहंकार करती नथी, ए आश्चर्य छे. पण ते बराबर—चोक्स जाणे छे के आ महात्म्य माहं नथी पण ज्ञान दर्शन—चारित्रादि गुणोतुं महात्म्य छे तेथी ते गर्व करती नथी. ते प्रमाणे अन्य साध्वीओए पण लोकरना माननीयपणा विगेरेथी गर्व करवो नहि. इत्युपदेशः

विनयस्य स्वरूप-पुरुषनो प्राधान्यता-

दिणदिस्त्रियस्स दुमगस्स, अज्जिमुहा अज्जाचंदाणाअज्जा ॥

नेच्छइ आसणगहणं सो विणओ सठ्वअज्जाणं ॥ १४ ॥

शब्दार्थ-“ एक दिवसना दीक्षित भिक्षुक साधुनी सन्मुख आर्य चंदनवाळा साध्वी उठया अने आसन ग्रहण करवाने इच्छयुं नहि. आवो विनय सर्व साध्वीओने माटे कह्यो छे.” १४.

भावार्थ-तेज दिवसना दीक्षित अने ते पण भिक्षुक छातां साधुनो वेष ग्रहण करीने पोतानी समीपे आवतां जोइ सर्व साध्वीमां मुख्य वडेरा चंदनवाळा साध्वी उभा थया, सन्मुख गया अने ते साधु उभा रखा त्यांसधी पोते आसन उपर वेसवानी इच्छा करी नहि. आवो विनय तेमणे साचव्यो ते प्रमाणे दरेक साध्वीए साधुभिराजनो विनय साचववो. इत्युपदेशः

अहीं चंदनवाळानी कथा छे ते नीचे प्रमाणे-

“जंबूद्वीपना भरतक्षेत्रमां समृद्धिथी तथा लोकोथी भरपूर कौशाम्बी नामनी नगरी छे. एक वखत बहु साध्वीओथी परवरेळी, श्रावकोथी पूजाती ने राजां सामंत शेटीआओ अने नगरवासीओए वांदेळी एवी वर्धमान स्वामीनी प्रथम शिष्या आर्य ‘चंदनवाळा’ कौशाम्बी नगरीना चोकमां घणा माणसोनी साथे जती हती. ते वखते ‘काकंदीपुरथी कोइएक दरिद्री आव्यो हतो. ते अति दुर्वळ अने मलिन शरीरवाळो हतो. तेना मुख उपर असंख्य माखोओ वणवणाट करती हती; अने ते फुटेळुं माटीनुं वासण हाथमां लइने चेरचेर भिक्षा अर्थे भटकतो हतो. ते भिक्षुके मार्गमां साध्वी चंदनवाळाने जोइ, तेथी ते विस्मित थयो के ‘आ शुं कौतुक छे! आटला वधा लोको ज्ञामाटे मेगा थया छे?’ एवुं जाणी ते पण कौतुक जोवाने साध्वीनी पासे आव्यो: एटले जेजुं मस्तक लोच करायेळुं छे, जेणे सांसारिक आसक्ति तजी दीषो छे अने जेणे भूमिभेदज्ञाने पवित्र करेल छे एवी श्रान्तमूर्ति आर्यां चंदनवाळाने घणीज साध्वीओथी परिदृष्ट थयेली अने घणा राजलोकाथी वंदाती जोइ तेना मनमां आश्चर्य उत्पन्न थयुं. तेथो तेणे पासे उमेळा कोइ दृढ पुढपने पूठयुं के-‘आ कोण छे ने कयां जाय छे?’ ते दृढ पुरुषे कहुं के स्थीर चित्ते सांभळ-

चंपा नगरीमां ‘दधिवाहन नामनो राजा हतो. तेने अति रूपलावण्य आदि गुणोथी युक्त, शीलथी अलंकृत अने मातापिताने प्राण करतां पण वधारे निय

एवी 'वसुमती' नामनी पुत्री હતી. एक दिवस दधिवाहन राजाने कोइ पण कारणथी कौशाम्बी नगरीना 'शतानीक' राजानी साथे कलह थयो. शतानीक राजाए मोहुं सैन्य लइ चंपा नगरो उपर चडाइ करी. दधिवाहन सैन्य एकट्टं करी परिवार साथे सामो थयो. मोहुं युद्ध थवाथी घणा लोको नाश पाम्था. परिणामे दधिवाहननो पराभव थयो. तेहुं सैन्य पण नाश पाम्थुं. शत्रुना सैन्ये निर्भयपणे अनाथ कामिनोने छटे तेत्री रीते चंपानगरीने छंडी. राजानुं अंतपुर पण छुट्युं. ते बखते अंतपुरमांथी नीकळी नाठेली अने भयथी जेनां नेत्र चपळ थइ गयां छे एवी राजकन्या वसुमती, टोळामांथी विखुटी पढेली हरिणीनी माफक भामतेम नासवा लागो, तेने कोइ पुरुषे पकडी. शतानीक राजानुं सैन्य पाछुं बळ्युं. तेनी साथे वसुमती पण कौशाम्बीमां केदी तरीके आवी. त्यां तेने चोकमां वेचवामाटे आणी. ते बखते कौशाम्बीपुरवासी 'घनावह' शेठे मूल्य आपीने तेने खरीद करी. ते तेने जोइ अति हर्षित थयो, अने पुत्री तरीके स्वीकार करी तेने पोताने घेर लइ गयो.

एकदा शेठना पण धोत्री बखते वसुमतीनो केशपास भूमि उपर पडतां शेठे तेने उंचो पकडी राख्यो ते जोइ तेनी भार्या मूलाए मननी अंदर विचार कर्यो के—'आ स्त्री अति रूपवंती अने सौभाग्यादि गुणथी अलंकृत छे, तेथी मारो भर्तार तेना रूपथी मोहित थइ जरूर मारी अवगणना करशे; माटे एने दुःख आपी घरमांथी हांकी काहुं तो ठोक.' एक दिवस शेठ कोइ कार्यने माटे वहार गाम गया. त्यारे घरै रहेली तेनी भार्याए वसुमतीना केश झंडावी नांखी, पगमां वेडी नांखी, हाथने मजबूत बांधी लइ गुप्त ओरडामां पूरी. शेठ घेर आब्या एटले तेणे पोतानो स्त्रीने पूछ्युं के—'वसुमती क्यां गइ छे?' तेणे जवाब आप्यो के—'हुं जाणतो नथो. ते कांइक गइ हशे, सरळ वृद्धिवाळा शेठे विचार्युं के—'तेम हशे. ए प्रमाणे ऋण दिवस वती गया. चोथे दिवस कोइ पाडाशीए शेठने पूछ्युं के—'वसुमती क्यां छे?' तेना दुःखथी दुःखित थयेला शेठे कहुं के—'हुं जाणतो नथो, परंतु ते क्यांइ पण भयेला छे.' त्यारे तेणे कहुं के—'तमारो स्त्रीना मारथी आक्रंद करती एवी तेने कोइक ओरडामां पूरतां आअथी चौथा दिवस उपर में जोयेली छे, तेथो तमारा घरमां तपास करो. शेठे घरमां तपास करो, एटले जेना पण वेडीयो बंधायेला छे, जेना केश झंडी नाखेला छे अने जे घगो छुधातुर थयेली छे एवी वसुमतीने तेणे अंदरना ओरडामां दीवो. शेठे दुःखित-चिने विचार कर्यो के—'अहो ! स्त्रीहुं दुश्चरित्र कोइ पण जाणतुं नथी. कामथी अंध

बनेली मारी खीने चिक्कार छे ! 'पछी जेठे वसुमतोने पूछयुं के- 'आ तारो शो दशा !' तेणे जवांव आय्यो के- 'सघळो दोप मारां कर्मनो छे. जेठे तेने अंदर-थी बहार काढी घरना उमरा पासे बेसाडीने कहुं के- 'तुं अहीं बेस, एट्छे इ बेडी भांगवाने कोइ छुहारने वोलावी लावुं. 'तेणे कहुं के- 'मने भुख बहु लागी छे तेथी काइक खावाजुं आपो.' ते बखते घोडाने माटे अडद वाफेला हठा ते सुपडाना एक खुणामां नांखीने जेठे वसुमतीने खावा आय्या. ते पण एक पग उमरानी बहार अने बीजो पग उमरानी अंदर राखीने देटी. पछी जेवामां ते खोजामां ररेला हुपडामांन अडद खावा जाय छे ते अवसरे शुं वन्युं ते सांभळो- छद्मरथपणे चिचरता श्रीमहावीर स्वामीए पोताना कर्मना क्षयने माटे एवो अभिग्रह करेछो छे वे- "राजकन्या होय, मांयुं मुंडावेछुं होय, बने दगमां बेडी नांखेली होय, हाथ बांधेला होय, बेदी तरीके पकडायेली होय, मृत्यवटे खरी-दाथेली होय, जे एक पग उमरानी बहार ने बीजो पग उमरानी अंदर राखीने वेठेछी होय ते बे पहोर बीत्या पछी सुपडाना खुणामां रहेला अडद जो मन बहोरावे तो मारे बहोरावा " एवो अभिग्रह कर्माने पांच मास ने पचीस दिवस व्यतीत थया हता. ते बीरभगवंत एक गामथी बीजे गाम विहार करतां ते अवसरे कोन्नाम्बी नगरीए पधार्या- तेओ दरेक घरे पर्यटन करे छे, परंतु अभिग्रह प्रमाणे भिक्षा मळती नथी; अनुक्रमे भगवान घनावह जेठने घरे आव्या, तेमने जोइ वसुमती विचारवा लागी के- 'मने घन्य-छे के आवी स्थितिमां मारे भगवानना दर्शन थया.' पछी वसुमतीए कहुं के- 'हे त्रिलोकना स्वामी ! मांपभिक्षाने माटे हाथ लांवा करीने मारो आ भवदुःखमांथी उद्धार करो अने मने तारो. 'एवां वसुमतीनां वचन सांभळीने भगवाने विचार्युं के- 'मारो अभिग्रह तो पूरो थयो छे परंतु आ रीती नथी एट्छुं अधुं छे तेथी हुं बहोरीश नहीं.' एवुं धारी भगवान पाळा बळया. त्यारे वसुमतो अश्रुजळथी नेत्रने मलिन करी विचारवा लागी के- 'मंदयागिणो एवो मने चिक्कार छे ! मारे घेर भगवान आव्या छतां मारो उद्धार कर्या विना पाळा गया.' त्यारे भगवाने अभिग्रह संपूर्ण थपेलो जोइ पाळा बळीने माषभिक्षा ग्रहण करी, तेथी वसुमती अति हर्षित थइ. तेनां नेत्र प्रफुल्लित थयां. तेनी रोमराजि विकस्वर थइ; अने ते भवसागरनो पार पामी एम मानवा लागी. ते अवसरे ते दानना प्रभावथी तेना पगनो वेडो पोतानो मेळे झुटो गइ, मस्तक उपर श्याम केशपास विस्तृत थयो, हाथजुं बंधन झुटो गयुं अने पांच दिव्य प्रगट थयां ते आ प्रमाणे- १ साडि चार क्रोड मानैयानि वृष्टि थइ, २ मृगांघि पंचरंगि पुष्पोनि वृष्टि थइ. ३ बह्वनि वृष्टि थइ, ४ सुगंधी जलनी वृष्टि थइ अने ५ 'अहो दानम् दानम्' ए प्रमाणे आकाशमां देवताओए घोष कर्या अने जयजयकार थयो. देवताओए वसुमतीनो चदन जेवो शिखल स्वभाव होवाथो तेजुं चदना

एवुं नाम आ'युं. प्रभुए छमासी तपजुं पारणुं करीने अन्धत्र विहार कर्यो. लोको-
ए चंदनानी घणी प्रशंसा करी. ए वखते इक्रे (इद्रे) श्रतानीक नृपनी समीपे
आवीने कहुं के- 'आ वसुमती दधिवाहन राजानी पुत्री छे के जेणे स्वगुणोयी
'चंदना' एवुं बीजुं नाम मेळवेळुं छे, तेजुं तारे यत्नथी रक्षण करवुं. आगळ
उपर ए धर्मनी उद्योत करनारी थशे अने भगवान श्रीवीरस्वामीनी प्रथम शिष्या
थशे. ' ए प्रमाणे शिक्षण आपीने इंद्र देवलोक प्रत्ये गया.

श्रतानीक राजाथी अने बीजा लोकोथी अति सन्मान पायेली चंदनाए केट-
छाक दिवसो गया पछी वीर भगवंतने वे वळज्ञान उत्पन्न थयेळुं जाणीने भगवंत
पासे जइ तेमना हाथथी चारित्र छीयुं, अने भगवाननी शिष्या थइ. ते आ चंदना
साध्वी नजीकना उपाश्रयमां रहेला 'श्रीसुरिथताचार्य'ने वंदन करवाने मांटे जायछे."

आ प्रमाणे तेजुं सघळें चरित्र वृद्ध गुरुषे दृग्गकने (मिष्णुकने) कही संभळायुं;
तेथी आनंदित थयेलो दृग्गक साधुने उपाश्रये गयो. चंदना पण गुरुने वांद्दीने
पोताना उपाश्रये गइ गुरुए मिष्णुकने जोयो, एटछे 'आ पुरुष थोटा वखतमां
सिद्धि मेळवनारो छे' एम ज्ञानवृद्धे जाणी तेमणे विचार्युं के- 'आ मिष्णुकने धर्म-
मां जोडवो जोइए.' एवुं विचारी तेने मिष्टान्न खावा आयुं. तेथी ते अति हर्षित
थइ मनमां विचारवा लाग्यो के- 'आ साधुओ घणा दयाळु छे. आलोक ने पर-
लोक वनेमां हितकर आ मार्ग छे. आलोकमां मिष्टान्नादि खावानुं मळे छे अने
परलोकमां स्वर्गादिनां सुख मंळे छे.' एवुं निचारी ते मिष्णुके गुरु पासे दीक्षा
छीथी. गुरुए पण तेने प्रत्रय्यामां दृढ वरदा माटे घणा साधुओनी साथे साध्वी-
ने उपाश्रये भोकव्यो. ते दृग्गक साधु चंदना साध्वीने उपाश्रये गयो. बीजा
साधुओ वद्वार उभा रत्ता, अने मिष्णुक साधु एकला उपाश्रयनी अंदर गया.
चंदना साध्वी नवा वीक्षित थयेळा दृग्गक साधुने आवतां जोइने तेमनां सन्मुख
गइ, आसन आयुं, तेमजु सन्मान कर्युं अने वे हाथ जोडी सामे उभी रहीं. दृग्गक
साधु विचारवा लाग्य के- 'अहो ! आ वेषने धन्य छे ! जोके हुं नवदीक्षित
थयोळुं छतां आ पूज्य एथी चंदना मने आटळुं बधुं मान आपे छे.' ए वखते ते
धर्ममां दृढ थयो. चंदनाए तेमने पूछ्युं के- 'आपने अत्रे आववानुं प्रयोजन ?
छे ?' दृग्गके कहुं के- 'तमारो वृत्तांत जाणवाने माटे गुरुए मने अहीं भोक्तर्य
छे.' एटळुं कही मनने चारित्रमां स्थिर करी घणा काळ सुधी निरतिचा
चारित्र पाळ्युं.

आ दृष्टान्त उपरथी अन्य साध्वीओए पण मुनिनो आ प्रमाणे विनय कर
एवो आ कथानो उपनय छे.

साध्वी करतां साधुनी श्रेष्ठता वतावे छे.

वरिससयदिख्लियाए, अज्जाए अज्जदिख्लियाओ साहु ॥

अजिगमण वंदण नमसणेणं, विणयेणं सो पुज्जो ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—“सो वर्षनी दीक्षित साध्वीने आजनो दीक्षित साधु होय तो ते (पण) अभिगमन, वंदन अने नमस्कारबढे तेमज विनयबढे पूजना योग्य छे.” १५.

भावार्थ—“सो वर्षनी दीक्षित एटछे वृद्ध गयो राध्वीने लघु मुनि एटछे यावत् एकज दिवसनो दीक्षित मुनि पण पूजना योग्य छे तेना पूजनना प्रकार बतावे छे—अभिगमन ते सामा जहुं, वंदन ते द्वादशावर्तादि वंदन करहुं, नमस्कार ते अंतरंग प्रीति धराववी अने विनय ते आसन आपहुं विंगरे.

साधुना विशेष पूजनीकरणानां कारणो बतावे छे—

धम्मो पुरिसप्पभवो, पुरिसवरदेसिञ्चो पुरिसजिष्ठो ॥

लोएवि प्हू पुरिसो, किं पुण लोएत्तमे धम्मो ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—“धर्म पुरुषयी उत्पन्न थयेलां छे अने पुरुषश्रेष्ठे उपदेशेलां छे तेथी तेमां पुरुष ज्येष्ठ छे. लोकने विषे पण पुरुषज स्वामी थाय छे, तो लोकोत्तम एवा धर्ममां पुरुषनी श्रेष्ठता गणाय तेमां भुं!” १६.

भावार्थ—दुर्गतिथी जे रक्षा करे ते धर्म कहीए: एवो धर्म पुरुष जे गणधर महाराजा तेमनाथी उत्पन्न थयेलां—शरु थयेलां छे. पुरुषवर—पुरुषश्रेष्ठ जे तीर्थ-कर महाराजा तेमणे बतावेलां—कहेलां—प्ररुषेलां छे. एवो श्रुत चारित्र्य रूप जे धर्म ते पुरुषना स्वामीपणावाळो होवाथी तेमां पुरुषहुं ज्येष्ठपणुं कहेलुं छे. लोकोमां पण स्वामीपणुं पुत्रने अपाय छे, पुत्रीने अपातुं नथी; तो लोकमां उत्तम एवा धर्ममां तो विशेषे करीने पुरुषहुं स्वामीपणुं समजहुं. जो लोकमां पुरुषनी श्रेष्ठता छे तो लोकोत्तम एवा धर्ममां तो विशेषे करीने तेनी श्रेष्ठता जाणवी.

तेने माटे दृष्टांत बतावे छे—

संवाहणस्स रत्तो, तइया चाणारसीयनयरिण् ॥

कन्नासहस्स महिअं, आसी कीर रूपवतीणं ॥ १७ ॥

तहवियं सा रायसिरी, जड्ढुइंती न ताइया ताहिं ॥

उयरट्ठिएण इक्केण, ताइया अंगवीरेण ॥ १८ ॥

શબ્દાર્થ—“ તે કાઢને વિષે વારાણસી નગરીમાં સંવાધન : નામના રાજાને અધિક રૂપવતી ઈવી એક હજાર કન્યાઓ હતી, તથાપિ તેની રાજલક્ષ્મી હુંડાતી તેઓ રાક્ષી શક્તી નહિ; અને ઉદરમાં રહેલા ઈવા પળ અંગવીર નામના એક પુત્રે તે રાક્ષી. ” ૧૭-૧૮.

માવાર્થ—વારાણસી નગરીમાં રાજ કરનારા સંવાધન રાજાને એક હજાર પુત્રીઓ અત્યંત રૂપવંતી હતી, તથાપિ તે રાજા શુજરી થયો ત્યારે તેની હુંડાતી રાજલક્ષ્મીનું રક્ષણ કરવાને તેઓ સમર્થ થઈ નહિ; પરંતુ તે રાજાની રાણીના ગર્ભમાં રહેલા એક પુત્રના કારણથી તેની રાજ્યલક્ષ્મી હુંડાતી નાશ પામતી રહી ગઈ. અર્થાત્ તે પુત્ર કે જેનું પાછલ્લથી ‘અંગવીર’ નામ પાડવામાં આવ્યું હતું તેના પ્રવાપ વઢે તેનું રક્ષણ થયું. આની સ્પષ્ટતા તેના દૃષ્ટાંતવઢે વિશેષ થઈ શકે તેમ છે.

સંવાધન રાજાનું દૃષ્ટાંત નીચે પ્રમાણે:—

‘વારાણસી નગરીમાં સંવાધન નામનો એક રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તેને એક હજાર પુત્રીઓ હતી; પરંતુ ઘણાં લપાયો કર્યાં છતાં તેને પુત્ર થયો નહતો. રાજાએ વિચાર્યું કે—‘ પુત્ર વિના રાજલક્ષ્મી શા કામની ? જેના ઘરમાં પુત્ર નથી તેનું ઘર પણ શૂન્ય છે.’ વેદમાં પણ કહ્યું છે કે—“ પુત્ર બગરના માણસની સદ્ગતિ થતી નથી અને સ્વર્ગમાં તો તે બીજી જઈ શકતો જ નથી, તેથી મનુષ્યો પુત્રનું મુલ્ક જોઈને સ્વર્ગે જાય છે. ” છોકોક્તિ પણ ઈવી છે કે—

ચોસઠ દીવા જો બઢે, બારે રવી ઉગંત;

તસ ઘર તોહે અંધારું, જસ ઘર પુત્ર ન હુંત.

“એકી વસતે ચોસઠ દીવા વઢતા હોય અને એકી વસતે બારે સૂર્યે જગ્યા હોય તોપણ જેના ઘરમાં પુત્ર નથી તેના ઘરમાં તો અંધારું છે.” તેથી પુત્ર વિના રાજ્યલક્ષ્મી કાંઈ કામની નથી. આ પ્રમાણે વિચારીને રાજાએ અનેક માંત્રિકો, તાંત્રિકો અને યાંત્રિકોને પૂછ્યું, પરંતુ કોઈ પણ લપાયે પુત્ર પ્રાપ્ત થયો નહિ. કહ્યું છે કે—

પ્રાસલ્લયો નિયતિબલાશ્રયેણ યોડર્થ:

સોડ્વશ્યં જવતિ નૃણાં શુભોડ્જ્જો વા ॥

ચૂતાનાં મહતિ કૃતેડપિ હિ પ્રયત્ને ।

નાજાલ્લયં જવતિ ન જાવિનોડસ્તિ નાશ: ॥

“ નિયતિના વઢથી શુભ વા અશુભ જે અર્થ પ્રાપ્ત થવા યોગ્ય છે તે માણસોને અવશ્ય પ્રાપ્ત થાય છે. તે શિવાય માણસો અનેક પ્રયત્નો કરે તોપણ જે નથી વનવાનું તે વનનું નથી અને જે વનવાનું છે તેનો નાશ થતો નથી. ”

हवे राजा-इदं थयो. ए वस्त्रतमां कोइएक जोव पट्टराणीना उदरमां पुत्र-पणे आवीने उत्पन्न थयो; परंतु पुत्रमुरत जोया वगरज राजा तो परलोकमां गयो. पछी सर्व पौरजनो एकठा मळी विचार करवा लाग्या के-‘ हवे थुं थशे? पुत्र विनाजुं राश्य केवी रीते रहेशे ? ’ ए प्रमाणे विचारी सर्व नगरवासी लोको शोकाकुल थया ते वस्त्रते शत्रुओए पण सांभळ्युं के-‘ संवाधन राजा अपुत्र मरण पाव्यो छे. ’ तेथी तेथो सर्व एकठा मळो मोहुं लडकर एकटुं करो सज्ज यइने वाराणसी नगरी तरफ चाल्या. ते बात सांभळी वधा लोको त्रास पाव्या, अने पोतपोताना घरनी अंदरथी घन काढवा लाग्या. ते वस्त्रते शत्रुओए कोइएक निमित्तियाने पूछ्युं के-‘अमारो जय थशे के केम ? ’ ते निमित्तिये लडवल जोइने कहुं के-‘तमो सर्व मळीने जयनी अभिलाषाथी त्यां जवानी इच्छा करोछे, परंतु संवाधन राजानी पट्टराणीना उदरमां रहेल गर्भना प्रभावथी तमारो पराजय थशे, जय थशे नहि. ’ ए प्रमाणे सांभळीने सघळा वैरीओ पाळा बळ्या. नागरी को खुशी थया अने कहेवा लाग्या के-‘अहो गर्भमां रहेल पुत्रजुं महात्म्य केहुं अद्भुत छे के जेथी सघळा शत्रुओ नासी गया. ’ गर्भस्थिति पूर्ण थतां पुत्रनो जन्म थयो. अशुचिकर्म पूरुं कर्या पछी तेनुं ‘अंगवीर्य’ नाम पाड्युं. अनुक्रमे ते युवावस्थामां आव्यो, अने तेणे लांवा वस्त्रत सुधी प्रजाजुं पाळन कर्तुं.

“ हजार कन्याओथी पण राज्यजुं रक्षण थयुं नहिं, परंतु गर्भस्थित पुत्र मात्रयी रक्षण थयुं ” एवो कर्मव्यवहारमां उपनय छे. धर्मव्यवहारमां एवो उपनय छे के-“ सर्वत्र पुरुष एज श्रेष्ठ छे. तेथी साध्वीओए एक दिवसनी दीक्षावाळा साधुनो पण विनय करवो. ” ए प्रमाणे पूर्वनी गाथा साये संबध छे. हज्ज आगली गाथामां पण तेज वावत स्पष्ट करी देखाडे छे.

महिल्लाण सुबहुर्याणवि, मझ्जाओ इह समत्त धरसारो ॥

रायेपुंरिसेहिं निर्जेइ, जणैवि पुंरिस्तो जैहिं नथियै ॥ १९ ॥

शब्दार्थ-“ आ लोकने विषे पण ज्यां पुरुष-पुत्र नथी त्यां घणी स्त्री-ओना मध्यमार्थी पण समस्त घरनो सार राजपुरुषो लइ जाय छे. ” १९.

भावार्थ-अपुत्रजुं घन राजा लइ जाय एवो लोकमां प्रचार छे, तेथी जेना कुळमां पाछल पुत्र न होय तेनुं घन घणी स्त्रीओ अथवा पुत्रीओ होय छतां पण राजा लइ जाय छे तेथी पुरुषजुंज प्रधानपणुं छे.

हवे आत्मसाक्षीए धर्म करवा विषे कहे छे-

किं परजणवहुंजाणावणाहिं, वरं मत्पसंखियं सुकंयं ॥

इह भरहचक्रवटी, पसन्नचंदो र्यं दिष्टतां ॥ २० ॥

शब्दार्थ—“ हे आत्मा ! परजनने बहु जणाववाथी श्रुं ? आत्मसाक्षिक सुकृत तेज श्रेष्ठ छे. अहो भरत चक्रवती अने प्रसन्नचंद्रजुं दृष्टांत जाणवुं. ” २०.

भावार्थ—“ में आ अनुष्ठान कर्युं एयं परजन एटछे वीजाओने बहु जणाववाथी शो लाभ छे ? आत्मसाक्षिक धर्म करवो तेज श्रेष्ठ छे. आ विषय उपर भरत चक्रीजुं दृष्टांत छे के जेमणे यत्नवढे करेला आत्मसाक्षिक अनुष्ठानथी सिद्धि सुखने प्राप्त कर्युं छे. प्रसन्नचंद्र राजर्षिजुं पण आ विषय उपरज दृष्टांत छे.

तेमां प्रथम भरतचक्रीजुं दृष्टांत कहें छे:—

अयोध्या नगरीमां ऋषभदेवना पुत्र ‘भरत’ नामे चक्रवर्ती यथा हता. ज्यारे श्री ऋषभदेवस्वामीए चारित्र्य ग्रहण कर्युं ते वखते पोताना सो पुत्रोने पोतपोतानां नामवाला देशो आप्या. ‘बाहुवली’ ने बहुलि देशमां तक्षशिला नगरोतुं राज्य आप्युं अने भरतने अयोध्या नगरीजुं राज्य आप्युं. एक दिवस भरतराजा सभामां बैठेला छे ते वखते ‘यमक’ अने ‘समक’ नामना वे पुरुषो वधामणी देवाने सभास्थानना मुख्य द्वार पासे आव्या; प्रतिहारे भरत राजाने तेओजुं आगमन निवेदन कर्युं एटछे भूसंज्ञाथी द्वारपाळने आववा देवानो हुकम आपवाथी यमक अने समक सभामां आव्या. तेओ बनेए हाथ जोडी आशीर्वाद पूर्वक राजानी स्तुति करी. पजी तेमांना यमके विज्ञप्ति करी के—‘ हे देव ! ‘पुरिमतालपुरना’ शकट नामना उद्यानने विषे श्री ऋषभस्वामीने केवळज्ञान उत्पन्न थयुं छे, ए वधामणी आपवा माटे हूं आव्यो छुं.’ त्यार पछी समक्रे कहुं के—‘हे देव ! एक हजार देवताओथी सेवायेछुं अने करोडो सूर्य जेवो प्रकाश आपतुं चक्ररत्न आयुधवालांमां उत्पन्न थयुं छे.’ आ प्रमाणे वे माणसना मुखथी वे वधामणी सांभळीने भरत-राजा अति-हर्ष पाव्यो. पछी तेमने जीवीत पर्यंत देतां अने भोगवतां खुटे नहि एटछुं धन आपीने ते बनेनुं सन्मान कर्युं. इवे भरत विचार करवा लाष्या के—‘ मारे प्रथम कोनो उत्सव करवो उचित छे ? केवळज्ञाननो के चक्रनो ? ’ ए प्रमाणे विचार करतां पाछुं तेणे चिंतव्युं के—‘ मने धिक्कार छे के में आ श्रुं चिंतव्युं ? अक्षय सुखंना दांता पिता क्यां ! अने मात्र संसारसुखनुं हेतु-भूत चक्र क्यां ! बळी तातनी पूजा करवाथी चक्रनो पूजा पण थइज गइ.’ ए प्रमाणेनो निश्चय करी मोटा आडंबरपूर्वक पुत्रमोहथी विह्वल बनेला अने ‘ ऋषभ !

ऋषभ ! 'ए नामनो जप करता एवा पोताना' पितामही 'मरुदेवा' ने गज उपर बेसाडीने भरत राजा ऋषभ स्वामीने वंदन करवा चाल्या. मार्गमां भरते मरुदेवाने कहुं के— "माता ! तमे स्वपुत्रनी समृद्धिने जुओ. तमे मने हमेशां कहेता हता के— 'मारो पुत्र वनमां भटके छे अने दुःख अनुभव छे, परंतु तूं तेनी संभाल करतो नथी. ' आ प्रमाणे दररोज मने ओळंभो आपता हता; पण हवे तमारा पुत्रजुं अैश्वर्य जुओ. "

ए अवसरे चोसठ सुरेंद्रोए एकठा थइने समवसरण रच्युं. करोडो देवदेवी-ओ एकठा मळ्यां. विविध प्रकारनां वालिंजोना शब्दोथी गगनमंडळ गाजी रहुं. जयजय शब्दो साथे गीतगान पूर्वक प्रभुसिंहासन उपर बेसीने देशना आपवा छाम्या. ते वखते देवहुंदुभिनी ध्वनि अने जयजयना शब्दो सांभळीने- मरुदेवा माता कहे छे के— 'आ कौतुक शुं छे ?' भरते वहुं के— 'आ तमारा पुत्रजुं अैश्वर्य छे.' मरुदेवा विचारे छे के— 'अहो ! पुत्रे आटली वधी समृद्धि मेळवी छे ?' ए प्रमाणे उत्तंठा पूर्वक आनंदाशु आववाथी तेमनां वने नेत्रनां पडल ग्नुळी गयां अने सर्व प्रयत्न जोयु जोडने विचार्युं के— "अहो ! आ ऋषभ आबु अैश्वर्य भोगवे छे ! परंतु एणे मने एकवार संभारो पण नथी. हुंतो एक हजार वर्ष पर्यंत पुत्रमोहथी दुःखित थइ अने पुत्रना मनमां तो मोहनु किंचित् कारण पण जणातुं नथी. अहो ! मोहनी चेष्टाने धिक्कार छे ! मोहांध माणसो कइ पण जाणता नथी, " ए प्रमाणे वैराग्यमग्नपणाथी क्षपकश्रेणी उपर आरुढ थया अने आठ कर्मनो क्षय करो अंतकृत केवळी थइने मोक्षे गया. देवताओए महोत्सव कर्यो इंद्र आदि सर्व देवोए समवसरणमांथी त्यां आवीने मरुदेवा माताना शरीरने क्षीरसागरना प्रदाहमां वहेतुं सूक्युं. पछी शोकमग्न भरतने अग्रेसर करीने सौ समवसरणमां आव्या. भरत प्रभुने त्रण प्रदक्षिणा करीने यथायोग्य स्थाने वेठा अने प्रभुनी देशना सांभळी तेमनो शोक नष्ट थयो देशनाने अंते प्रभुने बांठी श्रावक धर्म अंगीकार करी अयोध्यामां आव्या, अने पछी चक्रनो उत्सव कर्यो.

आठ दिवस गया पछी चक्र पूर्व दिशांमां चाल्युं. भरत राजा पण देश जीतवाने माटे चक्रनी पाळळ सैन्य सहित चाल्या. एकेक योजनतुं दररोज प्रयाण करतां केटछेक दिवसे पूर्व समुद्रने किनारे आवी सैन्यनो पडाव नाख्यो. त्यां भरते अहमंतुं तप कर्युं; अने मागध नामना देवतुं घनमां ध्यान करीने स्थित रह्या. त्रण दिवस पछी रथमां बेसी समुद्रना जळमां रथनी धरी पर्यंत प्रवेश करी पोताना नामथी अंकित बाणने धनुष्यमां सांधीने ते देवमनि छोडचुं ते बाण वार योजन जइने-मगधदेवनी सभामां सिंहासन साथे अथहाइने भूमि उपर पड्युं. बाणजुं पड्युं जोइ मगधदेव क्रोधायमान थइ गयो. पछो ते बाण

हायमां लइ तेनां परना अक्षरो वांच्या; एटले भरत चक्रवर्तीने आवेला जाणी कोपरहित थइ भेटणुं लइ परिवार सहित तेमनी सन्मुख चाल्यो. नजीक आवीने ते चक्रवर्तीना चरणमां पडयो ने वोल्यो के- 'हे स्वामिन ! मारो अपराध क्षमा करो, हुं तमारो सेवक छुं; आटला दिवस सुधी हुं स्वामीरहीत हतो, हवे आपना दर्शनथो सनाथ थयो छुं.' ए प्रमाणे कहो, नमस्कार करी, भेट घरी, रजा लइने स्वस्थाने गयो. पळी भरतचक्रोए छावणीमां पाळा आवी अहम तपणुं पारणुं कर्युं.

त्यारपळी पाळुं चक्र आकाशमां चाल्युं. सैन्य पण तेनी पाळळ चाल्युं. अनुक्रमे तेओ दक्षिण समुद्रने किनारे आंव्या. पूर्ववत ते दिशाना स्वामी 'वरदा मदेवने' पण जीत्यो. त्यारवाद पश्चिम दिशामां 'प्रभासदेवने' जीतीने चक्रे उचर दिशा भणी प्रयाण कर्युं. अनुक्रमे वैताढय पर्वत पासे आवीने चक्रवर्ती अहम तप करी 'तमिस्रा' शुफाना अधिष्ठायक 'कृतमालदेव'जुं मनमां ध्यान करीने स्थित रह्या. अहम तपने अंते ते देव प्रत्यक्ष थयो अने तमिस्रा शुफानुं द्वार उघाड्युं सैन्य सहित भरत राजाए तमिस्रा शुफामां प्रवेश कर्यो. मणिरत्नना प्रकाश वडे सैन्य सहित आगळ चालतां 'निमग्रा' अने उन्निमगना नामनी वे नदीओ आवी. ते नदीओ चर्भरत्नवडे उतर्या. अने आगळ चाली शुफाना बीजा द्वारपाशेआवो सैन्यने वहार काड्युं. हवे त्यां घणा म्ळेच्छ राजाओ रहे छे तेओ एकठा थया अने चक्रीनी साथे युद्ध करवा लाग्या. चक्रीए ते सघळाओने जोती लीग्रा. तेको चक्रोना सेवको थया. त्यां आवेला उत्तर तरफना व्रणे व्हडने जोतीने चक्री पाळा बळया. मार्गे चालतां गंगाने तीरे सैन्यनो पडाव नाख्यो. त्यां नव निधिओ प्रगट थया नव निधाननुं स्वरूप आ प्रमाणे:-

“ १ नैसर्प, २ पांडुक, ३ पिंगळ, ४ सर्वरत्न, ५ महापद्म, ५ काळ, ७ महाकाळ, ८ माणवरु ने ९ शंख-ए प्रमाणे तेनां नामो छे. ते गंगाना मुखमां रहेनारा छे. आठ पैडांवाळा; आठ योजन उंचा, नव योजन विस्तारवाळा ने वार योजन लांबा मंजुषाने आकारे छे. तेना वैदूर्यमणिना कमाड (वारणा) छे, कनकमय छे, विविध प्रकारनां रत्नोवडे परिपूर्ण छे, अने तेना अधिष्ठाता देवो तेज नामना पल्योपमना आयुष्यवाळा होय छे. ”

चक्रीए गंगाने तीरे रहीने आठ दिवस सुधी ते निधान संबंधी उत्सव कर्यो. गंगानदीनो अधिष्ठायिका 'गंग्वा' नामनो देवी भरतचक्रीने पोताना आनासमां लइ गइ. त्यां तेनी साथे एक हजार वर्षपर्यंत भोगभोगव्या. त्यारपळी चक्र आगळ चाल्युं, एटले चक्रीए वैताढय पर्वत पासे आवी तेनी उपर रहेनार 'निमि' अने 'विनिमि'

नामना विद्याधरोने जीत्या. विनमि विद्याधरे पोतानी. पुत्री चक्रीने आपी. ते स्त्रीरत्न थइ. ए प्रमाणे भरतचक्री साठ हजार वर्ष पर्यंत दिग्विजय करीने अयोध्यामां पाछा आब्या; ते पत्वंडाधिपति महा ऋद्धिमान थया. तेमनी ऋद्धिंतुं स्वरूप कहे छे-बोराशी लाख हाथी, तेठलाज रथो, तेठलाज अश्वो, छन्नुकोटी पायदळ, बत्रीश हजार देशो, बत्रीश हजार मुहुटबघ राजाओ जेना सेवक छे, अदताळीश हजार पाटण, वोंतेर हजार नगरो, छन्नुकोटी गामो, चौद रत्नां, नव निधि, साठ हजार बंशावळी कहेनारा भाटो, साठ हजार पंडितो, दश कोटी ध्वजा धारण करनारा, पांच लाख मशालची, वीश हजार सुवर्ण आदि धातुनी खाणो, पचीश हजार देवो जेना सेवको छे, अठार कोटी घोडेस्वार जेनी पाछळ चाळे छे-आ मयाणेनी ऋद्धि प्राप्त थइ छतां तेमनी विरक्त रहेता हता. ए प्रमाणे घणालाख पूर्वा व्यतीत यतां एकदा भरतचक्री पोतानी जंगारशाळामां शरीरप्रमाण आदर्श (काच) मां पोतानुं रूप जोवा लाग्या. ते बखते दरेक अवयवनी सुंदरता निहाळतां एक आंगळीने वींटीरहित होवाथी अत्यंत शोभारहित लागती जोइने मनमां विचार करवा लाग्या के-“अहो! देहनी असारता! परपुद्गलोधीज शरीर शोभे छे, पोताना पुद्गलोथी शोभतुं नथी. अरे! में शं कर्तुं! आ असार देहनी खातर में घणा आरभो कर्या. आ असार संसारमां सघळं अनित्य छे. कोइ कोइतुं नथी. मारा नाना भाइओने धन्य छे के तेमणे बीजळीना चमकारानी जेवां चंचल राज्यमुखने तजी दइने संयम स्वीकार्युं. हुंतो अधन्य छुं, जेथी आ अनित्य एवा संसारीमुखमां नित्यपणानी बुद्धिची मोह पामेळोछुं. आ देहने धिकार छे! अने सर्पनी फणा जेवा आ विषयोने पण धिकार छे! हे आत्मा! आ संसारमां तुं एकलोण छे. बीजुं कोइ ताहं नथी.” आ प्रमाणे विचार करतां परमपद पर आरोहण करवानी निःसरणी रूप क्षपकश्रेणीए आरूढ थया; अने चार घन घातिकर्मनो क्षय करीने उखळ केवळज्ञान प्राप्त कर्तुं. ते अवसरे शासनदेवीए आवीने मुनिने वेध अर्पण कर्यो. ते साधुनो वेध धारण करीने तेमणे केवळोपणे पृथ्वी उपर विहार कर्यो, अने अनुक्रमे मोक्षसुख प्राप्त कर्तुं. एटलामाटे आत्मसाक्षिक अनुष्ठानज फळदायी छे; अन्य साक्षिक अनुष्ठान फलदायी नथी.

आ प्रमाणे अध्यात्मिक अनुष्ठानमां भरतचक्रींतुं दृष्टांत जाणवुं.

हवे प्रसनचंद्र राजर्षिंतुं दृष्टांत कहे छे—

पोतनपुर नगरमां प्रसन्नचंद्र नामनो राजा हतो. ते अति धार्मिक, सत्यवादी तथा न्यायधर्ममां अद्वितीय निपुण हतो. ते एक दिवसें संध्याकाळे झरुखामां वेसी नगर-

શું સ્વરૂપ જોતો હતો. તે સમયે નાના પ્રકારનાં રંગવાઝાં ઘાદઝાં થયાં. સંધ્યાના રંગ સ્વીલ્યો. તે જોઈ રાજાને અતિ હર્ષ થયો. પછી તે તેના તરફ પુનઃ પુનઃ દ્રષ્ટિ કરવા લાગ્યો. ઇટલામાં તે સંધ્યાસ્વરૂપ ક્ષણિક હોવાથી જોતાંજોતાંમાંજ નાશ પામી ગયું. તે જોઈ રાજા વિચાર કરવા લાગ્યો કે—અહો ! સંધ્યાના રંગની સુંદરતા ક્યાં ગઈ ! પુદ્ગલો અનિત્ય છે. સંધ્યાના રંગની પેટે આ દેહ પણ અનિત્ય છે. સંસારમાં પ્રાણીઓને કંઈ પણ મુક્ત નથી. કહું છે કે—

દુઃખં સ્ત્રીકુક્ષિમધ્યે પ્રથમમિહજન્વે ગર્ભવાસે નરાણામ્

બાલત્વે ચાપિ દુઃખં મલલુલિતવપુઃ સ્ત્રીપયઃપાનમિશ્રમ્ ।

તારૂપ્યે ચાપિ દુઃખં જન્વતિ વિરહજં વૃદ્ધજાતવોપ્યસારઃ

સંસારે રે મનુષ્યા વદત્ત યદિસુખં સ્વલ્પમપ્યસ્તિ કિંચિત્ ॥

“ માણસોને આ સંસારમાં પ્રથમ સ્ત્રીની કુક્ષિની વિષે ગર્ભવાસમાં દુઃખ હોય છે, બાલ્યાવસ્થામાં પણ માતાના દુધના પાનથી તેમજ મઝ્મૂત્રથી શરીર સ્વરડાવેહું રહેવાથી દુઃખ છે, યુવાવસ્થામાં પણ વિરહથી ઉત્પન્ન થયેહું દુઃખ છે, અને વૃદ્ધભાષ તો સદન અસારજ છે. માટે હે મનુષ્યો ! જો આ સંસારમાં સ્વલ્પ પણ કાંઈ મુક્ત હોય તો કહો. ”

ए प्रमाणे वैराग्यथी जेनुं मन रंजित थयुं छे एवो राजा चिंतवन करे छे के-
‘आ संसारमां वैराग्यनो साथे वरोवरी करी शके तेनुं कोइ पण मुक्त नयी.’ कहुं छे के-

जोगे रोगभयं सुखे क्षयजयं वित्तेऽग्निचूचृद्भयम्

दास्ये स्वामिजयं गुणे खलजयं वंशे कुयोषिद्भयम् ।

माने म्लानिजयं जये रिपुजयं काये कृतांताद्भयम्

सर्वं नामजयं भवेऽत्र जविनां वैराग्यमेवाऽजयम् ॥

“બોગમાં રોગનો ભય, મુક્તમાં ક્ષયનો ભય, ધનને વિષે અગ્નિ ને રાજાનો ભય, દાસત્વમાં સ્વામીનો ભય, ગુણમાં સ્વલ્પપુરુષનો ભય, વંશમાં કુનારીનો ભય, માનને વિષે તેની હાનિ થવાનો ભય, જયને વિષે રિપુનો ભય અને દેહને વિષે યમ રાજાનો ભય હોય છે. એ પ્રમાણે આ સંસારમાં મનુષ્યોને સર્વ ભયયુક્ત હોય છે, માત્ર વૈરાગ્યજ એક ભયરહિત છે. ”

ए प्रमाणे विचारी वैराग्यमां तत्पर थयेल राजाए पोताना बाल्यावस्थावाळा पुत्रने राज्य उपर बेसाढोने पोते दोष्ठा ग्रहण करो. तत्काल जेणे केशनो लोच कर्यो छे एवो ते राजा पृथ्वी उपर विहार करतां राजगृहीना उद्यानमां कायोत्सर्ग मुद्राथी उभो रह्यो. ते अवसरें श्रीमान् वर्धमान स्वामि-एक गामथी बीजे गाम विहार करतां चौदहजार साष्टाथी परिव्रत थयेला, देवताओए निर्माण करेलां सोनानां कमळो उपर पोताना चरणोने धारण करतां राजगृह नगरना गुणशील नामना उद्यानमां समवसर्यां, देवोए आवीने त्यां समवसरण रच्युं. वनपाळके त्वराथी श्रेणिक राजा पासे जइने विज्ञप्ति करी के-‘हे स्वामिन् ! आपना मनने घणाज व्हाला श्री महावीर स्वामि वनमां समवसरेला छे.’ ए प्रमाणे वनपाळकतुं बोलवुं सांभळीने राजाने घणो हर्ष थयो. राजाए तेने कोटी द्रव्य अने सोनानी जीभ आपी. पछो श्रेणिक राजा मोटा आढंवरसहित प्रभुने वंदन करवा चाल्यो. सैन्यना अग्र भागे सुमुख ने दुर्मुख नामना वे चौपदारो चालता हता. तेओए मसन्नचंद्र मुनिने वनमां कायोत्सर्ग मुद्राए उभा रहेला जाया. प्रथम सुमुखे कहुं के-‘आ मुनिने धन्य छे के जेणे आवी मोटी राज्यलक्ष्मी तजी दइने संयम रूपी सष्टि ग्रहण करेली छे. एना नाम मात्रनो उच्चार करवाथी पाप जाय ता पछी सेवा करवाथी जाय तेमां तो शुं कहेवुं !’ पछी दुर्मुख बोल्यो के-‘अरे ! आ मुनि तो अधन्य अने महापापि छे. तुं एने वारंवार शा माटे बखाणे छे ? एना जेवो पापि तो कोइ नथी.’ सुमुखे मनमां चितव्युं के-‘अहो ! दुर्जननो स्वभावज आवो होय छे के जे गुणोमांथि षण दोषनेज ग्रहण करे छे.’ कहुं छे के-

आक्रांतेव महोपलेन मुनिना शसेव पुर्वाससा

सातत्यं बत मुद्रितेव जलुना नीतेव मूर्छा विषैः ।

वद्धेवातनुरज्जुजिः परगुणान् वक्तुं न शक्ता सति

जिह्वा लोहशलाकया खलमुखे विद्धेव संलक्ष्यते ॥

“ मोटा पथ्थरथी दवायेली होय नहि ! दुर्वासा मुनिथी शाप पामेली होय नहि ! लास्यथी निरंतर चोटाडो दीधेली होय नहि ! विषथो मूर्छित थयेल होय नहि अथवा जाडा दोरडाथी बांधेली होय नहि ! तेवी खल माणसनी जीभ पार-काना गुणो बोलवाने अशक्त होती सती लोढाना खीलाथी जाणे विधेली होय नहि तेवी जणाय छे ” बळी कहुं छे के-

આયોંડપિ દોષાન્ સ્વલવત્પરેષાં, વક્તું હિ જાનાતિ પરં ન વક્તિ ।
કિં કાકવત્તીવ્રતરાનનોડપિ, કીરઃ કરોત્યસ્થિવિઘટ્નનાનિ ॥

“ સજ્જન/માણસને પણ સ્વલ માણસની પેટે પારકાના દોષો વોલતાં આવડે છે પણ તે ધોલતા નથી. શું કાગઢાની માફક પોપટ પણ તીવ્ર ધાંચબાઝો નથી? છે; છતાં તે અસ્થિના ઢુકઢા કરે છે? નથી કરતો. ”

પછી મુમુક્ષે કહ્યું—‘ હે દુર્મુલ્ક ! તું આ મુનીશ્વર મહાત્માને શામાટે નિંદે છે? ’ ત્યારે દુર્મુક્ષે કહ્યું—“ અરે? તેત્તું નામ પણ છેવા જેવું નથી. કારણકે આ મુનિએ પાંચ વર્વના વાલ્કને રાજ્યગાદી ઉપર બેસાડીને પોતે દીક્ષા લીધી છે; પરંતુ તેના બૈરીઓએ એકઠા થઈને તેના નગરને હુંટયું છે, તેના નગરવાસી જનો આક્રંદ અને વિલાપ કરે છે. મોઢું યુદ્ધ થાય છે. હમણાં તેના શત્રુઓ તે વાલ્કને હળીને રાજ્ય ગ્રહણ કરશે. આ સપહું પાપ તેના શિરે છે. ” આ પ્રમાણે સાંભળીને ધ્યાનમાં સ્થિત થયેલા પ્રસન્નચંદ્ર ઋષિએ ચિંતવ્યું કે—‘ અરે! હું જીવતાં જો મારા શત્રુઓ મારા વાલ્કને મારીને રાજ્ય ગ્રહણ કરે, તો એ માનની હાનિ તો મારી પોતાનીજ છે. ’ એ પ્રમાણે ચિંતવતાં ધ્યાનથી ચલિત થઈને મનમાં શત્રુઓની સાથે શુદ્ધ કરવા લાગ્યા; અતિ મયંકરપણાને પામ્યા અને તેમાં એકાગ્ર થવાથી રૌદ્ર ધ્યાન ધવાવા લાગ્યા. મનવડેજ શત્રુઓને હણે છે, અને ‘ મેં અમુક શત્રુને માર્યો ’ એવી બુદ્ધિથી ‘ બહુ સારું થયું ’ એમ મુલતથી પણ વોલે છે. ‘ હવે વીજાને મારું એ પ્રમાણે તે ફરીને પણ મનથી શુદ્ધમાં પ્રવર્તે છે. એવે સમયે હાથી ઉપર બેટેલા શ્રેણિકે પ્રસન્નચંદ્ર મુનિને જોયા. એટલે ‘ અહો ! આ રાજર્ષિને ધન્ય છે કે જે એકાગ્ર મનથી ધ્યાન કરે છે. ’ એમ વિચારી શ્રેણિક રાજાએ ગજ ઉપરથી ઉતરી મુનિની ત્રણ પ્રદક્ષિણા કરીને તેમને વારંવાર વાંધા અને સ્તુતિ કરી. પછી તેમને વાંદીને મનમાં સ્તુતિ કરતો હાથિ ઉપર ચઢી શ્રી મહાવીર સ્વામી સમીપે આવ્યો. સમયસરણ જોઈને પંચામિગમ^૧ જાલ્કવવાની વિધિથી જિનેશ્વરને વંદન કરીને બે હસ્તકમલ્લ જોડી આ પ્રમાણે સ્તુતિ કરી—

અધ્યાજ્ઞવત્સફલતા નયનદ્વયસ્ય, દેવ ત્વદીયચરણાંબુજવીક્ષણેન ।
અધ્ય ત્રિલોકતિલક પ્રતિજાસતે મે, સંસારવારિઘિરચં ચુલ્લુકપ્રમાણઃ ॥

“ હે દેવ ! તમારાં ચરણકમલ્લના દર્શનથી મારાં વજ્રે નેત્રો આજ સફલ થયાં; અને હે ત્રિલોકતિલક ! આજ આ સંસાર વારિધિ મને એક અંજલિપ્રમાણજ ખાસે છે. ”

૧ ચૈત્યવંદન માધ્યમાં કહેલાવજ્રે પ્રકારના પાંચ પાંચ અમિગમ અર્હી જાણી છેવા.

दिष्टे तुहमुहकमले, तिन्नि विणट्ठाइं निरवसेसाइं ।

दारिदं दोह्मंगं, जम्मंतरसंचियं पावं ॥

“ तमारं मुखकमळ देखवाथी दारिद्र, दौर्भाग्य अने जन्मांतरसंचित पाप-
ए ऋणे वानां सर्वथा नाश पाय्मां.”

इत्यादि एकसो ने आठ काव्योथी जिनेन्द्रने स्तवीने ते योग्य स्थान उपर
वेठो. पछी प्रभुए कछेशने नाश करनारी घर्मदेशना शरु करी. देशनाने अंते
श्रेणिक राजाए वीरस्वामीने पूछ्युं के-‘ हे प्रभु ! जे अवसरे में प्रसन्नचंद्र मुनिने
बांधा, ते अवसरे जो ते काळधर्म पावे तो तेनी गति क्यां थाय ? स्वामीए कहुं
के-‘जो ते वखते मरण पावे तो सातमी नरके जाय.’ फरी पूछ्युं ‘हमणा काळ
करे तो क्यां जाय ? भगवाने कहुं के-‘ छटो नरके जाय.’ फरीथी श्रेणिके
क्षणमात्र विलंब करीने पूछ्युं के-‘ हवे क्यां जाय ? ’ भगवाने कहुं के-‘पांचमी
नरकभूमिए जाय.’ क्षण पछी फरीथो पूछतां भगवाने कहुं के-‘चोथी नरक-
भूमिए जाय.’ ए प्रमाणे पुनः पुनः पूछतां ते ‘त्रीजी, वीजी ने पहेली नरक-
भूमिए जाय’ एवो उत्तर भगवाने आप्यो. फरीथी श्रेणिक राजाए पूछ्युं के-
‘हवे क्यां जाय ? ’ त्यारे भगवाने कहुं के-‘प्रथम देवलोकरा जाय.’ एम पुनः
पुनः पूछतां ‘ ते वीजा वीजा चोथा, पांचमा, छटा, सातमा, आठमा, नवमा,
दसमा, अग्यारमा ने बारमा देवलोके जाय.’ ए प्रमाणे अनुक्रमे ‘नव त्रैवेयक-
मां अने पांच अनुत्तर विमानो पर्यंत ते जाय’ एवो उत्तर श्रेणिक राजाए पूछतां
भगवाने आप्यो. आ रीते सभामां प्रश्नोत्तर चालता हता तेवे समये आकाशमां
देवदुंदुभिना नाद सांभळीने श्रेणिके पूछ्युं के-‘ हे प्रभु ! आ दुंदुभिना नाद क्यां
थाय छे ? ’ प्रभुए कहुं के-‘प्रसन्नचंद्र राजर्षिने केवळज्ञान उत्पन्न ययुं; तेथी
देवो दुंदुभि वगाडे छे अने जय जय शब्द करे छे.’ श्रेणिके पूछ्युं के-‘ प्रभु !
आ कौतुक थुं ते मारा समजवामां आवतुं नथी, माटे आतुं स्वरूप थुं छे ते
जाणवा माटे हे स्वामिन् ! तेनो सघट्टो वृक्षांत कहेवा कृपा करो.’ प्रभुए
कहुं के-‘ हे श्रेणिक ! सर्वत्र मन एज प्रधान छे.’ कहुं छे के-

मन एव मनुष्याणां, कारणं बंधमोक्षयोः ।

क्षणेन सप्तमीं याति, जीवस्तं दुलमत्स्यवत् ॥

“ मनुष्योने मन एजे बंध तथा मोक्षतुं कारण छे. जीव क्षणमात्रमां तंदु-
लमत्स्यनी जेम सातमी नरके जाय छे.” वळी कहुं छे के-

મણમરણેંદિચ્ચ મરણં, ઇંદિયમરણે મરંતિ કમ્માઈં ।

કમ્મમરણેણ મુલ્લો, તમ્હા મણમારણં પવરં ॥

“મનને મારવાથી ઈંદ્રિયો મરે છે, ઈંદ્રિયોને મારવાથી કર્મ મરે છે અને કર્મને મારવાથી મનુષ્ય મોક્ષને પામે છે; માટે મનને મારવું એજ શ્રેષ્ઠ છે.”

વહી પ્રશ્ન કર્યું કે—“ હે શ્રેણિક ! જે અવસરે તેં પ્રસન્નચંદ્રને વાંધા હતા તે અવસરે તારા ચોપદાર દુર્ઘુલ્લનાં વચન સાંભળીને તે ધ્યાનથી ચલિત થયા હતા, અને શત્રુઓની સાથે મનમાં યુદ્ધ કરતા હતા. તું તો એમ જાણતો હતો કે આ એક મોટા ઘુનોશ્વર છે, તે એકાગ્ર મનથી ધ્યાન કરે છે; પરંતુ તેણે તે અવસરે શત્રુઓ સાથે મનમાં મોટું યુદ્ધ આરંભેલું હતું; તો તે યુદ્ધથી તેણે સાતમી નરકે જવા યોગ્ય આયુષ્યનાં પુદ્ગલો મેલવ્યાં હતાં, પણ તે પુદ્ગલો નિકાચિત વંધથી બાંધેલા નહોતાં. ત્યારપછી તું તો તેમને વાંદીને અહીં આવ્યો અને તેણે તો મનમાં થતા યુદ્ધમાં શસ્ત્રોવડે સર્વ શત્રુઓને હણ્યા અને શસ્ત્રો પણ સઘડ્યાં સ્વપી ગયાં. એવામાં એક શત્રુને સન્મુલ્લ ઉમેલો દીઠો; પણ પોતાની પાસે એકે શસ્ત્ર રહ્યું નહોતું તેથી રૌદ્ર ધ્યાનમાં મગ્ન થયેલા પ્રસન્નચંદ્રે વિચાર્યું કે—‘આ મારા મસ્તકપર બાંધેલા છોટાના પાટાથી આ શત્રુને મારું.’ એવી બુદ્ધિથી તેણે સાક્ષાત્ પોતાનો હાથ માથા ઉપર મૂક્યો કે તરતજ પોતાનું મસ્તક નવોન લોચ કરેલું માથું જોઈને તે રૌદ્રધ્યાનથી પાછા વળ્યા અને વિચારવા લાગ્યા કે—‘અહો! મને શિકાર છે ! અજ્ઞાનથી જેની મતિ અંધ થઈ ગયેલી છે એવા મેં રૌદ્રધ્યાનમાં મગ્ન થઈને આ શું ચિંતવ્યું ? જેણે સર્વ સાવધ સંગનો ત્યાગ કર્યો છે, યોગને ગ્રહણ કરેલ છે અને ભોગોને વધી નાંચ્યા છે એવા મને આ યુદ્ધ ઘટતું નથી. કોનો પુત્ર ! કોની પ્રજા ! કોનું અંતઃપુર ! અરે દુરાત્પન્ન જીવ ! તે આ શો વિચાર કર્યો ! આ સર્વ અનિત્ય છે.’ કહ્યું છે કે—

ચલા વિચૂતિઃ ક્ષણજંગિ યૌવનમ્ કૃતાન્તદંતાન્તરવર્તિઃ જીવિતં ।

તથાપ્યવજ્ઞા પરલોકસાધને અહો નૃણાં વિસ્મયકારિચેષ્ટિતમ્ ॥

“ આ વિચૂતિઓ ચલિત છે, યૌવન ક્ષણમંશુર છે, જીવિત યમરાજાના દાંતની મધ્યે રહેલું છે, તથાપિ પરલોકસાધનમાં માણસ અવજ્ઞા કરે છે; માટે મનુષ્યોની વેષ્ટા અતિ આશ્ચર્યકારક છે ! ”

આ પ્રમાણે શુભ ધ્યાનમાં લીન થયેલા પ્રસન્નચંદ્ર યુનિએ ક્ષણે ક્ષણે સ્વરાવમાં સ્વરાવ અધ્યવસાયથી બાંધેલા કર્મદલોને મૂલ્યમાંથી ઉલ્લેહી નાંચવા

माँड्यां. शुभ अध्यवसायना बल्यी साते नरकभूमिने योग्य कर्मदलोतुं छेदन करीने अने उत्तरोत्तर सर्वार्थसिद्धि विमान पर्यंत जवा योग्य कर्मदलने मेळवीने अनुक्रमे वृद्धि पामती शुभ परिणामनी धारावडे परमपदनी प्राप्तिमां परम कारण रूप क्षपक श्रेणीनो आश्रय करी, घातिकर्मनो नाश करी तरतज अति उज्वल केवळज्ञान मेळ-
व्युं. तेना प्रभावथी देवताओ एकठा थइ गीतगानादि पूर्वक तेनो महोत्सव करेछे.”

आ प्रमाणे प्रभुना मुखथी सांभळीने श्रेणिक राजाए सविस्मय वारंवार पोतांतुं यस्तक धुणाव्युं, अने वीरप्रभुने वंदन करी संदेहरहित थइ स्वस्थाने गया. प्रभुए पण अन्यस्थाने विहार करीं. प्रसन्नचंद्र राजर्षिए पण घणां वर्षीं छुथी केवळीपणे भूमि उपर विहार करीने प्रांते मोक्षपद प्राप्त कर्युं.

‘ आ दृष्टांत उपरथी सार ए ग्रहण करवो के आत्मसाक्षीए करेलुं आचरणज पुण्यपापना फळने आपनार छे. ’

एकला वेषनी अप्रामाण्यता वतावे छे—

वेसोपि अप्रमाणा, असंजमपद्हेसु वदमाणस्स ।

किं परियत्तियवेसं, विसं न मारेंइ खज्जंतं ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—“ असंयममार्गमां वर्तता मुनिनो वेष पण अप्रमाण छे. केमके शुं वेष परावर्तन करेळ मनुष्यने विष खाद्यु सतुं मारतुं नथी ? मारे छे.”

भावार्थ—षट्कायना आरंभादिकमां वर्तता एवा मुनिनो रजोहरणादि वेष कामनो नथी, केवल वेषवडे आत्मशुद्धि थती नथी. अहीं दृष्टांत कहे छे के— एक वेष सूकोने वीजो वेष लीषो होय ते जो विष खाय तो मरण न पामे ? पामे. तेम संक्लिष्ट चिच रूप विष असंयम मार्गमां प्रवर्तनारा मुनिने मुनिवेष कतां पण अनेक जन्म मरण आपे.

अहीं कोइ एम कहे के त्यारे तो वेषनुं शुं काम छे ? केवल भावशुद्धिज करवी. तेने गुरु कहे छे के एम नहि, वेष पण धर्मनो हेतु होवाथी मुख्य छे ते आ प्रमाणे—

धम्मं रख्खइ वेसो, संकइ वेसेण दिख्खिओमि अहं ॥

उमग्गेण पडंतं, रख्खइ रायां जणवउउव ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—“ वेष धर्मनुं रक्षण करे छे, वेषे करीने हुं दीक्षीत हुं एम धारीने शंकायछे, अने राजा जनपदने राखे तेम उन्मार्गे पढताने वेष राखेछे.” २२

भाषार्थ—चारिभ्रमर्षिनी वेष रक्षा करेछे अने कोइपण प्रकारतुं पापकार्य आकर्ता हुं मुनिवेषधारकहु—दीक्षीतहु एवा विचारथी माणस शकायछे—लज्जा पाये छे-पाप करी शकतो नथी. बळी राजा जेम जनपदनी एटछे पोताना देशना लोकोनी रक्षा करेछे अर्थात् राजाना भयथी जेम प्रजावर्ग उन्मार्गे चाली शकतो नथी, प्रवृत्त्यै होय तोपण राजभयथी पाछो निवर्ते छे; तेम वेष प्राणीने उन्मार्गे पठवा रोके छे—उन्मार्गे पढी शकतो नथी—पढयो होय तोपण पाछो औरे छे.

अप्पाण जाणइ अप्पा, जह्ँ ढिअओ अप्पसखिखओ धम्मो ॥

अप्पा करेइ तं तह्ँ, जह्ँ अप्पसुहावहं होइ ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—“आन्माज यथास्थित पोताना आत्माने जाणे छे, माटे आत्मसाक्षिक धर्म (प्रमाण छे.) तेथी आत्माए जे क्रियानुष्ठान आत्माने मुखकारक होय ते तेवा प्रकारेज करवुं के जे परभवमा हितकारक थाय.” २३

भाषार्थ—पोतानो आत्मा शुभ परिणाममां वर्तेछे के अशुभ परिणाममां वर्ते छे तेनी खरी खबर पोताना आत्मनेज पढे छे, कारणके पारकी चेतोद्वेषि छद्मस्थ जाणी शकता नथी; पण पोते जाणीं शके छे.

जं जं समयं जीवो, आविसइ जेण जेण जावेण ॥

सो तम्मि तम्मि समये, सुहासुहं बंधये कम्मं ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—“जोव जेजे समये जेवा जेवा भावे वर्तछे ते ते समये ते (तेवा प्रकारना) शुभाशुभ कर्मने बांधे छे.” २४

भाषार्थ—समय ते अति सूक्ष्म काळ समजवो. जेवा शुभ के अशुभ परिणाममां आत्मा प्रवर्तवो होय तेवां शुभ के अशुभ कर्मां बांधेछे, अर्थात् शुभ परिणामे वर्तवो शुभ कर्म बांधेछे, अशुभ परिणामे वर्तवो अशुभ कर्मां बांधेछे; ते कारण माटे शुभ भावज करवो, गर्वादिथी दूषित भाव न करवो. ते सबंधे हवे कहे छे—

धम्मो मएण हुंतो, तो नविं सीउन्हवायविइझण्डिउ ॥

संवच्छरमणसिअओ, बाहुबली तह्ँ किलिस्संतो ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—“जो अभिमाने करीने धर्म यतो होत तो झोत उष्ण वायु विनेरेथी पराभव पामता अने एक वर्ष पर्यंत अश्वन विना रहेछा बाहुबलि तेवा प्रकारनो कछेन्न न पामत.” २५

गाथा २४—१ आविसइ. २ आबसइ. * आलको भवति.

गाथा २५—जतो ब्रह्ममिओ मणसिओ तो अणसिओ—अनशितः—अशनं विना स्थित

भावार्थ—एक वर्ष पर्यंत आहाररहित उपवासी रखा जातां अने अनेक प्रकारना परिसहो सहन कर्यां जातां 'हुं मारा नाता भाइओने वंदना केम करूं ?' एवुं अभिमान हतुं त्यांसुधी बाहुबळिने केवळज्ञान न थयुं, अने मान तज्युं के. तरत थयुं; माटे अभिमानवढे धर्म थइ शकतो नथी. अहीं बाहुबळिनुं दृष्टांत जाणवुं ते आ प्रमाणे—

बाहुबळिनुं दृष्टांत.

भरतचक्रीए छ खंडनो विजय कर्यां पछी पोताना अठ्ठाणुं भाइओने बोलाववाने तेणे दूतो भोकल्या. दूतोए जइने कथुं के—, आपने भरत राजा बोलावे छे, तेथी सघळा वंधुओ एकठा थइ विचार करवा लाग्या के—'भरत लोभ रूप पिशाचथी ग्रस्त थइ मत्त वनेलो छे. तेणे छ खंडनुं राज्य प्राप्त कर्युं छे. त्हां तेना लोभनी वृष्णा शांत थतो नथी. अहो केवी लोभाघता !' कथुं छे के—

लोभमूलानि पापानि, रसमूलानि व्याधयः ।

स्नेहमूलानि दुःखानि, त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव ॥

" लोभ पापुं मूल छे, रस (स्वाद) व्याधितुं मूल छे, अने स्नेह दुःखतुं मूल छे; माटे ए त्रणे वानाने त्यजीने सुखी था. "

बळी कथुं छे के—

जोगा न जुक्ता वयमेव जुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ता ।

कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥

" अमे भोग भोगव्या नहि पण अमे जाते भोगवाया, अमे तप कर्युं नहि पण अमे तप्त थया, काल गयो नहि पण अमे गया अर्थात् अमारी वय गइ, अने तृष्णा जीर्ण थइ नहि पण अमे जीर्ण थया अर्थात् अमारी वय जीर्ण थइ. "

" एटला माटे बलाकारथो पण ते आपणुं राज्य ग्रहण करणे अने आपणे एनी सेवा करनी पड्ये; माटे तेनी सेवा करवी के नहि ?" आ प्रकारना विचारने अने 'तेनी सेवा करवी नहि' एवुं दरेक भाइए कसुल कर्युं—मुकरर कर्युं. पछी सघळा भाइओ श्रीऋषभस्वामी पासो पोतानो वृत्तांत निवेदन करवा गया. प्रभुने वंदन करी हाथ जोडोने विज्ञापना करी के—" हे प्रभु ! भरत मत्त थयोछे अने ते अमारं राज्य ग्रहण करवाने उच्युक्त छे; माटे अमारो क्यां नवुं ? अमे तो आपे आपेला एक एक देशना राज्यथी पण संतुष्ट छीए; अने भरत तो छ खंडनुं राज्य मळया छतां पण संतुष्ट थतो नथी. " एवां तेमनां वचन सांभळोने प्रभु बोल्या

કે—“ હે પુત્રો ! પરિણામે નરકગતિને આપનારી એ રાજ્યલક્ષ્મીથી શું વિશેષ છે ? આ જીવે અનંતીવાર રાજ્યલક્ષ્મી અનુભવેલી છે, તો પણ આ જીવ તૂટ થયેલો નથી. આ રાજ્યલીલાનો વિલાસ સ્વપ્ન તુલ્ય છે” કહ્યું છે કે—

સ્વપ્ને યથાયં પુરુષઃ પ્રયાતિ, દદાતિ યજ્ઞાતિ કરોતિ વક્તિ ।

નિદ્રાક્ષયે તચ્ચ ન કિંચિદસ્તિ સર્વં તથેદં હિ વિચાર્યમાણમ્ ॥

“ આ પુરુષ (જીવ) જેમ સ્વપ્નને વિષે પ્રયાણ કરે છે, આપે છે, પ્રહણ કરે છે, કાંઈ કાર્ય કાંઈ કરે છે અથવા વોલે છે, પણ નિદ્રાનો ક્ષય થતાં જેમ તેમાં હોયું નથી તેમ વિચાર કરતાં આ સઘલ્લ-સંસારી પદાર્થમાત્ર તેવાજ છે. ”

વક્ત્રી—

સંપદો જલતરંગવિલોહ્યા, યૌવનં ત્રિચંતુરાણિ દિનાનિ ।

શારદાન્નમિત્ર ચંચલમાયુઃ, કિં ધનૈઃ કુરુત ધર્મમાનંદમ્ ॥

“ સંપત્તિઓ જલનાં તરંગો જેવી ચપલ છે, યૌવન ત્રણ ચાર દિવસતુંજ છે અને આયુષ્ય શરદ ઋતુના મેઘની પેટે ચલિત છે, તો ધનથી શું વિશેષ છે ! સ્તુત્ય એવો ધર્મજ કરો. ”

“ માટે હે પુત્રો ! સમારે આટલો બધો મોહવિલાસ શો ! કોના પુત્રો ? કોહું રાજ્ય ? કોની સ્ત્રી ? કોઈ પણ સાથે આવવાનું નથી. ” કહ્યું છે કે—

દ્રવ્યાણિ તિષ્ઠંતિ ગૃહેષુ નાર્યો, વિશ્રામચૂમૌ સ્વજનાઃ શ્મશાનો

દેહશ્ચિતાયાં પરલોકમાર્ગે, કર્માનુગો યાતિ સ એવ જીવઃ ॥

“ દ્રવ્ય તો ઘરમાંજ પહચું રહે છે, નારી વિશ્રામભૂમિ સુધી આવે છે, સ્વજનો સ્મશાન સુધી આવે છે, અને હેવટ વેદ્ય ચિતામાં રહે છે. પછી પરલોકમાર્ગે તો કર્મ સહિત જીવજ એકલો જાય છે. ”

“ માટે તમે આ વિનાશી રાજ્ય ત્યજી ઘો અને અક્ષય એવું મોક્ષરાજ્ય મેલવો. ”

આ પ્રમાણેની પ્રશ્નની દેશના સાંખ્યીને સઘલાએ દીક્ષા લીધી અને નિર્દોષ પારિત્થ પાલવા લાગ્યા. દૂતોએ આવીને ધરતને એ હકીકત નિવેદન કરી. એટલે ધરતચક્રોતે તે માઈઓના પુત્રોને ઘોલાવીને સાસૌનું રાજ્ય આપ્યું.

हवे भरत राजा अयोध्या नगरीमां आल्या छतां चक्र आयुधशालामा प्रवेश करतुं नथी, तेथी सुषेण सेनापतिए तेमनी समोपे आवीने जणाव्यु के 'हे स्वामी ! चक्र आयुधशालामां प्रवेश करतुं नथी.' भरतचक्रीए पूछ्युं के- 'तेतुं शुं कारण छे ?' सुषेण सेनापतिए कहुं के- 'स्वामिन् ! हजु पण कोइ शत्रु रखौ होय तेम जणाय छे.' चक्रीए कहु के- 'आ छखंडमां तो मारा माथा उपर कोइ शत्रु नथी.' त्यारे सुषेणे कहुं के- "आपनो नानो भाइ बाहुबलि आपनी आज्ञा मानतो नथी. नानो भाइ छतां पण जो मोटा भाइनी आज्ञा माने नहि तो तेने शत्रुज समजवो. जेनी आज्ञा पोताना घरमां पण चालती नथी ते स्वामी शेनो ? तेथी तेने आज्ञा-वर्ती करवो जोइए." भरत राजाए विचार्युं के- 'मारा भयथी मारा सघळा भाइओए तो चारित्र्य ग्रहण कर्युंछे, हवे बाहु रूपे मारे एकज भाइ रहेछोछे अने ते पण अनुज वन्धु छे तो तेना उपर शुं कराय ?' सुषेणे कहुं के- "स्वामिन् ! आ बावतपां विचार न करवो. शुणहीन भाइथी शो लाभ छे ? सोनानी छरी कांइ पेटमां भराय नहि. माटे दूत भोक्लीने तेने अहीं बोलावो; परंतु हुं घारुंछुं के ते कोइ पण रीते अहीं आवशे नहि." एवां सुषेणनां वचनथी क्रोधित थयेळ भरते सुवेग नाममा दूतने बोलावीने कहुं के- 'तुं तक्षशिला नगरीमां मारा नाना भाइ बाहु-बलि पासे जा अने तेने अहीं बोलावी लाव' आ प्रमाणे भरतचक्रीनां वचन सांभळीने पुप्पनी माफक तेमनी आज्ञा माये चढावी रथमां बेसीने परिवार सहित ते चाल्यो. मार्गे जतां तेने घणां अपशुक्नो कथां; परंतु ते अपशुक्नोए वार्यां छतां स्वामीनी आज्ञा पाळवामां उद्युक्त थयेळो ते अविच्छिन्न चाल्यो. केटलेक दिवसे ते वहळीदेशमां पहुँच्यो. त्यांना लोकोए तेने पूछ्युं के- 'तुं कोण छे ? अने क्यां जायछे ?' सुवेगना अनुचरोए कहुं के- 'आ सुवेग नामनो भरत राजानो दूत छे अने ते बाहुबलिने बोलाववा माटे जायछे.' त्यारे लोकोए फरीथी कहुं के- 'ए भरत कोण छे ?' सुवेगना सेवकोए कहुं के- 'ते छखंडनो घणी छे, जगतनो स्वामी छे, अने ते लोकोमां पण प्रख्यात छे.' त्यारे ते लोको बोल्या के- "आटला दिवस पर्यंत तो अमे तेने सांभळ्यो नथी के ते क्यां रहे छे ? अ-मारा देशमां तो ह्यीओना स्तननी कंचुकी उपर भरत होय छे तेने अमे भरत तरीके सांभळीए छीए, परंतु भरत राजा तो कोइ सांभळ्यो नथी. अमारो राजा क्यां ! अने ए भरत क्यां ! अमारा स्वामीना शुजदंडमहारने सहन करे तेवो आ दुनियामां कोइ नथी." आ प्रमाणे लोकोना मुखथी बाहुबलिना वळनो उत्कर्ष सांभळीने चकित थतो सतो सुवेग अद्भुतमे तक्षशिलाए पहुँच्यो; नगरीमां दा-खळ थयो अने बाहुबलिना सभासंडप पासे आब्यो. द्वारपाळे राजानी आगळ दूतहुं आगमन निवदेन कयुं. तेनी आज्ञाथी दूत रथमांथी उत्तरी बाहुबलिनी स-

મીપે જઈ તેને પગે લાગ્યો. વાહુવલિણ દૂતને પોતાના માઈના કુશલ સમાચાર આદિ પૂછતાં દૂતે કહ્યું કે—“તમારો માઈ ભરત કુશલ છે, અયોધ્યા નગરો કુશલ છે અને તેમના સવાકોટી પુત્રો પણ કુશલ છે. જેના ઘરમાં ચૌદ રશન અને નવ નિધિ આદિ મોટી ઐશ્વર્યસંપત્તિ છે તેહું અકુશલ કરવાને કોણ શક્તિવાન છે? જોકે તેણે સર્વ સંપત્તિ પ્રાપ્ત કરી છે તથાપિ તેને સ્વપન્નુનાં દર્શનનો લાભ લેવાની ઘળી ઉત્કંઠા છે. માટે તમે ત્યાં આવીને તમારા સમાગમથી ઉત્પન્ન થતો સુખદૃઢિથી તેને અતિ પ્રમુદિત કરો; કદિ જો તમે નહિ આવો તો તે તમારા ઉપર કુપિત થઈને તમને ઘળી પીડા પમાડશે. જેની વચ્ચેશ હજાર રાજાઓ સેવા કરે છે તેની ચરણસેવાથી તમારો કોઈ પણ રીતે ઉપહાસ (ચંકરી) નથી, પાંચ માણસની સાથે મોગવહું તે દુઃખ નથી’ એવો લોકોક્તિ છે; તેથી જ્ઞાનત્યજોને ત્યાં ચાલો.”

એવાં દુતનાં વચન સાંભળીને વાહુવલિ અતિ ક્રોધાશ્રમ્યન થઈ લલાટમાં ત્રિવલ્લિ ચઢાવી શુજાસ્ફોટ કરીને બોલ્યા કે—“અરે દુત ! ભરત કોણ માત્ર છે? તેનાં ચૌદ રત્નો શું માત્ર છે? અને તેના સેવકો પણ કોણ માત્ર છે? મેં વાલ્યવસ્થામાં ભરતને ગંગાકાંઠે દડાનો માફક આકાશમાં ઉછાલ્યો હતો અને પછી ગગનમાંથી પડતાં મેંજ તેને મારા હાથમાં ઝીલી લીધો હતો, તે શું ભરત શૂલો ગયો? મારું તે વલ તેને વિસ્મૃત થયું હોય તેમ જણાય છે, જેથી તને અહીં મોકલ્યો છે. આટલા દિવસ સુધી તો મેં પિતા તુલ્ય ગળીને મોટા માઈની આરાધના કરી છે; પણ હવે તો હું તેની ઉપેક્ષા કરું છું. કેમકે શુંગહોન અને હોમો એવા મોટા માઈથી પણ શું ! તેણે અદ્વાણું નાના માઈઓનાં રાજ્યો લઈ લીધાં અને તેઓએ તો બ્હીક-ગપણને લીધે લોકાપવાદથી ઢરી રાજ્ય ત્યજીને સંયમ ગ્રહણ કર્યું, પરંતુ હું તો તેને નહિ સહન કરું મારો શુજપ્રહાર કેવલ ભરતજ સહન કરશે, પણ તે સહન કરવા માટે અન્ય કોઈ આવશે નહિ, માટે તું જા. દુત હોવાથી તું અવધ્ય છે, તેથી મારી દૃષ્ટિથી તત્કાલ દૂર થા.”

આ પ્રમાણે ક્રોધથી લાલચોલ નેત્રવાલું સૂર્યમંડલની માફક હરીત થયેલું તેહું મુલ્ક જોઈને સુવેંગ મય પામી ધીમે ધીમે ત્યાંથી વહાર નીકલ્યો અને પાછો વલ્કો માનમંગ થઈ રથમાં વેસી અયોધ્યા તરફ ચાલ્યો. માર્ગમાં વહુલી દેશને નિહાલતાં તેણે આ પ્રમાણે લોકોનાં વાક્યો સાંભળ્યાં—“અરે ! ભરત કોણ છે કે જે અમારા સ્વામીની સાથે યુદ્ધ કરવાને ઈચ્છે છે? પરંતુ તેના જેવો કોઈ સૂર્ય જનાતો નથી કે જેણે સુતેલા સિંહને જગાડ્યો છે.”

એ પ્રમાણે લોકોનાં વાક્યો સાંભળી સુવેંગ વિસ્મિત થઈને વિચારવા લાગ્યો કે—“અહો ! આ દેશના લોકો પણ આટલું વધું શૌર્ય ધરાવે છે! પરંતુ ત તેમના સ્વામીનોજ પ્રભાવ છે, તેઓનો પ્રભાવ નથી.

पण भरते आ थुं कर्तुं ? तेणे ठीक न कर्तुं, अयोग्य कर्तुं." अे प्रमाणे विचार करतो अने लोकोने भय पमाहतो सुवेग क्रेटलेक दिवसे अयोध्या नगरीए पहोंच्यो.

तेणे सभामां जइने सर्व हकीकत भरत चक्रोने निवेदन करी. छेवटे तेणे कहुं के—'ए तमारो नानो भाइ तमने तणवत् गणेछे, वधारे थुं कहुं !' एवा दु-तना शब्दो सांभळीने सैन्य सहित भरत चक्रीए ते तरफ प्रयाण कर्तुं. भरतनी मोटी सेना चाली, तेथी दिगमंडल पण धुजवा लाग्युं. तेना सैन्यनुं स्वरूप नीचे प्रमाणे—

दिग्चक्रं चलितं जयाज्जलनिधिर्जातो महाव्याकूलो ।

पाताले चकितो जुजंगमपतिः क्षोणिधराः कंपिताः ॥

त्रांताः सुपृथिवी महाविषधरा द्ध्वेकं वमत्युत्कटम् ।

वृत्तं सर्वमनेकधा दलपतेरेवं चमूर्निर्गमे ॥

" दिगमंडल कंपवा लाग्यु, भयथी समुद्र आकुलव्याकुल थयो, पातालमां शेषनाग चकित थयो, पर्वतो कंपायमान थया, पृथ्वी भमवा लागी, मोटा विष-धरो उत्कट धिपत्तुं वमन करवा लाग्या; सेनापतितुं सैन्य चालतां अनेक प्रकारे ए प्रमाणे थवा लाग्युं. "

अठारकोटी घोडेस्वारोनुं लश्कर एकटुं करी भरत राजा पोताना हस्तीरत्न उपर स्वार थइने वाहुवलिने जीतवा माटे चाल्यो. क्रेटलेक दिवसे ते बहुली देशमां पहोंच्यो.

भरत आंव्यो छे एवुं वाहुवलिए पण सांभळ्युं एटले ते पोताना ऋण लास पुत्रो-थी परिहृत थइ सोमयशा नामना पोताना पुत्रने सेनाधिपति वनावीने मोटी सेना सहित सामे नीकळ्यो वन्ने सैन्यो साधसामा मळयां. वंने सैन्यना चोराशी ह-जार रणतुरीना अवाजो थवा लाग्या. भेरीओनाभांकारोथी अने वाळिओना श-ब्दोथी कान उपर पडतां शब्द पण न संभळावा लाग्यो. पळी उद्भूत, रणभूमिमां विकट, अनेक हस्तीओनी घटामां जेओए प्रवेश करेलोछे तेवा, सिंहनुं पण मर्दन करनारा अने जेओनां कीर्तिपट चारे तरफ फेलायेलो छे एवा योद्धाओए युद्ध शरु कर्तुं. योद्धाओना वीरशब्दो थवा लाग्या. आखुं जगत शब्दमय भासवा ला-ग्युं. अन्वोनी खरीथी उडती रजवडे घेरायळें सूर्यमंडल वायुसमूहनी अंदर रहेला थुएक पलाश पत्रनी जेवुं देखवावा लाग्युं. ते धरते त्यां आप्रमाणे युद्ध थवा लाग्युं.

एके वै हन्यमाना रणजुवि सुजटा जीवशेषाः पतन्ति

द्वेके मुर्छाप्रपन्नाः स्युरपि च पुनरुन्मूर्छिता वै पतन्ति ।

મુંચન્ત્યેકંડટ્ટહાસાન્નિજપતિકૃતસન્માનમાદ્યં પ્રસાદં

સ્મૃત્વા ધાવંતિ માર્ગે જિતસમરજયાઃ પ્રૌઢિવંતો હિ જકત્યા ॥

“કેટલાએક સુમટો રણભૂમિમાં હળાવાથી જીવશે પથને પહે છે, મૂર્છિત થયેલા કેટલાએક સુમટો શુદ્ધિમાં આવીને પાછા મૂર્છિત થાય છે, કેટલાએક સુમટો અટ્ટહાસ કરે છે અને કેટલાએક પોતાના સ્વામીએ કરેલા સન્માનને તેમજ પ્રાથમિક પ્રસાદને સંભારોને શુદ્ધનો ભય દુર કરી મક્તિવડે પ્રૌઢ વની રણમાર્ગમાં દોડે છે.” એ પ્રમાણે મોટા શુદ્ધમાં કેટલાએક યોદ્ધાઓ હાથોઓના ઘુંઢને પગવતી પકડી આકાશમાં ફેરવે છે, કેટલાએક ઉછળતા યોદ્ધાઓને પકડોને શૂમિ ઉપર પાડે છે, કેટલાએક સિંહનાદ કરે છે અને કેટલાએક હસ્તના આસ્ફોટનથી વૈરી-ઓનાહૃદયને ફાઢી નાખે છે. એ પ્રમાણે સ્વામીએ ઞજુટોસંજ્ઞાથી ઉચ્ચેજિત કરેલા સુમટોએ ઉત્કટ શુદ્ધ આરંભ્યું. કહ્યું છે કે-

✓ રાજા તુષ્ટોપિ શ્રૂત્યાનાં, માનમાત્રં પ્રયચ્છતિ ।

તે તુ સન્માનમાત્રેણ, પ્રાણૈરપ્યુપકૂર્વતે ॥

“ રાજા સંતુષ્ટ થતાં સેવકોને માત્ર માન આપે છે. પણ સેવકો તો ફક્ત માનથી પોતાના પ્રાણ આપીને વદલો વાળે છે. ”

રણમાં એક મિત્ર વીજા મિત્રને કહે છે કે-‘હે મિત્ર ! ઢ્હીકળ ના થા; કારણકે શુદ્ધમાં તો વંને પ્રકારે સુખ છે. જીત મેલ્લવશું તો આલોકમાં સુખ છે; અને મૃત્યુ થશે તો પરલોકમાં દેવાંગનાના આલિમનનું સુખ પ્રાપ્ત થશે.’ કહ્યું છે કે-

જિતે ચ લચ્યતે લક્ષ્મીઝૃતે ચાપિ સુરાંગના ।

દ્દાણવિધ્વંસિની કાયા, કાં ચિંતા મરણે રણે ॥

“ રણમાં જીતવાથી લક્ષ્મી પ્રાપ્ત થાય છે અને મરવાથી દેવાંગના પ્રાપ્ત થાય છે; આ કાયા ક્ષણમાં નાશ પામે ઈવી છે, તો શુદ્ધ કરતાં મૃત્યુની ચિંતા શા-માટે રાખવી ? ”

એ પ્રમાણે શુદ્ધ થતાં વાર વર્ષવ્યતીત થયાં, તો પણ વેમાંથી એકેનું સૈન્ય પાછું ઢઠ્યું નહિ. તે અવસરે કરોડો દેવો તે શુદ્ધ જોવાને માટે ગગનમંડલમાં આવ્યા હતા. તેની અંદર સૌધર્મેન્દ્રે આવીને વિચાર કર્યો કે-‘અહો ! કર્મની ગતિ વિપમ છે ! કે જેથી વે સગા ભાઈઓ અંશમાત્ર રાજ્ય મેલ્લવાને માટે કોટી મનુષ્યોનો વિનાશ કરે છે, માટે હું ત્યાં જઈને શુદ્ધને અટકાવું.’ ઈવો વિચાર કરી ઈંદ્રે આવીને મરતને કહ્યું કે-“ હે હું સંહના અધિપતિ ! જેણે અનેક રાજાઓને કિંકર વન્ન-

व्या छे एवा हे भरत राजा ! आ शुं आरंभ्युं छे ? मात्र सहज कारणमां तमे जगतनो शा माटे संहार करो छो ? श्रीऋषभदेवे छांवा वखतथी पाळेल प्रजानो लय केम करवा मांडयो छे ? सुपुत्रने आबुं आचरण घटतुं नथी सुपुत्रने तो पिताए जेप्रमाणे आचरेळुं होय ते प्रमाणे आचरबुं—वर्तबुं जोइए;माटे हे राजेन्द्र ! छांकना संहारथो तमे निवृत्त थाओ.” भरते कहुं के—“तातना भक्त एवा आपे जे कहुं ते सत्य छे. हुं पण ते जाणुं छुं, परंतु शुं करुं ? चक्र आयुषशालामां पेसतुं नथी, तेथी बाहुबलि मात्र एकवार मारी समीपे आवी जाय तो पछी मारे वीजुं कांइ कार्य नथी. तेजुं राज्य छेवानी मारे जरूर नथो; माटे तमो त्यां जइने मारा लघु बंधुने समजावो.” एवां भरतनां वचनो सांभळीने शक्रेन्द्र बाहुबलि पासे गया. बाहुबलिए तेमजुं घणुं सन्मान कर्गुं अने कहुं के—“हुकम करो, आपने आववातुं शुं प्रयोजन छे ?” इद्रे कहुं के—“तमे पितृ तुल्य मोटा भाइनां साथे युद्ध करोछो ए तमने घटतुं नथो, तेथी तमे तेनो पासे जइने नमो, अपराधनी क्षमा मागो अने लोकसंहारथी निवृत्त थाओ.” बाहुबलिए कहुं के—“एमां दोष भरत-नोज छे, अहीं आं तेने कोणे बोलाव्यो हतो ? ते अत्रे शामाटे आव्यो छे ? अतृप्त एवा तेने लज्जा नथी. ते सर्वेबंधुओनां राज्यो ग्रहण करीने हवे मारुं राज्य छेवा आव्यो छे; परंतु ते जाणतो नथो के सर्व दरौनी अंदर कांइ उंदरो होता नथी; माटे हुं पाछो हठनार नथी; कारणके मानहानि करतां माणहानि बघारे सारी छे, कहुं छे के—

अधमा धनमिच्छति, धानमानौ च मध्यमाः ।

उत्तमा मानमिच्छति, मानो हि महतां धनम् ॥

“अधम लोको धनने इच्छे छे, मध्यम लोको मान अने धनने इच्छे छे, उत्तम लोको माननेज इच्छे छे, कारणके मान ए मोटाओतुं धन छे.” बळी—

वरं प्राणपरित्यागो, मा मानपरिखंडनम् ।

मृत्युस्तत्कणिका पीडा, मानखंडे दिने दिने ॥

“प्राणनो त्याग करवो ए बघारे सारो छे, पण मानखंडन सारुं नथी. का-रणके मृत्यु तेज क्षणेमात्र पीडा आपे छे, पण मानखंड तो दररोज पीडा करे छे.”

ए प्रमाणे बाहुबलितुं निश्चयवाक्य वचन सांभळीने इद्रे कहुं के—“जो एवोज निश्चय होय वो तमारो बने भाइओएज युद्ध करबुं, आ लोकसंहार शामाटे करो

छो ?' बाहुलिए ते वात कबुल करी. पछी इंद्रे पांच प्रकारनां युद्धो स्थापित करीं दृष्टियुद्ध, वाक् युद्ध, बाहुयुद्ध, मृष्टियुद्ध अने दंडयुद्ध. भरते पण ए प्रमाणे कबुल कर्युं. पछी बने भाइओ सैन्यने युद्ध करतुं बंध करीने सामसाया आख्या.

प्रथम दृष्टियुद्ध शरु कर्युं. परस्पर दृष्टि साथे दृष्टि मळतां प्रथम भरतचक्रीना नेत्रमां अश्रुजळ आवो गयां. तेथी साक्षीशुत देवताओए कहुं के—'चक्री हायां अने बाहुबलि जीत्या' एम पांचे युद्धोमां बाहुबलि जीत्या. एटले विलखा थयेल चक्रोए मर्यादा मूकी चक्रने छोडयुं. त्यारे बाहुबलिए कहुं के—'ए प्रमाणेन करा, सत्पुरुषोए मर्यादानो त्याग करवो ए योग्य नयी.' छतां पण तेणे बाहुबलि उपर चक्र मूक्यु, एटले बाहुबलिए मृष्टि उगाभीने विचार कर्यो के—'आ मृष्टिवडे चक्र सहित भरतने चूर्ण करी नाखुं.' एटलामां चक्र तो बाहुबलि पासे आवी त्रण प्रदक्षिणा करीने पाळुं वळ्युं. कारणके गोत्रमां चक्र चालतुं नथो. पछी बाहुबलिए चिंतव्युं के—'आ वज्र जेथी मृष्टि वडे माटीना वासणनी माफक भरतने चूर्ण करी नाखुं.' वळो तेणे विचार कर्यो के—'अहो ! में अंशमात्र सुखने अर्थे आ वांधवो नाश शामाटे चिंतव्यो ? जेने अंते नरक प्राप्त थाय छे एवा राज्यने धिक्कार छे ! विषयोने धिक्कार छे ! मारा नाना भाइओने धन्य छे के जेओए अनर्हेतुक राज्यने तभी दइने संयम ग्रहण कर्युं छे.' आ प्रमाणे जेना हृदयमां वैराग्य उत्पन्न थयो छे एवा बहुबलिए उगामेली मुठी पोताना माथा उपर पाछी वाळीने पंचमृष्टि छोब कर्यो; ते वखते देवताए रजोहरण विगरे साधुनो वेष तेने अर्पण कर्यो. बाहुबलिए स्वयमेव चारित्र ग्रहण कर्युं.

पछी जेणे साधुनो वेष ग्रहण करेलो छे एवा पोताना भाइने जोइने भरत पोते आच रेखा कर्मथो लज्जा पाम्यो एटले बने नेत्रमांथी अश्रु वर्षांतो वारे वारे तेना चरणमां पडयो अने वोख्यो के—'तने धन्य छे ! मारो अपराध क्षमा कर अने आ राज्यलक्ष्मी ग्रहण करवानी कृपा कर.' बाहुबलि मुनिए कहुं के—'आ राज्यलीला विलास अनित्य छे, यौवन अनित्य छे अने शरीर पण अनित्य छे, तेमज आ विषयो परिणामे दुःख आपनारा छे' इत्यादि उपदेश आपवा वडे भरतने वैराग्यवान करीने बाहुबलि मुनि तेज स्थाने ध्यानमुद्राथी उभा रह्या. तेमणे मनमां विचार कर्यो के—'हुं छन्नरथ होवार्थी दीक्षाए वडेरा एवा लघु वन्धुओने केवी रीते वंदन कहुं ?' ए प्रमाणे मानथी उन्नत ग्रीवावाळा थह कार्योंत्सर्ग धारण करीने त्वांज उभा रह्या.

भरतचक्री तेमने वांसी सोमयशाने बाहुबलितुं राज्य ३१पीने स्वस्थाने गया. बाहुबलिए पण एक वर्ष पर्यंत शीत, वात, आतप आदि परीसहने सहन करतां

दावानल्यथी दाहिला झाडना टुटा जेवुं पोतानुं शरीर करी नाख्युं. तेनुं शरीर वेलाओथी वीटाड गयुं, तेन एमनां टाणी शरीरओ उगी तीकळी तेनी आस-पाम राफडाओ थइ गरा. तेनी दाही निरेतेन, ते शोणां पतीओए माळा नां-खीने प्रसव कर्यो.

वर्षने अते भगवान रुपभटेचे बहवलिने प्रतिबोध करवाने माटे ब्राह्मी अने मुंदरी नामनी तेनी चे वहेनोने मं कळी. भगवाने तेमने कहुं के- 'तमारे त्यां जइने ए प्रमाणे वहेवुं दे- 'हे वधु ! हाथी उपरथी उतरो.' ते वहेनो बाहु-वली सम्ये जइ तेने शंटी ए प्रमाणे बोळी के- 'हे भाइ ! हाथी उपरथी उत-रो.' ए प्रमाणेनां पोतानी वहेनोनां वचन रांभळी ते मनयां विचार करवा लाग्या के- "मं वधु तगनो ग्याम कर्यो छे तो मारे हाथी क्यांथी ? मारी वहे-नो आ शुं वहे छे ? अरे ! मं जाण्यु ह्मान रुपी हाथी उपर चडगो छुं, तेथी तेमनु कहेवुं सग्य छे. अरे ! दुः चित्तने धारण करनार एवा मने थिकार छे ! मारा ते नाना भाइओ मारे वंछ छे. तेथी तेमने वांदवाने हुं जावुं." ए प्रमाणे निश्चय करीने चरण उपरहातांज तेमने केवळज्ञान उत्पन्न थयुं. पळी प्रभु पासे जइ वांदोने केवळज्ञानीओनी सभामां वेठा. माटे "मदथी धर्म थतो नथी ए यो-ग्य कहुं छे. सुमधुए धर्मकर्ममां विनयज करवो, पण मान राखवुं नहि." आ कयानो ए उपदेश छे.

निश्चयगमश्चिगप्पिअ-चित्तिपण सच्छंदबुद्धिरुपण ।

कत्तो पारत्तहियं कीरइ गुरु अणुवएसेणं ॥ २६ ॥

शब्दार्थ- "गुरुना उपदेशने अयोग्य. पोतानी मतिना विकल्पथी विचार करवावळी अने स्वतंत्रगति पूर्वक चेष्टा करवावाळो प्राणी परलोकनुं हित शो-रोते करे ? अर्थात् न करे." २६.

भावार्थ- मारेकर्मी जीव गुरुना उपदेशने अयोग्य समजे छे. तेवो स्वेच्छा-चारी पाणी पोतानी बुद्धिमात्रथी आ स्थूल ने आ सूक्ष्म इत्यादिक विचारो करे छे, तेवो मनुष्य परलोकनुं हित करी शकतो नथी.

थद्वो निरोवयारी, अविणीओ गठिवओ निरुवणासो ।

साहुजणस्स गरहिओ, जणवि वयहिउज्जं लहइ ॥ २७ ॥

अर्थ- "स्तब्ध, निरूपकारी, अविनीत गर्विण अने कोटने न नि नपवावाळो एवो पुरुष साधुजनथी निदाय छे अने लाकरणां पण नीलनाने पामे छे." २७.

गाथा २६- परप्रहितम् अनुपदेशयेन. गाथा २७- प्रयणित्तिय यचनीयनां

સ્તબ્ધ તે અભિમાની-અકઠ રહેનારો-કોઈને નહિ નમનારો, નિરૂપકારી તે કોઈના કરેલા ઉપકારને નહિ જાણવાવાળો-કૃતધન, અવિનીત તે આસન આપવા વિગેરેવઢે વઢીલનો વિનય નહિ કરનારો, ગર્વિત તે પોતાના ગુણો પ્રગટ કરવાનો ઉત્સુક, નિરૂપનામ તે ગુરુને પણ નમસ્કાર નહિ કરવાવાળો-એવા પુરુષની સાધુજનો પણ ગર્હી કરે છે અને લોકો પણ આ દુટ્ટ આચારવાળો છે એમ કહો તેને નિંદે છે, તેથી વિનીતજ શ્લાઘાને પામે છે એમ સમજવું.

થોવેણવિ સપ્પુરિસા, સર્ણકુમારુવ કેઙ્ઘુ બુઙ્ઘતિ ।

દેહે^૧ સ્વર્ણપરિહાણી, જં^૨ કિર^૩ દેવોહિં^૪ સૈ^૫ કહિયં ॥ ૨૮ ॥

અર્થ-“ કોઈ સત્પુરુષો (સુલભવોધીઓ) થોઢા નિમિત્ત માત્રે કરીને પણ સનત્. કુમાર ચક્રીની જેમ વોધ પામે છે. જે કારણ માટે ‘દેહને વિષે ક્ષણમાત્રમાં પણ રૂપની હાની થઈ ગઈ છે’ એમ દેવતાએ તેને (સનતકુમારને) કહ્યું અને તેદહલું વચનમાત્રજ તેને વોધવું કારણ થયું. એમ સાંભલીએ છીએ.” ૨૮.

અર્હીસનતકુમાર ચક્રીનું દૃષ્ટાંત જાણવું. તે આ પ્રમાણે—

હસ્તીનાપુર નગરનાં સનત્કુમાર નામે ચક્રવર્તીરાજા હતો. તે અતિ રૂપવાન હતો, અને તે છંવડનું રાજ્ય કરતો હતો. એક દિવસ ઇંદ્રે સમામાં સનત્કુમારના રૂપ સંવંધી એવું વિવેચન કર્યું કે ‘પૃથ્વી ઉપર તેના જેવો રૂપવાન કોઈ નથી.’ વે દેવોએ ઇંદ્રનું કહેલું વચન કબુલ કર્યું નહિ. તેથી તેઓ કુતૂહલ જોવા માટે દ્વિ-જનું રૂપ ધારણ કરીને હસ્તીનાપુર આવ્યા. તે વચ્ચે સ્નાન કરવાનો અવસર હોવાથી તેઓએ સનત્કુમારને ન્હાવાને આસને વેઠેલો, આશુષણરહિત અને મુગંધી તેલથી મર્દન કરાવો જોયો; તેના રૂપથી મોહિત થઈને તેઓ વારંવાર મસ્તક ધુણાવવા લાગ્યા. ત્યારે સનત્કુમારે તેમને પૂછ્યું કે-‘તમે શિર શામાટે ધુણાવો છો?’ તેઓએ કહ્યું કે-‘હે દેવ! આપના દર્શનનું કૌતુક જેવું અમે સાંભળ્યું હતું તેવુજ અમે જોયું.’ એ પ્રમાણે તે બ્રાહ્મણોનું વચન સાંભળી ચક્રી વોલ્યા કે-“અરે! હમણાં આ સ્થિતિમાં મારું રૂપ તમે શું જુઓ છો? સ્નાન કર્યા પછી જ્યારે હું ઉત્તમ વસ્ત્રો પહેરું, અલંકારો ધારણ કરું, મારા મસ્તક ઉપર હજ્ર ધરાવ, ચામર ઢોઢાય અને વજીશ હજાર રાજાઓ જ્યારે મારી સેવા કરે ત્યારે મારું રૂપ જોવા જેવું છે.” એ પ્રમાણે ચક્રીનું વચન સાંભળીને તે વંને દેવોએ ચિત્તવ્યું કે-‘ઉત્તમ પુરુષને પોતાની પ્રશંસા પોતાના મુલ્કે કરવી ઘટતી નથી.’ કહ્યું છે કે-

न सौख्यसौजाग्यकरा नृणां गुणाः, स्वयंगृहीता युवतीकूचा इव ।
परैर्यहीता द्वितयं वितन्वते न तेन गृह्णन्ति निजं गुणं वृधाः ॥

“युवती जो पोताना स्तनने पोताना हाथे ग्रहण करे तो ते जेय तेने सौभाग्य अने सुखना करवावाळा थतां नथी, तेम पोताना मुखयी वर्णवाता पोताना गुणो मनुष्योने सौभाग्य ने सुख आपनारा थता नथी; पण तेज गुणो स्त्रीना स्तननी जेम वीजाओथी ग्रहातां-वर्णवातां सौभाग्य अने सुख वंने आपे छे. तेथीज दाहा पुरुषो पोताना गुणोनी प्रशंसा पोताना मुखे करता नथी.”

पछी चक्रवर्तीजु वचन मान्य करी ते वंने विमो त्यांथी चाल्या गया, अने ज्यारे चक्री सभामां विराजमान थया त्यारे त्यां आब्या. ते वखते चक्रीना रूपने जोडने तेओ खिन्न थया. चक्रीए पूछ्युं के-‘तमने खेद थवाजुं थुं कारण छे?’ तेओ बोल्या के-‘संसारजुं विचित्रपणुं अमारा खेदजुं कारण छे.’ चक्रीए पूछ्युं के-‘केवी रीते?’ तेओए कहुं के-‘अमे पहेलां आपतुं जे रूप जोयुं हतुं तेना करतां आ वखते अनंतगुणहीन छे.’ चक्रीए कहुं के-‘तमे ते शरीरेते जाण्युं?’ तेओए कहुं के-‘अवधिज्ञानथी.’ चक्रीए कहुं के-‘तेमां प्रमाण थुं?’ तेओए कहुं के-‘हे चक्री! सुखमां रहेल तांबूलनो रस भूमि उपर थुंकीने जुओ के तेनो उपर जे मक्षिका वेसे ते मृत्युवक्ष थाय छे? आ अनुमानथी तमे जाणजो के तमाहं शरीर विपरूप थइ गयुं छे. तमारा शरीरमां सात मोटा रोगो उत्पन्न थयेला छे.” आ प्रमाणे देवताओनां वचन सांभळोने चक्री विचार करवा लाग्या के-‘अहो! आ देह अनित्य छे, आ असार देहमां कांइ पण सार नथी.’ कहुं छे के-

इदं शरीर परिणामदुर्बलं, पतत्यवश्यं श्लथसंधिजर्जरं ।

किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते, निरामयं धर्मरसायनं पिव॥

“आ शरीर परिणामे दुर्बल छे, तेथी तेना सांघा शिथिल थवाथी जर्जरित थइने ते अवश्य पडेछे; माटे हे मूढ! हे दुर्मति! तुं औषधो करवा वडे शा माटे हे श पामेछे सर्व रोगथी निवृत्त करनार धर्मरसायनजुं पान कर.”

वपी—

कस्तूरी पृषतां रदाः करटिनां कृत्तिः पशूनां पयो

धनूनां छदमंडलानि शिखिनां रोमाण्यवीनामपि ।

पुच्छस्नायुवशाविषाणनखरस्वेदादि किं किं च न

स्यात् कस्याप्युपकारि मर्यादपुषो नामुष्य किंचित्पुनः ॥

“ मृगोनी कस्तुरी, हाथोओना दांत, पशुओतुं चर्म, गायोतुं दुध, मयूरना पीछा, वेदाना वाळ अने अन्य पशुओनां पुच्छ, स्नायु, चरवी, शींगडा, नख, स्वेद आदि कांइ कांइ कोइने पण उपयोगमां आवे छे; परंतु मनुष्यना शरीरंतुं तो कांइ पण उपयोगमां आवतुं नथी. ”

ए प्रमाणे वैराग्यपरायण थयेल राजाए राज्यलक्ष्मी तनी दईने संयमलक्ष्मी ग्रहण करी. जेम भुजंग कांचळोने त्याग करी पाळुं जोवो नथी तेम तेणे पोतानी पाळळ आवती समृद्धि तरफ दृष्टि पण करी नहि. स्त्रीरत्न मुनंदा आदि पातानी स्त्रीओना विहाय सांभळतां छतां पण ते जा पण डग्यो नहि. छ मास सुधी निषिओ, रत्नो अने सेवको तेनी पाळळ फर्पा, परंतु तेणे तेमना तरफ जोयुं पण नहि. सनत्कुमार मुनिदीक्षा लीधा पछी बवे उपवासने अंते पारणुं करवा छाग्या, अने पारणे पण नीवी के आचाम्लादि (आंबिल आदि) तप करवा छाग्या. ए प्रमाणे विगयना त्यागी, धर्मना अनुरागी अने रोगथी भरेछी कायावाळा ते मुनि मायारहितपणे भूमि उपर विहार करेछे, ए अवसरे सौम्येन्द्रे फरीथी सभामां तेनो प्रसंसा करी के-‘अहो आ सनत्कुमार मुनिने धन्य छे के जे मोटा रोगथी पीडित शरीरवाळा छतां पण आपष आदिनी किंचित् पण स्पृहा करता नथी.’ एवां इंद्रनां वचन सांभळी तेने नहि श्रद्धनारा वे देवो ब्राह्मणतुं रूप धारण करी सनत्कुमार मुनिनीं पासे आळा अने बोल्या के-‘हे मुनि! तमाहं शरीर रोगथी जीर्ण थयेछुं अने घणुं पीडातुं जणाय छे; अमे वैद्य छीए. जो तमारी आज्ञा होय तो अमे तेनो उपाय करोए.’ मुनिए कहुं के-‘ आ अनित्य शरीर माटे उपाय शो करवो? तमारामां शरीरना रोगने दूर करवानी शक्ति छे, पण कर्मना रोगने दूर करवानी शक्ति नथी; अने ते शक्ति (देहरोग दूर करवानी शक्ति) तो मारामां पण छे. ” एटलुं कही आंगळीने थुंक लगाढी बताववामां आवी तो ते सोना जेवी थइ गइ. पछो कहुं के-‘ मारामां आवी शक्ति तो छे, परंतु तेथी सिद्धि ही त्यां दुधी कर्दरोगनो क्षय थयो नथी त्यां सुधी देहरोगना नाश्वयी थुं? तेथी मारे रोगनो मतिकार करवा साथे कांइ पण प्रयोजन नथी. ” वने देवो आश्चर्य पाभ्या अने तेमने बांदी पोतातुं स्वरूप जणावी स्वर्गमां गया.

सनत्कुमार मुनि पण सातसे वर्ष सुधी रोगने अनुभवी एक लाख वर्ष पर्वत निर्दोष चारित्र्य पाळीने एकावतारीपणे त्रीजे स्वर्ग उत्पन्न थया त्यांथी च्यवाने महाविदेहमां मनुष्य थइ सिद्धिपदने प्राप्त करचे.

हवे आयुष्यनी अनित्यता दर्शावे छे.

जइ तां लवसत्तमसुर-त्रिभाणवासीवि परिवर्तन्ति सुरा ।

चित्तिउज्जं तं संसं, संसारे सासयं कयरं ॥ २९ ॥

अर्थ—'जो ते अनुत्तर विमानवासी देवताओ पण आयुष्ये त्यांथी पडछे—
च्यवेटे तो विचारो जो के वाकां संसारनां थुं शाश्वत-स्थिर छे? अर्थात् काइपण
शाश्वत-नित्य नथी, एऊ धर्मज नित्य छे.' २९

अनुत्तर विमानवासी देवो लवसत्तमीआ देवता कहेवायछे. तेवा सर्व जीव-
थी अधिक आयुष्यवाळा देवताओतुं ३३ सागरोपम जेटळं आयुष पण पूर्ण थइ
जाय छे अने ते त्यांथी च्यवे छे तो तेनी अपेक्षाए हीन स्थितिवाळा आ संसा-
रमां बीजुं थुं शाश्वत छे? काइ नथी.

कहं तं भन्नइ सुखं, सुचिरेणवि जस्स दुखं सुखिं थइ

जं च मरणावसाणे, जवसंसाराणुबंधिं च ॥ ३० ॥

अर्थ—'घणा काळे पण जेना परिणामे दुःख वेठवुं पडे तेने सुख केम क-
हीए? न कहीए. जे कारणमाटे मरण पछी नरकादि गति रूप संसारमां परि-
भ्रमण करवु पडे अथवा गर्भावास-दि दुःख सहेवुं पडे ते सुख न कहेवाय.' ३०

पल्योपम सागरोपमना सुखने अंते पण दुःखजुं आस्वादन करवुं पडे तो ते
सुख दुःखज छे. चार गति रूप संसारनो अनुबंध जेथी थया करे ते सुखज नथी.
संसारनो छेद थाय तेज वास्तविक सुख छे.

गुह्यनो कहेछो उपदेश पण भारेक रीने लागतो नथी.

उवयस सहस्तेहिवि, बोहिउज्जंतो न जुजइ कोइ ।

जह् ब्रह्मदत्तराथा, उदायि निवमारथो चव ॥ ३१ ॥

अर्थ—'कोइ (भारेकमी जीव) हजारो उपदेश वडे बोध प्रमाहयो सतो पण
बुझतो नथी. जेथ ब्रह्मदत्त चक्री बोध पांम्यो नहि अने उदायि नृपने मारनार
वारवर्ष पर्यंत तप तप्यो—मुनिपणे रक्षो पण भव्यत्व पांम्यो नहि.' ३१

ब्रह्मदत्त चक्रीने तेना पूर्वभवना भाइमुनिए घणी रोते उपदेश आप्यो पण
किं-अत् मात्र बोध लाग्यो नाइ तेजुं तथा उदायि नृपमारकजुं दृष्टांत अहीं जा-
णवुं ७-८. ते आ प्रमाणे—

બ્રહ્મદત્ત ચક્રીની કથા.

પ્રથમ બ્રહ્મદત્તના મરના કારણશૂત ચિત્રસંભૂતિ મુનિનું (બ્રહ્મદત્તના પૂર્વમ-
વતું) સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—

પૂર્વમવમાં કોઈએક ગામમાં મદ્રિક પરિણામી ચાર ગોવાઢીઆ હતા. એક દિવસ તે ચારે ગોવાઢીઆઓ ગ્રીષ્ઠ ઋતુમાં ગાયો ચારવાને માટે વનમાં ગયા. મધ્યાન્હસમયે તે ચારે જના એકઠા થઈને વાતો કરવા વેઠા; એવામાં માર્ગથી મૂલા પડેલા, જેને તે વનમાં માર્ગ જઢતો નથી, જેનું મહું અતિ તીવ્ર તૃપાથી રું-ધાઈ ગયુંછે અને જેનું તાલુપુટ મુકાઈ ગયું છે એવા કોઈએક સાધુને ઢક્ષની છાયા માં વેઠેલા તેઓએ જોયા; એટલે તેઓએ વિચાર્યું કે—‘ આ કોણ હશે ? ’ પછી તે ચારે જના મુનિની સમીપે આવ્યા. ત્યાંતૃપાતુર થવાથી અતિ પીઢા પામતા અને જેના મ્રાણ કંઠગત થયેલા છે એવા તે મુનિને જોઈને મનમાં વિચાર કરવા લા-ગ્યા કે—‘ અરે આ મુનિ જંગમતીર્થ જેવા જણાય છે, પણ તે પાળી વિના મૃત્યુ પામશે; તેથી જો કોઈ જગ્યાએથી પાળી લાવીને તેમને આપોએ તો મોઢું પુણ્ય થાય. ’ આમ વિચારી પાળીને માટે તેઓએ આંલા વનમાં શોધ કરી પણ મઢ્યું નહિ. ત્યારે તેઓ એકઠા થઈ ગાય ઢોઢી ઢૂધ લઈને સાધુ સમીપે આવ્યા. સા-ધુના મુખમાં ઢૂધનાં ઢીપાં મૂકીને તેમને સાવધાન કર્યાં. સાધુ સવેતન થયા એ-ટલે મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યા કે—‘ આ લોકોએ મારા ઉપર મોઢો ઉપકાર કર્યો છે; કેમકે તેઓએ મને જીવિત્તઢાન આપ્યું છે. પછી તે સાધુએ તેઓને સ-રલ સ્વભાવવાલા જોઈને ઢેશના આપી. તે ઢેશના સાંમઢીને તે ચારે વૈરાગ્યને પ્રાપ્ત થયા, અને તરતજ ચારે જણાએ ઢીક્ષા લીધી અને સમ્યક્ત્વ મેઢવ્યું તે સા-ધુએ તેઓને સાથે લઈને અન્યત્ર વિહાર કર્યો.

હવે તે ચારે જના ચારિત્ર પાઢેછે, પણ તેમાં વે જળ ચારિત્રની અવજ્ઞા કરે છે કે—‘ આ સાધનો વેષ તો સારો છે, પણ સ્નાનાદિ વિના શરીરની શુઢ્ધિ કેવી રોતે થાય ? મેલાં વહ્ન પહેરવાં, ઢાંત સાફ ન રાસવાં ઇત્યાદિ મહા કઢ છે. ’ એ પ્રમાણે વિચારણા કરવાથી તે વે મુનિએ ચારિત્રની વિરાધના કરી; અને વે જ-ણાએ નિર્દોષ ચારિત્ર પાઢ્યું, તે વંને જણાએતો તેજ મવમાં કેવઢઢજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી-ને મોક્ષમુક્ત મેઢવ્યું.

જે વંનેએ ચારિત્રની વિરાધના કરી હતો તેઓ અંતસમયે તે પાપને આઢો-વ્યા શિવાય મૃત્યુ પામીને સ્વર્ગે ગયા. તેઓ લાંલા વસ્ત મુધી ઢેવ સંવંધી મુલ મોગવી ત્યાંથી ચ્યવોને સાધુવેષની નિંઢા કરવાથી ઢશર્ણ ઢેશમાં કોઈએક બ્રા-હ્મણના ઘરમાં કામ કરનારી ઢાસી હતી તેની કુક્ષિને વિષે ઉત્પન્ન થયા. અનુ-ક્રમે તેઓ શુવાવસ્થા પામ્યા અને ઘરનું કામકાજ કરવા લાગ્યા.

एक दिवसे वर्ष-ऋतुमां क्षेत्रनी रक्षा करवा माटे ते वने भाइओ गया. म-
ध्यान्हसमये ते वेमांनो एक जण क्षेत्र समीपे आवेला वदना झाड नीचे शीतल
छायामां सुटेळो छे तेवामां ते वदना पोलाणमांथी एक सर्प नीकळयो, अने ते
सुतेळाने पगे दस्यो. ते वरवते दैवयोगथी वीजो भाइ पण त्यां आव्यो. तेणे स-
र्पने जोयो, एटछे तेणे सर्पने गाळ दीधी के-‘अरे दुरात्मन् ! मारा भाइने ह-
णीने तुं क्यां जाय छे ?’ एवां तेनां वचन सांभळीने क्रोधित थयेला सर्पे कुदीने
तेने पण करहयो. वने भाइओ मृत्यु पास्या. वीजा भवमां कार्लिंजर पर्वतनी
अंदर हरिणीनी कुक्षिमां तेओ मृगपणे उत्पन्न थया. तेओ परस्पर अति स्नेहयुक्त
थया. एकदा कोइ शिकारीना वाणप्रहारथी तेओ मरण पास्या. वीजा भवमां
गंगा नदीना किनारे इंसीनी कुक्षिने विषे इंसपणे उपण्या. ते भवमां पण तेओ
परस्पर घणा स्नेहवाळा थया. तेओ गंगाने किनारे रहेला कमलना विसतंतुओ
स्वाय छे अने सुखमां काळ व्यतीत करे छे; तेवामां कोइएक शिकारीए ते
वनेने मारी नाख्या.

चोखे भवे साधुवेपनी निंदा करवाना फळथी काशी नगरीमां कोइ चंडालने
घरे पुत्रपणे उत्पन्न थया. ते चंडाले पुष्कळ धन स्वर्चीं ते वने छोकरानां नाम
चित्र अने संभृति पाडयां. तेओ पूर्वभवना स्नेहथी अन्योन्य अति रागयुक्त थया.
एक क्षण पण वीजानो वियोग सहन करी शकता नथी. हवे ते नगरनो जे राजा
छे तेनी सभामां नम्रुचि नामनो प्रधान छे. ते प्रधान राजानुं परम विश्वासस्थान
छे. परंतु ते राजानी पट्टराणीनी साथे प्यारमां संलग्न थयो छे, अने तेनी साथे
दररोज भोग भोगवे छे. पट्टराणीने पण तेनी साथे अत्यंत स्नेह वंधायो छे, तेथी
ते पोताना भर्तारनी अवगणना करीने ते नम्रुचिनी साथे भोग भोगवे छे. अहो !
कामनो अंधता अपूर्व छे. कहुं छे के—

दिवा पश्यति नो घूकः, काको नक्तं न पश्यति ।

अपूर्वः कोऽपि कामांधो, दिवा नक्तं न पश्यति ॥

“ घुह दिवसे जोइ शकतो नथी, कागडो रात्रिए दे स्वतो नथी; पण कामांध
तो कोइ अपूर्व अंध छे के जे दिवसे तेमज रात्रिए जोइ शकतो नथी.”

वळी कहुं छे के—

या चिंतयामि सततं मयि सा विरक्ता

साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मा च ॥

“જે સ્ત્રીનું હું દરેશાં ચિંતનન કરું છું તે મારાથી વિચિત્ર રહે છે અને તે અન્ય પુરુષને ઇચ્છે છે, તે પ્રરુષ વીજી સ્ત્રીમાં આસક્ત થયેલો છે, અને તે પીઝી કોઈ સ્ત્રી મને ઇચ્છે છે; માટે તે (રાણી) ને ધિક્કાર છે, તેના પારનં ધિક્કાર છે, મદનને ધિક્કાર છે અને મને પણ ધિક્કાર છે.”

ए प्रमाणे घणा दिन्सो जतां तेह्नु पाप कोढनी माफक दुटी नीरुळ्युं. राजाए ते वात जाणी, एटछे ते मनमां विचार करवा लाग्यो के—‘आ पापात्पा प्रधान दुष्ट छे के ठेणे आबुं नीच काम कर्तुं; एणे पोताने हाथेज मृत्यु मागी लीधुं छे ए जोके बुद्धिमान छे छतां पण नीच होवाथी उपेक्षा करवा योग्य छे.’ कतुं छे के—

લૂણહ ધુણહ કુમાણસહ, ए जिहुं इकं सहाश्र्यो ।

जिहां जिहां करे निवासको, तिहां तिहां फेने छाश्र्यो ॥

भावार्थ:—“લુણો, ધુણોને કુમાણસ એ ત્રણે એક સરસ્વા સ્વભાવવાલા ઈય છે. તે જ્યાં જ્યાં નિવાસ કરેછે ત્યાં ત્યાં રહેવાનાં સ્થાનકનોજ નાશ કરે છે.” લુણો મીંત વિગેરેને પાયમાલ કરે છે; ધુણો લાકડામાં થાય છે તે તેને કોતરી નાશે છે, અને સરાવ માણસને જે આશ્રય આપે તેને જ તે પાયમાલ કરે છે. ‘તેથી આ પ્રધાન વધ્ય છે’ એમ વિચારી ચંડાલને બોલાવીને કહું કે—‘એને વધ્યશૂમિમાં છડ જઈને મારી-નાશો રાજાની આજ્ઞા થતાં ચંડાલ નશ્વરિને વધ્યશૂમિએ છડ ગયો. તે ચંડાલે વિચાર કર્યો કે—‘અરે ! કોઈ માઠા કર્મના યોગથી આ કામ થયેલું છે. વિનાશકાલે બુદ્ધિમાન પુરુષોની બુદ્ધિ પણ નાશ પામે છે. કહું છે કે—

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा, न श्रूयते हेममयी कूरंगी ।

तथापि तृष्णा रघुनंदनस्य, विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥

“સોનાની હરિણી કોઈપણ ઘનાનેલડી નથી, કોઈપણ પૂલે જોયેલી નથી તેમ સાંપલેલી પણ નથી, તોણ પણ તેને માટે રઘુનંદન (રામ) ની તૃષ્ણા થઈ, માટે વિનાશકાલે વિપરીત બુદ્ધિ જ થાય છે.” વઢી કવુ છે કે—

रावण तणे कपाल, अहोतरसो बुद्धि बसे;

लंका फीटणकाल, एको बुद्धि न सवरो.

“રાવણના કપાલમાં એકસો ને આઠ બુદ્ધિ વસતી હતી, છતાં પણ જ્યારે લંકાનો ફીટણકાલ આવ્યો ત્યારે એકે બુદ્ધિ સ્વરણમાં આવી નહિ.”

વઢી ચાંડાલે વિચાર્યું કે—“આ પ્રધાન મહા બુદ્ધિવાલો છે અને મારા ઘરમાં ને છોકરા મળવા લાયક થયાછે, પણ બીજો કોઈ તેમને મળાવશે નહિ; તેથી જો આ

प्रधान तेने भणाववानुं कबुल करे तो हुं तेनी वचाव करूं. ए प्रमाणे विचारी तेणे नम्रुचिने पूछयुं के—'जे तुं मारा पुत्रोने भणाव तो हुं तारुं रक्षण करूं, तेणे तेम करवानुं कबुल कर्युं. तेथी चांढाळे तेने गुप्तपणे पोताना घरे आण्यो अने राजाना भयथी तेनेभोंयरामां राख्यो. त्यां रहीने ते चित्र अने संभूत नामना चांढालपुत्रोने भणाववा लाग्यो. तेवो बुद्धिमान होवाथी थोडा वखतमां सकल शास्त्रमां पारंगत थया. नम्रुचि प्रधान त्यां रहेतो सतो चित्रसंभूतनी मानी साथे प्यारमां पढयो. अहो ! आ कामनो दुष्ट स्वभाव दुस्त्यज छे. कारणके आवी अवस्थाने पांम्या छतां पण नीच माणस विषयनी आशंसा तजतो नथी कसुं छे के—

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो ।

व्रणीपूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ॥

ह्रुधाक्रांतो जर्णः पिठरककपालार्पित गलः ।

शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनः ॥

“ शरीरे दुर्दल, दाणो, लंगडो, वहेरो, पुच्छ विनानो, जेना अंगपर चांदां पदेलां छे, परथी खरहायेछो छे अने जेजुं शरीर हजारो कृमिथी घेरायेछुं छे एवो झुषाक्रांत, जीर्ण अने जेना गलामां ठीबनो कांठो बळगेछो छे एवो श्वान पण जो कूतरीने देखे छे तो तेनी पाछळ जाय छे; तेथी दिळगीरीनी वात छे के कामदेव मरायेछाने पण मारे छे. ” कामनो स्वभावज दुस्त्यज छे. कसुं छे के

उखल करे धबुकडां, घरहर करे घरट्ट;

जिहां जे अंग सजावडा, तिहां ते मरण निकट्ट.

“जेम खारणीओ घवकारा करे छे अने धंटी घरघराट करे छे तेम जे अंग (जीव)ने जेवो स्वभाव पढयो होय छे ते मरण पर्यंत रहे छे, फरतो नथी. ”

ए प्रमाणे घणा दिवसो जवां चांढाळे ते वात जाणी, पटछे ते विचारवा लाग्यो के—'अहो ! आ विषयांघने विकार छे ! तेना उपर करेछो उपकार पण ए दूळी गयो छे. आना करतां कूतरो पण वघारे सारो होय छे के जे करेल उपकारने भूली जतो नथी. ' कसुं छे के—

अशनमात्रकृतज्ञतयाशुरोर्न पिशुनोऽपि शुनो लभते तुलाम् ।

अपि वद्भपकृते सखिता खले, न खल्ल खलति खेलतिका यथा ॥

“ भोजनमात्राची वृत्तज्ञापणावळे शुरु तरीके माननार एवा कूतरानी पण व-
रोधरी पिशुन [खळ पुरुष] करी झकतो नथी; वे.मके तेनी उपर घणा उपकार
कर्या छे एवा खळ साथेनी मित्रता पण आकाशमां छता टकी शकती नथी तेम
[छांबो वखत] टकती नथी.”

‘ में पहेळांज विपरीत कार्य कर्युं के आ दुष्टनुं रक्षण कर्युं. आ तो वध कर-
वानेज लायक छे. ’ आ प्रमाणे विचारीने तेणे तेने मारी नांखवा माटे व्हार
काढयो. ते वखते चित्रसंभूतिए विचार्युंके-‘ आपणो पिता आपणी नजर आगळ
आपणां विद्याशुरुने हणे ए मोटो अनर्थ थाय छे. ’ पळी तेना रक्षणना उपाय
मनमां विचारीने तेओए पोताना पिताने कळुं के-‘ हे पिताजी ! आ पापी महा
दुराचरणी छे, ए हणवा लायकज छे, रक्षण करवा लायक नथी. तेथी अमने
तमे इ कम आपो के अये तेने स्मशानभूमिमां लडू जइने मारी नांखीए. ’ चांदा-
छे तेमने आजा आपी, एटले तेओ तेने लडने राजिना वखते नीकळ्या. पळी
दूर जइने तेओए तेने एकांतमां कळुं के-‘तमे अमारा विद्याशुरु छो तेथी अये
तमने छोटी दइए. छीए, माटे तमे आ गाम छोटी दूर चाख्या जाओ. ’ ए उप-
रथी जह्मचि त्यांथी नीकळी गयो. अनुक्रमे ते हस्तीनापुर आच्यो अने सनळु-
मारनो सेवक यइने. रह्यो.

अहीं चित्र अने संभूति नामना ते वने भाइओ संगीतकळामां घणा कुशल
श्रया हता, तेथी हाथमां वीणा लडने नगरना चोकमां संगीत करवा लाग्या. त्यां
तेमना गगंथी मोहित थइने घणा लोको आवता हता जेओ मूर्यने पण जोइ
शकती नहोती एवी सुवतीओ पण तेमना रागथी मोहित थइ लज्जा छोटीने सां-
खळवाने माटे त्यां आवती हती. केटलीक स्त्रीओ तो अर्ध नृगार कर्यां छे अने
अर्ध बाकीमां छे एवी स्थितिमां त्यां आवती हती; तेमां केटलीके अठ्ठाथी
एकज पग रग्यो हतो, केटलीक स्त्रीओए एकज आंख आंजी हती अने केटलीक
स्त्रीओना माथा उपरनां कपहां एवनथी लहो गर्यां हतां, केटलीक स्त्रीओए एकज
स्तन उपर वचळी पहेरी हती, केटलीक स्त्रीओ अन्य स्त्रीओनां वाळकोने पो-
तानां छे एवी बुद्धिथी उपाडीने आवी हती, केटलीक स्त्रीओ पोताना भर्तार पास
कांइ चहाळुं काडी ‘आळुं छुं’ एम कडी त्यां आवली हती, केटलीक स्त्रीओ तो
जमती जमती भोजननी थाळी छोटीने जोवा माटे टोडी आवी हती, केटलीक
स्त्रीओ गाय दोवाने माटे वाळडाने गायना आंचळे वळगाडीने आवी हती, अने
केटलीक स्त्रीओ तो पोताना भर्तारनी नजरे उंचुं मुख करीने एमने जोती हती.
आ प्रमाणे रागमां परवन्न वनेली कामिनीओ सघळ घरनु कामकाज छोटी दइने
आरती हती. अहो ! नादनी परवन्नता केवी छे ! कळुं छे के-

सुखिनि सुखनिदानं, दुःखिताना त्रिनोदः ।

श्रवणहृदयहारी, मन्मथस्याग्रदूतः ॥

रणरणकविधाता, बह्वभः कामिनीनाम् ।

जयति जगति नादः, पंचमश्रोपवेदः ॥

नाद ए ह्रस्वो जनोना मुखतुं कारण छे, दुःखो माणसोने त्रिनोद आपनार छे, श्रवण अने हृदयना हरनार छे, कामदेवको अग्रेसर दूत छे, विधाताए रण-रणक करेलो छे अने कामिनीओने बहालो छे-एवो नाद के जे पांचमो उपवेद छे ते जगतमा जय पावे छे. ”

ए प्रमाणे सघळो स्त्रीओ रागमां मोहित थइने तेमनी पाळ्ळ भग्या करेछे. तेथी लोकोए विचार्युं के-‘ चांडालकुळमां उत्पन्न थयेळा आ वन्ने छोकैराओंए तो सघळ नगर मलिन कर्तुं छे. ’ पछी तेओए राजा प्रासे जइने अरज करी के ‘ हे देव ! आ चित्र संभूति नामना वंने चांडालपुत्रोने ग्राममांथी वहांर काढो भूकवा जोइए, कारणके तेओए आखुं नगर-दूषित कर्तुं छे. जो तेओ वधारे वं-सत रहेशे तो आचारशुद्धि विलकुळ रहेशे नहि. राजाए तरंतज तेओने नगर-मांथी काढो भूकवा.

हवे चित्रसंभूतिए मनमां विचार कर्यो के-‘ दुष्कूलनां दोषथीःदूषित थये-छी आपणो कलाथी शो लाभ छे ? ’ ए प्रमाणे विचार करी कोइ पर्वत उपरथो अंपापात करवाने तेओ चाल्या; अने कोइ पर्वत उपर चढी वंने हाथे तालो दइ तेओ जेवा पडवाने तत्पर थया तेवाज नजीकनी शुफामां तप करता कोइ साधुए तेमने जोया. एटछे ते साधु बोल्या के-‘ अरे तमे पडथो नहि. ’ ए प्रमाणे तेओए साधुतुं वाक्य त्रणवार सांभळीने पडवामां विलंब कर्यो अने. आसपास जोवा लाग्या के ‘आपणने पटतां कोण वारे छे ? ’ तेटलामां शुफानी अंदर तप करता कोइ मुनिने जोइने तेओ त्यां गया. मुनिए पूछ्युं के-‘तमारे दुःखतुं शं कारण छे ? ’ तेओए सर्व बीना निवेदन करी. एटछे साधु बोल्या के-‘ कुळथी शी सिद्धि छे ? अने आवी रीते अज्ञानपणे मरवाथी पण शं लाभ छे ? माटे तमे जिनेश्वर भगवाने कहेलो धर्म आचरो के जेथी आ लोकमां तेमज परलो-कमां तमारा कार्यनी सिद्धि थाय. ’ ए प्रमाणेना साधुना वाक्यथी तेओने वैरा-ग्य उत्पन्न थयो, एटछे तरंतज तेमणे दीक्षा ग्रहण करी अने निरतिचारपणे अति दुष्कर तप करवा लाग्या.

અન્યદા એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરતાં તે વંને મુનિ હસ્તીનાપુરના લઘાનમાં આવ્યા. વંને મુનિ માસક્ષમણ કરતા હતા તેથી માસક્ષમણને પારણે સંભૂતિ મુનિ આહાર છેવાં નિમિત્તે ગજપુરમાં ગયા. ત્યાં મિશ્ણા અર્થે નાના મોટા કુલ્લમાં ફરતા તે મુનિને નમ્મુચિ પ્રધાને જોયા. 'અરે ! આ તો સંભૂતિ નામનો વાંદાલપુત્ર જનાયછે. તે અહીં ક્યાંથી આવ્યો ! માટે તે મારું ચરિત્ર રચેને રાજાને કહી દે.' એમ વિચારી નોકર પાસે ગરદન પકડાવી તિરસ્કાર કરીને તેને શહેરની વહાર કાઢી મૂક્યા સંભૂતિ મુનિએ વિચાર્યું કે—'અરે ! આ દુષ્ટ નમ્મુચિ શું કર્યું ! અમે તેને મરણથી વચાવ્યો છે છતાં પણ તેને લાજ ન આવી, તો હવે હું તેને વાઢી નાંહું.' પછી તે મુનિ દીપાયમાન થયેલા ક્રોધ રૂપી અગ્નિવદે તેના પર તેજોલેશ્યા મૂકવાડચુક્ત થયા. મુલ્લમાંથી ધૂમાડાના મોટેમોટા નોકલ્લા લામ્યા. તેથી સર્વ નગર અચ્છાદિત થઈ ગયું. તે જોઈ શોકથી આકુલ થયેલા લોકો 'આ શું થયું !' એમ બોલતાં ત્યાં એકઠા થઈ ગયા. સનત્કુમાર ચક્રોળ પણ તે ફકી-કત સાંભઢી. ઇટલે મયથી આકુલબ્યાકુલ થઈ તે પણ ત્યાં આવી સંભૂતિ મુનિના ચરણમાં પઢયા અને બોલ્યા કે—'હે પ્રમ્મુ ! અપરાધ ક્ષમા કરો અને કૃપા કરીને લોકના સંહારથી પાછા ઓસરો, મારા પર ઇટલો અત્તુમ્રહ કરો, તમે કૃપાસિંધુ છો, નતવત્સલ છો, ક્ષમાશીલ છો, હું દીન છું અને વંને હાથ જોડી અરજ કરું છું. તેથી કૃપા કરીને ક્રોધ તજી દો."

તે અવસરે સંભૂતિ મુનિનું સઘલ્લ ચરિત્ર ચિત્ર મુનિએ જાણ્યું, ઇટલે તે ત્યાં આવ્યા અને સંભૂતિ મુનિને ઘણાં શાંત વચનો કહ્યાં. શાંત વચન-રૂપ અમૃતની ધારાથી તેણે સંભૂતિ મુનિનું મન શાંત કર્યું. તેથી સંભૂતિ મુનિ ક્રોધથી નિવૃત્ત થયા અને શાંતિભાવને પામ્યા. નમ્મુચિનું ચરિત્ર જાણીને સનત્કુમારે તત્કાલ તેને વાંધી મંગાવી મુનિને પગે લગાડયો અને પૂછ્યું કે—'હે મુનિ ! આપ હુકમ કરો કે આ નમ્મુચિને હું શો શિશ્ણા કરું ?' વંને મુનિઓળ કહ્યું કે—'અમારે કોઈની સાથે વૈરભાવ નથી.' પછી સનત્કુમારે નમ્મુચિને દેશનિકાલ કર્યો. પછી વંને મુનિઓળ વિચાર કર્યો કે—'અહો ! ક્રોધાંધ પુરુષો કાંઈ પણ જાણતા નથી. આ ક્રોધ મહા અનર્થકારી છે.' કહ્યું છે કે—

જં અજ્જિયં ચરિત્તં, દેસૂળાળય પુઠ્ઠવકોનીણ ।

તંપિશ્ચ કસાયમિત્તો, હારેશ્ચ નરો મુહુત્તેણ ॥ ૧ ॥

“દેશે લ્ણા પૂર્વક્રોહ પર્યંત જે ચારિત્ર પાલ્યું હોય તેને કષાયમાત્રવદે કરીને માણી એક મુહૂર્તમાં હારી જાય છે, અર્થાત્ એક મુહૂર્ત માત્ર કરેલ કષાય ક્રોહપૂર્વના ચારિત્રનો પણ નાશ કરી શકે છે.” બઢી—

कोह पशुओ देहघरि, तिल्लि विकार करेह ।

आपी तावें पर तवें, परतह हाणि करेह ॥ २ ॥

“ देह रूप घरमां क्रोध पेठो तो ते त्रण विकार करे. १ पाते तपे, २ बीजाने तपावे अने ३ परसाथेना स्नेहनी हानी करे. ”

“ माटे ते क्रोधना आश्रयभूत आ देहनेज तजो देवो जोइए, अवगुणोना निवासस्थान एवा आ देहने घारण करवाथी शो लाभ छे ? ” आ प्रमाणे त्रिचार करीने चित्र अने संभूति वने मुनिओए वनमां जइने अनशन ग्रहण कर्युं. लोको ‘धन्य ! धन्य !’ एम कहीने तेमनो प्रशंसा करवा लाग्यो. घणा लोको तेमने वांदवा गया, एटले सनत्कुमार चक्रो पण पोताना परिवार सहित तेमने वांदवाने गयो. ते वांदी प्रशंसा करीने पाछो आव्यो. पछी चक्रवर्तीनी स्त्रीरत्न मुनंदा घणी स्त्रीओथी परिवृत थइने वांदवा गइ, अने ते भक्तियी वने हाथ जोडी चित्र मुनिना चरणने वांदीने पछी संभूति मुनिना चरणमां पडी. ते समये काजल जेवो श्याम तेनो केशपास संभूति मुनिना चरणमां अथढायो. तेना स्पर्शथी जेने अत्यंत राग उत्पन्न थयो छे एवा संभूति मुनिए नियाणुं कर्युं के-‘ जो मारा तपनुं फल होय तो आवुं स्त्रीरत्न मने परभवमां प्राप्त थाओ. ’ आ प्रमाणे निकाचित नियाणुं कर्युं. ते अवसरे चित्र मुनिए कह्लुं के-‘ हे वन्धु ! तमे ए थुं करो छो ? आ हृष्ट परिणामवाळा विषयो आ जीवे अनंतीवार भोगव्या छे तथापि ते तसि पान्यो नथी, माटे आवुं नियाणुं न करो. ’ संभूति मुनिए कह्लुं के-‘ में हृष्ट मनथी जे नियाणुं करेछुं छे ते फरवानुं नथी, माटे हवे तुं कांइ कहीश नहि. ’ ते सांभळी चित्रमुनि मौन रह्या.

अनुक्रमे वने मुनि अनशन पाळीने स्वर्गे गया. वने जणा एकज विमानमां उत्पन्न थया. त्यां चिरकाल भोग भोगवी प्रथम चित्रनो जीव त्यांथी च्यवीने पुरिमताळ नगरमां एक शेठने घेर पुत्रपणे उत्पन्न थयो; अने संभूति निदानना माहात्म्यथी कांपिल्यपुरं नगरमां ब्रह्मदत्त नामनो वारमो चक्रवर्ती थयो. तेनी उत्पत्तिनुं स्वरूप आगळ कहीथुं. अनुक्रमे तेजे छलंडनो विजय कर्यो. एक दिवस सभामां वेठेला ब्रह्मदत्तने पुष्पनो गुच्छ जोवाथी जातिस्मरणज्ञान थयुं. तेथी पूर्वभवमां अनुभवेल्लं नलिनीगुल्म विमान तेने याद आच्युं. ते साथे पाछला पांच भव तेने याद आख्या. तेजे मनमां चिंतन कर्युं के-‘ जेनी साथे मारे पांच भवथी संवंध हतो ते मने केवी रीते मळशे ? ते क्यां उत्पन्न थयो हशे ? ’ पछी तेजे पोताना बंधुने मळशाने माटे अर्धी गाथा रची ते नीचे प्रमाणे—

આશ્વદાસૌ શૃગૌ હંસૌ માતંગાવમરૌ તથા ।

“ પ્રથમ વંને અશ્વદાસ [ઘોડાના સ્વાસદાર], પછી વે મૃગ, પછી વે હંસ, પછી વે માતંગ (ચાંદાલ) અને પછી વંને દેવ થયા. ” આ પ્રમાણે બનાવીને ‘ જે આ ગાથાનો અર્થ ભાગ પૂરો કરશે તે મારો વંધુજ હોવો જોડે, વીજાથી પૂરી શકાય તેમ નથી ’ એવો નિશ્ચય કરીને તેણે લોકોમાં જાહેર કર્યું કે ‘ જે આ ગાથાનો ઉત્તરાર્દ પૂરો કરશે તેને હું મનવાંછિત આપીશ આ પ્રમાણેની હકીકત સાંભળીને સર્વ લોકોએ તે અર્થી ગાયા કંટે કરી, પરંતુ કોઈ તે સમઢયા પૂર્ણ કરી શક્યું નહિ. એ પ્રમાણે ઘણા દિવસો વ્યતીત થયા.

હવે એવે સમયે પુરિમતાલ નગરમાં શેઠના કુલમાં હત્પન્ન થયેલા ચિત્રના જીવે ગુરુ પાસે ચારિત્ર વ્રહ્મણ કર્યું. તેને જાતિસ્મરણજ્ઞાન થયું, તેથી તેણે પગ પાં છલો પાંચ મથનો સંવંધ જાળ્યો. પછી તેણે વિચાર્યું કે- ‘ મારા વાંધવે નિયાણું કરેહું હોવાથી તે ભિન્ન કુલમાં ચક્રવર્તી થયેલો છે, માટે હું તેને પ્રવિવોધ પમા- હું. ’ એવો વિચાર કરી તે કાંપિલ્યપુરના ઉદ્યાનમાં આવ્યા. ત્યાં રેંટ ચલાવનારના મુસથી પેછી અરધો ગાથા સાંભળી ચિત્રમુનિએ ઉત્તરાર્દ પૂરું કર્યું. તેનીચે પ્રમાણે

एषा नौ षष्ठिका जातिरन्योन्धाज्यां विद्युक्तयोः ॥

“ એક વીજાથી જુદા પડેલા એવા આપણો આ છત્તો મથ છે. ” એ પ્રમાણે મુનિમુલ્યથી ઉત્તરાર્દ સાંભળીને રેંટ ચલાવનારે રાજા પાસે જઈ ગાથાનું ઉત્તરાર્દ પૂરું કર્યું, તે સાંભળી અતિ સ્નેહથી રાજા મૂર્છિત થઈ ગયો. પછી સાવધાન થઈને પૂછવા લાગ્યો કે- ‘ અરે ! આ સમઢયા કોણે પૂરો કરી છે ? ’ તેણે કહ્યું કે- ‘ મારા રેંટનો પાસે એક મુનિ આવેલા છે તેણે આ ઉત્તરાર્દ પૂરું કરેહું છે. ’ રાજા મુનિનું આગમન સાંભળી ઘણોજ સુશી થયો અને સપરિવાર વાંદવા ગયો. મુનિએ દેશના આપી; તેમાં આ સંસારની અનિત્યતા વર્ણવોને કહ્યું કે- “ હે વ્રહ્મદત્ત ! વીજાનીના ચમકારા જેવું વંચલ વિષયમુલ્ક તજી દે અને જિનેશ્વર મગવાને કહેલો ધર્મ સેવ, વિષયમાં અનુરાગનું પરિણામ ઘણું સ્વરાધ છે; તેં પૂર્વમથમાં નિયાણું કર્યું તે વસ્તુને મેં તને ઘણો વાર્યો હતો છતાં પણ તેં મોક્ષમુલ્કને આપનાહં ચારિત્ર અંશમાત્ર એવા રાજ્ય અને સ્ત્રીના મુલ્કને અર્થે ગુમાવી દીધું છે. હજુ પણ પરિણામે નરક આપનારા રાજ્યથી વિરક્ત થા. ” એ પ્રમાણેનાં વંધુનાં વચન સાંભળી ચક્રી બોલ્યો કે- “ હે વંધુ ! મોક્ષમુલ્ક કોણે જોયું છે ? આ વિષયાદિ મુલ્ક તો પ્રત્યક્ષ છે; માટે હે માઈ ! તું પણ મારે ઘેર ચાલ અને સાંસારિક મુલ્કનો અનુભવ છે,

आ मातुं सुहावायी श्रु विशेष छे ? आपणे प्रथम सारी रीते भोग भोग्या पछी संयम ग्रहण करयुं." ए प्रमाणेनां सभुतिनां वचन सौभळीने चित्रमनिए कबं के- "एवो कोण मूढ होय के जे भस्मने घाटे चंदन बाले ? एवो कोण मूर्ख होय के जे बीजवानी इच्छाथी कालकूट विषनु भक्षण करे ? एवो कोण नीच होय के जे लोहाना खीला घाटे प्रवहणने तोही नाखे ? एवो कोण मूर्ख होय के जे ढोराने घाटे मोतीनो धार तोही नाखे ? घाटे हे भाइ ! तुं प्रतिबोध पाप, प्रतिबोध पाप." ए प्रमाणेनां वधुनां वचन अनेकवार सांभळयां पण तेने वैराग्य प्राप्त थयो नहि. तेथी 'आ दुर्बुद्धि छे' एम जाणी चित्रमनिए वधुने जणावीने त्यांथी शिहार कयो. ब्रह्मदत्त पण पोताने घेर आब्यो, अने अनेक पापा-घरण करवा लाग्यो.

चित्रमनि छांवाकाळ सुधी साधुमार्गने सेवी केवलज्ञान प्राप्त करीने पोझे गया; अने जेणे पूर्वभवे निशाणु करेछुं छे एवो ब्रह्मदत्त धर्म पाभ्या शिवाय अनेक पापकर्म आचरीने सातसें बर्षानु आयुष्य भोगवी सातमी नरके गयो.

ए प्रमाणे धीजा माणस पण थारुकर्मी होय छे ते प्रतिबोध पावता तथी; घाटे सुलभ बोधिपणुं ए धणुं दुर्लभ छे एवां आक्यानो तात्पर्य छे.

हवे बीजुं उदायी नृपने मारनारनुं दृष्टांत कहें छे-

पाहळीपुत्र नगम्यां कोणिक राजानो पुत्र उदायी नामे राजा थयो. तेणे कोइ राजानुं राज्य लइ लीधुं. तेथी ते वरी राजाप पोतानी सभामां कहुं के- 'जे कोइ उदायी राजाने मारी आवे तेने हु मागे ते आयु.' ते उपरथी तेना कोइ सेवक ते प्रमाणे करवाहुं कसुळ कयुं. ते सेवक पाहळीपुर आब्यो अने अनेक उपायो चिंतव्या. परंतु कोइ उपाय लागू पडयो नहि; तेथी ते ददु विचारयु के 'उदायी राजा सिन्वास विना मृत्यु पागे तेय नथी' तेथी तेण गुरु समीपे बहने कपटयी चारित्र ग्रहण कहुं; ते आचार्य (गुरु) उदायी गजाने घणा मान्य हुता. पेछो सेवक चारित्र ग्रहण करीने आचार्य पासे अध्ययन करवा लाग्यो अने साधुज्योने अत्यंत विनय करवा लाग्यो. अतुकमे विनयपुण्यो तेणे आचार्य विगेरेनां चित्त बल्ल कयां.

हवे उदायी राजा आठमने दिवसे अने चौदशने दिवसे रात्रिदिवसना पोसह करे छे, त्यारे आचार्य धर्मदेसना आपवाने रात्रिए तेनी पौषधशाळायां जायछे. आठमने दिवसे त्यां जवाने गुरु ग्रहंत थया ते कसते पेला नग्दीक्षित साधुए कहुं के- 'हे स्वामिन् ! आपनी आज्ञा होय सो हुं साथे आयुं.' गुरुए एतुं हृदय नहि जाणवाथी साथे लीचो नहि ए प्रमाणे दर राखते मागणी करेछे

पण तेने गुरु साथे^२ छेता नथी. एम वार वर्ष बीती गयां. एक समये चतुर्दशीने दिवसे-सायंकाळे गुरु द्यां जाय छे ते वखते पेछा कपटी साधुए कळ के- 'हे स्वाधी ! हु साथे आहुं ?' भवित्त्यताने जोगे गुरुए कळ के- 'भळे आव' तेथी ते गुरु साथे-गयो गुरु राजानी पौषधशाळामां आच्या, एटले दर्भना संथारा उपर वेठेला उदायी राजाए तेमने वांघ्या, अने प्रतिक्रमण करध. पछी संथारापोरपी भणावीने राजाए कयन करुं. राजा निद्रावश थया एटले पेछा दृष्ट शिष्ये उठोने छानी रीते राखेली कंक जातिना लोहानी छरी राजाने गळे फेरवी, जेथी तत्काळ ते मरण पास्यो. पछी छरी त्यांज रहेषा दहन ने नासी गयो. बहार रहेला राजसेवकोए 'आ साधु छे' एम जाणीने तेने अटकाव्यो नहि. अनुक्रमे-रुधिरनो प्रवाह गुरुना संथारा पासे आळ्यो, तेना स्पर्शथी गुरु जागी उठया अने विचार करवा लाग्या के- 'आ शं ?' तेणे पासे शिष्यने जोगो नहि, एटले धारुं के 'आ कुशिष्य राजाने मारीने चाली गयेलो जणाय छे.' पछी ते वातनो खात्री करीने विचारवा लाग्या के- 'आ मोटो अनर्थ थयो छे. प्रातः काळे जैन शासननो मोटो उड्डाह थयो के मुनिओ आहुं दुष्ट कर्म आचरे छे.' तेथी तेम न थवा माटे गुरु पण पोताना गळा पर छरी^३ फेरवीने सुत्युवश थया. वने जणा मरण पामीने स्वर्गे गया.

ए प्रमाणे बीजा अमन्य जीवो बहु उपदेशथी पण प्रतिबोध पापता नथो. पेळो दुष्ट सेवक साधुवेष छोडीने पोताना राजानी पासे गयो अने सघळी हकीकत कही. ते सांपळीने राजाए कळुं के- 'तने धिक्कार छे ! अरे दुष्ट ! तें आ शं करुं ?' ए प्रमाणे तिरस्कार करी तने देशमांथी हांकी काढयो. माटे जीवो-ए कोइ पण प्रकारे भारेकमीं न थवुं एवो आ दष्टांतनो उपनय छे.

गयकन्नचंचलाए, अपरिचचत्ताए रायलच्छीए ।

जीवां सकम्मकल्लिमज्ज-जरिय भरांतो परंतति अहे ॥३१॥

अर्थ- 'हाधीना फाननी जेवी चपळ राज्यलक्ष्मीने नहीं छोडनारा जीवो पोताना कर्मकिलिषथी भरेला भारवडे अधोभूमिमां पडे छे अर्थात् नरके जाय छे.' ३२

वुत्तुणवि जीवाणं, सुदुकराइंति पावचरियाइं ।

जयवं जासा सासा, पच्छापसो हु णमो ते ॥३३॥

माथा ३२-अपरिचत्ताए भगानो. भरंतो

माथा-३३ वुत्तुण, सुदुण सुदुकरायंति पंच्चापसोयं. पच्छापसोहु.

इह—“वेदलक जीवोनां पापचित्रो मुखवदे कहेवाने पण सुदुष्कर होय छे, अर्थात् कहेवां योग्य पण होतां नथी. तें उपर निश्चये हेसिये? ‘भगवत! तें स्त्री ते?’ (धारी वहेन!), भगवत कहुं ‘हा ते ते’ आ तां हंटांत जाणवुं.” इहं वेदलक प्राणीनां पापकर्मां एवां होय छे के ले वीजांनीं समक्ष कहेवां पण लज्जा आवे. एटलामाटे एक पुरुषें संभवसरणमां आवीनें भगवतनें पृच्छयुं के ‘ते, ते?’ भगवते वहुं ‘हा, ते.’ अहीं ‘जासा सांसाजुं’ हंटांत जाणवुं.

‘जासा सासा’ नुं हंटांत.

वसतपुर नगरमां अन्नगरेन नामे एक सोनी रहेतो हतो. ते अति स्त्रीरूप हतो. ते पांचसौ स्त्रीओ परण्यो हतो. ते दरेक अति रूपवती हती. ते सोनी पोतानी स्त्रीओने वहार काहतो नहोतो, घरमांज राखतो हतो. एक-वखत-ते जन्माने माटे पोतानाकोइ दित्रने घेर गयो. तयारे ते सर्वे स्त्रीओए विचार कयो के—‘आज आपणे देखत मळयो छे.’ एम विचारीनें रानां, विलेपन, काजळ, सिंदुरनां तिलक विचारे करीनें तथा आभरणो पहेरीनें सर्व स्त्रीओ पोताना हस्तमां आदर्श (काच) छंड पोतानां रूपनें जोवां लागीं; अनें हसवुं, रमवुं, गीत-गान करवां इत्यादिं क्रीडा परस्पर करवां लागीं. तेओ अन्यान्य कहेवां लागीं के—“आपणामांथो जेनो वारो होय छे तेनेज ओपणो स्वामी तो आभूषण विनेरेथी सुशोभित करे छे, वीजी स्त्रीओने क्षणगार पण करवा वेतो नथी; तो हवे आपणे आजे तो मरजी मुजब क्रीडा करवा जोइए.” एवामां-सोनी पोताने-घेर आब्यो, तेणे पोतानी स्त्रीओनी पूर्वेक्त चेष्ट जोइ; एटछे तेमांथी एक स्त्रीने पकडीने मर्मस्थानमां मार मार्यो, जेथी ते मृत्युवश थई गइ. तयारे वीजी स्त्रीओए विचार्युं के ‘आणे एकने मारी नांखी तेम वीजीओने पण मारी नखिणे माटे एनेज-मारी नांखवो जोइए.’ ए प्रमाणे विचार करी, ते सुघळी स्त्रीओए एकी वखते पोतपोताना हाथमां रहेलां दर्पणो तेना तरफ फेंक्यां. ते दर्पणोना महारथी सोनी मृत्यु पाभ्यो. पाछळ स्त्रीओ लोकोना अपवादथी भय पायीने वळी मुइ. तेओ वधी मरण पामीने एक पाळमां चोर थई. जे स्त्री प्रथम मृत्यु पामी हती ते कोइएक गाममां कोइ व्यापारीने घेर-पुत्र तैरीके उत्पन्न थई, अने सोनीनो जीव ते श्रेष्टीने घरे पुत्रोपणे उत्पन्न थयो. तेणे पूर्वभवमां अति विपथ सेव्यो हतो तेथी ते-जन्म पामतांज अति-कामातुर थई रुदनं करती हतीं. एकदा तेना भाइने हस्त-तेनी योनिने लग्यो, एटछे ते रोती बंध थई गइ. आं प्रमाणे तेने छानी राखवानो उपाय हाथ लागवाथी तयारे तें रूप तयारे तेनो भांड दर-

रोज ए प्रमाणे करे एटले ते रोती घंघ थड जाण. एक बरते तेना पिताए तेने ए प्रमाणे करतो जोयो तेथी देणे तेने घायीं छतां एण ते धटवयो नहि त्यारे तेने घरमांथी काही रुवयो. ते चोरण्हीमां लड रेला पांचसो चोरो-नो स्वामी थयो. एक दिवस ते सर्व चोरोए एकठा थड कोड गाममां धाड पाहो. त्यांथी वीजे गाम गया. त्यां पेळी विषयाभिलाषिणी कण्या के छेने युवानी प्राप्त थड छे ते आवी हती. तेने चोरोए जोड एटले एरुचरना स्नेहथी कामातर थड तेणेज चोरोने कहां वे—'मने रशी तरीके रशीकारो. ' ए प्रमाणे प्राथना करवाथी तेओए तेने स्वीकारो. आ प्रमाणे ते पांचसो चोरोने पत्नी थड. परंतु ते पांचसो पुरुषोथी पण तमि पामती नथी. अहो ! रशीओनी कामलोलुपता केवा प्रकारनी छे ! कहां छे के—

नाग्निस्तृप्यति काष्ठैर्धै, नीपगात्रिर्महोदधिः ।

नांतकः सर्वज्ञतेज्यो, न. पुंजिर्षामलोचना ॥

“ काष्ठना समूहथी अग्नि तप्त थतो नथी, नदीओथी समूद्र तप्त थतो नथी, सर्व प्राणीओथी यम राजा तप्त थतो नथी, अने पुरुषोथी स्त्री तप्त थती नथी.” वळी-

नागरजातिरद्रुष्टा, शीतोवह्निर्निरामयः कायः ।

स्वादु च सागरसखिलं, स्त्रोष सतीत्वं न संजवति ॥

“ नागरजातिमां अद्रुष्टपणं, वह्निमां शीतलपणं. कायामां निरोगपणं, समूद्रजळमां स्वादिष्टपणं अने स्त्रोओमां सतीपणं संजवतंज नथी. ”

एक दिवसे चोरोए विचारुं के—'आ स्त्री पांचसे पुरुषोथी सेवातां दःख पामे छे, तेथी वीजी स्त्री लावची जोडण. ' ए प्रमाणे टयाथी तेओए वीजी स्त्री आणी; तेने जोड पहेली स्त्रीए विचारुं के—'अरे ! मारा उपर आ वीजी स्त्री आणी ! आ मारा विषयभोगमां भाग पाडशे. ' एची-वह्निथी तेणे तेने क्वामां नांखी दीधी, जेथी ते मृत्यु पामी. ए वात पळीपतिए सांघळी तेथी विचारवा लाग्यो के 'अहो ! आ कामथी अतिबिब्हल छे अने महापापकारिणी छे. ' वळी तेणे विचार कर्यो के—'आवी तीव्र कामरागवाळी कदि मारो वहेन हशे ! कारणके तेनामां अति कामबुद्धि हतो. ' पळो ए प्रकारनी संशय दूर करवाने माटे ते श्री वर्धमान स्वामीना समवसरणमां गयो.

पळीपतिए प्रभुने वादीने पूछ्युं के—'हे भगवन् ! 'आ ते ? ' त्यारे भगवाने कहुं के—'ते ते. ' ए प्रमाणे सांघळी वैराग्यपरायण थड, व्रत अंगीकार करी, पाळीने ते शुभगतिने प्राप्त थयो.

अहीं गौतम स्वामीए प्रभुने पूछ्युं के—“ हे भगवन् ! आपने पछीपतिए पूछ्युं के—‘आ ते ?’ त्यारे आपे उत्तर आप्यो के ‘ते ते’ एटले थुं ? अये काई समज्या नहि. ” भगवाने कह्युं के—“ एणे समझ्यामां पूछ्युं के—‘जे पेळी मारी वहेन हती ते आ छे के नहि ? ए प्रमाणे लज्जाथी तेणे पोतानी स्त्रीतुं स्वरूप पूछ्युं, एटले मे पण समझ्याथी जवाव दीषो के ‘तारी पत्नी ते तारी वहेनज छे.’ ते सांभळो घणा छेक प्रतिबोध पाम्या.

‘कर्म भेरायेलेो जीव न आचरवातुं पण आचरे छे’ आवो आ कयानो उपनय छे.

पडिवज्जिऊण दोसै, निअए सम्मंच पायवकिआए ।

तो किर मिगावईए, उप्पन्न कैवलंनाणम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—“ पोताना दोषने अंगीकार करीने सम्यक् प्रकारे त्रिकरण थुंने पगे पढेली एवी (गुरुणीनी सेवा करनारी) मृगावतीने तेज कारणथी निश्चये निरावरण एवुं केवलज्ञान उत्पन्न थयुं. ” ३४. तेथी विनयज सर्व गुणोतुं निवासस्थान छे.

अहीं मृगावती साध्वीतुं दृष्टांत जाणतुं.

मृगावतीनुं दृष्टांत.

कोशाम्बी नगरीए श्रीमहावीर स्वामी समवसर्यां ते वखते सर्व सुर अने असुरोना इंद्र करोडेो देवताओथी परिव्रत थइ वांदवाने माटे आव्या; तेमज सूर्य अने चंद्र पण पोताना मूळ विमानमां वेसीने वांदवाने आव्या. आर्य चंदना साध्वी पण मृगावतीने साथे लहने वांदवाने आव्या. आर्य चंदना आदि साध्वीओ प्रभुने वांदीने पोताना उपाश्रये आवी, पण मृगावती तो समवसरणमांज वेसी रही. ते वखते संध्याकाळ थयो हतो छतां पण सूर्यना तेजथी ते तेना जाणवामां आप्यो नहि; कारणके उद्योत तेवो ने तेवोज रहेलो हतो. अनुक्रमे रात्रि घणी गइ, अने सर्व लोको प्रभुने वांदीने पोतपोताने चेर गया; पण मृगावतीए रात्रि घणी गइ छे एम जाण्युं नहि. पछी ज्यारे सूर्य चंद्र पोताना विमानमां वेसीने पोताना स्थानके गया त्यारे समवसरणमां तेमज पृथ्वी उपर अंधकार प्रसरी गयो, तेथी मृगावती संभ्रमित थइ. ‘घणी रात्रि गइ छे’ एम जाणी शहरमां आर्य चंदनाना उपाश्रये आवी. ए समये आर्य चंदना साध्वी पण प्रतिक्रमण करी, संथारापोरपी भणावी, संथारामां वेसीने मनमां विचार करती हती के—‘मृगावती कथां गइ हशे ? अने कथां रही हशे ?’ एवामां मृगावतीने आवेली जोइ तेने उपको आपवा लाग्या के—‘हे मृगावती ! तने आ न

પ્રદે. તારા જેવી પ્રધાનહુલ્લામાં જન્મોલી. સાધ્વીને રાત્રિપ્રે ત્રહાર રહેવું એ ઉચિત પ્રથી; તે આ ત્રિરુદ્ધ આચરેલું છે. આ પ્રમાણેનાં આર્ય ચંદનાર્જાં વચન સાંખ્યોને નેત્રમાંથી ગઢતાં અશ્રુથી સંતાપને વહન કરતી તે પશ્ચાત્તાપ કરવા લાગી કે— 'મેં આ ગુણવતી સાધ્વીને સંતાપ હત્પન્ન કર્યો.' એ પ્રમાણે પોતાના આત્માને નિંદતી તે હાથ જોડી કહેવા લાગી કે— 'હે પ્રગવતી! મારો આ એક અપરાધ સમા કરો, હું મંદમાર્ગી છું; પ્રમાદવશથી હું રાત્રિનું સ્વરૂપ જાણી શકી નહિ, હું ફરીથી આવું કરીશ નહિ.' એ પ્રમાણે વારંવાર સ્વધાવીને તેમના ચરણમાં પહીં તેમની વૈયાવચ્ચ કરવા લાગી. આર્ય ચંદના તો સંથારામાં સુદ્ ગયા, પણ મૃગાવતી તો પોતાના આત્માની નિંદા કરે છે. એમ કરતાં કરતાં મૃગાવતીનો શુદ્ધધ્યાન રૂપી અગ્નિ વૃદ્ધિ યાગ્યો અને કઠિન કર્મ રૂપી ઇન્ધનસમૂહ વહી ગયો; તેથી મૃગાવતીને ક્ષેત્રજ્ઞાન હત્પન્ન થયું. પૂત્રામાં કોઈપણ સર્પ આર્ય ચંદનાના સંથારાનો પાસે આપ્રતો મૃગાવતીએ કેવલજ્ઞાનથી જોયો, પટલે સંથારાની વહાર પહેલો આર્ય ચંદનાનો હાથ તેણે સંથારામાં મૂક્યો. તેથી આર્ય ચંદના જાગી ગયા અને પૂછ્યું કે— 'મારો હાથકોણે હલાવ્યો?' ત્યારે મૃગાવતીએ કહ્યું કે— 'સ્વામિની! માસે અપરાધ સમા કરો, મેં તમારો હાથ હલાવ્યો છે.' તે સાંખ્યો ચંદનાએ 'કેમ હલાવ્યો?' એમ પૂછતાં મૃગાવતીએ કહ્યું કે— 'સર્પ આવે છે તેથી.' ચંદનાએ પૂછ્યું કે— 'આજા અંધકારમાં તે તે કેમ જાણ્યું?' મૃગાવતી વોહી કે— 'અતિશયથી.' આર્ય ચંદનાએ પૂછ્યું કે— 'આ અતિશય કેવા પ્રકારનો?' મૃગાવતીએ કહ્યું કે— 'કેવલજ્ઞાન રૂપી અતિશય.' તે સાંખ્યો આર્ય ચંદના કેવલજ્ઞાનીની આજ્ઞાતના થયેલી જાણો પશ્ચાત્તાપ કરવા લાગ્યા અને મૃગાવતીના ચરણમાં સહયા. એ પ્રમાણે આત્મનિંદામાં તત્પર થયેલા આર્ય ચંદનાને પણ કેવલજ્ઞાન હત્પન્ન થયું.

જેમી રીતે મૃગાવતીએ કષાય ન કર્યો તેવી રીતે વીજાઓએ પણ કષાય કરવો નહિ, પત્નો આ દહાંતના ઉપનયથી ઉપદેશ આપેલો છે. ઇતિ.

કિંસલ્કા વુત્તું જે, સરાગધન્મંમિ કોઈ ચ્ચકસાચ્ચો ।

જો પુણ્ય શ્ચરિજ્જ શ્ચણિચ્ચ, વુવ્ચયણ્જ્જાલિષ્ સ શુમી ॥૩૫॥

અર્થ— "શું એમ કહી શકાય કે આધુનિક સરાગ ધર્મમાં—રાગદ્વેષ સહિત શ્ચારિત્રમાં (કોઈ મુનિ) અકષાયી—સર્વથા કષાય સહિત હોય, આ જ્ઞાત સંભવિત તથા. કારણકે સર્વથા કષાયરહિતપણું કાલ ક્યાંથી હોય? પરંતુ જે દુર્વચન રૂપ કાષ્ટદહે પ્રવલિત કરેલ અત્યંત યવા કષાય રૂપ અગ્નિને ધરી રાક્ષે—રુદ્ધ આ-

ગાથા ૩૬— સ્ચકસાઈ. શ્ચણિષ્ચ વુવ્ચયણ્જ્જાલિષ્. વુવ્ચયણ્જ્જાલિષ્. જેહિતિપર્થ જ્ઞોમાંનિમિર્સ

बेलाने पण प्रगट न थवा दे तेज सुनि, तेज महापुरुष; कारणके सर्वथा कषा-
यत्याग तो बहु दुर्लभ छे. सर्वथा कषायरहितपणुं तो आ काळ्यां संभवतुंज नथी,
परंतु जेथो कोइना कहेलां दुर्वचनोथो उदयमां आववाने तैमार थयेला कषायने
पण रोकी राखे तेने धन्य छे, ते महापुरुष छे." ३५

कसुञ्च कसायतरूणां, पुष्पं च फलं च दोवि विरसांश्च ।

पुष्पेण शाश् कुविश्रो, फलेण पावे समायरश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ—“कडवा कषाय दृक्षनां पुष्प अने फल वने निःस्वादु छे. तेनां पु-
ष्पवडे कोपायमान थयो सतो परने भारवा विगेरे अनर्थ चितवे छे—ध्याय छे.
ते कषाय दृक्षनां पुष्पो छे अने फळे करीने परने ताडन तर्जन करवा रूप पाप
आचरे छे ते फळ छे. तेथी कषायरूप दृक्षनां पुष्प ने फळ वने कडवां छे अने
ते वनेथी गति नरकनी प्राप्त थाय छे.” ३६

संते वि को वि उइइश्च, को वि अंसंतेवि अहिलसश्च जोष ।

चयश् परपच्चयणवि पञ्चो ददूण जह जंबू ॥ ३७ ॥

अर्थ—“कोइ (महापुरुष) छता भोगने तजे छे, कोइ (नीचकर्मी जीव)
अछता भोगनो अभिलाप करे छे, अने कोइ यरना निमित्ते करीने पण भोगने
तजी दे छे. अन्यने छता भोग तजतो देखी पोते वोव पाये छे. जेम जंबूस्वा-
मीने भोग तजतां जोइने पांचशे चोर सहित प्रभव स्वामीए पण भोग तजी दीधा
तेम. ३७. अहीं जंबू स्वामीनुं दृष्टांत जाणवुं. ११

श्री जंबूस्वामीनुं दृष्टांत.

प्रथम तेमना पूर्वभवतुं स्वरूप कहे छे—

एकदा राजगृह नगरे श्री महावीर स्वामी समवसया. श्रेणिक राजा वांद्-
वाने माटे आख्या. ते समये कोइ देवताए प्रथम देवलोकथी आवी सूर्यामदेवनी
जेम नाटक करीने पोताना आयुष्यनुं स्वरूप पूछयुं. भगवाने कहुं के—‘आज-
थी सातमे दिवसे तुं च्यवीने मनुष्यभव पामीश.’ ए प्रमाणे सामळीने ते देव
पोताने स्थानके गयो. पछी श्रेणिक राजाए पूछयुं के—‘हे स्वामी ! आ देव
क्यां जन्म लेछे !’ वीर प्रभुए कहुं के—‘आ राजगृह नगरमांज जंबू नामे ए
छेछा केवली थये.’ श्रेणिक राजाए कहुं के—‘हे प्रभु ! एना पूर्वभवतुं स्वरूप
मने कही.’ भगवाने कहुं के—‘जंबूद्वीपनां भरतक्षेत्रमां सुग्रीव नामना गाममां
रायड नामनो कोइ रंक रहैतो हतो. तेने देवनी नामे स्त्री हती; नेन्यथी भवदेव
अने भावदेव नामना वे पुत्रो थवा हता.

एकदा भवदेवे दीक्षा लीधी. विहारकरतां ते एक दिवस पोताना गामे आब्या. ते वसते भवदेवे पोतानी नवी परणेळी नागिला नामनी स्त्रोने तजी दइने लज्जावडे पोताना वंधु भवदेव मुनि सपीपे चारित्र ग्रहण कर्तुं. भवदेव श्रुत्य पामीने स्वर्गे गया. भवदेव भवदेवना मरण पळी चारित्रथी भ्रष्ट थया. ते लज्जा तजी दइ नवी परणेळी नागिलाने संभारता भोगनी आशथी घर तरफ चाल्या. अनुक्रमे पोताना गामे आवी गामनी बहार श्री ऋषभदेव भगवानना मंदिरमां रक्षा. ते समये तपथी कृश थयेळी नागिला पण त्यां दर्शनार्थे आवी. तेणे पोताना पतिने ओळ्ळ्या. अने इंगिताकारथी तेने कामातुर पण जाण्या. नागिलाए पूछ्युं के- ' हे मुनि ! आप अहों शा अर्थे पधायों छे ? ' साधुए कहुं के- ' मारी नागिला नामनी स्त्रोना स्नेहने लीधे हुं आब्यो लुं. मे लज्जाने लीधे पूर्वे संयम ग्रहण कर्तुं हतुं, परंतु प्रेमभाव केम जाय ? माटे जो नागिला मळे तो माहं सर्व मनवांछित सिद्ध थाय. " त्यारे नागिलाए कहुं के- " अरे मुनि ! चिंतामणिने छोडीने कांकोरो कोण ग्रहण करे ? हाथीने छोडीने रासभ उपर कोण स्वारी करे ? नावने दूर छोडी दइने मोटी शिल्लानो आश्रय कोण करे ? कल्पतरुने छोडी धंतुरो कोण नावे ? " इत्यादि उपदेश आपी पोताना धमीने बाळी चारित्रमां दृढ कर्या. भवदेव पाप आळोवी चारित्र पाळीने त्रीजा स्वर्गमां सात सागरोपमना आयुष्यवाळा देवता थया. नागिला पण मरण पामीने स्वर्गे गइ. त्यांथी च्यवी एक अवतार करीने मोक्षे जशे.

भावदेवचो जीव त्रीजा देवलोकाथी च्यवी जंबूद्वीपमां पूर्व विदेहने विषे वीतलोका नागरीमां पद्मारथ राजाने घेर वनमाला राणीनी कुक्षिथी पुत्रपणे उत्पन्न थयो. तेनुं शिवकुमार नाम पाड्युं. युवान वय पामतां ते पांचसो राजकन्याओने परण्यो. एक दिवसे ते गोखमां बेठो हतो तेवामां तेणे एक साधुने जोया. एटले गोखमांथी सवरी नीचे आवीने तेणे साधुने पूछ्युं के- ' तमे आटलो बधो क्लेश शामाटे सहन करो छे ? ' साधुए कहुं के- ' धर्मनिमित्ते. ' शिवकुमारे पूछ्युं के- ' आ धर्म कया प्रकारनो ? ' साधुए कहुं के- ' जो तमारे सांभळवानी इच्छा होय तो अमारा शुद्ध पास आवो. ' शिवकुमार तेनी साथे धर्मधोष आचार्य पास गयो. त्यां धर्म सांभळतां तेने जातिस्मरण ज्ञान थयुं. पळो ते गुरुने नमीने घेर आब्यो. तेणे मातपिता पास दीक्षानी आज्ञा मागी. तेमणे दीक्षानी आज्ञा आपी नहि; तेथी ते घरमां रही निरंतर ल्हव तप करवा लाग्यो. अने प्रारणे आंविळ करवा लाग्यो. ए प्रप्राजे चार वर्ष सुधो तप करीने पहेला स्वर्गमां तार पत्योपम आयुष्यवाळा विद्युन्माली नामे देव थयो. "

હે શ્રેણિક ! તે વિદ્યમાલી દેવ અહીં આગ્યો હતો. ” આ પ્રમાણે જંબુસ્વામીનાં ચાર મધ ધીર મણુષ્ય શ્રેણિક રાજાની આગલ કહ્યા.

પાંચમા મધમાં વિદ્યમાલી દેવ સર્ગથી પચવી રાજગૃહ નગરમાં શુભમહત્ત શ્રેણીને ઘેર ધારણી દેવીની કૃતિમાં પુત્રપુત્રે લટગન થયો. સ્વપ્નમાં શાન્ત જંબુ-તરુ દેવદાથી તે જન્મ્યો ત્યારે તેને જંબુકુમાર નામ રાસ્યં. તેણે વાલ્યાવસ્થામાં સફલ કલાનો અભ્યાસ કર્યો, અનુક્રમે યોગન પ્રાપ્ત થતાં તે અતિ રૂપવાન હોવાથી તરુની રૂપી હરિણીઓને વાજ રૂપ થયો. તે સમયે તેજ નગરમાં રહેનારા આઠ ક્ષેત્રીઓએ જંબુકુમારની સાથે પોતાની આઠ કન્યાઓનું વેણવાલ કયું.

અન્યદા શ્રી મુધર્મા સ્વામી ગણધર રાજગૃહ નગરે સમવસર્યા. કોણિક રાજા વાંદવા આવ્યો. શ્રી મુધર્મા સ્વામીએ સંસાર રૂપી ઢાવાનલના તાપની શાંતિ અર્થે મેઘજલની ધારા જેવી દંશના આપી. અને સંસારના સ્વરૂપની અનિત્યતા દર્શાવી તેમણે કહ્યું કે— ‘ જેમ કામીઓનું મન ચંચલ હોય છે, મુષા (સોનું માલવાની) કુરડી)ની અંદર રહેલુ પ્રવાશી વનેલું સોનું ચંચલ હોય છે. જરૂની અંદર પહાડું ચંદ્રનું પ્રતિબિંબ ચંચલ હોય છે અને વાયુથી ઢળાયેલો ધ્વજનો પ્રાંત ભાગ જેમ ચંચલ હોય છે તેવીજ રીતે આ સંસારનું સ્વરૂપ અસ્થિર છે. વઢી જેવી રીતે અં-ગુઠો વસી પોતાનોજ લાલનું પાન કરતો ઘાલક જેમ સુખ માને છે. તેમ આ જીવ પણ નિદિત મોગ મોગવી સુખ માને છે. અહો ! આ લોકોનું મૂર્ખપણું કેવું છે ! કે તે જેમાં લટપન થયો છે તેમાંજ આસન્ન થાય છે. જેનું પાન કરેલું છે તેજ સ્તનોનો સ્પર્શ કરવાથી મનમાં સુખી થાય છે. ’ ઇત્યાદિ દેશના સાંમઢીને જંબુકુમાર પ્રતિબોધ પામ્યા. તેમણે મુધર્મા સ્વામીને કહ્યું કે— ‘ હે સ્વામી ! મને સંસારનો નિસ્તાર કરનારી દીક્ષા આપીને મારો લટાર કરો. ’ મુધર્મા સ્વામીએ કહ્યું કે— ‘ હે દેવાનુશ્રિય ! પ્રમાદ કર નહિ. ’ એ પ્રમાણે શુરુત્ત વચન સાંમઢી તે માતાપિતાની આજ્ઞા લેવા માટે ઘેર આવતાં રાજમાર્ગમાં આવ્યો. ત્યાં ઘના રા-જકુમારો હયિયારોનો અભ્યાસ કરે છે. ત્યાંથી એક લોઢાનો ગોઢો જંબુકુમાર પાસે આવીને પઢયો. જંબુકુમારે વિચાર્યું કે— ‘ જો મને આ ગોઢો લાગ્યો હોત તો હું મનવાંછિત કેવી રીતે કરી શકત ? ’ એ પ્રમાણે વિચારી પાછા વઢી શુરુ પાસે આવી તેણે લઘુ દીક્ષા પ્રહ્ણ કરી; પછી ઘેર આવ્યા, અને માતાપિતાના ચરણમાં પઢીને કહેવા લાગ્યા કે— ‘ હું દીક્ષા લઈશ, આ સંસાર અનિત્ય છે. આ વાજ કુટુંબપરિચારથી શો લાભ છે ? હું તો અંતરંગ કુટુંબમાં અનુરક્ત થયેલો છું, તેથી હું લઢાસીનપણા રૂપી ઘરની અદર વાસ કરીશ અને વિરતિ રૂપી માતાની સેવા કરીશ, યોગાભ્યાસ રૂપી પીતા, શમતા રૂપી ધાવમાતા, નિરાગતા રૂપી

પ્રિય વહેન, વિનય રૂપી અન્નયાથી વધુ, વિવેક રૂપી પુત્ર, સુમતિ રૂપી પ્રાણપ્રિયા. જ્ઞાન રૂપી અગ્રતમોજન અને સમ્યક્ત્વ રૂપી અભય યંદાર—આ કુટુંબમાં મારો પ્રેમ છે. તપ રૂપી અશ્વ ઉપર સ્વારો કરી, માવના રૂપી કવચને ધારણ કરી, અભયદાન આદિ હમરાવો સહિત સંતોષ રૂપી સેનાપતિને અગ્રેમર કરી, સયમના નાના પ્રકારના ગુણ રૂપી સેનાને મજ્જ કરી, ક્ષપકશ્રેણિ રૂપી ગજઘટાથી પરિવૃત્ત થઈ, શુસ્ત્રી આજ્ઞા રૂપી શિરઃચ્રાણ ધારણ કરી, ધર્મધ્યાન રૂપી સ્વરૂપદે મહા દુઃસ્વ દેનારી ઈશી અંતરંગ મોહરાજાની સેનાને હણીઝ. ” આ પ્રમાણેનાં પુત્રના વચન સાંપ્રત્તીને માતાપિતા વોલ્યાં કે—“ હે પુત્ર ! એક વસ્તવ આઠ કન્યાઓને પ્રરણી અમારો મનોરથ પૂર્ણ કરો પછી વ્રત ગ્રહણ કર. ” એ પ્રમાણેનાં પિતાનાં વચનથી તેણે આઠે કન્યાઓની સાથે પાણિગ્રહણ કર્યું; પરંતુ તે મનથી તદ્દન નિર્વિકારી હતો. એક એક કન્યા નવ નવ ક્રોડ સોનામહોર કરીયાવરમાં છાવી હતી, આઠ ક્રોડ સોનામહોર આઠ કન્યાના મોસાલપક્ષ તરફથી આવી હતી અને એક ક્રોડ જંબુકુમારના મોસાલપક્ષ તરફથી આવી હતી. એ પ્રમાણે એકાશી ક્રોડ સોનામહોર આવેલી હતી. અને અઠાર ક્રોડ સોનામહોર પોતાના ઘરમાં હતી. આ પ્રમાણે જંબુકુમાર નવાણું ક્રોડ સોનામહોરના અધિપતિ થયા હતા.

હવે જંબુકુમાર રાત્રિએ રંગશાલા (શયનગૃહ) માં સ્ત્રીઓ સાથે વેઠા છે; પણ તે તેમને રાગવાલી દૃષ્ટિએ જોતા પણ નથી, તેમ વચનથી પણ સંતોષ આપતા નથી. સ્ત્રીઓએ તેને પ્રેમમય વચનોથી ચલિત કરવા માટે ઘણો પ્રયત્ન કર્યો પણ તે ચલિત થયા નહિ. તે સમયે પ્રથમ નામનો ચોર પાંચસે ચોરોથી પરિવૃત્ત થઈ જંબુકુમારના ઘરમાં આવ્યો, તેમણે ક્રોડ સોનામહોર લઈ તેની ગાંમડીઓ વાંધી અને મસ્તકપર મૂકીને નોકલવા લાગ્યા, તે અવસરે જંબુકુમારે સ્પર્શ કરેલા પંચપરમેષ્ટી નમસ્કાર મંત્રના મહાત્મ્યો તે સર્વે ખીંત ઉપર કાઢેલ ચિત્રાની પેઠે સ્થિર થઈ ગયા. ત્યારે પ્રથમે કહ્યું કે ‘ હે જંબુકુમાર ! તું જીવદયાપાલક છે, અભયદાનથી વધારે દુનિયામાં બીજું કોઈ પ્રણ પુણ્ય નથી; અમે જો અહીં પકડાઈ તો પ્રાતઃકાલે કોશિક રાજા અમને સર્વને મારી નાંચશે. માટે અમને છોડી દ, અને મારી પાસે તાલોદઘાટિની (તાલુ હઘાહનારી) અને અવસ્વાપિની (નિદ્રિત કરનારી) નામનો બે વિદ્યા છે તે તુ છે અને તારી સ્તમ્ભિનિ વિદ્યા મને આપે ’ જંબુકુમારે કહ્યું કે—‘ મારો પાસે તો ધર્મકલા નામની એક મોટી વિદ્યા છે, તે જિજ્ઞાસનો બીજી કોઈ વિદ્યાઓ કુલિયા છે. હું તો તુણનો માફક આ સર્વ ધોંગોનો ત્યાગ કરીને પ્રાતઃકાલમાં દીક્ષાગ્રહણ કરવાનો છું. આ ધોંગો

૧ શુદ્ધ કરવા જતાં મસ્તકના રક્ષણ માટે માથાપર મૂકે છે તે લોહનો ઢોપ.

‘મધુવિંદુ જેવા છે.’ પ્રથમે કહ્યું કે-‘ મને મધુવિંદુ પુરુષનું દર્શાત કહો.’ પટ્ટેજી જંબૂકુમાર કહેવા લાગ્યા કે-સાંખ્ય !

“ એક વનમાં સાયથી વિસ્તુટો પહી ગયેલો કોઈએક પુરુષ મટકે છે. એ સમયે એક જગલી હાથી તેને મારવાને માટે સન્મુખ ટોડયો, પટ્ટે તે નાઠો. હાથી તેની પાછળ લાગ્યો. આગલ વાલતાં હાથીના મયથી કૂવાની અંદર રહેલ વહ દુહની જાણના અશ્રય લટને તે કૂવામાં લટકી રહ્યો. કૂવામાં તેનો નીચે પહોંચ્યા દુઃખ કરીને રહેલા એવા બે અજગરો છે. અને ચારે પહલે ચાર મોટા સર્પો છે; હાથમાં પકડેલો વટની જાણા લપર રસથી મરેલો એક મધપુઠો છે. બે હંદરો તે જાણાને કોતરે છે અને મધપુઠામાંથી લટેલી માંસીઓ તેને હંચ માર્યા કરે છે. એ પ્રમાણેના વટમાં પરેલો તે મૂઠ માણસ ઘણે હાંવે વચ્ચત મધપુઠામાંથી દુઃખમાં ટરવત મધુવિંદુ દેવકીને તેના સ્વાદથી પોતાને સુસ્તી માને છે. એ વસ્તુ કોઈએક વિદ્યાધર યાં આણ્યો. તેણે તેને કહ્યું કે-‘ તું આ વિમાનમાં આવ, હું તને દુઃખમાંથી મુક્ત કરું. ’ ત્યારે તે મૂર્ચ માણસે જવાબ આપ્યો કે-‘ એક દુઃખ યોધો, હું આ દુઃખના એક વિંદુનો સ્વાદ લટને આણું છું. ’ તે-સાંખ્યની વિદ્યાધર જાણ્યો ગયો અને તે મૂર્ચ દુઃખ પામ્યો. ”

માટે હે પ્રથમ ! આ વિષયનો વિપાક મધુવિંદુના જંબો છે. આનો સ્વરૂપ એવો છે કે-‘ આ સંસાર સ્ત્રી મોહું જગલ છે, તેમાં જીવ સ્ત્રી વિસ્તુટો પહી ગયેલો રક છે, જન્મ, જરા ને મરણ સ્ત્રી કૂબો છે, તે વિષય સ્ત્રી-જલ્થી મરેલો છે. નારકી ગતિ અને તિરક ગતિ સ્ત્રી બે અજગરો છે, કષાય સ્ત્રી જાણ સર્પો છે, આશુર્ય સ્ત્રી વટની જાણ છે, શુભલ ને કૃષ્ણ પક્ષ સ્ત્રી બે હંદરો છે, મૃત્યુ સ્ત્રી હાથો છે, અને વિષય સ્ત્રી મધપુઠો છે. તેમાં આસ્ત્રક યદ આ જીવ રોગ, શોક, વિયોગ આદિ અનેક સપદ્મોને સહન કરે છે. માટે ધર્મ એજ મોહું સુખ છે, તેવા સુખને આપનાર શુરુ તે વિદ્યાધરની જાણ્યા છે. ’ આ પ્રમાણે મધુવિંદુનું દર્શાત જાણું.

પ્રથમે ફરીથી કહ્યું કે-‘ મર યૌવનમાં પુત્ર સ્ત્રી વિગેરે સઘળાં પરિવારનો ત્યાગ કરવો સ્વચિત નથી. ’ જંબૂકુમારે કહ્યું કે-‘ એક એક જીવને પરસ્પર અનંતીવાર દરેક સંબંધ થયેલા છે, જે કે એક મરવા થયેલા અંદાર નાતરાનો સંબંધ છે. ’ પ્રથમે કહ્યું કે-‘ તે અંદાર નાતરાના સંબંધનું સ્વરૂપ કેવું છે તે મને કહો. ’ જંબૂકુમારે કહ્યું કે-‘ મથુરાપુરોમાં કુવેરસેના નામે વેશ્યા હતી. તેની જ્ઞાપિયો છોકરા ને છોકરીનું યુગલ ઉત્પન્ન થયું. છોકરાનું નામ કુવેરદત્ત રાખ્યું અને છોકરાનું નામ કુવેરદત્તા રાખ્યું. તે યુગલને તેમનાં નામથી અંકિત મુદ્રા પહેરાવો વલ્લમાં ચીંટોં પેટોમાં નાખાને તે પેટાં યજ્ઞના નવોના મવાહમાં વહેતી

કરી. માતાકાઠે તે પેટી સોરીપુર નામના નગરપાસે પહેંચી. ત્યાંનાં વે શેઠીઆ-
 ઑંઈ તે પેટી વહાર કાઠોં એક શેઠે પુત્ર ગ્રહણ કર્યો અને વીજાઈ પુત્રી ગ્રહણ
 કરી. તેઓ યુવાન થતાં કર્મયોગે લગ્નની ગાંઠથી પરસ્પર જોડાયાં. એકઠા સો-
 ગઠાવાળી રમતાં કુબેરદત્તમ્મ પોતાના પતિના હાથમાં પેલી છુદા જોઈ. તેથી
 'આ મારે ભાઈ છે' એમ જાણી તે વિરક્ત થઈ. તેણે સંયમ ગ્રહણ કર્યું. અનુક્રમે
 તેને અષ્ટધિક્ષાન-માત્ર થયું. એવે સમયે કુબેરદત્ત કાર્ય અર્થે મથુરાઈ ગયો ત્યાં
 કુબેરસેના વેદ્યા જે તેની માતા હતી તેની સાથે લપટાયો. તેમને પુત્રપ્રાપ્તિ થઈ.
 કુબેરદત્તા સાધ્વીએ અષ્ટધિક્ષાનથી જાણ્યું કે— 'આ મોટો અનર્થ થાય છે.' તેથી
 તેમને પ્રતિબોધ પમાડવાને માટે તે ત્યાં આવ્યા. તે કુબેરસેનાને ઘરેજ રહ્યા.
 ત્યાં સ્વદન કરતા પેલા વાલક પાસે આવીને કહેવા લાગ્યા કે— "હે વાલક !
 તું કેમ રહે છે? મૌન ગ્રહણ કર. તું મને વહાલો છે. તારી સાથે મારે છ સ્વઘ
 છે. (૧) તું મારો પુત્ર છે, (૨) તું મારા ભાઈનો પુત્ર છે, (૩) તું મારો ભાઈ છે,
 (૪) તું મારો દીપર છે, (૫) તું મારો કાકો છે, અને (૬) તું મારો પૌત્ર છે; અને
 હું બંધુ! તારા પિતા સાથે પણ મારે છ સંબધ છે. (૧) તે મારો પતિ છે, (૨)
 મારો પિતા છે, (૩) મારો હ્યેષ્ઠ બંધુ છે, (૪) મારો પુત્ર છે, (૫) મારો સસરો
 છે, અને (૬) મારો મપિતા (પિતાનો પિતા) છે. તારી માની સાથે પણ મારે છ
 સંબધ છે. [૧] તે મારી શ્રાવત્પત્ની (બોજાઈ) છે. [૨] મારી સપત્ની (બોજ) છે.
 [૩] મારી માતા છે, [૪] મારી સાસુ છે, [૫] મારી વહુ છે, અને [૬] મારી
 માતામહી (બાપની મા) છે." એ પ્રમાણેનાં સાધ્વીનાં વચન સાંભળી પૂર્વ ભવનું
 સ્વરૂપ-જાણી કુબેરસેનાએ વ્રત ગ્રહણ કર્યું, અને સસારના પારને પામી. એ પ્ર-
 માણે હું પ્રમંથની આ સંસારમાં અનંતવાર દરેક સ્વઘ થયેલા છે. કોણ કોણ છે?
 ધર્મ એક પરમ વંધુ છે.

પ્રમથો ફરીથી કહ્યું કે— "હે જંબૂકુમાર! તમે જે કહ્યું તે સ્વઘ છે. પરંતુ જેને
 પુત્ર નથી તેને સદગતિ નથી" એવું પુરાણવાક્ય છે. તેથી ભોગ ભોગવીને અને
 પુત્રને ઘરે મૂકીને પછી સંયમમાં મન રાખવો "જંબૂકુમારે કહ્યું કે— "પુત્ર હોય
 તો સુમતિ થાય અને તે ન હોય તો કુમતિ થાય એવો કાંઈ નિયમ નથી; એ તો
 સંસારી જીવોને કેવલ મોહજન્ય ભ્રમ છે. જેમ મહેશ્વરદત્તને પુત્ર કામમાં આવ્યો નહિ
 તેમ." પ્રમથે પૂછ્યું કે "તે મહેશ્વરદત્ત કોણ હતો?" જંબૂકુમારે કહ્યું કે સાંભલ—
 "વિજયપુર નગરમાં મહેશ્વરદત્ત નામે એક શેઠીઓ હતો. તેને મહેશ્વર નામે
 એક પુત્ર હતો. મહેશ્વરદત્તે પોતાના મરણમયે પુત્રને કહ્યું કે— 'મારા શ્રાદ્ધના

દિવસે એક પાઠાને મારીને તેના માંસથી આપણા સયબ્ધા પરિવારને વૃદ્ધ કરાવે. પછી મહેશ્વરદત્ત મરી ગયો. પુત્રે પિતાનું વચન યાદ રાખ્યું. મહેશ્વરદત્ત મરીને વનમાં પાઠો થયો. મહેશ્વરનો માતા ઘરમાં વહુ મોહ હોવાથી મરીને તેજ ઘરમાં કુતરી થઈ. દૈવયોગથી શ્રાદ્ધને દિવસે તેજ પાઠો આપ્યો. મહેશ્વરની સ્ત્રી અભિચારિણી હતી. તેની સાથે ક્રોડા કરનારા જારપુસ્ત્રને મહેશ્વર મારો જાણ્યો. તે મરીને તેનેજ ઘરે પુત્રપણે હત્યક થયો. તેને છાદ લઢાવવામાં આવે છે. હવે પેલા પાઠાને માણમુક્ત કરવામાં આવ્યો, અને કુટુંબોબોધે તે પાઠાનું માંસ મક્ષણ કર્યું. એવે સમયે શ્રોધર્મઘોષ નામના યુનિ ગોચરોને માટે ત્યાં પધાર્યો. તેમણે મહેશ્વરના ઘરનું સઘટ્ટં ચરિત્ર જ્ઞાનથી જાણીને કહ્યું કે—

મારિતો વહ્નજો જાતઃ પિતાપુત્રેણ ભક્ષિતઃ !

જનની તામ્યતૈ સેયં, અહો મોહવિજુંજિતમ્ ॥

“ જારને મારી નાંચવાથી તે પુત્રરૂપે રૂઢમ [મિય] થયો, પ્રાઠા-શ્રમેલા પિતાને પુત્રે મક્ષણ કર્યો; અને કુતરી થયેલી પ્રાતાને તાઢન કરવામાં આવે છે. અહો ! મોહનો વિલાસ ત્રિચિત્ર છે. ”

એ પ્રમાણેનો શ્લોક સાંભળીને મહેશ્વરે પૂછ્યું કે— ‘ હે સ્વામી ! એ કૈસી રીતે ? ’ સાધુએ સર્વ હકીકત કહી. તે મહેશ્વરે માની નહિ, એટલે કુતરી પાસે શૂસ લવાનો વતાવીને સાધુએ સ્ત્રિશ્વાસ હત્યક કર્યો. મહેશ્વર શ્રાદ્ધ-હોદોત્રે આવક થયો. કુતરીને પણ જાતિસ્મરણ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થવાથી તેણે મિશ્ર્યાલ્કનો સ્વાગત કર્યો અને તે સ્વર્ગે ગઈ. માટે હે પ્રમથ ! પુત્રથી સ્ત્રી કાર્મસિદ્ધિ શ્વાય તો કહે : ” આ પ્રમાણે મહેશ્વરદત્તું દર્શાવે જાણવું.

હવે પ્રમથ કહે છે કે— ‘ હે જંબૂકુમાર ! તું અને આ જિવિતદાન આપે છે તે આ તારં પહેલું પુણ્ય છે, હવે જો આ મારો પરિવાર શ્રેયનથી છુટો પાવ્યો તું પણ તમારો સાથે ચારિત્ર ગ્રહણ કરીશ. ’ એ પ્રકારનો તેનો નિશ્ચય સાંભળીને સમુદ્રથી નામનો મથમ સ્ત્રી-વોહી કે— ‘ તમારા જેવા દુષ્ટ કર્મ-કર્તારાઓને તો ચારિત્ર ઘટે છે ! કુશ્લી મ્રાણીઓ સુસની-અપ્રેધાથી ચારિત્ર-ગ્રહણ કરે છે, પરંતુ સુલી છોકોને સંયમ રૂપે કષ્ટ-અતિષ્ટ છે, અને પ્રાચ્છે કરીતે સ્ત્રીની આરકા મરને માંગનારાજ હોય છે. હે પ્રમથ ! જો આ જંબૂકુમાર તારા કહેવાથી વ્રતને ગ્રહણ કરશે તો એક દાહને પેટે તેને પતાવું પડશે. ’ પ્રમથે કહું કે— ‘ આ દાહી કોણ હતો ? ’ સમુદ્રશ્રી કહે છે કે સાંભલ—

મરુ દેશનાં અંદર એક વગ નામનો પામર વસતો હતો. તે સ્ત્રી કરતો હતો અને કોદ્રા, કાંગ વિગેરે ધાન્ય વાવતો હતો. તે એક દિવસ પોતાની દીકરીને સાસરે ગયો. ત્યાં તેને ગોઝમિશ્રિત માલપુઢા જમાડયા. ત્યાં તેણે શેરડીની અદરથી ગોઝની ઉત્પત્તિ જાણી. તેથી પોતાને ઘેર આવીને તેણે પુષ્પ ને ફળથી સ્ત્રીછેલા ક્ષેત્રને નિર્મૂલ કરી નાંખીને તેમાં શેરડી વાવી. તેની સ્ત્રીએ તેને ઘણો વાચ્યો પણ તે અટક્યો નહિ, આર્પમતિલો થયો. મરુભુમિ હોવાથી પાણી વિના શેરડી તો થઈ નહિ અને પૂર્વજું ધાન્ય હતું તે પણ ગયું. પછી તે પશ્ચાત્તાપ કરવા લાગ્યો કે 'મિષ્ટ યોજનની આશાથી મે પ્રથમજું પાકેલું ધાન્ય પણ ગુમાવ્યું.' તે પ્રમાણે હે પ્રાણવલ્લભ ! તમે પણ પશ્ચાત્તાપ પામશો. માટે પ્રાપ્ત થયેલ સુખનો ત્યાગ કરી અધિક સુખની વાંછા કરવી નહિ.

इति वगपामर दृष्टांत ?.

જંબુકુમારે કહ્યું કે—“ તું જે કહે છે તે સત્ય છે, પરંતુ જેઓ આ લોકના સુખના અભિલાષી હોય છે તેઓ દુઃખ પામે છે. પણ જ્ઞાનથી ઉત્કૃષ્ટ વીજું ધન નથી, શમતા જેવું વીજું સુખ નથી, 'દીર્ઘ કાલ જોવો' એ આશીર્વાદ ઉપરાંત વીજો ઉત્તમ આશીર્વાદ નથી, લોભ જેવું વીજું દુઃખ નથી, આશા જેવું વંધન નથી અને સ્ત્રી જેવી વીજી જાલ નથી. તેથી જે સ્ત્રીઓમાં અતિલુબ્ધ રહે છે તે કાગડાની માફક અનર્થ પ્રાપ્ત કરે છે.” સ્ત્રીએ પૂછ્યું કે—‘એ વાચસ કોણ હતો ?’

જંબુકુમાર કહે છે કે—સૃગુકચ્છમાં રેવા નદીને કિનારે એક હાથી મરણ પામ્યો. ત્યાં વહુ કાગડાઓ મેળા થઈ આવજાવ કરવા લાગ્યા. જેમ દાનશાળામાં બ્રાહ્મણો મળે તેમ ત્યાં કાગડાઓ એકઠા થયેલા હતા. તેમાંથી એક કાગડે તે મરેલા હાથીના ગુદાદ્વારમાં પ્રવેશ કર્યો અને માંસલુબ્ધ થઈને ત્યાંજ રહેવા લાગ્યો. એવામાં ગ્રીષ્મ કાલ આવતાં ગુદાદ્વાર સંકુચિત થઈ ગયું. તેથી કાગડો અંદરજ રહ્યો. વર્ષાઋતુ આવતાં તે હાથીનું શવ પાણીના પ્રવાહમાં તળાયું. ગુદાદ્વાર વિકસિત થવાથી તે વિચારો કાગડો; જહાર તો નીકલ્યો, પણ ચારે દિશામાં પાણીનું પૂર જોઈને ત્યાંજ મરણ પામ્યો. આ દૃષ્ટાંતનો એવો ઉપનય છે કે મરેલા હાથીના કાઠેવર જેવી સ્ત્રીઓ છે, અને કાગડા જેવા વિષયાસક્ત પુરુષ છે, તે સંસારરૂપી જઠ્ઠામાં બુઢે છે, વિષયના અતિશય લોભથી તે શોકને પામે છે.

इति काक दृष्टांत २.

હવે વીજી સ્ત્રી પદ્મશ્રી કહેવા લાગી કે—‘ હે પ્રિય ! અતિ લોભથી મનુષ્ય વાન

रनी पेठे दुःख पामे छे. ' मभव चोरे कहुं के- ' ते वानरतुं दृष्टांत कहो. ' पद्मश्री कहे के सांभळो-

एक जंगलमां काइ वानरतुं जोइ सुखे रहेतुं इतुं. एक दिवस देवाधिष्ठित पाणीना घरामां ते जोडाभांथी वानर पढ्यो एटळे तेने मनुष्यपणुं प्राप्त थयुं ते जोइ वानरो पण पढो एटळे ते पण मनुष्यणी थइ. पछी वानरे कहुं के- ' एरु- वार आ घरामां पढवाथी मनुष्यत्व प्राप्त थयुं छे तेथो जो बीजोवार पढोए तो देवत्व प्राप्त थाय. ' तेनी स्त्रीए तेने तेम करतां वार्यो छतां ते पढ्यो, तेथी ते पाछो वानर थइ गयो. ए समये कोइ राजा त्यां आव्यो. ते पेळी दिव्य रूप- वाळी ह्योने पोताने घरे छइ गयो. वानर कोइ मदारीना हाथमां पढ्यो, ते मदारीए तेने नृत्य शीलव्युं. ते वानर नृत्य करतो सतो एकदा राज्यद्वारे आव्यो. त्यां पोतानी स्त्रीने जीइ ते अति दुःखित थयो.

इति वानर दृष्टांत ३.

जंबूकुमार कहेछे के-हे पिये ! आ जीवे अनंतोवार देव संबधो भोगो पण भोगवेळा छे परंतु ते तप्त थयो नथी तो आ मनुष्यनां सुख तो शी गणत्रीमां छे ? जेम एक कवाडी कायला पाडवा माटे वनमां गयो हतो. त्यां मध्यान्हकाळे अति तृषित थवाथो तेणे बघां जळपात्रां पोने खाली कर्यां, तोपण तेनी तृषा मटी न्हों. पछी ते एक झाडनी छायांमां सुतो, अने तेणे स्वप्नमां सवे समुद्रो ने नदीओतुं जळ पोथुं तो पण ते तृप्त थयो न्हों. छेवट एक भागमां रहेळ कादवयी मळेळुं जळ पोवा मांडयुं पण कांइ तृप्त थयो न्हि. समुद्रजळथी तृप्ति न थइ- तो कीचडवाळा जळथी तृप्ति क्यांथो थाय ! अहीं समुद्रजळ जेवा देवना भोगो छे, अने कादवना जळ जेवा मनुष्यशरीरना भोगो छे एम जाणवुं.

इति कवाडी दृष्टांत ४.

हवे श्रीजी पयसेना स्त्रीए कहुं के- 'सहसा कार्य करवाथी नूपुर पंडिता- नी पेठे पञ्चात्ताप थयो ' मभवे कहुं के- 'नूपुर पंडितातुं दृष्टांत कहो. ' तेणे ते दृष्टांत कहुं. ' तेना उपर जंबूकुमारे विद्युन्माळीतुं दृष्टांत कहुं, जेणे मातंगीना संगथी वधी विद्या शुभावी हवी. ते दृष्टांत आ प्रमाणे—

आ भरतक्षेत्रमां कुशवर्धन गाममां विप्रना कुळ्यां विद्युन्माळी ने मेघरथ नामे वे भाइओ उत्पन्न थया हता. एक दिवसे तेओ वणमां गया हता, त्यां तेमने कोइ विद्याघरे मातंगो नामनो विद्या आपी. विद्याघरे तेमने कहुं के- 'ते मातंगी देवी भोगनी मार्येना करस्ये, पण जो तमे मननी स्थिरता राखस्यो अने

१ आ दृष्टांत परिच्छिष्ट पर्वाधिथी जाणी लेवुं, अहीं आप्णुं नथी.

ચલિત થયો નહિ તો વિદ્યા સિદ્ધ થશે. પછી વંને માઈઓ વિદ્યા સાધવા શેઠા. તેમાં એક વિદ્યુન્માલી વિદ્યવલ મનનો હોવાથી ચલિત થયો, અને ઘીજો મેઘવય શુરુનું ચચન યાદ રાખીને ચલિત થયો નહિ તેને વિગા સિદ્ધ થઈ અને હ માસ-માં પુષ્કલ ઘન પ્રાપ્ત થયું; વિદ્યુન્માલી દુઃખી થયો આ દૃષ્ટાંત કહીને જંબુકુમારે કહ્યું કે—માતંગી સદૃશ મનુષ્ય સ્ત્રીના મોગો છે, તેથી વહુ સુલના અર્થી પુરુષોએ તેનો ત્યાગ કરવો યોગ્ય છે.

इति विद्युन्माली कथा ५-६.

ચોથી કનકસેના નામની સ્ત્રી વોળીં કે—‘હે સ્વામી! જી અમે માતંગી સદૃશ હતા તો તમે જા માટે પરણ્યા ! હુંવે પાણી પીને ઘર પૂછવું તે ઘટિત જથી. વહી હે સ્વામી ! અતિલોભથી તમે પેલા કળવીની પેટે પશ્ચાચાપ પામશો.’ તે દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે—

સુરપુર નગરમાં એક કળવી વસતો હતો, તેણે પોતાના સ્વેતરમાં સ્વેદ કરી હતી. તેથી રાત્રિએ પક્ષી હડાહવાને માટે તે શંસ વગાડતો હતો એક દિવસે ચોરો ગાયોનું ઘણ લઈને તે ક્ષેત્ર પાસે આવ્યા. તેવામાં શંસનો ધ્વનિ સાંપ્રલોને તેઓ મંચાક્રાંત થઈ ગયા. પટલે ગાયોને હોહોને નાંસો ગયા. પેલો કળવી તે ગાયો વેચીને સુલો ગયો. એ પ્રમાણે ત્રણવાર વન્યું. એક દિવસ તે ચોરોએ કળવીની તમામ ફકીકત જાપી, પટલે તેઓએ ત્યાં આવીને કળવીને શાંધ્યો અને પ્રહારથી સીધો કર્યો. એ પ્રમાણે હે સ્વામી ! અતિલોભી પ્રાણો દુઃખ પામે છે.

इति शंख वगाडनार कण्वीनुं दृष्टांत ७.

જંબુકુમાર કહે છે કે—‘ અતિ કામની લાલસાવાળા મનુષ્યો વાનરની પેટે વંધન પ્રાપ્ત કરે છે. તે વાનરનું દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે—

એક વાનર ગ્રીષ્મ ઋતુમાં વૃષાતુર થવાથી જલની ખાંતિએ ધીકળા જલવગરના ક્ષીચઈમાં પહચો. જેમ જેમ શરીરની હપર કોચઈનો સ્પર્શ થતો ગયો તેમ તેમ ઠંડો લાગતો ગયો, તેથી તેણે આશું શરીર કાઢવથી લીંપ્યું; પણ તેથી તેની વૃષા ગઈ નહિ; અને સૂર્યના તાપથી જ્યારે કાઢવ સૂકાયો ત્યારે તેને શરીરે ઘણી પીઠા થઈ. તેથી રીતે હે પ્રિયે ! ત્રિષયસુલ રૂપી કોચઈથી હું મારા શરીરને લેપન કરોશ નહિ.

इति वानर दृष्टांत-८.

હુંવે માંચમી સ્ત્રી નમસેના કહેવા લાગી કે—‘હે સ્વામી ! અતિલોભ ન કરવો અતિલોભથી શુદ્ધિ નહ થાય છે. તે હપર સિદ્ધિ અને શુદ્ધિનું દૃષ્ટાંત છે.’ તેણે

सिद्धि बुद्धिजं दृष्टांत' कहुं. ते सांभळी जंबूकुमारे उत्तर आप्यो के- 'हे प्रिये ! बहु कहेवाथी पण जातिवत्त घोडानी पेठे हुं अबळे मार्गे चालनार नथी. ' ते जातिवत्त घोडानुं दृष्टांत आ प्रमाणे छे—

वसंतपुर नगरमां जितशत्रु नाभे राजा राज्य करतो हतो. तेने घेर एक घोडो हतो. ते घोडो तेणे जिन्दत्त नामना श्रावकना घरे राखेलो हतो. ते घोडो अनेक सारां लक्षणवाळो होवाथी एक दिवसे कोइ पल्लीपतिए तेने उपाडी लाववा माटे पोताना एक सेवकने भोकल्यो. तेणे खानर पाडीने ते घोडाने वहार पन्नदयो, परंतु ते घोडो उन्मार्गे चालतो नथी. तेणे घणो मयास कर्यो, पण तेणे अनुभवेला रोगमार्गे शिवाय ते अन्य रस्ते कोइ रीते चाल्यो नहि, एटलामां शेठे जागी वधाथी ते जाप्युं एटले चोरने वांधीने घोडो छइ लीघो. पछी चोरने पण मुक्त कर्यो. एवी रीते हे प्रिये ! हुं पण घोडानी पेठे शुद्ध संयम रूपी मार्गेने छोडी चोरो समान जे तमे तेनाथी आकर्षण करांतो कुमार्गे वडश नहि.

इति घोटक दृष्टांत ९-१०

हवे छद्दी स्त्री कननश्री कहेवा लागो के- ' हे स्वामी ! तमे अति हठ करो छो ते युक्त नथी. समजु मनुष्ये आगापी काळनो विचार करवो जोइए ब्राह्मणना छोकरानी पेठे गधेडानुं पूछहुं पकडी राखवुं न जोइए. ' प्रभवे कहुं के- ए द्विज कोण हतो ? '

कनकश्री कहे के सांभळो-एक गाममां एक ब्राह्मणनो पुत्र हतो ते घणो मूर्ख हतो. तेने तेनी माताए कहुं के- ' पकडेळुं छोडी देवुं नहि ए पण्डितनुं लक्षण छे. ते मूर्खाए पोतानी मानुं वचन मनमां पकडी राख्युं. एक दिवस कोइ कुंभारनो गधेडो तेना घरमांथी भाग्यो. कुंभार तेनो पछवाडे दोडयो. कुंभारे पेला ब्राह्मणना छोकराने कहुं के- ' अरे ! आ गधेडाने पकड, पकड. ' ते मूर्खाए गधेडानुं पूछहुं पकड्युं अने गधेडो पगनो लातो मारवा लाग्यो, तोरण तेणे पूछहुं मूर्खुं नहि. एटले लोको कहेवा लाग्या के- ' अरे मूर्ख ! पूछहुं छोडी दे. त्यारे पेला छोकराए कहुं के- ' मारो माताए मने एवी शिखामण आपो छे के पकडेळुं छोडवुं नहि. ' आ प्रमाणेना कदाग्रहथी ते मूर्ख कष्टप्राप्त्यो.

इति विप्रपुत्र दृष्टांत ११

जंबूकुमार कहे छे के 'तमोए जे कष्टु ते वरोवर छे, परंतु तमे वधोओ खरजेवो छो, अने तमारो स्वीकार करवो ए खरना टूँछडाने पकडो राखवा वरावर छे. वळो

१ सिद्धिबुद्धिजं दृष्टांत पण परिशिष्ट' पर्वाधियी जाणी लेवुं.

तमे लज्जावान होवाची मने आजुं दाय्य होलखुं ललित नथी. आवा शब्दो तेज सहन करे छे के जेने रहेवातुं टेकाणुं होतुं नथी. वळी जे ब्राह्मणनी माफक पूर्वभवना करजदार होय छे तेज दास थइने तेना घरमां रहे छे. ते विप्रतुं दृष्टांत आ प्रमाणे—कुवास्थल नगरमां एक क्षत्रिय रहेतो इतो. तेने घेर एक घोडी इतो. तेनी चाकरीने माटे एक माणसने तेणे राख्यो इतो. ते माणस हमेशां घोडीने माटे जे खावानुं आपे तेमांथो पोते छुप्त रीते खाइ जतो इतो. खोराक ओछो मळवाथो घोडी शरीरे दुर्वळ थइ गइ अने छेवटे मरी गइ. मरण पावोने तेज नगरने विषे वेइया थइ, अने पेळो माणस विभ्रुकुळमां उत्पन्न थयो. एक दिवसे तेणे ते वेइयाने जाइ, एटळे पूर्वभवना ऋणने लइने ते वेइयाना घरमां दास थइने रळो अने तेना घरतुं कामकाज करवा लाग्यो. ए दासनी जेम हुं पण भोगनी आशाथो दास थइने घरमां रहोन्न नहि.

इति विप्रकथा १२.

हचे सातमी स्त्री रूपशो कहेवा लागी के—‘ हे स्वामी ! हमणां तमे अमादं कहेतुं नहि मानो, पण पळीथो मासाहस पक्षीनी पेठे तमने संकट प्राप्त थये त्यारे समजशो; ’ ते कथा आ प्रमाणे—

एक मासाहस नामतुं पक्षी कोइ वनमां रहेतुं इतुं. ते पक्षी सुतेळा बाघना मुखमां पेसो, तेनी दाढमां वळगेल मांसनो पिंड लइ बहार आवीने एम बोलतो इतो के—‘ आ प्रमाणे कोइए साहस करवुं नहि. ’ आटळा उपरथीज तेतुं नाम ‘ मासाहस ’ पड्युं इतुं. ते पक्षी जे प्रमाणे कहेतो इतो ते प्रमाणे पोतेज वर्ततो नहोतो. तेने बीजां पक्षीओए घणो वार्यो छतां पण मांसमां लोलुप थइने ते बारवार बाघना मुखमां पेसतो इतो. एम करतां करतां बाघ जाग्यो एटळे ते पक्षीनो कोळीओ करी गयो.

इति मासाहस पक्षी दृष्टांत १३.

जंबूकुमार कहे छे के ‘ हे स्त्रीओ ! आ संसारमां कोइ रक्षण करनार नथो, मात्र जेम प्रधानने तेना धर्ममित्रे सहाय आपी तेम धर्ममित्र शरणे जतां रक्षण करेछे. ’ ते दृष्टांत आ प्रमाणे—

सुग्रीवपुर नामनां नगरमां जितशत्रु नामे राजा इतो. तेने सुबुद्धि नामे मंत्री इतो. ते मंत्रीने ऋण मित्रो इता. एक नित्यमित्र, बीजो पर्वमित्र अने त्रिजो प्रणाममित्र. राजा तरफथी कष्ट प्राप्त थये आ ऋण मित्रमांथो प्रण ममित्रे केवो रीते रक्षण आपो प्रधानने वचाव्या तेना कथा परिशिष्ट पर्वादिथी जाणी छेवी.

ते त्रण मित्रनो वपनय आ प्रमाणे छे—

नित्यमित्रसमोदेहः स्वजनाः पर्वसञ्ज्ञिजाः

जुहारमित्रसमोद्देश्यो धर्मः परमर्वाधवः ॥

“ नित्यमित्र समान देह छे, पर्वमित्रो समान सर्गाविदाहार्ता छे, अने प्रणायो मित्रनी जेवो परमवंधु धर्म छे. ” ते धर्म प्राणीने अंतसमये पण सहाय करेछे, अने जे कोइ तेतुं शरण करे तेने कुशलक्षेमे स्वस्थाने पहुँचाडे छे. ”

इति त्रणमित्र दृष्टांत १४

हचे आठमी स्त्री जयश्री जे धनावह शेटनी पुत्री हती ते जंबूकुमारने कहेवा छागी के—‘ हे स्वामी ! आ वचनविवाद शो ? अमने नवी परणेछीओने आपनी साबे विवाद करवो युक्त नथी; परंतु तमे आबी कल्पित वार्ताओ कहेवा बडे अमने शामाटे ठगो छे ? आपे जे जे कथाओ कहो छे ते तमाम कल्पित छे; अने जेवी रीते एक ब्राह्मणनी पुत्रीए कल्पित वार्ताओथी राजातुं मन रंजित कर्युं इतुं तेवी रीते तमे पण कल्पित वार्ताओथी अमरुं मन रंजन करो छो. ते समये सर्व स्त्रीओए कहुं के— ‘ हे जयश्री ! ते कथा कहे के जे सांभळीने आपणो प्रियतम घरमां रहे. ’ जयश्री कहे छे के सावधान थइने सांभळो—

भरक्षेत्रमां ‘लक्ष्मीपुर’ नगरमां ‘नयसार’ नामनो राजा राज्य करतो हतो. ते राजा गीत, कथा, नाटक, प्रहेलीका, अंतर्लापिका विगेरेमां घणोज निपुण हतो, अने नवीन कथा सांभळ्यामां घणो रसिक हतो. ते दररोज माणसो पासेथी नवी नवी वार्ताओ सांभळतो हतो. एक दिवस ते राजाए नगरमां दूदरो पीटावो के ‘सर्व लोकोए वारा प्रमाणे राजा पासे आवीने नवीन नवीन वार्ता कहेवी. ’ ए प्रमाणे राजानी आज्ञा थवाश्री जे माणसनो वारो आवेछे ते राजा पासे अइ वार्ता कहेछे. एम करता एक दिवस एक ब्राह्मणनो वारो आव्यो. ते ब्राह्मण अति मूर्ख होवाथी तेने वार्ता कहेतां आवडती नहोती. तेने एक कन्या हती, तेघणी चतुर हती. तेणे पोताना पिताने कहुं के—‘आपं निश्चित रहो, हुं राजा पासे जइने नवी वार्ता कहीब. ’ पछी ते राजा समीपे गइ. राजाए ते बाळाने कहुं के—‘जे वार्ताओ मरुं मन रंजन थाय एवी वार्ता कहे. ’ ब्राह्मणपुत्रीए कहुं के—‘ हे राजन ! हुं मारी अनुभवेलीज वार्ता कहुं छुं ते सावधान थइने सांभळो—हुं पिताना घरमां नव-यौवनवती थइ, त्यारे मारा पिताने योग्यकुळमां उत्पन्न कर्येछा एक ब्राह्मणपुत्र साथे मारो विवाह कर्यो. जेनी साथे मारो विवाह कर्यो ते भर्ता मरुं रूप जोवाने माटे मारे

વેર આપ્યા. તે વચ્ચે મારાં માતાપિતા ક્ષેત્રમાં ગયાં હતાં હું ઘરે એકલી હતી. મેં સારી રીતે જ્ઞાન ભોજન આદિથી તેને અતિ સંતુષ્ટ કર્યો. પરંતુ મારું અદ્ભુત રૂપ જોઈ તે કામજ્વરથી અતિ પીડિત થયો. તે પલંગ ઉપર બેઠો સતો પોતાનું અંગ મરડે છે, પ્રીતિ-વાર્તા વચનો વોળે છે, અને વારેવારે મારા તરફ દ્રષ્ટિ કરે છે. મેં તેનો અભિપ્રાય જાણ્યો એટલે મેં તેને કહ્યું કે—‘હે સ્વામી ! હતાવડ ન કરો, પાણિગ્રહણ વિના વિષયાદિ કૃત્ય થતું નથી. ઘણો શુભ્યો માણસ શું વે હાથે સ્વાવા લાગે છે ? માટે હમણાં વિષયસેવન યોગ્ય નથી.’ એણે મારું વાક્ય સાંભળીને ઘણાજ કામાતુર થયેલા મારા પતિને પડસામાં શૂલ ઉત્પન્ન થયું, અને તે વ્યાધિથી તે મરણ પામ્યો. તેને મેં મારા ઘરની અંદર દાદી દીધો. તે વાત કોઈ જાણી નહિ. મારાં માતાપિતા પણ તે વાત જાણી નહિ. હે રાજન્ ! મારી અનુભવેલી આ વાર્તા મેં કરેલી છે.’ તે વાર્તા સાંભળીને રાજા ઘણી સુશીલ થયો અને તે કન્યા પોતાને ઘરે આવી. જયશ્રી કહે છે કે—“જેવી રીતે કલ્પિત વાર્તાથી તે વિપ્રવૃત્તિ રાજાનું મજ રત્ન વધું તેવી રીતે તમે પણ અમારા મનને રાજિત કરો છો, પરંતુ એ પ્રવૃત્તિ મિથ્યા છે; માટે જે માણસ વિચારીને પગલું મૂકે છે તે માણસની છાજ રહે છે. તેથી હે સ્વામી ! ભોગો ભોગવી પછી ચાગિત્ર ગ્રહણ કરીને પોતાનો અર્થ સાધવો ઉચિત છે.”

इति ब्राह्मणपुत्री दृष्टान्त १५

ए प्रमाणे जयश्रीं वाक्य सांभलीने ङ्बुङ्गुमारु कहुं—‘हे जयश्री ! मोह्यी आ तुर थयेला प्राणीओ अधर्ममां धर्मबुद्धि मानी विषयोने स्थापित करी कर्मों वांघे छे, परंतु ए विषयो घणज खराव परिणामवाला छे. विषयी पण विषयो अधिक छे ए खरेखरं छे. कारणके विषयो तां मरेलाने पण मारे छे. कहुं छे के—

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं

शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रं ।

वस्त्रं च जीर्णशतखंडमयी च कथा

हाहा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥

“સ્વામાં ભિક્ષાનું ભોજન—તે પણ નોરસ અને એકવાર, સુવામાં માત્ર પૃથ્વી, પરિ-જનમાં માત્ર પોતાનોજ દેહ અને હુંગડામાં જીર્ણ અને તદ્દન ફાટેલી ગોદદી—એવી સ્થિતિવાલા માણસને પણ હા હા હા સ્થિતિ છે ! વિષયો છોડતા નથી.” તેથી હે સ્ત્રીઓ ! જો જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, વિધોગ ને શોક આદિ જનુઓ મારી સમીપે આવે નહી

तो हुं तमारी साथे भोग भोगजुं. ते शिवाय जो तमे मने बच्चास्कारे घरमां राखसो तो शुं रोग आदिथी रक्षण करवामां तमारी शक्ति छे?' त्यारेस्त्रीओए कहुं के-हे स्वामिन्! एवो समर्थ कोण होय के जे संसारस्थितिने अटकावी शक्ते ? त्यारे जंबूकुमारे कहुं के-जो तेमां तमे असमर्थ छो तो अशुचि वस्तुथी भरेली अने मोहनी कुंडी रूप जे तमे तेना शरीरमां हुं प्रीतिवाळो थतो नथी. कारणके स्त्रीओनो जन्म अनंती पापनी राखिथी प्राप्त थाय छे. कहुं छे के-

अर्थात्ता पापरासीओ, जया उदयमागया ।

तया दृग्धीक्ष्णं पत्तं, सम्मं जाणाहि गोयमा ॥

“ हे गौतम ! अनंती पापनी राशिओ ज्यारे उदयमां भावे छे त्यारे स्त्रीपणुं प्राप्त थाय छे एम वरावर जाणजे ” वळी कहुं छे के-

दर्शने हरते चित्तं स्पर्शने हरते बलं ।

संगमे हरते वीर्यं, नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥

“दर्शन थतां चित्तने हरे छे, स्पर्श थतां बलने हरे छे, संगम थतां वीर्यने हरे छे-एवी रीते नारी साक्षात् राक्षसी छे.” माटे हु ललितांगकुमारनी पेटे मोहमां निमग्न थयेछो नथी, के जेथी अपवित्र वस्तुना कूवा रूप आ भवकूपनी अंदर पडुं. त्यारे स्त्रीओए कहुं के-हे स्वामिन् ! ललितांगकुमार कोण हतो ? के जेने आपे उपनय (दृष्टांत) तरीके ग्रहण कर्यो छे. जंबूकुमारे कहुं के सांभळो-

वसंतपुर नगरमां ‘शतप्रभा’ नामे राजा राज्य करतो हतो. तेने ‘रूपवती’ नामे पट्टराणी हती. ते घणी रूपवती, यौवन आदि गुणोथी युक्त अने मोहराजानी राजधानी जेथी अति मोहक हती. ते राजाने घणी बहाली हती परंतु व्यभिचारिणी हती. एक दिवसे ते रूपवती राणी वारीमां बेसी नगरकौतुक जोती हती; ते समये ‘ललितांग’ नामना अति रूपवान युवकने मार्गें जतां तेणे जोयो. तेजुं रूप जोइ मोह उत्पन्न थकथी ते अति कामातुर थड गइ, तेथी तेणे दासीने कहुं के-‘अरे ! तूं आ युवकने अहीं छाव. ’ दासीए जइने ललितांगने कहुं के-‘तमने मारी राणी वोलावे छे, माटे मारी साथे मारी राणीना मकाने पधारो.’ ते पण विषय रूपी भिक्षाने माटे भटकनार व्यभिचारी हतो तेथी ते राणीना महेळमां गयो. ललितांगने जोइ हावभाव विलास आदिने विस्तारती, आळस मरडती, हस्तना मूळ भागने वतावती अने नाभिमेंडळने वस्त्ररहित करती राणीए तेना मनने बक्ष कर्युं. कहुं छे के-

स्त्री कांतं वीक्ष्य नाभिं प्रकटयति मुहुर्विक्षिपति कटाक्षान्,
 दोर्मूलं दर्शयन्ती रचयति कुसुमापीडमुत्क्षिप्तपाणिः
 रोमाञ्चस्वेदजृम्भाः श्रयति कुचतटं संसिवह्नं विधते,
 सोल्लंठं वक्तिं नीर्वीं शिथिलयति दशत्योष्टमंगं मनक्ति ॥

“ स्त्री पोताना प्रियपुरुषने जोइ वारंवार नाभि बतावे छे, कटाक्षो फेंके छे, हाथना मूळ बतावे छे, हाथ उंचा; करी कामदेवने-उत्पन्न करे छे, रोमांच, स्वेद अने बगसां धारण करे छे, जेना-उत्प्ररयी वल्ल खसी जाय छे एवा स्तनोने देखाडे-छे, पीठतापूर्वक बोले छे, बल्लग्रंथीने शिथिल करे छे, ओष्ठने दसे छे अने अंगने भांगे छे. ”

तेतुं तेतुं स्वरूप जोइ कामयी उल्लंठता अंगवाळो छलितांग तेनी साथे भोग भोग-ववा लाग्यो; विषययी चेतना हराइ जवायी तेणे निःशंकपणे तेनी साथे भोग भोगव्या. तेवामां ते राणीनो पति राजा आव्यो. ते समये वारंणा पांसे उभेळो दासीना घुलवा राजातुं आगमन सांभळीने भययी विहळ बनेली राणीए ते छलितांगने अपवित्र वस्तु-यी भरेळा कूवानी अंदर उतार्यो; अने आवेळा राजानी साथे हास्यविनोद विगेरेनी वार्ता करवा लागी.

अशुचि कूपमां रहेळो छलितांग पण क्षुधा अने तृषानी पीडा अत्यंत सहन करवा लाग्यो. कारणके त्यांते तदन परवच पडेळो इतो. ते मनमां विचार करवा लाग्यो-के-
 ‘ अकुत्य करनार मारा विषयलंपटर्पणाने विकार छे ! ’ ए प्रमाणे तेवी स्थितिमां रहेता तेने घणा दिवसो वीति गया. राणी पण तेने भूळी गइ. ‘ स्त्रीओना कृत्रिम प्रेयने विकार छे ! ’ छलितांग त्यां रहेतां मृत्यु-तुल्य थइ गयो. अनुक्रमे वर्षांक्रतुमां ते कूवो-जळयी भराता अपवित्र जळना भवाहमां खंचाइने ते बहार नीकळ्यो अने पोताना आस जेनीने घळ्यो. तेणे पोतानी सवें हकीकत तेओने कही. ते विषयाभि-कापयी विमुक्त थयो. केवळ एक दिवस घरमां रहेवांथी तेना करीरनी स्थिति सुधरी. ते स्वस्थ थइने बहार नीकळ्यो एटळे फरीयो राणीए तेने दीठे अने ओळख्यो. तेणे दासीने तेडवा भोकेली एटळे छलितांगे कंबुं के-‘ हुं फरीयी एतुं करीव नहि, विष-यमां आसक यवायी मे बहु पीडा भोगवी छे. ’ ते सांभळी दासी पाळी बळो. पळी ते विषयमांथी विरक्त थइने सुखी थयो. घाटे हे स्त्रीओ ! जो हुं विषयमां आसक थाउं तो छलितांगकुमारनी पेटे हुं पण दुःखी थाउं. तेथी विषयमां प्रीति राखवी मने योग्य नयी.

सम्यक्त ने शील रूप से तुंबडावडे आ भवसमुद्र मुखोतरीशकाय छे; तेवा भे तुंबने धारण करनारो जंबूकुमार स्त्री रूपी नदीमां केम बुडे ? ”

इति ललितांग दृष्टांत-१६.

ए प्रमाणे जंबूकुमारे घणो उपदेश दीयो. एम परस्परना उत्तर प्रत्युत्तरमां रात्रि व्यतीत थइ. एटछे स्त्रीओ पण बैराग्यरसयो पूर्ण थइ गइ. तेमणे कहुं के- ' हे स्वामी व्रत पाळवां ते हुष्कर छे, वाकी आ बैराग्यरस तो अनुपम छे. जेओए आ बैराग्यरसने सारी रीते सेवेछे छे तेओए मुक्तिपद अलंकृत करेछुं छे. ' ए प्रमाणे कहेवा वडे स्त्री-ओए जंबूकुमारतुं वचन मान्य कर्युं.

ते समये प्रभवे कहुं के- " मारुं पण मोहुं भाग्य के में चोर छतां पण आवी बैराग्यनी वार्ता सांभळी. आ विषयने अभिलाष महा विषम छे. विषयराम तजवो घणो हुष्कर छे. जेणे युवावस्थामां पण इन्द्रियोने वश करी लोषी-छे एवा तमने धन्य छे ! " जंबूकुमारे पण तेनो उद्धार करवा माटे तेने घणो धर्मोपदेश आप्ये. एटछे बैराग्ययुक्त थइ प्रभव चोरे कहुं के- ' तमे मारा उपर घणो उपकार कर्यो छे. हुं पण तमारी साथे व्रत ग्रहण करीश. '

अनुक्रमे मातःकाळ थयो, एटछे कौणिक राजाए तमाय हकीकत सांभळी; पछी तेमणे जंबूकुमारने गृहवासे राखवा माटे बहु उपायो कर्यां, पण जंबूकुमारे मनमां धारण कर्यां नहि. पछी सवारमां मोटा उत्साह पूर्वक साते क्षेत्रमां पुष्कळ द्रव्य वापरी कौणिक राजाए कर्यो छे दीक्षामहोत्सव जेमनो एवा प्रभव आदि पांचसे चोरो, पोतानां मातापिता, आठे स्त्रीओ अने तेओनां मातापिता सहित जंबूकुमारे, श्री सुधर्मा स्वामी पासे चारित्र ग्रहण कर्युं. अनुक्रमे द्वादशांगीतुं अध्ययन करी, चौद पूर्ववारी थइ; चार ज्ञान प्राप्त करी श्री सुधर्मा स्वामीनी पाटना भूषण रूप थया. त्यार पछी घातिकर्मनो क्षय करी, केवलज्ञान मेळवी मोक्षपदने पाम्या.

धन्योऽयं सुरराजराजिमहितः श्रीजंबूनामामुनि ।

स्तारुपथेऽपि पवित्ररूपकलिते यौनिर्जिगाय स्मरम् ।

त्यक्त्वा मोहनिबंधनं निजवधूसंबंधमत्यादरान्

मुक्तिस्त्रीवरसंगमोद्भवसुखं लेभे मुदा शाश्वतम् ॥

" अनेक इंद्रोयी पूजायेल श्री जंबू नामना मुनिने धन्य छे; कारणके तेमणे पवित्र रूपवाळी युवावस्थामां पण कामदेवने जीत्यो अने मोहना मूळ कारणभूत एवा

નિજ વધૂના સંવંધને પળ છોડી દઈ અતિ આદરથી શુક્તિ રૂપી સ્ત્રીના શ્રેષ્ઠ સંગમથી
હત્પન્ન થયેલા શાશ્વત સુત્ર (મોક્ષ) ને હર્ષપૂર્વક મેઢ્ઢ્યું. ”

ૡ પ્રમાણે જંબૂકુમાર જેવા પુરુષો ક્ષણભંગુર વિષયસુત્રોને છોડી દઈ શાશ્વત સુત્ર-
માં રમણ કરે છે અને તેમની પ્રતીતિથી પ્રભવ જેવા સુલભબોધો જીવો પળ સંસારસાગર
તરવાને શક્તિવાન થાય છે. ૡ પ્રમાણે સાહત્રીશમી ગાથાનો સંવંધ જાણવો.

इति जंबूकुमार चरित्र.

दीर्शति परमघोरावि, पवरधम्मप्यज्ञापडिबुद्धा ।

जह सो चिवाइपुत्तो, पडिबुद्धो सुसुमाणाए ॥ ३७ ॥

અર્થ:—“ પરમઘોર, પ્રવર રૌદ્રધ્યાનયુક્ત ૡવા પળ ઘળા પ્રાણીઓ પ્રવર-વિશિષ્ટ
ૡવો જે ધર્મનો પ્રભાવ તેથી પ્રતિબોધ પામેલા દેશ્યાય છે. જેમ સુસમાના દષ્ટાંતમાં તે
ચિલાતીપુત્ર પ્રતિબોધ પામ્યો તેમ. ” ૩૮.

અહીંવર્શનના મહાત્મ્યથી મિથ્યાત્વ નિદ્રા દૂર જવાને સ્ત્રીધે ઘનાવહ શેઠની ઢાસોને
પુત્ર, અતિરૌદ્ર કર્મનો કરનારો ચિલાતીપુત્ર પ્રતિબોધ પામ્યો. તેહું દષ્ટાંત આ પ્રમાણે-
ચિલાતીપુત્રકથા.

પ્રથમ થોહું ચિલાતીપુત્રના પૂર્વભવહું સ્વરૂપ કહે છે.

ક્ષિતિપ્રતિષ્ઠિત નગરમાં ‘યજ્ઞદેવ,’ નામે બ્રાહ્મણ વસતો હતો. તે વ્યાકરણ,
-કાવ્ય, તર્ક અને મિમાંસાદિ શાસ્ત્રોના વિચારમાં ઘણો ચતુર હતો અને અનેક
શાસ્ત્રોનો પારગામી હતો. તેણે ૡવો પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે ‘જે મને વાદમાં જીતે
તેનો હું શિષ્ય થાહં. ’ ૡ પ્રમાણે પ્રતિજ્ઞાને ઘારણ કરનાર યજ્ઞદેવે વાદમાં ઘળા
પ્રતિવાદીને જીત્યા. ૡક દિવસ ૡક નાના સાધુૡ તેને જીતો સ્ત્રીધો. ૡટહે સત્ત્વ
પ્રતિજ્ઞ તે યજ્ઞદેવે તે સુહૃદ્ક પાસે ઢોક્ષા સ્ત્રીધી અને ભાવયુક્ત થઈ વ્રત પાઢ્ઢા
લાગ્યો; પરંતું જાતિયુગને સ્ત્રીધે તે દેહવહ્ન આદિની મહિનતા રૂપ પરીસહને નિંદે
છે. તે વિચારે છે કે ‘અરે ! આ માર્ગમાં સર્વ સારું છે પરંતું સ્નાન આદિનો
અભાવ છે તે મોહું જુલુપ્તાસ્થાન છે. ’ ૡ પ્રમાણે મહાપરીસહને સહન કરવાને
અશક્ત સ્ત્રીધાં પળ ચારિત્ર્યમંગલા મયથી તે સ્નાન આદિ વહે દેહાદિની શુદ્ધિ કરતો નથી.

એક દિવસે ઇપવાસના પારણે મિહામાટે મટકતાં કપોતદ્વચિના ન્યાયે પોતાની છોને ઘેર ગયો. ત્યાં મોહ રૂપ પિશાચથી ગ્રસ્ત થયેલી તે સ્ત્રીએ પૂર્વ સ્નેહના વશથી મુનિરૂપમાં રહેલા પોતાના પતિને કામળ કર્યું. તે કામળથી મુનિ શરીરે અતિ ક્ષીણ થયા. ક્રેટલેક દિવસે તે વિહાર કરવામાં પણ અશક્ત થઈ ગયા, તેથી અનશન ગ્રહણ કરી કાઠધર્મને પ્રાપ્ત થઈ સ્વર્ગમાં દેવ થયા.

પેછી છોર મુનિરૂપમાં રહેલા પોતાના પતિની મરણવાર્તા સાંભળી, તેથી તે પશ્ચાત્તાપ કરવા લાગી કે—‘ અરે ! મને ધિક્કાર છે ! પતિને મારવાથી મને મોહું પાપ લાગ્યું. સાધુની હત્યા કરનાર મને નરકમાં પણ સ્થાન નહિ મળે. તેથી અશરણ થયેલી મને તેનો વેષજ શરણ રૂપ છે. ’ એ પ્રમાણે વૈરાગ્યપરાયણ થઈ તેણે ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું અને અતિલગ્ન તપ કર્યું. પૂર્વકૃત પાપની સારી રીતે આલોચના ગ્રહણ કરી ઘણું કાલ ચારિત્ર પાઠીને તે સ્વર્ગે ગઈ.

વીજા ભવમાં યજ્ઞદેવ બ્રાહ્મણનો જીવ દેવલોકથી વ્યવીને ચારિત્રનો જુગુ-પ્સાથી ઘાંધેલા નીચ ગોત્રવહે રાજગૃહ નગરમાં ‘ઘનાવહ’ શેઠને ઘેર ‘ચિલાતી’ નામની દાસીની કુક્ષિયાં પુત્રપણે હત્પન્ન થયો. તેણું નામ ‘ચિલાતીપુત્ર’ પાઠવામાં આવ્યું. તેની સ્ત્રીનો જીવ દેવલોકથી વ્યવીને તેજ શેઠને ઘેર શેઠની સ્ત્રી મદ્રાની કુક્ષિયાં પુત્રીપણે હત્પન્ન થયો. તે કન્યાનું નામ ‘સુસમા’ પાઠ્યું. ચિલાતીપુત્ર તે વાઠાને હમેશાં રમાડે છે. તેને તે પ્રાણથી પણ અતિ વહાલી થઈ. એક વસ્ત તો ચિલાતીપુત્રને તેની સાથે કુચેષ્ટા કરતો જોડને તે કન્યાનાં માતાપિતાએ વિચાર્યું કે “આ દાસીપુત્રવ્દસની, મધ્યપાનમાં હુબ અને કઝીઆસ્તોર હોવાથી ઘરમાં રાસવા યોગ્ય નથી. ’ એમ વિચારી તેને ઘર-માંયાં કાઠો મૂક્યો. તે ચોરની પાઠ (ચોરલોકોને ઢસવાનું સ્થાન) માં જઈ ચોરોમાં મળ્યો ગયો. તેઓએ તેને સાહસિક જાણીને પછીપતિ નીમ્યો. તે પાપ કરવામાં અતિ પ્રોત્તિવાલો હોવાથી જીવોનો વધ કરવામાં પાછો હટતો નથી.

એક દિવસે તેણે ચોરોને એકઠા કરી કહ્યું કે—‘ ચાલો આપણે ઘનાવહ શેઠને ઘેર ચોરી કરવા જઈએ; પણ ધન મળે તે તમારું ને સુસિમા કન્યા મારી. ’ તે ચોરોએ કમુલ કર્યું. પછો ઘના ચોરોને એકઠા કરીને તે રાજગૃહ નગરમાં ઘનાવહ શેઠને ઘેર આવ્યો. તેઓએ શેઠનું ઘર હુટ્યું. ચિલાતીપુત્ર કન્યાને ગ્રહણ કરી અને વીજા ચોરોએ પુષ્કલ ધન લોધું. પછી સર્વ પાછા ફર્યા. ત્યારપછી ઘનાવહ શેઠે ચૂમ પાઠી; પટલે વિકટ યોધાઓના સમૂહ સહિત દુર્ગપાઠ ચોરોનો પાછલ દોઢ્યો. શેઠ પણ પુત્ર પરિ-વાર સહિત દુર્ગપાઠની સાથે દોઢ્યો. તે ચોરો પણ ઘના લોકો પછવાડે લાગવાથી અને

माया उपर बोजो बहन करवाने. अशक्त बनवायी पग धीमा पढवाने लीघे मारने भूमि उपर पडतो मूकी नासबा लाग्या. तेमांथी केटलाक नासी गया, केटलाकने दुर्गपाळे भूमि उपर पाडी दीघा अने केटलाके दांतमां तृण लइ तावे थवायी धनश्रेष्ठोनी माफी मेळी.

चिळातीपुत्र मुसमाने लइ कोइ दिशामां पळायन करी गयो. घनावह श्रेष्ठ पुत्र सहित तेनी पाळळ लाग्यो, दुर्गपाळ धननी रक्षा करवाने त्यांज रह्यो. घनावह श्रेष्ठना भयथी मुसमाने लइ जवाने अशक्त थइ आगळ चालता चिळातीपुत्रे विचार्युं के- 'आ कन्या मने प्राणथी प्रिय छे, तेथी ते अन्यनी न थवी जोइए. ' ते दुष्ट तरवारथी तेजुं मस्तक फापी नाख्यु अने घड पडतुं मूकी मस्तक लइने नाठो. घनावह श्रेष्ठ विगोरे पाळळ दोढवानुं प्रयोजन नाश पामवायी पाळा फर्या.

आगळ चालतां चिळातीपुत्रे कायोत्सर्गमां रहेला एक मुनिने जेया. मुनि सभ्य आवी तेणे तेमने श्रुता पूर्वक कहुं के- 'मने धर्मना उपदेश आपो. ' साधुए ज्ञानना अतिशयधी जाण्युं के जोके आ अति पापांछ छे तोपण ते धर्म मेळवी शकते ' एतुं बापी मुनिए तेने उपदेश दीघो के- 'तारे उपशम, विवेक अने संवर करवा जोइए. ' रत्नजेवा आ त्रण पद तेने संभळाधीने मुनि आकाशमां उरपती गया. चिळातीपुत्रे विचार कर्यो के " खरेखर ! आ मुनि ए मने ठग्यो नथी पण साजु कहुं छे. हु घणो पापांछ छुं तेथो मारी शुद्धि बीजी कोइ पण रीते यशे नहि, माटे मारे साधुनां वचन प्रमाणे अवश्य करवुं जोइए. साधुए जे कहुं ते में जाण्युं. उपशम एटछे क्रोध आदिने मारे त्याग करवो जोइए. क्रोधथी अंध बनी जइने अनर्थ करनार एवा मने धिक्कार छे ! वळी विवेक एटछे बाह्य वस्तुने मारे त्याग करवो जोइए. ए प्रमाणे विचारी तरवार सहित हाथमां रहेछुं मस्तक छोडो दीधुं. वळी ' संवर एटछे मारे दुष्ट योगोने संवर करवो जोइए. ' एम विचारी तेणे दुष्ट मन वचन कायाना व्यापारने रोकी दीघो; अने तेज त्रण पद मनमां चिंतवतो त्यांज कायोत्सर्गमां स्थित थयो. छोडीनी वासथी बन्न-मुस्ती कीडोओ त्यां आवी अने चिळातीपुत्रनुं रुधिर ने मांस खावा लागी. तेओए चारे वाजुएथी तेजुं आखुं शरीर चालणी जेवुं करी नाख्युं; परंतु 'आ देह मारो नथी अने हुं कोइने नथो ' एम चिंतन करतो ते ध्यानथी चलित थयो नहि. ए प्रमाणे अडी दिवसे बहु पापने क्षय करी चिळातीपुत्र देवलोके गयो.

आ धर्मने धन्य छे के जेना प्रभावथी चिळातीपुत्र जेवो दुष्ट माणस पण स्वर्ग सुखमागी थयो. कहुं छे के—

दुर्गतिप्रपत्तप्राणिधारणाद्धर्म उच्यते ।

संयमादिदशविधः सर्वज्ञोक्तो हि मुक्तये ॥

“दुर्गतिमां पडता प्राणीने धारण करी राखे—दुर्गतिमां पडवा न दे तेथी ते धर्म कहेवाय छे; संयम आदि दश प्रकारनो सर्वज्ञ भगवाने कहेलो ते धर्म निश्चय पूर्वकं भुक्तिने माटे छे.” माटे बहु पापवाळा प्राणीओने धर्म तारतो नथो, ए प्रकारनी भुग्घ छेकोनी शंका दूर करवा माटे धर्मना प्रभाव उपर चिळातीपुत्रहुं ह्वांत कहेवामां आव्युं छे.

जेवी रीते चिळातीपुत्रे पोतानो प्रतिज्ञा पाळो तेवी रीते अन्य विवेकी लोकोए प्रवर्तुं ते विवे कहे छे—

पुष्पिष्प फलिष्प तह पिड—घरंमि तन्हा जुहा समणुबद्धा

हंढेण तहा विसढा, विसढा जह सफलया जाया ॥ ३९ ॥

अर्थ—“पुष्पित अने फलित एवं तथा प्रकारजुं मसिद्ध पिताजुं घर छतां अर्थात् सर्व प्रकारनां सुखसंयुक्त कृष्ण वामुदेवने त्यां जन्म्या छतां हंढण कुमारे (मुनिपणामी) वृषा अने क्षुषा निरंतरपणे एवो सहन करी के जे सहन करेळी सफलताने पायी.” ३९. अर्थात् हंढणकुमारे अलाभ परीसह एवो सह्यो के जेना परिणामे केवळज्ञानरूप फळ प्राप्त थयुं. तेनी कथा आ प्रमाणे—

श्रीहंढण कुमार कथा.

हंढणकुमारनो जीव पूर्व भवमां कोइ राजाना पांचसे खेहुतोना अधिकारी हतो. त्यारे मध्याह्न बखते सघळाओने माटे भात आवता हतां त्यारे ते तेथीनो पासे पोताना क्षेत्रमां एरु एक चास हळयो कढावतो हतो. आ प्रमाणे करवाथी ते दररोज पांचसे खेहुतो अने एरु हजार बळदोने भातपाणोमां अंतराय करतो हतो. तेच करवाथी ते भवमां तेणे घणुं अंतरायकर्म वांछ्युं. त्यांथी काळ करीने घणा काळ सुधी अनेक भवमां भयकीने ते द्वारिका नगरीमां ‘कृष्ण’ वामुदेवने घेर ‘हंढणा’ राणीनी कुक्षिमां पुत्रपणे उत्पन्न थयो. ते ‘हंढण’ कुमारना नामथी प्रसिद्ध थयो. युवान वय पामतां तेने पिताए परजाओ. त्यार पळो ज्ञींगना सुखमां लीन थइ तेणे घणा दिवसो व्यतीत कर्यां.

गाथा ३९. २ पुष्पिष्पफलिष्प. २ पीडहरामि. २ तण्हा ३ सफला.

अन्धदा भगवान श्री अरिष्टनेमी अहार हजार साधुभोयी परिवृत्त थइ द्वारका-पुरीना मोटा उद्यानमां समवसयां. तेमने वांदवाने माटे 'कृष्ण वासुदेव दंडण कुमार सहित नीकळ्या. वांदीने योग्य स्थाने वेठा. एटळे प्रभुए कुमतरूप अंधकारने दूर करनारी, पतित जनोनो उद्धार करनारी, अमृतना निश्चरणा जेवो, मोह मळनो नाश करनारी, सर्व जनने आनंद-आपनारी, मालव कौशिक रागनो अनुवाद करनारी अने समग्र वळेखने नष्ट करनारी देशना आपवी शश करी. ते सांभळतां 'दंडण कुमारजुं मन वैराग्यरसयो व्वाप्त थइ जवाने लीधे तेणे श्री नेमिनाथ स्वामी पासे चारित्र ग्रहण कर्युं. चारित्र ग्रहण कर्यां पछी ते द्वारिकापुरीमां भिक्षार्थे फरे छे, परंतु कृष्ण वासुदेवना पुत्र तरोके तेमज श्री नेमिनाथ स्वामीना शिष्य तरीके प्रसिद्ध छतां पण तेने शुद्ध भिक्षा मळती नथी अने अशुद्ध भिक्षा ते ग्रहण करता नथी. एकदा श्री नेमिश्चर भगवाने तेने कश्युं के- 'हे दंडण ! ते-पूर्वमवमां वांघेळु अंतराय कर्म उदयभावमां आवेळुं छे, तेथी तने शुद्ध आहार मळतो नथी; माटे बीजा मुनिए आपणेछो. आहार ग्रहण-कर.' स्यारे हाथ जोडी ते दंडण कुमारे कश्युं के- 'हे त्रिहोकर नाथ ! स्यारे-माहं अंतराय कर्म क्षय पामशे स्यारेज मारी पोतानी उच्छिथी मळेळो शुद्ध आहार हुं ग्रहण करीश, बीजाए-छावेळो आहार ग्रहण करवो मने उचित नथी.' आ प्रमाणे-कहीने तेणे तैवो अभिग्रह स्वामीनो साक्षोए लीधो. पछी प्रविदिवस अन्धाकुळ मने-भिक्षार्थे फरे छे, परंतु तेने शुद्ध आहार मळतो नथी. तेथी ते वृषा अने धुषा सहन करे छे. आ प्रमाणे तेने केटलोक काळ व्यतीत थयो.

एक दिवस नेमीश्चर भगवानने वांदवाने माटे कृष्ण वासुदेव आव्या. प्रभुने वांदीने कृष्ण वासुदेवे पूछ्युं के- 'आपना अहार हजार साधुओमां दुष्कर कार्य कर नारी कयो साधु छे?' ते वखते भगवाने कश्युं के- 'दुष्कर करनार तो सर्व साधुओ छे, पण तेमां दंडण मुनि विशेष छे.' वासुदेवे कश्युं के- 'हे भगवन् ! कया गुणथी ते विशेष छे?' स्यारे भगवाने तेनो सर्व अभिग्रह कळो. ते सांभळी अति हर्षित थइ कृष्ण वांद्या के- 'ते-धन्य एवा दंडण मुनि कथां छे ? तेने वांदवानी मने तीव्र इच्छा थइ छे 'भगवाने कश्युं के- 'भिक्षार्थे शंहेरमां गयेला छे, ते-तपने सामाज मळशे, पछी स्वामीने वांदीने द्वारिकापुरीमां पाछा आवतां गजेंद्र उपर आरूढ थयेला कृष्णे दंडण मुनिने बजारमांथो सामे आवता जोया; कृष्णे हाथी उपरथी उत्तरी दंडण मुनिनी त्रण प्रदक्षिणा करी घणा याद पूर्वक तेमने वांघा अने कश्युं के- 'हे मुनि ! तपने धन्य छे ! तमे पुण्य शालो छे. अति भाग्य शिवाय तपारा दर्शन थवा सुलभ नथी.' ते समये सोळ हजार राजाओ पण ते-मुनिना चरणमां पडथ्या. ते वखते चारीमां वेठेला-एक वणिके ते

जोड़ने चिंतव्युं के 'अहो ! आ मुनि महानुभाव देखाय छे, जेयो महा सपृद्धि-
वान कृष्ण आदि राजाओ पण तेमना चरणकमलमां पड़े छे. माटे मारे तेमने शुद्ध
मोदक व्होरावोने लाभ लेवो. तेमने व्होराववायो मने मोहुं पुण्य थरो.' आ प्रमाणे
विचारीने दंडण मुनिने पोताने घरे तेडी लावो तेणे बहुभावयो मोदक व्होराववा.

दंडण मुनिए भगवाननो समीपे आरीने पूज्युं के- 'हे भगवन् ! माहं अंतराय
कर्म आजे नष्ट थयुं ?' भगवाने कहु के- 'हे मुनि ! हजु-ते नष्ट थयुं नयो.' दंडण
मुनिए पूज्युं के- 'हे स्वामिन् ! त्त्यारे आजे मने भिक्षानो लाभ केम थयो ?' स्वा-
मोए कहु के- 'कृष्ण वासुदेवनो लब्धियो तने आ आहार मळेळो छे, पण अंतरा-
यकर्मना क्षययो उत्पन्न थयेळो त्त्यारी लब्धियो मळेळो नथी.' आ प्रमाणेनां भगवा-
ननां वचन सांभळीने दंडण मुनि ते आहारने शुद्ध भूमिमां परठववाने गया. त्यां
शुद्ध अने अतिशुद्ध अध्यवसाययो प्रबल शुद्ध ध्यानरूपी अग्निवटे कर्मरूपी ईश-
नने वाळी दइ पोतानां पूर्वकृत कर्मोनां समूह होयनी तेम मोदकने चूर्ण करतां
करतां तेमने केवलज्ञान उत्पन्न थयुं. ते वखते देवोए दुंदुभि वगाडी चारे तरफ जय
जय शब्द कर्यो अने कृष्ण आदि सर्व भव्य जनो खुशी थया. घणा काळ सुधो
केवळीपणे विहार करीने प्रांत दंडण मुनिए मुक्ति प्राप्त करी. आ प्रमाणे अन्य
महात्माए पण वर्तवुं.

इति दंडण मुनि कथा.

आहारेसु सुहेसुअ; रम्मावसहेसु काणणोसु च

साहूण नाहिगारो; अहिगारो धम्मकज्जेसु ॥ ४० ॥

अर्थ— 'शुभ एवा आहारने विषे, रम्य एवा उपाश्रयने विषे अने (विचित्र
एवा) उद्यान-वागवगोचाने विषे साधुने अधिकार (आसक्तपणुं) नयो; निर्भ-
मत्त्र होवायो. तेओने तो मात्र धर्मकार्यमां अधिकार छे. मुनिने इंद्रियोने-सुखकारी
बाह्य पदायोमां आसक्ति होती नथी.' ४०

साहू कांतार महाभएसु, अवि जणवएवि मुह्यम्मि ।

अवि ते सरीरपीडं, सहंति न लहंति य विरुद्धम् ॥ ४१ ॥

अर्थ— 'अटवीमां के राज्यविप्लवादि महा भयमां पण मुनि ऋद्धिवाळा
निरूपद्रव जनपदमां होय तेम निर्भयपणे वर्ते छे. वळी ते मुनिओ शरीरनी पीडाने
सहन करे छे पण विरुद्ध वस्तु ग्रहण करता नथी.' ४१. अर्थात् मुनि गमे तेबा

गाथा ४०-रम्या आवसथा-उपाश्रया.

गाथा ४१-कांतार. मुह्योमि. नयल्लतिम.

कष्टमा पण अनेषणीय आहार पाणी विगेरे ग्रहण करता नथो अने वीजानुं ग्रहण करेळुं तेवुं होय तो वापरता नथी, अर्थात् तेभने आहारादिने विषे प्रतिबंध नथो धर्मकार्येने विषेज प्रतिबंध वर्ते छे.

जंतेहि पी^२लियाविहु, खं^३दगसीसा न चैव^४ परिकु^५विया ।

●विइय परमत्थसारा, खमांते जं पंडिया हूँति ॥ ४२ ॥

अर्थ—“ यंत्रवदे पील्यां छतां पण स्कंदशाचार्यना ५०० शिष्य कोपायमान नज थया. कारणके जेमणे परमार्थनो सार (तत्वरहस्य) जाण्यो छे एवा पंडितो जे होय छे ते गमे तेवुं कष्ट पण खमेज छे, प्राणांते पण मार्गथी चलता नथी. ४२. अहीं स्कंदक शिष्योनुं दृष्टांत जाणवुं. १४.

श्री स्कंदक शिष्य दृष्टांत.

श्रावस्ती नगरीमां ' जितशत्रु ' नामनो राजा राज्य करतो हतो. तेने ' धारिणी ' नामे पट्टराणी हती. तेने ' स्कंदक ' नामनो कुमार हतो. ते कुमारने ' पुरंदरयशा ' नामनी बेन हती तेने कुंभकारकटक नगरना स्वामी ' दंडक ' राजानी साथे परणावी हती. ते दंडक राजाने ' पालक ' नामनो पुरोहित हतो. एक दिवस दंडक राजाए कोइ कार्यने माटे पालकने पोताना सासरा जितशत्रु राजा पासे भोकल्यो. ते बखते जितशत्रु राजानी समायं जइने पात्रके बार्ताना मसंगमां धर्मचर्चा चलावी तेयां ते पोतानो नास्तिक मत स्थापन करवा लाग्यो. ते बखते पासे वेठेला जैनधर्मना तत्त्वोना जाण स्कंदक कुमारें जैनधर्ममां कहेछो युक्तिओथी ते पालकने निश्चर करी दीधो एटछे ते मानभ्रष्ट थयो. तेथी ते क्रोधथी घणो प्रज्वलित थइ गयो परंतु त्यां कांइ करी शक्यो नहि. पछी पोतानुं कार्य करीने ते कुंभकारकटक नगरे पाळो आव्यो.

एक दिवस मुनिमुव्रतस्वामी प्रश्न विहार करतां श्रावस्ती नगरीए पधार्थी. स्कंदक कुमार वांदवाने माटे आव्यो, प्रश्नए देशना दीधी. ते सांभळी स्कंदक कुमारें पांचसो राजपुत्रो सहित दीक्षा लीधी. अलुकमे ते उग्रविहारी थया. तेमणे सकळ सिद्धांतनो सार ग्रहण करेछो होवाथी गुरुए तेने पांचसे साधुओना आचार्य बनाव्या.

एक दिवस मुनिमुव्रतस्वामीनी पासे आचीने स्कंदक कुमारें कहुं के- ' हे यंगवन् ! आपनी आज्ञा होय तो मारी बेन पुरंदरयशाने अने मारा वनेची दंडक

जा विगेरेने प्रतिषेध पमाडवाने माटे हुं कुंभकारकटक नगरे जावं. त्वारे भगवाने कहुं के-‘हे स्कंदाचार्य ! तमने त्यां प्राणातिक (प्राणनी हानि थाय तेवो) उपसर्ग शे.’ स्कंदाचार्ये पूछ्युं के-‘हु आराधक थइय के नहि ?’ प्रभुए कहुं के ‘तमारा त्वाय सर्व आराधक थशे.’ ते सांभळीने स्कंदकाचार्ये कहुं के-‘हे स्वामी ! जो गरी सहायथी वीजा मुनिओ आराधक थशे तो मने सघळें मळ्यु एम हुं मानीच.’ प्रमाणे कही स्वामीने बांदीने पांचसे साधुनी साथे ते कुंभकारकटक नगरे आब्या. ओ आवेळे एवा खबर सांभळीने तेना आवता पहेळां साधुजनोंने उत्तरवा योग्य जभूमिमां पूर्ववैरी पालके नाना प्रकारनां शस्त्रो दाटी राख्यां. पळी स्कंदाचार्ये प्राब्या. एटळे दंडक राजा नगरवासी लोकोनी साथे तेमने बांदवाने माटे आब्यो, आचार्ये केशनो नाश करनारी देशना दीधी, तेमां संसार स्वरूपनी अनित्यता तावी, लोको आनंदित थया.

हवे पालके एकांतमां राजा पासे आवीने कहुं के-‘हे स्वामिन् ! आ स्कंदकाचार्ये पालंडी छे, ते साधु नथी; पोताना आचारथी अष्ट थयेळो छे, अने हजार हजार योधाओनी साथे लडी शके एवा पांचसो पुरुवोने साथे लइने तमारं राज्य छेवाने माटे आब्यो छे.’ ते सांभळी दंडक राजाए कहुं के-‘तुं ते वात श्री रीते जाणे छे ?’ पालके कहुं के-‘हुं आपने तेओनी ठगाइ वतावी आहुं.’ पळी कोइ कार्यंतुं व्हांतुं वतावी साधुओने अन्य वनमां भोकल्या, अने राजाने उपवनमां लइ जइ पालके पोते भूमिमां दाटेळां शस्त्रो काढीने वताब्यां. शस्त्रो जोइ राजांतुं मन चलित थयुं, अने पालकने हुकम आप्यो के ‘तुं ते साधुओने सने योग्य लागे ते शासन कर.’ ए प्रमाणे कहीने राजा घेर गयो. पळी पूर्ववैरी पालके माणसोने पीळवानुं यंत्र लावीने वनमां खडुं कर्युं. अने तेनी अंदर एक एक मुनिने नाखवा लाग्यो. स्कंदाचार्ये दरेक मुनिने आलोचना करावे छे अने तेओना मनने समाधि पमाडे छे. तेथी जेओए कायापरनी मूर्छानो सर्वथा त्याग करेळो छे, कर्म त्वपाववामांज जेओनी दृष्टि निवद्ध थइ छे, भोगव्या वगर कर्मनो क्षय थतो नथी एवो जेओना मनमां निश्चय थयेळो छे, रांगद्वेपरहित जेओंतुं मन थयेळुं छे अने जेओंतुं अंतःकरण परम करुणारसथी भावित थयेळुं छे एवा ते पूष्य मुनिओ शुक्ल ध्यानबदे कर्मवपी इषनने वाळी दइ सपकत्रेणी उपर आरूढ थई हुष्ट पालकना लावेळा यंत्रमां पीळावा सता अंतावस्थामां केशवज्ञान पामीने (अंतकृत केवळी थइने) मोक्षे गया. ए प्रमाणे अनुक्रमे चारसे नवाणुं साधुओ मुक्ति पाब्या.

પછી એક નાનો શિષ્ય વાકી રહ્યો. તેને પણ પાપાત્મા પાલકે પીલવાની તૈયારી કરી ત્યારે સ્કંદકાચાર્યે કહ્યું કે—‘અરે પાલક ! પ્રથમ મને પીલ, પછી આ છપુ શિષ્યને પીલજે.’ એ પ્રમાણે કહેતાં છતાં પણ દુષ્ટ પાલકે તે શિષ્યનેજ જલદીયો પ્રથમ પીલ્યો. તેથી ‘અરે ! આ દુરાત્માની કેવી દુષ્ટતા છે !’ એમ વિચારતાં સ્કંદકાચાર્યને અતિ તીવ્ર ક્રાધાગ્નિ પ્રગટ થયો; તે ક્રોધાગ્નિમાં ધનમાત્રમાં તેમના ગુણસ્વી ઇંધન વળી ગયાં. પછી ‘અરે ! મારી નજર આગલ આ દુરાત્માએ કેહું નીચ કૃત્ય કર્યું ! આ પાલક પુરોહિત અતિ દુષ્ટ છે, આ દંડક રાજા પણ અતિ અધમ છે અને આ નગરનાં લોકો પણ અતિ નિર્દય છે.’ એ પ્રમાણે વિચારતાં ક્રોધથી જ્વલિત થયેલા સ્કંદકાચાર્ય પાલકને ઉદ્દેશીને કહ્યું કે—‘અરે દુરાત્મન ! હું તારા વધનો કરનાર થઈશ.’ એ પ્રમાણે તેમણે નિયાણું કર્યું; તેથી વિશેષ ક્રોધયુક્ત બનેલા પાલકે સ્કંદકાચાર્યને પણ યંત્રમાં પીલી નાંખ્યા. તેથી જેમણે સંયમની વિરાધના કરી છે એવા સ્કંદકાચાર્ય મરણ પામીને અગ્નિકુમાર નિકાયમાં દેવપણે ઉત્પન્ન થયા.

હવે એ સમયે સ્કંદકાચાર્યનો ઓષો ‘રુધિરથી છેપાયેલો આ હાથ છે’ એવી ખ્રાન્તિથી કોઈ ગીધ પક્ષીએ ઉપાડ્યો. પછી તેને માટે પરસ્પર લડતાં પક્ષોના મુલમાંથી તે ઓષો સ્કંદકાચાર્યનાં બહેન પુરંદરચણાના આંગણમાં પડ્યો. પુરંદરચણાએ તે ઓષો ઓઢ્યો, અને લોકોના મુલથી સઘડી હકીકત સાંપળી; તેથી પુરંદરચણાએ રાજાને કહ્યું કે—‘અરે પાપી દુરાત્મન ! મહા અનીતિ કરનાર ! તેં આ શું કુકર્મ કર્યું ? સાધુહત્યાથી થયેલું પાપ સાત જુલને વાલો નાંખે છે. સાધુની હત્યા તે મોટામાં મોટી હત્યા છે ’ એ પ્રમાણે વારંવાર રાજાને તિરસ્કાર પૂર્વક કહેવી તે સંસારથી પરાઢ્યુલ થઈ વૈરાગ્યપરાયણ બની. એટલે જ્ઞાસનદેવતાએ તેના પરિવાર સહિત તેને ઉપાડીને શ્રીમુનિસુવ્રતસ્વામી પાસે મૂકી. ત્યાં તેણે દીક્ષા ગ્રહણ કરીને પોતાનો સ્વાર્થ સાધ્યો.

હવે અગ્નિકુમાર નિકાયમાં ઉત્પન્ન થયેલા સ્કંદકાચાર્યના બીજે અગ્નિજ્ઞાનથી જોઈું, એટલે તેને તોવ્ર ક્રોધ ઉત્પન્ન થવાથી પાલક સહિત દંડક રાજાના વધા દેશને વાઢીને ભસ્મ કર્યો. તે ઉપરથી લોકમસિદ્ધિમાં તે હાલ દંડકારણ્ય કહેવાય છે.

સ્કંદકાચાર્યના શિષ્યો, પાલકે પોતાના પ્રાણનો નાશ કર્યો છતાં પણ તેના ઉપર ક્રોધવાલા થયા નહિ. તો તેજ મલમાં તે સર્વ મોક્ષે ગયા. એટલા માટે સિદ્ધાંતમાં પણ કહ્યું છે કે—‘ ઉવસમસાર ચુ સામણ્મ ’ શ્રમણપણાનો સાર ઉપશ્ચમ છે. બલ્કી—

क्षमाखड्गं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति ।

अतृणे पतितो वह्निः, स्वयमेवोपशाम्यति ॥

“जेना हाथमां क्षमारूपी खड्ग छे तेने दुर्जन शं करनार छे ? तृण विनानी जग्यामां पहेछेो अग्नि पोतानी मेळेज शांत यइ जाय छे. ”

आ कथानो ए उपनय छे के ‘ आवो उत्कृष्ट क्षमागुण धारण करवो ते साधुओने ह्यक्ति मेळववातुं मूळ कारण छे. ’

इति स्कंदकाचार्य कथा.

जिणवयणसुइ सकन्ना, अवगय संसार घोर पेयाळा !

बालाण खनंति जइ, जइत्ति किं इत्थ अच्छेरं ॥ ४३ ॥

अर्थ—“जे कारण माटे जिनवचन सांभळवाथो सकर्ण एवा अने घोर संसारनो विचार जेणे जाण्यो छे एवा यति (मुनि) वाळ-अज्ञानी मिथ्यादृष्टिओनां करेळां दुष्ट चेष्टितने स्कंदकशिष्योनो जेप खमे छे तेमां शं आश्चर्य छे ? अथात् कांइ आश्चर्य नथी. केमके मुनिए दुष्टोनो करेळो अपराध सहन करवो तेज युक्त छे. ” ४३

छोकचढिमां कानवाळा होय ते सकर्ण कहेवाय छे ते खरा सकर्ण नथो, परंतु जेमेणे जिनवचन सांभळ्यां छे ने हृदयमां धार्यां छे ते न खरा सकर्ण छे. तेवा सकर्ण आ संसारना स्वरूपने असार जाणे छे.

न कुलं इत्थ पहाणं, हरिपसत्रलस्त किं कुलं आसि ।

आकंपिया तवेणं, सुरोवि जं पज्जुवासंति ॥ ४४ ॥

अर्थ—“अहीं धर्मना विचारमां कुळजुं प्रधानपणुं नथो; एटछे उग्र भोनादि कुळ विना धर्म न होय एवो कांइ निश्चय नथो. ते विषे दृष्टांत कहे छे-हरिकेशी वळने शु उत्तम कुळ हतुं ! नहोतुं. तेओ तो चंडालना कुळमां उत्पन्न ययेळा हता, छतां तेमना तपे करीने आकंपित थयेळा-वश थयेळा देवताओ पण तेमनी सेवा करे छे. ” ४४

ज्यारे देवताओ सेवा करे त्यारे पछो मनुष्यनी तो वात न थी ! माटे धर्म-विचारमां कुळनी प्राधान्यता नथी, गुणनी छे. अहीं हरिकेशि वळजुं दृष्टांत जाणवुं. १५

हरिकेशि मुनिनी कथा.

प्रथम हरिकेशि मुनिना पूर्व भवतुं वृत्तांत आ प्रमाणे—

मथुरा नगरीमां शंख नामे राजा हतो. ते न्यायमां घणो निपुण हतो. अन्वया ते शंख राजाए गुरुनी पासे चारित्र ग्रहण कर्तुं. विहार करतां करतां ते शंख राजर्षि हस्तिनापुर आब्या. त्यां भिक्षार्थे शहरमां प्रवेश करतां मार्ग नहि जाणवाथी तेमणे 'सोमदेव' नामना पुरोहितने नगरनो मार्ग पूछयो. मुनिवेषना द्वेषी सोमदेव पुरोहिते व्यंतरथी अधिष्ठित थयेळो अग्नि जेवो तपेळो मार्ग तेने बताव्यो. ते मार्ग एवो हतो के जे कोइ अज्ञाणतां ते मार्गे जाय तो ते भस्म थइ जायळे. ब्राह्मणे विचार कर्यो के- 'जे मुनि मंड्वलित मार्गे जशे तो ते वळीने भस्म थइ जशे; ते वखते हुं कौतुक जोइश.' हवे साधु तो ते दुष्टे घतावेळा मार्गे चाल्या. परंतु ते समये ते साधुना धर्मना महात्म्यथो ते व्यंतर त्याथी नासीज गयो, तेथी मार्ग शीतळ थइ गयो. शंख राजर्षि तो इर्ष्यासमित्थी ते मार्गे धोमे धोमे चाल्या जता हता. गोखर्मां वेठेळा सोमदेव पुरोहिते ते जोइ विचार कर्यो के "अहो ! आ जैनधर्मना प्रभाव घणो मोटो जणाय छे के जेथी आ व्यंतरथी अधिष्ठित थयेळो अग्नि जेवो तपेळो मार्ग पण आ मुनिना पुण्यभावथी शीतळ थइ गयो. माटे आ साधुवेषने धन्य छे तेमज आ मार्गने पण धन्य छे ! " पळो गोखर्मांथी नीचे उबरीने ते साधुना चरणमां पढयो अने चोल्यो के- 'हे स्वामी ! में अज्ञानपणाथो आ दुष्कृत्य कर्तुं छे ते मारो अपराध क्षमा करो.' साधुए तेने योग्य जीव जाणी धर्मदेशना आपी. ते सांभळीने ते प्रतिबोध पाव्यो अने मनमां विचार करवा लाग्यो के- 'अहो ! आ साधुतुं केतुं परम उपकारीपणुं छे के जेथी अपकार करनार उपर पण तेमनी उपकारबुद्धि छे.' पळी पुरोहिते कहुं के- 'हे भगवन् ! भवसागरमां डुवता एवा मने चारित्रधर्म रूपी नाव आपोने तारो.' शुहर तरतज तेने दीक्षा आपी. ते निर्दोष चारित्र पाळवा लाग्यो, परंतु ब्राह्मण जातिने लीचे नीच गोत्रमां जन्म आपनार जातिमद करेळे. ए प्रमाणे घगा काळ सुधो चारित्र पाळोने छेवटे जातिपदनी आलोचना कर्यां शिक्षाय मरण पामी देवपणाने प्राप्त थयो.

देवगतिमां घणा काळ सुधी भोग भोगवो नीच गोत्रकर्म जेणे बांधेळुं छे एवा ते सोमदेव पुरोहितनेा जीव त्यांपी रूपव्रीने गंगातट उपर 'बलहोट' नामना चंडा- लने घेर तेनी स्त्री 'गौरीनी' कुक्षिमां पुत्रपणे उत्पन्न थयो. मांताए स्वप्ननी अदर लीळा रंगनो आंचो जोयो, अनुक्रमे तेनो प्रसव थयो. मातापिताए तेतुं नाम 'हरिके-

'शिवल' पाह्युं. अनुक्रमे मोटो थतां एकवार वसंतोत्सवमां समान वयवाळा बाळको-
नी साथे क्रीडा करतां ते अतिचपळ होवायी बीजा बाळकोनी तर्जना करेछे. कारण
के बाळकोना ए स्वभाव ज छे. कहुं छे के—

न सहंति इकमिक्कं, न विणा चिठंति इकमिक्केण ।

रासह वसह तुरंगा, जूझारी पंडिया डिंभा ॥ १ ॥

“रासभ, वृषभ, घोडा, जुगारी, पंडितो ने बाळको एक बीजाने सहन करी
शकता नथी अने पाछा एक बीजा शिवाय एकछा रही शकता नथी.”

पछी घणा बाळकोए मळीने हरिकेशिवल्लने पोताना मंडळमांथी हांको काढ्यो.
हवे ए अवसरे एक शेरी सर्प नीकळ्यो. तेने घणा माणसोए मळीने घारी नाळ्यो,
तेवायां एक बीजो सर्प नीकळ्यो; पण ते निर्विष हतो तेथी लोकोए विचार्युं के ‘आ
सर्प विष घगरने छे तेथी तेने मारवो न जोइए, एम विचारी तेने जीवतो छोडी दीवो.
ए स्वरूप जोइने लघुकर्मी हरिवळ बाळके विचार्युं के—‘ अरे ? आ अगाय भवकूपमां
आ जोव पोताना कर्मथीज दुःखी थायछे, अन्य तो निमित्त मात्र छे, कहुं छे के—

रे जीव सुहदुहेसु, निमित्तमित्तं परं वियाणाहि !

सकयफलं जुजंतां, कीस मुहा कुप्पसि परस्स ॥

“ हे जीव ! सुख अने दुःखनी अंदर अन्य तो निमित्त मात्र छे एम तुं जाण. स्व-
कृत एटछे पोतानां करेछां कर्मना फळने भोगवतां तुं शामाटे बीजा वपर गुस्ते थाय छे ?”

वळी आ जोव पोताना गुणर्थज सुखी थाय छे. सुख अने दुःखनुं मूळ कारण
पोतानो आत्म्याज छे; माटे निर्विषपणुंज वंधारे साहं छे. विषय रूप विषवाळा पुरुषो
मरण पामेछे; तेथी जेजो विषयरूप विषयी रहित छे तेथोने धन्य छे. ए प्रमाणे जेनां
हृदयचक्षु विकस्वर थयां छे एवा हरिकेशीने अनादि भवप्रपंचने चित्तवतां भवतापने
हरनार जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुं. तेणे सम्यक् प्रकारे पूर्व भवतुं स्वरूप जोधुं.
‘ अरे ! में पूर्वे सोमदेवना भवमां चारित्र पाळ्युं छे, परंतु जातिभद करवाने छीवे में
तेने सदोप करेछं छे. अहो ! विशुद्ध एवो आ चारित्र धर्म निर्विषयणे आराध्यो सतो
अवश्य स्वर्गादि सुखने आपेछे.’ सिद्धांतमां पण कहुं छे के—

तए संधारनित्रिद्धो वि, मुणिवरो जड्वरागमयमोहो ।

जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तो तं चक्कवट्टीवि ॥

“ જેના રાગ મદ ને મોહ નાશ પામેલા છે એવા મુનિવર તે અવસરે સંયારા પર રહ્યા સતા પણ મોક્ષસુખને પ્રાપ્ત કરે છે તેો તેને વ્રજવર્તિપણુ પામવું તેમાં તેો શું આશ્ચર્ય ! ”

ए प्रमाणे संवेगरूपी रंगथी जेत्तुं मन रंगायेछं छे एवा हरिकेशिबछे शुरुनी पासे जिनवाणी सांभळीने चारित्र ग्रहण कर्युं अने दुष्कर छह अहम आदि तप करवा लाग्या, तेमज विषयनो त्याग करीने विचारवा लाग्या.

एकदा एक मासना उपवासतुं तप करीने ते चाराणसी नगरीना त्रिदुक नामना घनमां त्रिदुक यक्षना मंदिरमा कायोत्सर्ग करीने रह्या. तेना तपशुणथी रंजित थइ त्रिदुक यक्ष पण ते साधुनी सेवा करबामां तत्पर थयो अहो ! तपतुं अंत्यंत महात्म्य छे ! कहुं छे के—

यद्दूरं यद्दूराध्यं, यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।

तत्सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

“ જે દૂર છે, જે દુઃસ્વથી આરાધી શકાય તેહું છે. જે દેવોને પણ દુર્લભ છે તે સર્વ તપથી મેઠ્ઠી શકાય છે. ખાટે તપતું કોઈ અતિક્રમ કરી શકે-તેનાથી વધો શકે તેપ નથી. ”

ए बखते बाणारसी नगरीना राजानी पुत्री 'सुभद्रा' नामनी राजकन्या घणी दासीजोयी परिवृत्त थइ पूजानी सामग्री छइने पक्षराजने पूजबाने माटे आवी. यक्ष-मंदिरनी मद्रक्षिणा करतां ते राजकन्याए मलमलिन देहवाळा मुनिने जोया. एटछे 'अरे ! निंद देहवाळो मेल जेवो आ कोण छे ?' ए प्रमाणे कही तेणे शुशुकार कर्यो. ते तपस्वी मुनिनी मोठी आश्चातना करी. एहुं राजकन्यातुं चेष्टित जोइने कुपित थयेला त्रिदुक यक्षे विचार्युं के—'अरे ! आ राजकन्याहुष्कर्म्म करनारी छे, कारणकेसुर अने असुरे जेना चरणनी पूजा करी छे एवा आ मुनिनी ते अवज्ञा करे छे; तेथी आ पूर्य मुनिनी करेछी अवज्ञातुं फल आ राजकन्याने वताहुं' ए प्रमाणे विचार करीने तेणे तेना शरीरमां प्रवेश कर्यो. एटछे तेना प्रवेशथी नाना प्रकारना बकवाद करती, हार विगेरेने तोहती अने बह विगेरेनी शुद्धि नहि जाणती एनी राजकन्याने त्याथी सेवको तेनां मातापिता पासे लाब्या. पुत्री स्नेह्यो मोहित थयेला राजाए तेची घणी चिकित्सा करावी. अनेक मात्रिको अने वैद्योने बोलाग्या, परंतु कइ फेर पड्यो नहि; तेथी वैद्यो खिन्न थया. पछी यक्षे प्रत्यक्ष थइने कहुं के—'हे राजन् !

पोताना रूपथो गर्वित थयेली आ तारी पुत्रीए मारा पूज्य मुनिनो उपहास करेलो छे, तेथी जो तेज मुनिनी ते स्त्री थाय तोज हुं तेने मुक्त करुं; बीजो कोइ उपाय नथी.' ते सांभळी राजाए विचार कर्यो के- ' आ प्रमाणे थवाथो मारा प्राणथो पण वधारे वहाळो एवी आ कन्याने हुं जीवती तो जोइश; माटे आ कन्या मुनिरानने अर्पण करवी.' ए प्रमाणेविचार करी परिजनो साये सुमद्राने ते मुनि पासे मोकळो. ते कन्याए पण पोताना पितानी आज्ञाथो यक्षमंदिरमां जइ मुनिने वांदोने कहुं के- ' हे महर्षि ! आपना हायवढे मारो हाथ ग्रहण करो. हुं स्वयंवरा थइने आपनो पासे आवेलो छुं.' मुनिए कहुं के- ' हे भद्रे ! मुनिओ विषयसंगथी रहित होय छे. माटे आ वात साये मारे कांइ पण प्रयोजन नथी.' मुनिए आ प्रमाणे कक्षा छातां कुतुहळमां प्रोतिवाळा तिद्रुक यक्षे मुनि शरीरमां दाखल थइ ते कन्याजुं प्राणिग्रहण कर्युं अने तेने विदंबणा करीनेछेडी दोषी. ते वधुं स्वप्न जेवुं जोइने निस्तेज थइ पिता पासे आवी, अने स्वप्न जेवुं सवर्थे रा- भित्तुं स्वरूप फही बतान्युं. ते समये रुद्रदेव पुरोहिते कहुं के- ' हे स्वामिन् ! आ कन्या ऋषिपत्नी थयेली छे; अने अमारा ब्राह्मणमां कहुं छे के- ' तजायेली ऋषिपत्नी ब्राह्मणने आपनी ' आवो वेदनो अर्थ छे, माटे आ कन्या ब्राह्मणने अर्पण करवी जोइए. ' ए प्रमाणे सांभळोने राजाए ते रुद्रदेव पुरोहितने ज ते कन्या अर्पण करी.

एकवार रुद्रदेव पुरोहिते यज्ञ करतां सुमद्राने यज्ञपत्नी करी. यज्ञमंडपमां घमा ब्राह्मणो आवेला हवा. यज्ञकर्ममां कुशल याज्ञिको यज्ञ करवा लागरा हवा अने तेभोने योग्य पुष्कळ भोजन विगेरि तैयार कर्युं हतुं. ते समये मासलगनना पारणे हरिकेशिबळ मुनि यज्ञमंडपमां दाखल थया. तेमने सन्मुख आवतां जोइने ब्राह्मणोए कहुं के- ' अरे ! आ प्रेत जेवो, मळथो मलिन देहवाळो अने निंद्य वेष धारण करवावाळा कोण यज्ञ- मंडपने मलिन करवाने आवेलो छे ? ते बलते मुनिए आवीने भिसाने माटे ब्राह्मणो पासे याचना करी. ते सांभळीने अनार्य ब्राह्मणोए कहुं के- ' अरे ! दैत्यरु ! यज्ञ- मंडपमां तैयार करेछुं अब्र ब्राह्मणोने देवा योग्य छे, शुद्ध करतां पण अब्रप एवा तने ए अब्र केम अपाय ? वळी जे अब्र ब्राह्मणोने अपाय छे तेजुं पुण्य तो सहस्रगुं थाय छे, अने तने आपेछुं अब्र तो राखमां घी होमवा जेवुं थाय छे, माटे अहींथो चाल्यो जा, तुं अहीं घामाटे लभो छे ? ' ए प्रमाणे ब्राह्मणोए मुनिनो उपहास कर्यो ते सांभळी यक्षे मुनिना शरीरमां प्रवेश करीने कहुं के- ' अरे ! सांभळो, हुं श्रमण (जैन साधु) छुं, यावज्जोब ब्रह्मचर्य पाळनारो छुं, अहिंसादि व्रतोने धारण करुं छुं; तेथी हुज सुपात्र छुं, ब्राह्मणो सुपात्र नथी. केमके तमे तो पथुवष अहिंसाएक

કરનારા છે, મુલ્તથી ન કહેવાય એવા સ્ત્રીના શુદ્ધ સ્થાનના મર્દન કરનારા છે અને ઉત્તમ પ્રકારના જ્ઞાનથી દૂર કરાયેલા છે, માટે હુંજ સુપાત્ર છું તમારા ભાગ્યથીજ હું તમારા યજ્ઞમંડપમાં આવેલો છું; માટે મને શુદ્ધ અન્ન આપો.” એવાં વાક્યોથી તિરસ્કાર કરાયેલા બ્રાહ્મણો તે મુનિને મારવા તૈયાર થયા. તેઓએ છાકડી અને મુઠિવડે મુનિને કેટલાક પ્રહારો કર્યાં. એટલે રુદ્રમાન થયેલા યજ્ઞે તે બ્રાહ્મણો ને પ્રહારાદિ વડે મુલ્તમાંથી સ્થીર વમતા કરી દોષા, અને શરીરના સાંઘા સિથિલ કરી નાસ્ત્યા, જેથી તેઓ પૃથ્વી ઉપર પડ્યા. મોટો કોલાહલ થઈ ગયો, એટલે સઘડ્યા ત્યાં એકઠા થયા. કોલાહલ સાંભળીને સુમદ્રા રાજકન્યા પણ વહાર નીકળી. તેણે મુનિને જોયા એટલે તરત ઓઢાડ્યા. પછી ભયથી વિહલ વતી જઈને તેણે રુદ્રદેવ વિનેરેને કહ્યું કે—‘ અરે દુર્ગુદ્ધિવાલાઓ ! આ મુનિને પીડનો તો યમમંદિરમાં પહોંચી જશો. આ તો તિંદુરુ યજ્ઞે પૂજેલા મહા પ્રભાવવાલા તપસ્વી મુનિ છે, મેં પૂર્વે તેમને ચલિત કરવા માટે ઘણો યત્ન કર્યો હતો; પરંતુ તે જરા પણ ધ્યાનથી ચલિત થયાં નહોતા. માટે આ મુનિને ધન્ય છે ધન્ય છે.’ એમ વોલતો સુમદ્રા મુનિના ચરણમાં પડી અને કહ્યું કે—‘ હે કૃપાસિંધુ ! હે જગત્તંદુ ! મારા આગ્રહથી આ મૂર્ખ લોકોએ કરેલો અપરાધ क्षમા કરો.’ મુનિએ કહ્યું કે—“ મુનિને કોપ કરવાનો અવકાશ નથી. કારણકે ક્રોધ મહા અનર્થકારી છે. કહ્યું છે કે—

જં અઙ્ગિજયં ચરિત્તં, દેસૂળાણ ય પુઠ્વકોડી ણ ।

તંપિઅ કસાયમિત્તો, હારેઈ નરો મુહુત્તેણ ॥

“ દેશે ઊળા ક્રોડ પૂર્વે પર્યંત જે ચારિત્ર પાઠ્યું હોય તેને પણ માણો એક મુહૂર્ત માંત્ર કષાય કરવાથી હારી જાય છે. ”

માટે સાધુને કોપ કરવો યોગ્યજ નથી. તેથી તે કોપ કરેજ નહિ, પરંતુ તમારાં પર કોપ કરનાર યજ્ઞને તમે પ્રસન્ન કરો.” મુનિના કહેવાથી બ્રાહ્મણોએ તે યજ્ઞને સંતુષ્ટ કર્યો, એટલે તે સર્વે બ્રાહ્મણો સાજા થયા. પછી તેઓ યજ્ઞક્રમ છેાડી દઈને મુનિના ચરણમાં પડ્યા અને શુદ્ધ અન્નવડે મુનિને પહિઠામ્યા. તે વચ્ચે ત્યાં પંચ દિવ્ય પ્રગટ થયા. તે જોઈ ‘આ શું !’ એમ વોલતાં કુતુહલ જોવા માટે ઘણા લોકો એકઠા થયા. રાજા પણ એ હકીકત જાણીને ત્યાં આવ્યો. સઘડ્યાઓ સુપાત્ર દાનની પ્રશંસા કરવા આગ્યા કહ્યું છે કે—

व्याजे स्याद्द्विगुणं वित्तं, व्यवसाये स्याच्चतुर्गुणम् ।

क्षेत्रे शतगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनंतगुणं तथा ॥ १ ॥

“ व्याजमां धन वमणुं थाय छे, व्यापारमां धन चोगणुं थाय छे, क्षेत्रमां वाव-
वाथी सोगणुं थाय छे, अने सत्पात्रने आपवाथो अनंतगुणुं थाय छे. ”

बली—

मिथ्यादृष्टिसहस्रेषु, वरमेकोह्यणुव्रती ।

अणुव्रतिसहस्रेषु, वरमेको महाव्रती ॥ २ ॥

महाव्रतिसहस्रेषु, वरमेको हि तात्विकः ।

तात्विकस्य समं पात्रं, न चूर्तं न भविष्यति ॥ ३ ॥

“ हजार मिथ्याव्रतीओ करतां एक श्रावक व्रतधारी वधारे श्रेष्ठ छे, हजार श्रावक
व्रतधारीओ करतां एक महाव्रती (साधु) वधारे श्रेष्ठ छे; हजार महाव्रतीओ करतां
एक तत्त्ववेत्ता मुनि (गणधर महाराजा) वधारे श्रेष्ठ छे, एवा तात्विक मुनिनी व-
रोचरी करनाहं पात्र बीजुं कोइ थयुं नयी अने यज्ञे पण नहि. ”

माटे आ जैन साधुने दान देवुं ए धन्य छे. पठो त्यां मुनिद देशना आपी.
षणा मागसो मुनिनी देशनाथी प्रतिबोध पाम्या अने सधळा ब्राह्मणो पण
श्रावक थया.

हरिकेशि मुनि थुद्ध व्रत आराधी केवलज्ञान पामीने मोक्षे गया. माटे कुळतुं
प्राधान्य नयी, पण गुणोत्तुंन प्राधान्य छे; शुग न होय तो कुळ कंड करी सकतुं नयी.
बळी आ आत्मा नटनी माफरु नशं वशं रूप धारण करी संसारमां परावर्तन कर्या
करेछे (अनेक देह धारण करे छे). माटे कुळाभिमाननो अवकाशन क्यां छे ? आ
हकीकतने प्रण गाथा वढे स्पष्ट करे छे—

देवो^१ नेर^२इ^३उ^४त्तिय, कीड^५ पयंगु^६त्ति माणु^७सौवेसो ॥

रू^८नस्सी^९अ^{१०} विरू^{११}वो, सुह^{१२}जागी^{१३} दु^{१४}ख^{१५}भागी^{१६}अ^{१७} ॥ ४५ ॥

रा^{१८}उ^{१९}त्तिय^{२०} द^{२१}म^{२२}गु^{२३}त्तिय, ए^{२४}स^{२५} स^{२६}पा^{२७}गु^{२८}त्ति ए^{२९}स^{३०} वे^{३१}य^{३२}वि^{३३}ज्ज ॥

सा^{३४}मी^{३५} दा^{३६}सो^{३७} पु^{३८}ड^{३९}जो, ख^{४०}ल^{४१}त्ति^{४२} अ^{४३}ध^{४४}णो^{४५} ध^{४६}ण^{४७}व^{४८}इ^{४९}त्ति ॥ ४६ ॥

नवि इत्थं कोवि नियमो, सकम्म विणिविट्ठ सारिसकयचिट्ठो ॥

अनुन्न रूव्वेसो, नहुव्व परियत्तए जीवो ॥ ४७ ॥

अर्थ—“ आ जीव देवता थयो, नारकी थयो, कीडो अने पतंगोयो थयो, उपलस-
णयो अनेक प्रकारनो तिर्येव थयो, मनुष्यरूप बेषवाळो अर्थात् मनुष्य थयो, रूपवंत
थयो, विरूप एट्ठे कद्रुप पण थयो, सुखनो भानन थयो. दुःखनो भानन-दुःख भोग-
वनार पण थयो. ४५. राजा थयो, द्रमक एट्ठे भिक्षुक पण थयो, एज जीव चंडाल
थयो, एज वेदनो जाणनारो प्रधान ब्राह्मण पण थयो, स्वामो थयो, सेवरु थयो, पूज्य
एवो उपाध्यायादि थयो, खळ दुर्जन पण थयो, निर्धन थयो, अने धनवान पण थयो.
४६. आ संसारमां कोइ प्रकारनो नियम नथो अर्थात् मनुष्य मरीने मनुष्यज थाय,
पथु मरीने पथु थाय ने देवता चवीने देवता थाय एम केटलाको कहेछे पण एओ विल-
कुल नियम नथो. पोतानां कर्मोनी जेवो उदय होय ते प्रमाणे चेष्टा करनारो आ जीव
नवां नवां रूप ने बेष धारण करनारा नटनी जेम आ संसारमां (नवा नवा रूपे)
परिभ्रमण पण करे छे. ” ४७. आ प्रमाणेनुं संसारनुं स्वरूप जाणीने विवेकी मनुष्यो
भोक्षना अभिलाषीज होय छे, धनादिना इच्छरु होता नथो. ते उपर कहे छे—

कोकीसएहिं धणसंचयस्स, गुणसुजरियाए कन्नाए ॥

नवि लुळो वयररिसी, अलोभया एस साहूणं ॥ ४८ ॥

अर्थ—“ द्रव्यसमूहना सेंकडो कोडीए सहित आवेली, रूप लावण्यादि गुणोए
भरेली एवी कन्या (अपरिणीता) ने विषे पण वैररुवि (वज्र स्वामी मुनि) लोभा-
णा नहीं, लुब्ध थया नहीं. आवी अलोभता सर्व साधुओए करवी. ” ४८. अर्थात् एवा
निर्लोभी थवुं.

पुष्कळ द्रव्य सहित अत्यंत रूपवंत ‘ रुक्मिणि ’ नामनी कन्या वज्रस्वामीना
शुणोथी मोह पामीने तेमने वरवा आव्या छतां वज्रस्वामीए किंचित् पण द्रव्यमां के
स्त्रीमां न लोभातां तेने उद्देश आपी धर्म पमाडी चारिज आशुं. आवी निर्लोभता सर्व
मुनि महाराजाए राखवा योग्य छे. अहीं वज्रमु. ननुं दृष्टांत कहे छे—

गाथा ४७—स्वकर्मविनिविट्ठसदृशकूनचेष्टः । अन्नन गाथा ४८—गुजस्सुभरियाय.

श्री वज्रमुनिनुं दृष्टांत.

तुंबवन गायमां 'धनगिरि' नामनो एक व्यापारी बसतो हतो. ते अति भद्रिक हतो. तेने 'मुनंदा' नामनी स्त्री होती. तेनी साये भोग भोगवतां तेणे घणादिवसो मुखयी व्यतीत कर्या. एक दिवस वैराग्य उत्पन्न थवायी धनगिरिए सगर्मा भार्याने छोडीने सिंहगिरि गुरु पासे चारित्र ग्रहण कर्युं. ते उग्र तप करवा लाग्या; अने गुरुसेवाना रसिक थइ सारणा, वारणा, चोयणा, पढिचोयणा विगेरे^१ ग्रहण करवामां कुशळ थया.

पाछळ मुनंदाने पुत्र प्रसव थयो. ते वखते, आना पिताए दीक्षा लीधेली छे अने ते धन्यवाद आपवा लायक मुनि थयेल छे.' एवुं ते पुत्र जन्मतांज स्वजनमुखयी सांभळीने मनमां चिंतन करवा लाग्यो के- 'अरे ! आ छोको शुं बोळे छे ? आ दीक्षाधर्म केवो होय छे ? में कोइ पण वखत तेनो अनुभव करेलो लागे छे.' ए प्रमाणे ध्यानमां त्स्पर थएळा ते धाळकने जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुं एटळे तेणे पूर्वे अनुभवेलुं चारित्र धर्मनुं स्वरूप जाणुं. तेथी संसारयो विरक्त थइने ते विचार करवा लाग्यो के- 'आ जन्म जरा आदिनो दुःखपरंपराथी व्याप्त एवो संसारनो विलास कथां ! अने श्वाश्वत मुखनो ज्यां प्रकाश एवो चारित्र धर्मने विधे निवास कथां ! अरे ! अनंतीवार भोगव्या छतां पण आजीव विषयोमां वृत्ति पायतो नथी.' कळुं छे के—

घनेषु जीवितव्येषु, भोगेष्वाहारकर्मसु ।

अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे, याता यास्थन्ति यान्ति च ॥

“ द्रव्यमां, जीवितव्यमां, भोगमां अने आहारकर्ममां अतृप्त रहा सताज सर्वे प्राणी-ओ गयेला छे, जशे अने जाय छे.”

बळी कळुं छे के—

जोगा न भुक्ता वयमेवभुक्ता—स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।

कालो न यातो वयमेव याता—स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥

“ भोगो भोगवाया नथी पण अमे ज भोगवाया छोए, तप तप्युं नथी, पण अमे ज तप्या छोए, काळ गयो नथी पण अमेज गया छोए, अने अमारी तृष्णा जीर्ण थइ नथी पण अमे पोवे ज जीर्ण थया छोए.” घाटे सांसारिक मुखो मुर्छम छे, परंतु आ बोधिरत्न परम दुर्लभ छे. कळुं छे के—

१ सारणा—संभारी आपडुं. वारणा—अथुद्ध भणतां वारतुं, चोयणा—मेरणा करवी, पढिचोयणा—वारंवार मेरणा करवी इत्वादि.

सुलहो विमाणवासो, एगच्छत्तावि मेइणी सुलहा ।

उदलहो पुण जीवाणं, जिणंदवरसासणे बोहि ॥

“ विमाणवासी एटले देवता थवुं ते सुलभ छे अने एकछत्र पृथ्वी पण सुलभ छे, अर्थात् चक्रवर्ती थवुं ते सुलभ छे, परंतु जिनेंद्रना श्रेष्ठ शासनमां बोधिबीज पामवुं ते जीवाने परम दुलभ छे.”

आ प्रमाणे विचार करीने ते बाळक पोतानी माताने उद्देग पयाडवा माटे गाह स्वरथो रुदन करवा लाग्यो. माताए घणा उपायो कर्या, परंतु ते जरा पण रोटो वंध यतो नथी. जो के मातातुं मन तेना पर स्नेहयुक्त हतुं तोपण आथी विरक्त थइ थवुं. बाळक पण जेम जेम मातातुं मन विरक्त थतु जाणवा लाग्यो तेम तेम ते वपथुं रुदन करवा लाग्यो. ए प्रमाणे छ मास व्यतीत थया. ए समये श्री ‘सिंहगिरि’ खुरि स्थां पधार्या. नगरना लोको तेयने वदन करवाने गया. गुरुए देशना बोधी. देशाने अंते सभा वीखराइ जतां धनगिरिए गुरु पासे आधीने भिक्षा माटे जवानी आइ आपी. स्थारे गुरुए कथुं के-‘ आज गोचरीमां सचित्त के अचित्त जे मळे ते सधळुं ग्रहण करवुं.’ ए प्रमाणेनुं गुरुनुं वाक्य स्वीकारीने धनगिरि भिक्षा माटे नगरमां गया. गोचरी माटे फरतां फरतां ते पोतानी स्त्री सुनंदांने वेर आव्या अने धर्म-लाम आप्यो स्थारे सुनंदाए कथुं के-‘ हे स्वामी ! आ पुत्रने ग्रहण करो, आ पुत्रे यने घणो संताप उपजाव्यो छे.’ एतुं सांभळीने गुरुनुं वचन जेमणे स्मृतिमां राखेळुं छे एवा धनगिरिए सुनंदाए आपेळा पुत्रनी भिक्षा स्वीकारी. झोळीमां पुत्रने लइने ते गुरु समीपे पाछा आव्या. गुरुए वज्र जेवो ते बाळकमां भार जाणोने तेनुं नाम वज्र पाडवुं. ते बाळकने साध्वीओना उपाश्रये सोप्यो. त्यां घणी श्राविकाओ तेनी सेवा करवा लागो. श्रौंसंघने पण ते अति मिय थयो. त्यां पारणामां सुतां सुतां ते बाळके अनेक प्रकारनां सिद्धांतोनो अभ्यास करती साध्वीओना मुखयी सांभळीने अग्यार अंगोनुं अध्ययन कर्तुं. अनुक्रमे ते त्रण वर्षनो थयो. तेनी माता त्यां दररोज आवती हती. ते पुत्रने दिव्य रूपवाळो जोइने मोहयो मन विहळ करी तेने छेवाने आवी. तेणे कथुं के-‘ हुं मारो पुत्र लइ जइश्च. ’ धनगिरिए कथुं के-‘ हुं तेने आपीक्ष नहि, कारणके तमे यने आ बाळक तमारा हाथयीज अर्पण कर्यो छे. ’ आ प्रमाणे परस्पर वाद थयो. विवाद करती सुनंदा गुरु सहित राजानी कचेरीमां गइ. राजाए कथुं के-‘ तमो वंनेने आ पुत्र सरखो छे, माटे वोळाववाथी जेनी पासे जाय तेनो आ पुत्र, एवो न्याय ठीक लागे छे. ’ ते सांभळाने सुनंदा अनेक सारी सारी

सावानी बीजो, सुखडी, विचित्र प्रकारणं आभरणो अने वाञ्छना चित्तने संश्लिष्ट करे एवी वस्तुओं (रत्नकण्ठांशो) मोठा आगळ सूकीने पुत्रने बोझाववा लागी के-हे पुत्र ! आ छे, आ छे.' परंतु तेणे ए प्रयाणे बोझी भावना मनुष्य पण जोयुं नहि तैयी ते लिख थड. पत्नी धननिरीए कथुं के-हे वाञ्छ ! अमारी पास ते आ धन ध्वज (रजोहरण) छे; जो तने पसंद पडे तो ते ग्रहण कर.' एतुं सांपटी, ते वाञ्छ दोहडो गुरु पास जइ धर्मध्वजने माये सदाई मफुल्लिन नेत्र करीने दृष्य करवा कातयो- राजाए कर्ष के-आ पुत्र गुरुनोज छे.' सर्व लोको ते जोडने आश्चर्य पाव्या के 'अरे ! आ जण वर्षना बालकनुं ज्ञान तो जुओ !' पत्नी सगळ संयन! मागणे गुरु सदि शपाश्रये आर्वीने पोतनाताना स्थाने गथा.

अनुक्रमे ते वाञ्छ आठ वर्दनेो थवो पढेहे गुरुय तेने दीक्षा दीवी. पुत्रना मोहयी सुग्य थवेळी सुनदाए पण चारित्र्य प्रदण कर्युं. पत्नी गुरुय 'आ वाञ्छ पोतय छे' एम जाणी पोताना स्थाने (आचार्यिनवे स्थानि कर्णे. दम पूर्व गणनाए भवे लग्न तप करनार एवा ब्रह्मनिन्दे पूर्वभवना निच कोड तेने अर्चीने वैदिके कवि अने आकाशमायिनी विद्या आपी.

एकटा विद्या आदि अतिशुद्धोयी सुक्त श्री ब्रह्मस्वामी पादलीपुत्र नगर (पदमा)- मां सप्तवसर्षा. वांढवाने माटे नगरना लोका आज्या. ब्रह्मस्वामीए पण विद्याना वस्त्रो पोतानुं स्व विशेष करीने वर्मदेवना आनी. ते देवनाचहे लोकानां चिद बहु आरु- र्षायां अने परम्पर बोझवा लाग्या के-अहो ! आ गुरुनद्वाराज्जो रूपने अनुसगतोश्च वर्षादिच्छा छे.' पत्नी देवनाजो समाधि वणे स्व लोको स्वस्थाने गथा अने ते दिवस व्यतीत ययो.

इवे ते नगरमां 'वनाचट' नामनेो एक शेट वसेछे. तेने 'चिन्तनी' नामे छरी. रूपवती पुत्री छे. तेणे एक दिवस कोड आर्याना सुखवी ब्रह्मस्वामीना गुणे सांपळ्या इवा, अने आर्यापण रुचिपणीनी पास वारंवार ब्रह्मस्वामीना गुणेंतुं कथन करती इती. तैयी तेमा लय, लावण्य. विद्या विनेरे अतिशुद्धोयी मोडित थडने रुचिर्नाए मदिना करी के- ब्रह्मस्वामी शिवाय अन्यने हुं परर्णम नदि.' तेणे पोताना पिताने पण कहुं के- 'हुं ब्रह्मस्वामी शिवाय अन्यने वरवानी नथी.' आ प्रमाणे केदलोक काठ व्य- तीत थया पत्नी ब्रह्मस्वामिनुं आगमन सांपळीने वनाचट शेट पुत्रो उग्नना स्नेडेने लीजे वीजे दिवले अनेक कोटि गन्तो महिन देवां नाजोनां करयां पण. ववारे सुंदर पुत्री अने अरुंन करेलो पोतानी पुत्रोने लडने मगवान् ब्रह्मस्वामी पास आख्या. शेट

हाथ जोड़ी बोल्या के- 'हे भगवन् ! प्राणथी पण अधिक बहाली एवी आ मारी कन्यातुं रत्नराशि सहित पाणिग्रहण करावा कृपा करो.' भगवान् वज्रस्वामीए कर्तुं के "हे भद्र ! आ कन्या मुग्ध छे. ते कइ पण समजती नथी. अमे तो श्रुतिरूपी कन्याना आर्छिगनमां उदयुक्त होवाथी अशुचिथी भरेछी स्त्रीओमां रति पामता नथी. स्त्रोतुं शरीर मळमूत्रनी खाण छे. तेने स्पर्श करवा ए पण अनर्थकारी छे." कर्तुं छे के-

घरं ज्वलद्यस्तंनःपरिरंजो विधीयते ।

न पुनर्नरकद्वाररामाजघनसेवनम् ॥

"प्रज्वलित लोहाना थांभलाने आर्छिगन करतुं ए वधारे सारं छे, पण नरकना द्वाररूप स्त्रीना जघनतुं सेवन करतुं सारं नथी." माटे आ मोहना निवासरूप स्त्रीना देह प्राणीओने पाक्षरूप छे. कर्तुं छे के—

आवर्तः संशयानामविनयजवनं पत्तनं साहसानां

दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमपत्ययानाम् ।

स्वर्गद्वारस्य विघ्नं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरंडं

स्त्रीयंत्रं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनामेकपाशः ॥

"संशयोतुं चमळ, अविनयतुं घर, साहसतुं नगर. दोषोनो भंडार, हजारो कपटथी भरेल्ल, अविश्वासतुं क्षेत्र, स्वर्गद्वारतुं विघ्न, नरकपुरनो दरवाजो, सर्व प्रकारनी मायानो. कंडीयो—एतुं आ स्त्रीरूप यंत्र कोणे सज्युं हजे ? के जे प्राणीओने विषमय छतां अमृतमय देखातुं पाक्षरूप छे." माटे ब्रह्मचारीओने स्त्रीनो संगज करवा योग्य नथी अने तेनां अंगोपांग पण जेनां योग्य नथी. बली—

स्नेहं मनोजवकृतं जनयंति चात्र

नाजीभुजस्तनविचूषणदर्शितानि ।

वस्त्राणि संयमनकेसविमोक्षणानि

भ्रूक्षेपकंपितकटाक्षनिरीक्षणानि ॥

"स्त्री कामदेवथी उत्पन्न थयेला स्नेहने पेदा करेछे, हावभावथी भुजा, स्तन, विभूषण, दस्त्र अने छुटा करेला केस देखावेछे, तेमज भ्रष्टीना आक्षेपथी कंपित कटाक्ष

पूर्वक जुए छे." विपथी पण अधिक विषम एवा आ विषयोतुं वर्णन करवाथी पण सयुं, वळी मानस सरोवर उपर प्राप्त थयेलो, वंने पक्षथी शुद्ध, सुमति हंसीथी युक्त निर्मळ ध्यानरूप मुक्ताफलमां आसक्त, जह अने चैतन्यना तफावतने जाणनार अने भाव अने विभावतुं प्रथक्करण करनार एवा राजहंस तुल्य आत्माने रुधिर, मज्जा ने चरवी वडे पूर्ण एवा अपवित्र स्त्रीना देहरूपी कूपमां वसवुं इचित नथी, तेथी आ विवेक रहित जनोने योग्य एवी कथाथी पण सयुं. हे श्रेष्ठो! जो मारा उपर तारी आ कन्यानो खरो प्रेम होय तो ते पोतानो अर्थ साधवा वडे मारा चित्तने भळे आनंदित करे. ए प्रमाणेनां श्रीवज्रस्वामीना वचन सांभळीने ज्ञानरूपी दोषक जेने प्रदीप्त थयो छे, स्वभाव अने विभावतुं स्वरूप जेणे जाणेळुं छे अने अति हर्षथी अश्रुजळ जेनां नेत्रमांथी स्रवे छे एवा रुक्मिणीए हाथ जोडीने कहुं के- 'हे स्वामी! आपनां कहेळां वचन प्रमाणे वर्तवाथी पण हुं कृतार्थ छुं.' पछी धन सार्धवाहे तेने आज्ञा आपी पटछे तेणे वज्रस्वामीनो पासे दोक्षा ग्रहण करी अने सम्बद्ध प्रकारे चारित्र पाळीने स्वर्गे गइ.

दक्ष पूर्वने धारण करनार वज्रस्वामी अनेक भव्य जीवोनो उपदेश देवावडे उद्धार करी आठ वर्ष गृहस्थपणामां रही, तुंभाळीश वर्ष गुरुसेवामां काढी, छथ्रीश वर्ष युग-प्रधानपणे विचरी अठाशी वर्षतुं आयुष्य पूर्ण करी श्री महावीर स्वामीना निर्वाणथी पांचसो चोराशी वर्ष व्यतीत थयां पछी देवपणाने प्राप्त थया.

आतुंज नाम धर्म कहेवाय के जेमां आटळा वधा प्रभाववाळामां पण आवा प्रकारनी निर्लोभता होय छे. अन्य जनोए पण वज्रस्वामीनो पेठे निर्लोभी थवुं एवा आ कथानो उपनय छे;

इति वज्रस्वामी कथा १६.

अंतेउर पुरबल वाहणेहिं, वरसिरिधरोहिं मुनिवसहा ।

कामेहिं बहुविहेहिय, ठंदिज्जंता वि नेच्छंति ॥ ४ए ॥

"रमणिक स्त्रीओ, नगरो, चतुरंगिणी सेना अने इस्ति अश्वादि वाहनोए करी-ने, वरश्रीएह एटछे प्रधान द्रव्य भंडारे करीने अने बहु प्रकारना काम जे पांच इक्षि-योना विषयो तेणे करीने निर्मत्रित कर्मां छतां पण मुनिदृषभो (मुनिश्रेष्ठो) तेने इच्छ-ता नथी." ४९. एओ पोत्ताना चारित्रधर्मनेज इच्छेछे.

डेओ भेओ वसणं आयास किलेस भय विवागो अं ॥

मरणं धम्मज्जंसो अरइ अस्थाओ सव्वाइं ॥ ५० ॥

गाथा ४९-मुणिवसमा. बहुविहेहिं. गाथा ५०-विवादः कलहः । अध्याय.

“ છેદન, મેદન, વ્યસન તે કષ્ટ, આયાસ તે પ્રયાસ, ક્લેશ, ભય અને વિવાદ તે કલહ, મરણ, ધર્મશ્રંષ અને અરતિ આ સર્વ (અર્થથી) દ્રવ્યથી પ્રાપ્ત થાય છે. એ કારણ માટે અર્થ અનર્થોનું મૂલ છે. ૫૦

કાન વિગેરે કપાવાં તે છેદન, તરવાર વિગેરેથી મેદાવું તે અથવા સ્વજનાદિક સાથે ચિત્તમાં મેદ પહોવાં તે મેદન, વ્યસન તે અનેક પ્રકારની આપત્તિ, આયાસ તે દ્રવ્યોપાર્જન માટે પોતાથી કરાતો શરીરનો ક્લેશ, ભય તે ત્રાસ તે પરિગ્રહથીજ ઉત્પન્ન થાય છે, દ્રવ્યનેજ ભય હોય છે, વિવાદ તે પરસ્પર કલહ દ્રવ્યનાં કારણથી ઉત્પન્ન થાય છે, મરણ તે પ્રાણત્યાગ, ધર્મશ્રંષ તે જ્ઞાન ચારિત્રરૂપ ધર્મથી પતિત થવું અથવા સદા-ચારનો છોપ થવો તે અને અરતિ તે ચિત્તોદ્દગ, આ સર્વ દ્રવ્યના કારણથીજ ઉત્પન્ન થાય છે. માટે દ્રવ્ય સર્વથા ત્યાજ્ય છે.

દોસસયમૂલ જાલં, પુઞ્વરિસિવિવક્ષિયં જહ વંતં ॥

અર્થ્યં વહસિ અગ્ન્યથં, કીસ અગ્ન્યથં તવં ચરસિ ॥ ૫૧ ॥

“ હે મુનિ ! જો સેકડો દોષોનું મૂલ કારણ, મત્સ્યવંધનમ્મૂલ જાલની જેવું કર્મ-વંધનું હેતુમૂલ હોવાથી જાલ, પૂર્વ મુનિઓએ વિશેષ પ્રકારે વર્જેલું, દીક્ષા ગ્રહણ કરતી વચ્ચે તેને વર્જેલું-તજેલું અને નરકપાતાદિ અનર્થનું કારણ હોવાથી અનર્થરૂપ પદ્મું અર્થ જે દ્રવ્ય તેને વહન કરે છે, રાખે છે તો પછી શામાટે ફોગટ તપ વિગેરે કષ્ટ કરે છે?” ૫૧ અર્થાત્ જો દ્રવ્ય પાસે રાખે છે તો પછી તપાનુષ્ઠાનાદિ નિષ્ફલ છે; માટે સાધુને તો પરિ-ગ્રહનો સર્વથા ત્યાગ એજ શ્રેષ્ઠ છે. અહીં પૂર્વ મુનિ મહારાજાઓએ એટલે વજ્રસ્વામ્યાદિકે વર્જેલું તજેલું કહ્યું એટલા ઉપરથી આધુનિક સમયના કર્મકાળાદિ દોષથી અર્થનું વહન કરવામાં તત્પર થયેલાઓનું વિવેકીઓએ આલંબન ન હેવું; આલંબન તો પૂર્વ પુરુષોનું જ હેવું.

વહ વંધ મારણ સેહણાશ્ચો, કોશ્ચો પરિગ્મહૈ નાતિથિ ।

તં જહ પરિગ્મહુશ્ચિય, જહધમ્મો તો નણુ પવંચો ॥ ૫૨ ॥

“ વધ, વંધન, મારણ અને કદર્થનાઓ વિગેરે પરિગ્રહ મેશ્વવામાં શું નથી જો વધું છે તો એમ જાણ્યા છતાં પણ પરિગ્રહ રાસવામાં આવે તો પછી નિશ્ચયે યતિધર્મ તે પ્રપંચ-વિહંબના માત્રજ છે અર્થાત્ દ્રવ્ય રાસવું ને યતિપણું વતાવવું તે નિઃકેવલ ઠગાઈ છે.” ૫૨.

વિજ્ઞાહરીહિં સહૃરિસં, નરિદંદુહિયાહિં અહમહંતોહિં ॥

જં પત્થિજ્ઞાહ તહ્યા, વસુદેવો તં તવસ્સ ફલં ॥ ૫૩ ॥

ગાથા ૫૧-વાંતં ત્યક્તં,

ગાથા ૫૨-સેહણા-કદર્થના, પવંચો, પ્રપંચો.

ગાથા ૫૩-નરિદુહિયાહિં. અહમહમિકયા.

“ हर्ष सहित विधाषरीओए अने एक वीजानी स्पर्धाबडे राजपुत्रीओए ते अवसरे वसुदेव कुमारनी (पाणिग्रहण निमित्ते) जे प्रार्थना करी ते तेणे पूर्व भवे करेला (वैयावचरूप अभ्यंतर) तपसुं फळ जाणवुं. ते कारण माटे परिग्रहने तनी दइने वाह्य अभ्यंतर तप करवो तेज श्रेष्ठ छे”. ५२

किं आसि नंदिसेणस्स, कुलं जं हरिकुलस्सविउलस्स ।

आसी पियामहो सुचरिण वसुदेवनामुत्ति ॥ ५४ ॥

“ शूं नंदिषेणसुं कुळ इतुं ? नहोतुं. ते तो दरिद्री दुळ कुळवाळा ब्राह्मण हता. परंतु ते सद्बनुष्ठानथी विद्याळ एवा हरिवंश कुळना यादवोना वसुदेव नामे पितामह थया ते कारण माटे कुळथी शूं ? सद्बनुष्ठान ज आचरवा योग्य छे.” ५६

अहीं नंदिषेणसुं दृष्टांत जाणवुं. १७

नंदिषेणनी कथा.

मगध देशयां नंदि नामना गामयां चक्रधर नामे चक्रने धारण करनार एक दरिद्री विम रहेतो हतो. तेने सोयिळा नामे स्त्री-हती. तेने नंदिषेण नामे पुत्र थयो. ते पुत्रनो जन्म थताज तेना मोतापिता-भरण पाभ्या. तेथी तेना मामाए तेने पोताने घेर छावी मोटो कर्यो. परंतु युवावस्थामां पण ते कद्रूपो, मोटा माथावाळो, मोटा पेटवाळो, बांका नाकवाळो, ठींगणो, विकृत नेत्रवाळो, तुटेला कानवाळो, पीळा केशवाळो, पगे लंगडो, पीठ उपर त्रणवाळो, दौर्भाग्यसुं निधान अने स्त्रीओने अप्रीतिपात्र थयो. ते घालक मामाने घेर चाकरसुं काम करतो हतो ते जोइ लोकोए तेने कथुं के-‘अरे ! निर्भाग्य शिरोमणि ! तूं पर घरे दासत्व शामाटे करेछे? विदेश जइ, पैसो मेळवीने स्त्री परण. लोकोक्ति पण एवी छे के ‘स्थानांतरितानी भाग्यानि’ पुरुषसुं प्रारब्ध स्थानांतरित होयछे एटछे ते स्थाननेा फेरफार करवाथी-प्रगट थाय छे.’ आ प्रमाणेनां लोकोनां वचन सांभळीने अन्य स्थाने जवाने उत्सुक थयेळा भाणेजने तेना मामाए कथुं के-‘तूं परदेश शा माटे जाय छे ? मारा घरनी अंदर सात पुत्रीओ छे. तेमांनी एकनी साबे वारो विवाह करीश, माटे-अहिज मारा घरमां रहे.’ ते सांभळी नंदिषेण तेना मामाने घेरज रक्षो अने पूर्ववत् काम करवा लाग्यो. एक दिवस नंदिषेणने-तेना मामाए पोतानी साते कन्याने बताव्यो अने तेने पसंद करवातुं कथुं. साते कन्याओए कथुं के-‘हे तात ! अमे आत्महत्या करशुं-पण नंदिषेणने वरशुं नहि.’ आ प्रमाणेनां वचनो सांभळीने नंदिषेण मनमां विचार करवा छाग्यो के ‘अरे ! आमां मारां कर्मनो ज दोष छे, एनो काइ दोष नथी. करेळां कर्म भोगव्या विना क्षय पामशां नथी.’ कथुं छे के—

કર્મણો હિ પ્રધાનત્વં, કિં કુર્વન્તિ શુભા ગ્રહાઃ ।

વસિષ્ઠદત્તલગ્નોઽપિ, રામઃ પ્રવ્રજિતો વને ॥

“કર્મનું પ્રધાનત્વ છે, તેમાં શુભ ગ્રહો પણ શું કરે ? રામને ગાદીએ વેસવાને માટે વશિષ્ઠ મુનિએ મૂહૂર્ત આપેલું હતું છતાં પણ તે મૂહૂર્તે તેને વનમાં જવું પડ્યું.”

આ પ્રમાણે વિચારી દુઃસ્વર્ગમિત વૈરાગ્યવદે તે મામાના ઘરમાંથી નીકળી ફરતો ફરતો રત્નપુર નગરે ગયો. ત્યાં ઉપવનનાં કોઈ એક ભાગમાં વહ્નરહિત થઈ ક્ષીઠા કરતું કામરસથી ઉન્મત્ત થયેલું. પરસ્પર ગાઠ આલિંગનથી જોડાયેલું સ્ત્રીપુરુષનું જોડું જોઈ નંદિષેન મનમાં ઘૂંઘૂં સ્ત્રિન્ન થયો અને આત્મહત્યા કરવા માટે વનમાં ગયો. ત્યાં તેને સુસ્થિત નામના મુનિ મળ્યા. મુનિએ કહ્યું કે—હે મુગ્ધ ! આવા અજ્ઞાન મૃત્યુથી તને શો હાથ થવાનો છે ? પૂર્વે અનંતીવાર વિપવાદિકના સેવનથી કોઈ પણ પ્રકારની સિદ્ધિ થઈ નથી; માટે કાંઈક ધર્મકાર્ય કર કે જેથી કાર્યસિદ્ધિ થાય. આ સર્પની ફળ જેવા મયંકર અને પરિણામે અતિ કટુ એવા વિષયમુલ્યથી શો હાથ છે ? વઝી રોગનો મંદાર એવું આ શરીર પણ અનિત્ય છે. કહ્યું છે કે—

પણકોઈ અરુસઠી, લક્ષ્ણા નવનવઈ સહસ્ત્ર પંચસયા ।

ચુલસી અહિઆ નિરણ, અપશ્ચઠ્ઠાણંમિ વાહિઓ ॥

“સાતમી નરકના અપતિષ્ઠાન નામના નરકાવાસમાં પાંચ ક્રોડ અડસઠ લાલ નવાણું હજાર પાંચશેં ને ચોરાશી વ્યાધિઓ છે.”

તેથી આ અનિત્ય દેહવદે સારભૂત એવા ધર્મને અંગીકાર કર. કારણકે આ મનુષ્યમત્ત અત્યંત દુર્લભ છે અને તે ધર્મ વિના વ્યર્થ છે. કહ્યું છે કે—

સંસારે માનુષ્યં સારં, માનુષ્યે ચ કૌલિન્યમ્ ।

કૌલિન્યે ધર્મિત્વં, ધર્મિત્વે ચાપિ સદયત્વમ્ ॥

સંસારમાં મનુષ્યજન્મ સારરૂપ છે, મનુષ્યજન્મમાં કુલિનપણું સારરૂપ છે, કુલિનપણામાં ધર્મ પાઠવો એ સારરૂપ છે અને ધર્મ પાઠવામાં પણ દયાયુક્ત થવું એ સારભૂત છે.”

૧ આ પ્રમાણેના વ્યાધિ સત્તાગત સર્વ શરીરમાં રહેલા હોય છે. ફક્ત સાતમી નરકના નારકીને વિપાકોદયે વર્તે છે અને અન્ય જીવોને વિપાકમાં વર્તતા નથી, પરંતુ મનુષ્યશરીરના સાઠાત્રણ ક્રોડ રોમરાય કહેવાય છે તેની સાથે સંબંધ કરતાં એકેક રોમરાયે પોષ્ટાચ્ચે વ્યાધીઓ ગુણો જ્ઞકાય છે.

આ પ્રમાણેની શુભમહારાજની અમૃત તુલ્ય દેશના સાંભળીને વિષયતાપથી નિવૃત્ત થઈ તેણે શુભ પાસે દીક્ષા લીધી, અને ઉગ્રવિહારીપણે શુભની સેવા કરવાં વિચરવા લાગ્યા. તેઓ છઠ્ઠ છઠ્ઠને અંતે પારણું કરવા લાગ્યા અને અત્યંત વૈરાગ્યથી મનને પૂર્ણ કરી 'દરરોજ મારે પાંચસો સાધુઓની વૈયાવચ્ચ કરવી' એવો નિયમ ગ્રહણ કર્યો. સાધુનો વૈયાવચ્ચનું મોટું પુણ્ય કહ્યું છે કે—

વૈયાવચ્ચં નિયત્યં, કરેહ ઉત્તમગુણે ધરંતાણં ।

સત્ત્વં કિર પહ્લિવાઈ, વૈયાવચ્ચં અપ્પહિવાઈ ॥

“ઉત્તમ ગુણ ધારણ કરનારાઓની વૈયાવચ્ચ નિરંતર કર. કારણકે સર્વ ગુણ પ્રતિપાતિ છે અને વૈયાવચ્ચ ગુણ અપ્રતિપાતી છે.”

આ પ્રમાણે વિચારીને નંદિવેળ મુનિ ગામમાં આહાર પાળી વહોરી છાબી પછી પોતે સાધુઓને અર્ચન કરીને પારણું કરે છે, આ કારણથી સંઘની અંદર તેની ઘણી પ્રશંસા થઈ. એક દિવસ સૌધર્મી ઇંદ્રે નંદિવેળના નિયમની પ્રશંસા કરી તેને નહિ સર્દ-હતા કે દેવો નંદિવેળના નિયમની પરીક્ષા કરવાને માટે રત્નપુરે આવ્યા એક દેવ નગર વહાર ઉદ્યાનમાં ગ્લાન મુનિનું રૂપ ધારણ કરીને રહ્યો, અને ઘીજો દેવ મુનિને રૂપે નગરનો અંદર જ્યાં નંદિવેળ મુનિ જઈ પારણું કરવા વેસે છે ત્યાં આવ્યો. જેવામાં પહેલો ગ્રાસ (કોઠીઓ) મુલમાં મૂકે છે તેવામાં પેલો સાધુવેપવાળો દેવ ત્યાં આવીને બોલ્યો કે—‘અરે! નંદિવેળ ! મારા શુભ નગરનો વહાર ઉદ્યાનમાં અતિસારના રોગથી પીઠા પામે છે અને તું વૈયાવચ્ચ કરનાર કહેવાય છે છતાં નિશ્ચિતપણે ખોજન કરવા કેમ વેગો છે ?’ તેવાં વચન સાંભળતાંજ હાથમાં છીંધેલો ગ્રાસ છોટી દહ આહાર સપર વચ્ચ ઢાંકીને તે સાધુ સાથે નંદિવેળ મુનિ વહાર ચાલ્યા. સાધુદેવે કહ્યું કે ‘અરે ! પ્રથમ દેહશુદ્ધિ કરવાને માટે તું જલ્દ છડ છે.’ ઇટલે નંદિવેળ જલ્દ વહોરવા ચાલ્યા. પરંતુ તે જ્યાં જ્યાં જાય છે ત્યાં ત્યાં અશુદ્ધ જલ્દ મળે છે તોપણ તે સ્વિન્ન થતા નથી. એ પ્રમાણ આજ્ઞા નગરમાં વેચાર ફરતાં છતાં દેવના સપરોષથી તેને શુદ્ધ જલ્દ મળ્યું નહિ. ઝીંબી વાર જલ્દ લેવા ફરતાં ઝાંખાંતરાય કર્મના ક્ષયોપશની પ્રવચ્ચતા થવાથી અને તપલચ્ચિથી દેવે કરેલો સપરોષ નિવૃત્ત થતાં શુદ્ધ જલ્દ મળ્યું, તે જલ્દ છડને દેવમુનિની સાથે ઘનની અંદર ગ્લાન મુનિ પાસે આવ્યા. ગ્લાન મુનિએ નંદિવેળને ઘણાં કર્કશ વચનો કહ્યાં, પરંતુ નંદિવેળ પોતાનોજ દોષ જુણે. મનની અંદર જરાયે ક્રોધથી કહ્યુંપિત થતા નયો. તેણે કહ્યું કે ‘હે ગ્લાન મુનિ ! મારો અપરાધ ક્ષમા કરો.’ ઇટલું બોલી તેણે શરીર જલ્દવડે સાફ કરી કહ્યું કે ‘હે સ્વામી ! આપ સપાશ્રમે પધારો, જેથી ઔષધ કરવા

હવે સમાધિ પમાડી શકાય.' દેવરૂપ સાચુણ કહું કે- 'હે નંદિવેણ ! મારા શરીરમાં ચાલવાની શક્તિ નથી તેથી હું કેવી રીતે આવું?' ત્યારે નંદિવેણ ગ્લાન યુનિને પોતાની ત્વાંત્ર ઉપર બેસાડીને ચાલ્યા. માર્ગમાં તેણે તેના ઉપર અતિ દુર્ગંધવાળી અશુચિ કરી; અને 'અરે નંદિવેણ ! તને ધિક્કાર છે. કારણકે તું ઉતાવળો ઉતાવળો ચાલે છે, તેથી મને બહુ કષ્ટ થાય છે.' इत्यादि कष्ट वाक्यથી તેની બહુ તર્જના કરે છે, પરંતુ નંદિવેણ તો તીવ્રતર શુભ પરિણામવાળા થયા સત્તા ચિંતવે છે કે 'આ મહાત્મા કેવી રીતે સ્વસ્થ (નિરોગી) થશે?' આમ વિચારીને તે બોલ્યા કે- 'અરે ગ્લાન યુનિ ! મારું દુષ્કૃત્ય મિથ્યા થાઓ. હવે હું તમને સારી રીતે છડ જઈશ' એમ બોલતા આગલ ચાલવા છાડ્યા. પછી દેવે વિચાર કર્યો કે 'અહો ! આ યુનિને ધન્ય છે મેં ! તેને અત્યંત શ્રેય પમાડ્યા છતાં તે જરા પણ ચલિત થયા નહિ. માટે હંદ્રું વચન સત્ય છે.' આ પ્રમાણે વિચાર કરી દેવમાયાને સંહરી છડ દિવ્ય રૂપ ધારણ કરીને બોલ્યો કે- 'હે સ્વામી ! હંદ્રે જેવી રીતે તમારું વર્ણન કર્યું હતું તેવુંજ મેં જોયું. પવિત્ર આરમાવાળા તમને ધન્ય છે ! તમેજ ક્રોધને બીજો છે. મારો અપરાધ ક્ષમા કરો.' આ પ્રમાણે વારંવાર કહી નંદિવેણ યુનિના પગમાં પહી તે દેવ પોતાને સ્થાને ગયો.

ગોક્ષીર્ષચંદનથી જેના શરીર ઉપર છેપ કરાવેલો છે. એવા નંદિવેણ યુનિ પોતાને સ્થાને આવ્યા. પછી ધના કાઠ સુષી વૈયાવહ કરી નાના પ્રકારના અભિગ્રહોને પાઠમાં દુષ્કર તપ કર્યું. વાર હજાર વર્ષ પર્યંત ચારિત્રધર્મ પાઠી પ્રાંત સમયે સંછેત્વના કરીને દર્શના સંચારા-ઉપર બેસી ચતુર્વિધ આહારનો ત્યાગ કર્યો. હવે તે સમયે તેવા કોઈ પ્રકારના કર્મનો ઉદય થવાથી પોતાનું સંસારીપણાનું દુર્ભાગ્ય યાદ કરી નંદિવેણ યુનિને એવું નિયાણું કર્યું કે 'આ તપચારિત્રાદિના પ્રપાત્રો હું આવતા મનુષ્યમવમાં સ્ત્રોમિય-થઈ.' એ પ્રમાણે નિદાન કરી, ધરણ પાંખીને આઠમા સહસ્ર દેવલોકમાં દેવપણે ઉત્પન્ન થયા.

દેવલોકથી ચ્યવીને નંદિવેણનો જીવ સોરીપુર નગરમાં અંધકવિષ્ણુ રાજાની સુમદ્રા રાણીની કુક્ષિમાં સમુદ્રવિજય આદિ નવ મોટા ખાઈઓ પછી વસુદેવ નામે નાના ખાઈ તરીકે જન્મ્યો. તેણે પાછલા ભવમાં નિદાન કરેલું હોવાથી તે અતિ સૌંદર્યવાન, સુખ્ય અને લોકપ્રિય થયો. તે નિશ્ચિંતપણે નગરમાં સ્વેચ્છાએ ફરે છે. તેનું રૂપ જોઈ મોહ પામેલી નગરવાસી સ્ત્રીઓ ઘરકામ છોડી તેની પાછલ ભમ્યા કરે છે. હાજવાળી કુલ્લાન સ્ત્રીઓ પણ પોતાનો ધર્મ તજી દે છે આ પ્રમાણે સ્ત્રીઓનું વ્યાકુલ્યપણું જાણી આકુલ થયેલા નગરવાસી લોકોએ સમુદ્રવિજય પાસે આવી અરજ કરી કે "સ્વામિન્ ! આ

वसुदेवने घरनी अंदरज राखवा जोइए. कारणके तेना रूपथी मोहित. प्रयेकी पौडकी-
ओए कुलाचार आदिनो पण त्याग करेळ छे. तेने छीधे कुलांगनाना-आचारती हांति
याय छे, अने आ अनाचारने नहि अटकाववाथो तमारो पण दोष गणाय छे. ” ए
प्रमाणे सांभळीने समुद्रविजये वसुदेवने योग्य रीते शिखामण आपीने महेळनी अंदर
हांस्या. ते त्यां कलाम्यास करवा लाग्या.

एक दिवसे उनाळानी ऋतुमां शीवादेवीए गोक्षीर्षचंदन घसी सोनातुं कधीं
अरी दासीना हाथे पोताना पति समुद्रविजयने मोकल्युं. मार्गमां वसुदेव वंळींकार्थी
उइ तेतुं पोताना शरीर उपर बिलेपन कर्युं. तेथी दासीए कहुं के-अटकावळा छी
तेथीज आषा शुभस्थानमां राखवामां आव्या छे. पछी ते संबधी बघो व्यतिकर
सांभळीने पाछ्छी राते एकाकी नगरनी बहार नीकळी कोइ स्थानेथी एक सुतकं कोइ
अनी दरवाजा पासे तेने वाळीने पछी लख्युं के-‘वसुदेव अत्र वळी मुओ छे, तेथी
इने नगरना सर्व लोकोए मूखेथी रहेतुं.’ आ प्रमाणे लखीने ने नगरमांथी नीकळी
गया. प्रातःकाले समुद्रविजये ते वात सांभळीने अति शोक कर्यो अने विचारवा लाश्री
के-‘अरे! आ मानीए दुष्कलने उचित शुं कर्युं? पण हवे शुं करीए? भावि कोइ प्रकारे
अन्यथा यतुं नथी’ वसुदेव पण पृथ्वीमां भ्रमण करता सता नवां नवां रूप, नवानकां
वेष ने नवां नवां आचरणथो भाग्यवशात् हजारो विनाधरनी कन्याओ अने हजारो
राजकन्याओ परण्या. ए प्रमाणे एकसो वीष वर्ष पर्यंत देशाटन करता तेणे ७२०००
छीओतुं पाणिग्रहण कर्युं. पछी रोहिणीना स्वयंवरमां आवीने कुञ्जरूपथी तेने परणी,
धादेवो साथे युद्ध करी, चमत्कार देखादी, पोतातुं स्वरूप प्रगट करी समुद्रविजय
आदिने आनंद उत्पन्न कर्यो. लोको आश्चर्य पाभ्या अने कहेवा लाग्या के “अहो!
आना पूर्व पुण्यनो प्राग्भार तो बहु विशेष जणाय छे.” पछी स्वजनोनी साथे वसुदेव
सोरीपुर नगरे आव्या. अने छेवटे देवक राजानी पुत्रो देवकीतुं पाणिग्रहण कर्युं. ते
देवकीनीं कुक्षिथी श्रीकृष्ण वासुदेव उत्पन्न थया अने तेना पुत्रो शांव, प्रयुंज विगरे
थया. आ प्रमाणे वसुदेव हरिवंशना पितामह थया.

आ सषष्ठे पूर्व भागमां आचरेला वैयावच रूप अभ्यंतर ने छह अहमादि बाह
तपतुं फल जाणतुं. ए प्रमाणे बीजाओए पण वने प्रकारनी तपने विषे प्रयत्न करवो:

सपरकम राउलवाइएण, सिसे पलाविष निअए ।

गयसुकमालेण खमा, तहा कया जह शि वं पत्तो ॥५५॥

१ वंदोखानामां.

“पराक्रमवाळा अने राजाना वंशु बहु काळनपाळन करेका एवा गजमुकभाळ मुनिए पोताजुं भस्तक बळते सते पण एवी क्षमा करी के जेयी तेओ मोक्ष मत्ये पाम्या.” अहीं गजमुकभाळजुं दृष्टांत जाणवुं. १८.

गजमुकभाळनी कथा.

द्वारिका नगरीमां श्री कृष्ण नामे वासुदेव राजा हता. तेनी माता देवकी नामे हती. त्यां श्री नेमिनाथ जिनेश्वर समवसर्या. देवोए आर्वीने समवसरण कर्तुं. नेमिनाथ भगवाने देखना आर्षी. समाजानो पोतपोताना स्थाने जतां भद्रिछपुरमां रहेनारा छ भाइ साधुओ भगवाननी आज्ञा छइ छहने पारणे ववेना संवाढे त्रण भागे नगरीमां भिक्षा अर्थे नीकळ्या. तेमांना पहेळा वे मुनि फरतां फरतां देवकीना मंदिरे आल्या. तेमने जोइने मनमां अति हरस्वार्ता देवकीए छाडुवडे प्रतिच्छाभ्या. तेओना गया पळी बीजा वे मुनि पण त्यांज आल्या. तेमजुं पण देवकीए भाव पूर्वक मोक्षक बहोरारवी सन्मान कर्तुं. तेओना गया पळी दैद्योगे बीजा वे मुनि पण आल्या. सरस्ती आकृतिवाळा अने अति उल्लास उत्पन्न करनारा तेमने जोइने देवकी विचार करवा लाग्या के ‘आ प्रमाणे एकने एक ठेकाणे बीजीवार आहार माटे आवहुं शुद्ध साधुओने घटवुं नयी, तेयी आजुं शुं कारण हशे ?’ ए प्रमाणे विचार करी तेमने पूछयुं के—‘हे महा-जुमाब ! आ द्वारका नगरी बहु विशाल छे, तेमां आवको पण घणा छे; ते छतां वारेवारे अहीं आववाहुं शुं प्रयोजन छे ? शुं आ नगरीमां आहार मळतो नयी ? अथवा शुं साधुओ वषारे छे ? के भूळयी आवहुं ययुं छे ?’ ए प्रमाणे देवकीए पूछवायी ते साधु बोल्या के—‘हे मुश्राबिका ! अमे छ भाइओ छीए. छहने पारणे प्रयक् प्रयक् बहोरवा नीकळतां जुदा जुदा तपारे घेर आवेळा छीए. अमे एक सरस्ती आकृतिवाळा होवायी तमने संशय उत्पन्न ययेको छे.’ ते सांभळो देवकीए विचार करी के “आ छए मुनि सरस्ती आकृतिवाळा छे अने कृष्ण जेवा देखाय छे. मने पण एओने जोवायी पुनर्दर्शन तुल्य आनंद थायछे. पूर्वे पण ‘अतिमुक्त’ मुनिए मने कर्तुं हतुं के ‘तने आठ पुत्र यशे.’ तेयी आ मारा पुत्रो तो नहि होय ?” एवो संदेह तेने ययो. बीजे दिवसे ते नेमीश्वर भगवान पासे गइ अने वार्दिने पूछवा लागी के—‘हे स्वामिन् ! गइ काळे छ साधुओना दर्शनयी मने वणो आनंद ययो, तेयी ते उपरना अति स्नेहजुं शुं कारण छे ?’ भगवाने कर्तुं के—“ ए छए साधुओ तारा पुत्रो छे. कंसना भययी हरिणगमेयी देवे तेने जन्मतांज उपाडी तेने वदळे मुळसाना वृत्तक पुत्रो मूकीने भद्रिछपुरमां जागपत्नी ‘मुळसा’ना घरं तेमने सांण्या हता. त्यां

तेओ मोटा थया. युवान वय पामतां तेओने बत्रीश बत्रीश कन्याओ परणावी. तेओए मारी देशना सांभळोने वैराग्य प्राप्त थवाथी संसारनो त्याग करी चारित्र ग्रहण कर्तुं. तेओ कायम छट्टनो तप करवा लाग्या. आजे छट्टने पारणे मारा आदेशयी नगरीपां आहार अर्थे नोकळ्या, अने तमारे घेर प्रथक् प्रथक् जोडळे आल्या. तेमने जोबायी पुत्रसंबंधने लीवे तमने हर्ष उत्पन्न थयो. ”

आ प्रमाणे भगवाननां वचन सांभळीने देवकी घरे आबी पश्चात्ताप करती. सती मनयां विचारवा लागी के ‘विकसित मुखवाळा अने कोमळ हाथ पगवाळा पोताना पुत्रने जे रमाळे छे अजे खोळामां बेसाळे छे ते लीने धन्य छे ! हुं तो अधन्य अने दुर्भागो छुं; कारणके में मारा एक पुत्रने पण रमाडयो नयो.’ आ प्रमाणे चिंता-युक्त थइने भूमि तरफ द्रष्टि राखी रहेछा पोतानी माता देवकीने कृष्णे दीठा, एटछे तेमणे चिंतातुं कारण पूछ्युं. देवकोए चिंतातुं कारण कही बताव्युं. पछी मातानो मनोरथ पूर्ण करवा माटे अठम तप करीने तेणे देवतुं आराधन कर्तुं. देवे आबीने वरदान आप्तुं के ‘देवकीने पुत्र थशे, पण ते-घणा काळ सुधी घरमां रहेशे नहि.’ एतुं कही देव स्वस्थाने गयो.

अनुक्रमे सिंहना स्वप्नयो सूचित पुत्र थयो. तेतुं नाम ‘गजसुकमाळ’ राखबामां आव्युं, क्रमे करीने ते आठ वर्षनेा थयो. माताना आग्रहयो तेने सोमिळ ब्राह्मणनी आठ पुत्रो परणावी. पछी नैमीश्वर भगवाननी देशना सांभळी संसारनी असारता जाणी गजसुकमाळे चारित्र ग्रहण कर्तुं; अने प्रभुनी आज्ञा लइ स्पृशानभूमिमां कायो-त्सर्ग सुद्राए रखा.

ते अवसरे फरतां फरतां त्यां आवेछा सोमिळे तेने जोइने कर्तुं के-‘आ दुष्टे मारी निरपराधी वाळाओने फागट परणोने वगोवां.’ आ प्रमाणे उत्पन्न थयेळ छे द्वेष जेने एवा सोमिळे तेना मस्तक उपर माटीनी पाळ बांधीने तेमां धगधगता अंगारा भयीं. अग्निवडे मस्तक वळतां छतां पण गजसुकमाळे अपूर्व क्षमा धारण करी अने शुद्ध ध्यानवडे अंतकृत् केवली थइने मोक्षे गया.

बीजे दिवसे श्रीकृष्ण प्रभुने वांढवा आल्या. तेणे प्रभुने पूछ्युं के-‘गजसुकमाळ क्यां छे?’ भगवाने कर्तुं के-‘तेणे पोतातुं काम साधी लीधुं.’ एम करीने पछी तेतुं सयल्ल हृषांत कर्तुं. कृष्णे कर्तुं के-‘हे स्वामिन् ! आ कृकर्म कोणे कर्तुं?’ भगवाने कर्तुं के-‘तने जोइने जेतुं हृदय फाटो जाय ने मृत्यु पाये तेनाथी ए कार्य थयुं छे एम समजजे.’ शोकमग्न थयेळ कृष्ण नगर तरकू पाळा आवता हता तेवामां तेने

सौमिल सामो मळयो. भयथी नासतां तेजुं हृदय फाटी जवाथी तेभरण पामीने ऋषि-
हत्याना. पाप्रथी सातथी नरके गयो.

प्रेर्यवान गजमुक्ताळे जे प्रमाणे क्षमा धारण करी ते प्रमाणे अन्य प्राणीओए
पण समग्र सिद्धिने देनारी क्षमा धारण करवी एवो आ कथावडे उपदेश छे.

रायकुलेसुवि जाया, भीयां जरमरणगन्धर्वसहीणं ।

साहु सहंति सर्व्वं, नीयाणवि पेसपेसाणं ॥ ५६ ॥

अर्थ—“ राजकुलमां उत्पन्न यएला, छतां पण जरा मरण ने गर्भावासनां दुःखयी भय
प्राप्तेलाः एवा मुनि पोताना दासना, करेला सर्व्व उपसर्गो पण सहन करे छे,” ॥५६॥

पणमंति य पुव्वयरं, कुलया न नर्मति अकुलया पुरिसा ।

पण्यो पुर्व्वि इह जह—जणस्स जह चक्रवट्टिमुणी ॥ ५७ ॥

अर्थ—“ कुलवान पुरुषो प्रथम नमे छे, अकुलीन नमता नथी. अहीं जेम चक्रवर्ती
मुनि (पूर्व्वना) यतीजनने प्रथम नम्या [तेजुं हृदय जाणवुं]. ५७. अर्थात् पोते छ
खंडनी ऋषि छोडोने मुनि थयेला छतां पूर्व्वना—दोक्षा पर्याये ज्येष्ठ मुनिने चक्रवर्ती
मुनिः प्रथम नम्या” . ५७.

जह चक्रवट्टीसाहु सामाईअ साहूण निरुव्यारं ।

ऋषियो नचेव कुविओ, पण्यो बहुअत्तण गुणणं ॥ ५८ ॥

अर्थ—“ जेम चक्रवर्ती साधुने (प्रथम वीजा मुनिओने नमस्कार न करवाथी)
सामान्य साधुए निन्दुरपणे तुंकारो करीने कहुं के तुं आ-भाराथी दीक्षापर्याये मोटा
मुनिओने वदना कर) तथापि ते विलकुल कोपायमान थया. नहि अने ज्ञान दर्शन
भारिष्ठ गुणवडे श्रेष्ठ-बहुपणावाळा मुनिओने नम्या.” ५८.

अहीं सामान्य साधु-ते दोषापर्याये लघु समजवा.

ते धन्ना ते साहु, तेसिं नमो जे अकळा परिविरया ।

धीसंत्तयं मत्तिहारं—चरंति जह थूलिभइमुणी ॥ ५९ ॥

गाथा ५६—भीताः अस्ताः साहु. गाथा ५८—चक्रवट्टि. साहु. साहुणा,
साहुणं. निरुव्यारं. गाथा ५९—परिवडिया. थूलभइमुणो.

अर्थ—“ ते पुरुष धन्य-कृतपुण्य, ते साधु-सत्पुरुष, ते पुरुषने नमस्कार थाओ के जे अकार्यथी निवृत्त थया छे. एवा धीर पुरुषो जेम स्थूलिभद्र मुनिए आचर्युं. तेम व्रत जे चतुर्थ व्रत ते असिधार सदृश-खड्गनी धार उपर चालवानी जेहुं आचरे छे पाळे छे.” ५९. अहीं श्रीस्थूलिभद्रं द्रष्टांत जाणवुं. १९.

श्री स्थूलिभद्रं द्रष्टांत.

पाटलीपुरमा नंद नामे राजा हतौ. तेने ‘शकटाळ’ नामे नागरब्राह्मण ज्ञातिनो मंत्री हतौ. तेने लाचछलदं नामनी स्त्री हती. तेने ‘स्थूलिभद्र’ नामे मोटो पुत्र हतौ अने बीजो ‘श्रीयक’ नामे हतौ, तथा ‘यज्ञा’ आदि सात पुत्रीओ हती. स्थूलिभद्र युवावस्थामां विनोद करतो सतो एक दिवस मित्रोथो परिवृत्त थइ वन जोषाने गयो. पाछो आपतां. तेने ‘कोशा’ नामनी वेद्याए जोयो. तेना रूपथी मोहित थयेछी ते वेद्याए तेने वात करवाना मिषथी खोटी करी चातुर्थ्यगुणी तेंतुं चित्त बध करी छोयुं. स्थूलिभद्र पण तेना गुण नें रूपथी रंजित थइ तें वेद्याने घेर रह्यो; अने तेनी साये विषयसुख भोगवतो सतो ते नवा नवा विनोद करवा लाग्यो. तेना पिता पण पुष्कळ द्रव्य मोकळवा बडे तेनुं इच्छित पूर्ण करवा लाग्यो. ए प्रमाणे त्यां वार वर्ष सुधी रहेछा स्थूलिभद्रे साडीबार क्रोड सोनापहोरेनें व्यय कर्यो. ते अवसरे बरुचि ब्राह्मणे करेछा प्रयोगथी शकटाळ मंत्रीतुं मरण थयुं. ते बलते नंद राजाए श्रीयकने प्रधानपद आपवाने माटे बोलाव्यो. त्यारे श्रीयकें कहुं के—‘ हे स्वामी ! मारो मोटो भाइ कोशा वेद्याने घरे छे, ते प्रधानपदने योग्य छे.’ नंद बोलाववाजे सेवको भोकल्या: ते आंव्यो. तेने मंत्रीपद आपतां तेणे एकाएक न स्वीकार्युं. राजाए कारण पूछतां स्थूलिभद्रे कहुं के—‘ स्वामीन ! विचार करीनें ग्रहण करीम.’ राजाए विचार करवानी रजा आपी, एटछें अणोकवाटिकामां एकांत स्थळे जइने विचार करवा लाग्यो के—‘ आ संसारमां कोइ कोइहुं नथी सर्व स्वार्थी छे.’ कहुं छे के—

दृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरं सारसाः ॥

पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनांतं मृगाः ।

निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका मृष्टं नृपं सेवकाः ॥

सर्वः स्वार्थवशाज्जानो मिरमते नो कस्य को बह्वंजः ॥

“ पक्षीओ फळ विनाना दृक्षनेओ, सारस पक्षीओ जळ विनाना सरोवरनो, अश्वरी करमायेछां पुष्पेओ मृगा बळेछा वननो, गणिका निर्धन पुरुषनो अने सेवकनोको-

રાજ્યઞ્નદ્ર થયેલા રાજાનો ત્યાગ કરે છે. માટે સર્વ સ્વાર્થને વશ થઈને રમ્યા કરે છે. વાકી વાસ્તવિક રીતે કોઈ કોઈને પ્રિય નથી.” “ જ્યારે મારા પિતા રાજ્યનાં અનેક કાર્યો કર્યા છતાં પ્રાંતે કુમૃત્યુથી મરણ પામ્યા તો મને આ રાજ્યમુદ્રાથી શું સુસ્ત મલ્લશે. પ્રાંતે આ અનર્થના કારણભૂત રાજ્યમુદ્રાને ધારણ કરવી તેને ધિક્કાર છે ! અને આ વિષ યસુસ્તને પણ ધિક્કાર છે ! કે જેથી તેને વશ થયેલા ઇવા મને પિતાના મરણની પણ સ્વર પહો નહિ.” એ પ્રમાણે વિચાર કરી, વૈરાગ્યપરાયણ થઈ, પંચમુષ્ટિ લોચ કરી, શાસન-દેવીએ આપેલા સાધુવેષને ધારણ કરી, રાજાની સભામાં આવીને તેણે ધર્મલાભ આપ્યો. આ જોઈ સકલ સમા આશ્ચર્ય પામી. નંદ રાજાએ પૂછ્યું કે—‘ આ શું કર્યું ? ’ સ્થૂલિભદ્રે કહ્યું કે—‘ મેં સારી રીતે વિચાર્યું અને પછી કરવા યોગ્ય લાગ્યું તે કર્યું. ’ એમ કહી શ્રી સંમૃતિવિજય આચાર્ય પાસે જઈ વિધિપૂર્વક ચારિત્ર પ્રહણ કર્યું.

આ હકીકત સાંભળી કોશા અતિ દુઃસ્થિત થઈ આંસમાં અશ્રુ છાવી વિરહાતુરપણે વિવિધ પ્રકારના વિલાપ કરવા લાગી કે—‘ હે ચતુર ષાણાક્ય ! તમે રાજ્યમુદ્રા તજીને મિસ્રામુદ્રા શામાટે અંગીકાર કરી ? હે પ્રાણનાથ ! મારે તમારા વિના કોનો આધાર છે ? હવે હું શું કરું ? કેવી રીતે જીવું ? ’ એવી રીતે અનેક પ્રકારનાં વિરહવાક્યો બોલવા લાગી.

અહીં સ્થૂલિભદ્રને ઘણા દિવસો વ્યતીત થતાં ચાતુર્માસ ઉપર એક સાધુએ ગુરુ પાસે આવીને કહ્યું કે—‘ સિંહગુફા પાસે ચાતુર્માસ કરવા ઇચ્છું છું. ’ એ પ્રમાણે આજ્ઞા માગી પટલે વીજા મુનિએ કહ્યું કે—‘ હું સર્પના વીલ પાસે ચાતુર્માસ કરવા ઇચ્છું છું. ’ વીજા મુનિએ કહ્યું કે—‘ હું કુવાની અંતરાલે રહેલ લાકડા ઉપર (ભારવટ ઉપર) ચાતુર્માસ કરવા ઇચ્છું છું. ’ ત્યારે ચોથા સાધુ સ્થૂલિભદ્રે કહ્યું કે—‘ હું કોશા વેદ્યાના ઘરમાં ચાતુર્માસ કરવા ઇચ્છું છું. ’ ગુરુએ યોગ્યતા જાણીને ચારે મુનિને આજ્ઞા આપી.

સ્થૂલિભદ્ર ગુરુને નમીને કોશા વેદ્યાને ઘેર ગયા. તેને આવતાં જોઈ કોશા અતિ હર્ષિત થઈ અને સામે આવીને પગમાં પડી. તેની આજ્ઞા છૂડ સ્થૂલિભદ્ર તેની વિચક્ષાલામાં ચાતુર્માસ રહ્યા. તે હમેશાં ષટ્સનો આહાર કરે છે, સમય પણ વર્ષા ઋતુનો છે, નિવાસ ચિત્ર-જાલામાં છે, પ્રીતિ કોશાનો છે, અને પરિચય વાર વપનો છે. વઢી નેત્ર ને મુસ્તનો વિલાસ, હાવમાવ, ગાન, તાન, માન, વીણા ને મૃદંગના મધુર શબ્દો સહિત નાટ્યવિનોદ વિનેરે નાના પ્રકારના વિષયોને સ્થૂલિભદ્ર આગળ પ્રગટ કરતી અને પોતાનો હાવમાવ વતાવતી કોશા કહે છે કે—‘ હે સ્વામિન્ ! સ્વાધોન એવી કામિનોનાં કુચસ્પર્શ અને આલિંગન આદિ છોડીને આંડું કઠોર તપ શામાટે કરો છો ? ’ કહ્યું છે કે—

संदष्टेऽधरपल्लवे सञ्चकितं हस्ताग्रमाधुन्वती ।
 मामा मुंच शठेति कोपवचनैरानर्चितभ्रूलता ॥
 सीत्कारांचितलोचना सरजसं यैश्चुंबितो मानिनी ।
 प्रासं तैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैस्सुरैः सागरः ॥

“अधर पल्लवનો दंश करता वक्ति थइने हस्तना अग्र भागने धूणावती, अने ‘नहि नहि, हे शठ ! छोडी दे’ ए प्रमाणे कोपवचन बोल्वा साथे भ्रूलताने नचावती तथा सीत्कारयी सत्कार कारयेळां जेनां नेत्र छे एवी मानिनीने जुत्सायी जेणे जुंवन करेछुं छे तेओए खरं अमृत मेळ्ळ्युं छे एम हुं मातुं छुं, वाकी मूढ. देवताओए तो फोगट श्रमने माटेज समुद्र मथेलो छे.” तैयी हे स्पृष्टिभद्र ! आत्याग साधवानो समय नयी, माटे मारी साथे यथेच्छ विषयमुख भोगवी तेनो स्वाद ल्यो. फरीयी आ मनुष्यजन्य पापवो दुर्लभ छे. अने आ यौवन पण दुर्लभ छे. माटे हे स्वामिन् ! हमणा तो मारा अंगसंगयी उत्पन्न थयेछुं मुख भोगवो. पाछळ्यी वृद्धावस्थामां आ तप करवो ते उचित छे. ” ते सांभळीने स्पृष्टिभद्र बोल्या-“हे भद्र ! अपवित्र अने मलमूत्रं पात्र एवा कामिनीना शरीरने आळिगन करवाने फोण इच्छे ? कहुं छे के-

स्तनौ मांसग्रथी कनककलशावित्युपमितौ ।

मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥

क्षवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरशिरःस्पर्द्धिजघनं ।

मूहुर्निधं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥

“स्तनो मांसनी गांठ छे छतां कविजनोए तेने सोनाना कळशनी उपमा आपी छे, मुख श्लेष्म (कफ)तुं स्थान छे तोपण कविओए तेनी चंद्र साथे सरस्वामणी करी छे अने क्षवता मूत्रयो व्याप्त एवा जघनने हाथीना गंडस्थलनी साथे सरस्वाव्युं छे. ए प्रमाणे वारंवार निंदवा लायक स्त्रीना स्वरूपने कविओएज विशेष महत्त्वता आपी छे.” वळी—

वरं ज्वलदयस्तंजः, परिरंभो विधीयते ।

न पुनर्नरकद्वाररासाजघनसेवनम् ॥

“वपावेळा लोढाना थांभळाने आळिगन. करछुं ए सारं छे, परंतु नरकना द्वार रूप स्त्रीना जघनतुं सेवन करछुं ए सारं नयी.” वळी एक वखतना स्त्रीसंभोगयो अनेक जीवानो घात थाय छे. कहुं छे के-

मेहुणसन्नासुतो, नवल्लसुखं हणेइ सुहुमजीवाणं ।

तिथयराणं भणियं, सहहिथव्वं पयत्तेणं ॥

“मैष्टुनसंज्ञाने विषे आरुद्धययेछो जीव नव छाख सूक्ष्म जीवोने हणे छे एय तीर्थकर भगवंते कहेछं छे तेने अयत्न पूर्वक सर्दहवुं.

बळी हे कोशा ! आ विषयो अनेकवार भोगव्या छातां तेनाथी वृत्ति यती नथी. कहुं छे के-

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषयं ।

वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममूनू ॥

व्रजंतः स्वान्तंन्यादतुलपरितापाय मनसः ।

स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शिवसुखमनंतं विदधति ॥

“ आ विषयो छांवा वखत सुधी रहीने पण छेवटे जनारा छे ए तो नकी छे. तो पछी तेना वियोगमां फेर शो छे के जेथी माणसो पोतानी मेळे विषयोने छोडता नथी; केमके जो ए विषयो पोतानी मेळे आपणायो छुटा पडे छं तो मनने अति परि-
ताप उत्पन्न करे छे. पण जो आपणे पोतेज खुशीथी तेनो त्याग करीए छीए तो ते मोक्षसुख आपे छे.” एटला माटे सर्पनी फण जेवा आ विषयोने छोडी दइ कीळ रूपी अलंकारथी तारा सुंदर अंगने अलंकृत कर. आ मनुष्यभव फरोथी मळवो मुखेळ छे, अने ते भव धर्म विना हारी जइश. कारण के सर्व कार्योंमां उत्तम कार्य धर्म छे. कहुं छे के—

न धम्मकज्जा परमस्थि कज्जां, न पाणिहिंसा परमं अकज्जां ।

न पेमरागा परमस्थि वंधो, न बोहिलाभा परमस्थि लाचो ॥

धर्मकार्यथी उत्कृष्ट वोजुं कोइ कार्य नथी, प्राणीनी हिंसा उपरांत वीजुं कोइ अकार्य नथी, प्रेमरागथी विशेष कोइ वंधन नथो, अने बोधि (सम्यक्त) ना लाभ उपरांत वीजो कोइ परम लाभ नथी. ” इत्यादि उपदेश आपीने जेतुं मन बाळेछं छे एवी कोशा बोली के— ‘ हे कंदर्पतु विदारण करनार ! हे शासननो उद्योत करनार ! हे मिथ्यात्वने निवारनार ! तमने धन्य छे, तमेज खरेखरं जीविततु फळ मेळव्युं छे. हुं अघन्य छुं, में तमने बहु रीते चळाववा प्रयास कर्यो पण तमे चळया नहि. इवे कृपा करीने सम्यक्त्व आपीने मारो उद्धार करो.’ आ प्रमाणे कहीने स्युलिभद्रनी पासे सम्यक्त्वना उच्चार पूर्वक वार व्रत अंगीकार करी ते कोशा परम आधिका यद्. ते साथे

‘राजाए मोकछेल पुरुष शिवाय अन्य पुरुषनो वचनथी पण, हुं स्वीकार करीस नहिं’ ए प्रमाणे भोग संबंधी पक्कखण लीधुं, तेमज जीव अजीव आदि तत्त्वोनो पण जाणकार थइ.

ए प्रमाणे कोशा वेश्याने प्रतिबोध पमाडी चातुर्मास पूर्ण करी स्थूलिभद्र मुनि श्री संभूति विजयाचार्यनी पासे आव्या. पेलात्रण मुनिओ स्थूलिभद्रनी पहेलां आव्या हवा. गुरुए ते त्रणेने ‘दुष्कर कार्य कर्तुं’ ए प्रमाणे एकवार कहीने मान आप्युं हतुं; परंतु स्थूलिभद्र मुनिने ‘दुष्कर कार्य कर्तुं’ एम त्रणवार कही घणा आदर पूर्वक मान आप्युं. ते जोइ सिंहशुफावासी मुनिना मनमां मत्सर आव्यो के “गुरुनो विवेक तो जुओ के तेओए श्लुषा ने तृषाथी पीढायेला अमोने ‘दुष्कर कर्तुं’ एम मात्र एक वखत कहुं, अने घट्टरसने खानार तथा मोह उपजावे एवा स्थाननी अंदर रहेनारने ‘दुष्कर दुष्कर कर्तुं’ एम त्रण वखत कहुं.” ए प्रमाणे तेणे मनमां मत्सर घारण कर्यो.

हवे एक दिवस नंद राजानी आहाथी कोइ रथकार कोषा वेश्याना मंदिरे आव्यो. तेनी बारीमां रहीने तेणे बाणसंधान विधाथी आम्रफळनी छंब त्यां वेठा वेठा आणी पोतानी कला बत्तावी, एटछे कोशाए पण पोताना आगणामां सरसवनो दग-छो करावो, तेना उपर सोय मूकी, नेना उपर एक पुष्प मूकोनेतेना उपर नृत्य कर्तुं. ते जोइ रथकार चमत्कार पाभीने बोख्यो के—‘आ अति कठिन काम छे.’ त्यारे कोशाए कहुं के—

न दुक्करं अंबयलुंबतोरुणं, न दुक्करं सिरसव नच्चिआए ॥

तं दुक्करं तं च महानुत्तावं, जं सो मुणी पमयवणंमि वुच्छो ॥१॥

“आंबानी छंब तोडवी ते दुष्कर नहिं तेमज सरसव उपर नाचवुं ते पण दुष्कर नहिं; दुष्कर तो ए छे के जे ते महानुत्तावं स्थूलिभद्रे कर्तुं अने प्रमदा रुपी घनमां मोह न पामतां शुद्ध रखा. ”

गिरौ गुहायां विजने वनान्तरे, वासं श्रयंतो वशिनः सहस्रशः ।

हर्म्येति रम्ये युवतीजनान्तिके, वशी स एकः शकडालनंदनः॥२॥

“पर्वतमां, शुफामां, एकांतमां अने वननी अंदर निवास करीने इंद्रियोने वश राखनारा हजारो छे, पण अति रम्य हवेलीमां अने स्त्रीजननी समीपमां रहीने इंद्रियो-ने वश राखनार तो ते शकडालनंदन एकज छे.”

યોગ્જ્ઞૌ પ્રવિષ્ટોઽપિ હિ નૈવ દગ્ધઃશ્ચિન્નો ન સ્વરુગાગ્રકૃતપ્રચારઃ ।

કૃષ્ણાહિરંધ્રેઽપ્યુષિતો ન દૃષ્ટો નોક્તોજનાગારનિવાસ્યહો યઃ ॥૩॥

“ જે અગ્નિમાં પ્રવેશ કર્યા છતાં પણ બલેલ નથી, સ્વહૃગની ધાર:ઉપર ગતિ કરતાં છતાં હેઠાયલ નથી, કાઠા સર્પના દર પાસે વાસ કરતાં છતાં જેને દંશ થયો નથી અને અંજનના ઘરમાં વાસ કર્યા છતાં પણ જેને ઢાઘ લાગ્યો નથી એવા તો તે સ્થૂલિ-મદ્ર એકજ છે. ”

વેશ્યા રાગવતી સદા તદનુગા ષડભીરસૈર્ભોજનમ્

શુદ્રં ધામ મનોહરં વપુરહો નવ્યો વયઃસંગમઃ ।

કાલોયં-જલદાવિલસ્તદપિ યઃ કામં જિગાયાદરાત્

તં વદે યુવતિપ્રવોધકુશલં શ્રીસ્થૂલિજદ્રં મુનિમ્ ॥ ૪ ॥

“ પૂર્વની પ્રીતિવાઠી વેશ્યા અને તે પણ સર્વદા અનુકૂલ વર્તનારી, ષટ્સયુક્ત ભોજન, સુંદર મહેલ, મનોહર શરીર, શુવાવંસ્યા અને વર્ષાક્રતુ-આટલાં વાનાનો યોગ છતાં પણ જેણે આદરથી કામને નીત્યો એવા યુવતિજનને પ્રતિવોધ પમાડવામાં કુશલ સ્થૂલિમદ્ર મુનિને હું વંદું હું. ”

રેં કામ વામનયના તવ મુખ્યમસ્ત્રં

વીરા-વસંતપિકપંચમચંદ્રમુખ્યાઃ ।

ત્વત્સેવકા હરિવિરંચિમહૈશ્વરાધ્યા

હા હા હતાશ મુનિનાપિ કથં હતસ્ત્વમ્ ॥ ૫ ॥

“ હે કામ ! વામનયના- તારું મુખ્ય અસ્ત્ર છે, વસંતક્રતુ, કોકિલ, પંચમ સ્વર અને ચંદ્ર વિગેરે તારા સુખદો છે, અને બ્રહ્મા, વિષ્ણુ તથા મહેશ્વરાદિ તારા સેવકો છે, છતાં દિલ્હીગીરીની વાત છે કે હે મગ્નાથ ! તું એક મુનિથી કેવી રીતે હણાયો ? ”

શ્રીનંદીષેણરથનેમિમુનીશ્વરાદ્રં

બુદ્ધ્યા ત્વયા મદન રે મુનિરેષ દૃષ્ટઃ ।

- જ્ઞાતં ન નેમિમુનિજંવૃસુદર્શનાનામ્

તુર્યો જ્ઞવિષ્યતિ નિહત્ય રણાંગણે મામ્ ॥ ૬ ॥

“ हे कामदेव ! ते नंदीषेण; रथनेमि अने आद्रकृमार मुनीश्वरनी बुद्धिशी आ
:स्थूलिभद्र मुनिने जोयेला के ते व्रणनी साये-आ चोया थशे; पण ते एम ज्ञ नाप्युं के
आ तो रणांगणमां मने हणीने नेमिनाथ, जेवुमुनि ने सुदर्शन शेट ए-व्रणनी:साये
वोया थशे ?”

श्रीनेमितोपि शकनालसुतं विचार्य
मन्यामहे वयममुं भटमेकमेव ।
देवोऽद्रिदुर्गमधिरुह्य जिगाय मोहं
यन्मोहनालयमयं तु वशी प्रविश्य ॥ ७ ॥

“ श्री नेमिनाथयी पण विचार करतां अमे तो स्थूलिभद्रनेज एक महान-योषो
गणीए-छीए; कारणके श्री नेमिनाथे तो गिरनार दुर्गनो आश्रय करीने मोहने-जीत्यो
डे, पण इद्रियोने वश राखनार आ स्थूलिभद्रे तो मोहना घरमां भवेश-करीने; तेने
जोती छीयो छे. ”

आं प्रमाणे स्तुति करीने कोशाए स्थूलिभद्र मुनिनुं धनुं स्वरूप रथकारने कही
वताव्युं के वार वर्षनो मारी साये-पूर्व परिचय छतां मारा घरमां आवीने किंचित्मात्र
पण चलित थया नहि; माटे खरेखरा तो तेज दुष्कर कार्यना करनारा छे. कशुंछे के-
पुष्कफलाणं च रसं, सुराई महिलयाणं च ॥
जाणंतो जे विरश्या, ते दुष्करकारण वंदे ॥

“ पुष्प फलादिकनो रस; मदिरा विगेरेनो स्वाद अने स्त्रीओनो विलास, तेने
जाणतां छतां अर्थात् जाणीने पण जे विरम्या तेज दुष्करकारक छे तेने हुं नयस्कार
कहं छु. ”

इत्यादि स्थूलिभद्रनां स्तुतिवचनोयी प्रतिबोध पामेला रथकारे-स्थूलिभद्र मुनि
पासे जःने चारित्र छीधुं. स्थूलिभद्र मुनि पण अनुक्रमे अर्थ सहित दश पूर्वनुं अने सूत्र
मात्रयी वाकीना चार पूर्वनुं अध्ययन करी, चतुर्दश पूर्वीमां छेला थह; घणा भव्य जी-
वोने प्रतिबोध पमाडी, पोतानी निर्मळ कीर्तियो आखा जगतने उज्ज्वळ करी अने सर्व
जनोमां प्रसिद्धि पामी, त्रीश वर्ष घरमां, चोवीश वर्ष व्रतमां अने पोस्ताळीश वर्ष युग
प्रानपणामां-ए-प्रमाणे नवाणुं वर्षनुं आयुष्य पाळीने-प्रहावोर स्वामीयी बसो पंदर-
या वर्षे स्वर्गें गया.

ए प्रमाणे जेम स्थूलिभद्रे दुर्धर व्रतने धारण करी चोराशी चोवीशी सुधी पो-
तानुं नाम ह्मुख्युं तेम अन्य मुनिओए पण गुरुनी आज्ञाने अनुसरी ग्रहण करेला व्रतने
पाळीने कीर्तितं थवुं.

विसयासिपंजरमिव, लोए असिपंजरंमि तिख्खंमि ॥

सिंहा व पंजरगया, वसंति तवपंजरे साहु ॥ ६० ॥

अर्थ—“ लोकने विषे जेम तीक्ष्ण खड्गना पंजरथी भय पामेळ सिंह काष्ठना पांज-
रायां वसे छे तेम विषय रूप खड्ग पंजरथी भय पामेळा मुनिओ तप रूप पंजरमां वसे
छे, अर्थात् वार प्रकारनो तप आचरे छे.” ६०

विषय पांच इंद्रियोना शब्दादि जाणवा. तद्रूप पंजरथी अथवा तत्तुल्य जे स्त्रीलोक
तेथी भय पामेळा मुनिओ संसार तजी दइ चारित्र अंगीकार करीने बाह्य अभ्यंतर तपने
आचरे छे, एटछे तप रूप पंजरमां वसे छे.

जो कुणइ अप्पमाणां, गुरुवयणां नय लहेइ उवएसं ।

सो पच्छा तह सोअइ उवकोसघरे जह तवस्ती ॥ ६१ ॥

अर्थ—“ जे प्राणी आत्ममान करे छे अर्थात् पोताना गुणहुं अभिमान करे छे अने
गुरुना वचनने—उपदेशने—आज्ञाने अंगीकार करतो नथो ते प्राणी पाछळथी एवो शोक
करे छे के जेवो उपकोशाने घरे गयेला तपस्वी मुनिए कर्यो.” ६१

‘अहीं जे गुरुना वचनने अप्रमाण करे छे’ एम कहुं छे त्यां ‘जे गुरुना उपदेश-
ने मानतो नथो’ एवो अर्थ पण थाय छे.

स्थूलिभद्रजीनी ईर्ष्याथो कोशा वेद्यानां वहेन उपकोशा वेद्याने घरे गयेला
सिंहगुफावासी मुनि जे चतुर्मासमां चारे मासना उपवास करीने सिंहनी गुफाने मुखे
कायोत्सर्गे रहेता हता तेमहुं दृष्टांत अहीं जाणवुं. २०

सिंहगुफावासी मुनिहुं दृष्टांत.

एक दिवस पाडलोपुरमां श्रीसंभूतिविजय आचार्यना सिंहगुफावासी शिष्ये स्थूलि-
भद्र उपर ईर्ष्या करी वीखुं चातुर्मास कोशा वेद्यानो वेन ‘उपकोशा’ वेद्याने वेर कर-
वानी गुरु पासो आत्मा मागी. गुरुए अयोग्यता जाणी आत्मा आपो नहि. गुरुए कहुं के-

गाथा ६०—सिंहा.

गाथा ६१—नयलएइ. न लहेइ.

‘ हे महाजुभाव ! त्वां तमारं चारित्र रहेशे नदि. ’ ए प्रमाणे गुरुए बायां छतां पण ते त्वां गया अने चातुर्मास निवासने माटे याचना करी; ते साथे कहुं के ‘ जेदुं स्थूलि-मद्रने रहेवा आप्युं हतुं तेदुं स्थान मने रहेवा आपो. ’ तेणे ते आप्युं. पाछळ्यी उप-कोशाए जाण्युं के ‘ आ मुनि स्थूलिमद्रनी ईर्ष्या करीने अहीं आवेळा छे, तेथी हूं स्थूलिमद्रना गुणमां ईर्ष्या कर्यांतुं फळ तेने बतावुं. ’ ए प्रमाणे विचार करी रात्रए त-माम प्रकारनां अलंकारो धारण करी, कामदेवने जेणे सजीवन कर्यो छे, जेनां पबलोचन प्रफुल्लित थयां छे, जेनां मणिजडित नूपुरो रणकार करे छे, जेणे कटितटयां शब्द करती मेखला धारण करी छे, मुखमां तांबूल चाबी रही छे, मधुर स्वरथी जेणे कोकिलना स्वरने पण जीती लोथो छे एवी ते उपकोशा हावभाव बतावती मुनि आगळ आवी. कटाक्ष नांखती अने अंगोपांगने मरदती एवी ते मृगलोचनाने जोइ मुनिद्वं मन सुस्थिर हतुं छतां पण परवन्न यइ गयुं. अहो ! कामविकार खरेखर दुर्जय छे. कहुं छे के-

विकलयति कलाकुशलं, हसति शुचिं पंडितं विरुंबयति ।

अधरयति धीरपुरुषं, क्षणेन मकरध्वजो देवः ॥

“ कामदेव क्षणमात्रमां कलाकुशलने विकल बनावे छे, पवित्रने हसी कहाडे छे, पंडितने विटंबणा पमाडे छे अने धीर पुरुषने पण अधैर्य वनावी देखे.”

बळी कहुं छे के-

मत्तेजकुंभदलने भुवि संति शूराः

केचित्प्रचंडमृगराजवधेऽपि दक्षाः ।

किंतुब्रवीमि बलीनां पुरतः प्रसह्य

कंदर्पदलने विरला मनुष्याः

“ आ पृथ्वी उपर मदीन्मत्त गजेन्द्रना कुंभस्यलने दळी नांखवामां शक्तिवान-शूर-वीर एवा मनुष्यो पण होय छे, तेमज प्रचंड केसरीसिंहनो वध करवामां कुशल एवा मनुष्यो पण होय छे; परंतु बलवानोनी आगळ हूं आग्रह पूर्वक कहुं हूं के कामदेवना दर्पंतुं दळन करवामां कुशल-शक्तिमान एवा मनुष्यो तो विरलाज होय छे.”

पछी ते सिंहशुफावासी मुनिए कामथी परवन्न वनी जइने उपकोशा पासे भोगनी मार्यना करी. त्यारे तेणे कहुं के-‘ अमे निर्धननो आदर करता नथी, माटे प्रथम धन लाबो अने पछी इच्छा म्जव बतेतो’ ए प्रमाणे सांभळी धन मेळववाना उपाय

संबंधी चिंतन करतां तेने याद आव्युं के 'उत्तर दिशायां नेपाल देशनो राजा अपूर्व (नवा) साधुने लक्ष मूल्यजुं रत्नकंबल आपे छे, माटे त्यां जइ, रत्नकंबल छावी, आनी साथे विषयसुख सेवीने मनइच्छित परिपूर्ण करूं.' आ प्रमाणे विचारी वर्षाकालमां मेघनी पुष्कळ दृष्टि थती हती छतां नेपाल देश प्रति प्रयाण कर्युं. घणा जीवोतुं उपमर्दन करतो अने अनेक कष्टो सहन करतो केटलेक दिवसे ते नेपाल देशे पहांच्यो, अने आंशिवाद् पूर्वक राजानो पासे रत्नकंबल माग्युं. राजाए ते आप्युं. ते लइने पाछा फरतां मार्गमां चोरोए छुंटी छोधुं, तेथी तेणे फरीवार नेपाल जइ राजाने अरज करी एटंछे तेने फरीथो रत्नकंबल आपवामां आव्युं. ते रत्नकंबलने वांसमां नाखी गुप्त रीते छावतां चोरनी पाळना पोपटे चोरोने ते जणाववाथी तेओने तेने घेरी छीघो अने कहुं के 'एक छाखनी किंमतजुं रत्नकंबल तारी पासे छे ते वताव.' तेणे कहुं के—'मारी पासे कइ नथी.' चोरोए कहुं के—'अमारो आ पोपट खोडु बोळे नहि माटे सत्य बोळ, अमे ते-लइथुं नहि.' तेथी तेणे सत्य कहेवाथी भिक्षुक जाणीने तेने जवा दीधो. अनुक्रमे ते पाडळीपुर आव्यो अने रत्नकंबल उपकोशाने आप्युं. तेणे तेनावडे पोताना पण छुंछीने तेने दूर अपवित्र स्थानमां फेंको दीधुं. त्यारे साधुए कहुं के 'अरे निर्माणिणी ! आ तें थुं कर्युं ? आ रत्नकंबल अतिदुर्लभ छे.' ते सांभळी वेइयाए कहुं के—'ताराथी वळी बीजो कोण निर्माणीमां शिरोमणि छे ? में तो आ लक्ष्य मूळजुं रत्नकंबल अपवित्र जग्यामां नाखी दीधुंछे, पण तें तो अमूल्य एवा ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय के जे अनंत भवमां पण पामवा दुर्लभ ते नट वीट पुरुषने थुंकवाना पात्र जेवा अने अपवित्र मळमूत्रथी भरेळा एवा मारा देहमां फेंकी दोषा छे; माटे बगर विचार्युं करनार एवा तने धिकार छे ! आ मनुष्यभव दुर्लभ छे, तेमां पण उत्तम कुळ दुर्लभ छे; तेमां धर्मजुं श्रवण दुर्लभ छे, तेयां श्रद्धा रूप तच्च दुर्लभ छे, अने तेमां पण साधुघमां चरण तो अति दुर्लभ छे. ते छतां मुक्तिते देनारा साधुत्वने तजी दइ मारा अंगमां मोह पामी वर्षाकळे नेपाल देशमां गमन करी बहु जीवोनो घात करवा पूर्वक चारित्रनो त्याग करवाथी दीर्घ काळ पर्यंत तरकादि दुर्गतिनी वेदचाने तुं केवी रीते सहन करीश !' इत्यादि वाक्यो सांभळीने पुनः वैराग्य प्राप्त थवाथी ते मुनि कहेवा लाग्या के—'तने धन्य छे ! भवकूपमां पडतां मारो ते उद्धार कर्यो. हवे हुं अकृत्यथी निवृत्त थयो छुं. त्यारे वेइयाए कहुं के—'तमारा जवाने एमज घटे छे.'

पछी ते मुनि गुरु पासे आच्या, चरणमां पहीने स्थूलिभद्र मुनिने स्वमान्या अने कहुं के—'तमने धन्य छे ! आपजुं काम आपज जाणो. अमारा जेवा सत्वहीन जाणी शकें नहि.' पछी तेणे गुरुने जणाव्युं के "हे स्वामिन् ! आपे त्रगवार दुष्कर करनार

एष स्थूलिभद्रने जे कहुं ते सत्य छे.' ए प्रमाणे कही पापनी आलोचना करी, फरीथी चारित्र ग्रहण करीने ते मुनि सद्गतिए गया. माटे गुरुनी आज्ञा पूर्वक जे आचरहुं तेज श्रेष्ठ छे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

जिह्वयपवयजर—समुद्बह्वणववसिञ्चस्स अरुचंतं ।

जुवइ जण संवइयरे, जइत्तणं उभञ्चो जइ ॥ ६२ ॥

अर्थ—“ज्येष्ठव्रत जे महाव्रत ते पर्वतनां भार सक्ष छे, तेने बहन करवांमां अत्यंत उद्यमी एवा मुनि पण युवतिजननो संसर्ग कर्ये सते द्रव्यथी.ने भावथी वने प्रकारना यतिपणाथो भ्रष्ट थाय छे. ”

जइ ठाणी जइ सोणी, जइ मुंडी वक्कली तवस्सी वा ।

पथितो अ—अबंजं, बंजावि न रोचए मज्झं ॥ ६३ ॥

अर्थ—“जो स्थानी के० कायोत्सर्ग करनारो होय, जो मौनी के० मौन धारण करनार होय, जो मुंडी के० माथे मुंडन करावनारो होय, अथवा बल्कली के० झण्डनी छालनां बल्क पहरेनारो होय के तपस्वी के० अनेक प्रकारनां तप करनारो होय तो पण अब्रह्म जे मैथुन तेने प्रार्थतो—वांछतो होय तो ते कदि ब्रह्मा होय तो पण ते मने रुचतो नथी. अर्थात् मये तेहुं कष्ट करनार होय पण जो ते मैथुना.भिलापी होय तो ते श्रेष्ठ नथी.” ६३

तो पठियं तो गुणियं तो मुणियं तो अ चेइओ अप्पा ।

आवडिय पड्डिया मंतिञ्चोवि, जइ न कुणइ अकज्जं ॥७४॥

अर्थ—“जो अकुलिनना संसर्ग रूप आपदामां पढयो सतो. एटले कुमिने प्रेयेई सतो अने स्त्रीए आर्मंत्रित कर्ये सतो—बोलाव्यो सतो पण जे अकार्य प्रत्ये जतो नथी. आचरतो नथी तो तेहुं भणेछं प्रमाण, गणेछं प्रमाण, जाणेछं प्रमाण अने आत्म स्वरूपहुं चिंतवन पण प्रमाण समजहुं.” ६४. नहीं तो ते वधुं अप्रमाण जाणहुं.

पागकिय सव्वसहो, शुरुपायसूळंमि लहइ साहू पर्यं ।

अविसुद्धस्स न वटइ, गुणसेढी तत्तिया ठाइ ॥ ६५ ॥

गाथा ६२—स्त्रीजनससंनेकृते.

गाथा ६३—ठाणि. पथितो. रोचए.

गाथा ६४—गुणीयं. पिड्डिया.

गाथा ६५—पादगुळंमि. साहूपयं तिच्चिया.

અર્થ—“ શુભ મહારાજના પાદમુલે—શુભસમીપે જેણે સર્વ શલ્ય પ્રગટ કર્યાં છે—સર્વ પાપ આલોભ્યાં છે તે પ્રાણી સાધુતાને પામે છે; અને અવિશુદ્ધની—અનાલોચિત પાપ-કર્મવાદ્યાની ગુણશ્રેણિ તેટલીજ રહે છે—વૃદ્ધિ પામતી નથી.” ૬૫. અર્થાત્ પાપકર્મ આલોચીને નિઃશલ્ય થયા વિના ગુણો વૃદ્ધિ પામતા નથી; તેટલેજ અટકો રહે છે.

જહ દુક્કર દુક્કરકારુત્તિ, ભણિઓ જહૃઠિઓ સાહૂ ।

તો કીસ અહ્લસંચૂઅ—વિજયસીસેહિં નવિ સ્વામિયં ॥૬૬॥

અર્થ—‘ જો યથાસ્થિત એવા શ્રીસ્થુલ્લિભદ્ર નામના સાધુને શુભ (કોશાને ત્યાં ઘોમાસું રહીને આવ્યા ત્યારે) ‘દુષ્કર દુષ્કર કારક’ એવા બહુમાનપૂર્વક બોલાવ્યા તો તે શુભવચનને શ્રીસંભૂતિવિજયના શિષ્ય સિંહગુફાવાસી મુનિ એ શામાટે ન સ્વમ્યું—ન સહન કર્યું ?’ આ તેમનું નિર્વિવેકીપણું છે; માટે યથાસ્થિત ગુણોને જોઈને કે સાંભળીને તેના પર તો અનુરાગજ કરવો; દ્વેષ ન કરવો.

જહ તાવ સઠ્ઠવઓ સુંદરુત્તિ, કમ્માણ ઉવસમેણ જહ ॥

ધમ્મં વિચાણમાણો, ઈયરો કિં મચ્છરં વહ્હ ॥ ૬૭ ॥

અર્થ—‘ જો કોઈ પ્રથમ કર્મના અપશમવઢે કરીને સર્વ પ્રકારે સુંદર કહેવાય તો ધીજો યતિધર્મને જાણતો સતો શામાટે તેના ઉપર મત્સર વહન કરે ?’ ૬૭. અર્થાત્ વિરુદ્ધ કર્મના અપોપશમવઢે કોઈ જીવની ‘ આ સર્વ પ્રકારે—સારો છે ’ એવો ક્ષ્યાતિ થાય તો તે સાંભળીને ધર્મના જાણ એવા મુનિ એ તેના પ્રત્યે મત્સર ધરવો તે યોગ્ય નથી; નિર્દુષ્ટી એ ગુણવંત ઉપર મત્સર ધારણ કરવો તે વ્યર્થજ છે.

અહ સુદ્ધિઓત્તિ ગુણસમુહ્ઓત્તિ, જો ન સહ્હ જહ પસંસં ।

સાં પરિહાહ પરભવે, જહા મહાપીઠપીઠ રિસી ॥ ૬૮ ॥

અર્થ—‘ આ સુસ્થિત છે—ચારિત્રવિષયે સુદઢ છે, આ વૈયાઢ્ઢત્યાદિ ગુણોવઢે સમ્મ-દત છે—ચરેલો છે; એવી યતિનો પ્રશંસાને જે સહન ન કરે તે પુરુષ પરમવે પરિહીણ થાય છે અર્થાત્ હોનમાવને પામે છે—પુરુષવેદ ત્યજીને છોવેદને પામે છે; જેમ મહાપીઠ ને પીઠ મુનિ પામ્યા તેમ.” ૬૮. અહીં બ્રાહ્મીસુંદરીના જીવ જે પૂર્વે પીઠ ને મહાપીઠ નામના મુનિ હતા તેનું દઢ્યાંત જાણવું. ૨૧

ગાથા. ૬૭—શુભવઓસુંદરત્તિ, સઠ્ઠવઓસુંદરત્તિ.. વિચાણમાણે. .

पीठ अने महापीठ मुनिनी कथा.

महाविदेह क्षेत्रमा 'वज्रनाभ' चक्री राज्य छोडी चारित्र ग्रहण करी चौदपूर्ववारी थया. तेना बीजा चार नाना भाइओ वाहु, सुवाहु, पीठ अने महापीठ पण दोसा लइ अग्यार अंगने धारण करनारा थया. तेमां वाहु मुनि पांचसे साधुने आहार लावीने आपता हता, सुवाहु मुनि तेटलाज साधुओनी वैयावच करता हता, अने पीठ महापीठ मुनि अध्ययन करता हता. एक दिवसे गुरुप वाहु अने सुवाहु मुनिनी प्रशंसा करी. ते सांभळीने पीठ अने महापीठने इर्ष्या उत्पन्न थइ. तेओ विचारवा लाग्या के 'अहो! गुरुं अविवेकीपणुं तो जुओ ! तेओ हजु राजस्वभाव तजता नथी. पोतानी वैयावच करनार अने अन्न पाणी लावी आपनारने चलाणे छे. आपणे वने जणा दररोज अध्ययन ने तप करीए छीए' परंतु गुरु आपणी प्रशंसा करता नथी. ए प्रमाणे इर्ष्या-यी चारित्र पणता छेवटे पांचे साधुओ काळ करीने सर्वार्थसिद्ध विमानमां देवपणे उत्पन्न थया. त्याथी च्यवी वज्रनाभनो जीव श्रीऋषभदेव थया, वाहु सुवाहुना जीवो ऋषभदेवना पुत्र भरत अने वाहुवलि थया अने पीठ महापीठना जीवो इर्ष्या करबा-बडे ह्योवेद बाधेळ हावायी ऋषभदेवनी पुत्रीओ ब्राह्मो अने सुद्री थया.

ए प्रमाणे जेओ गुणशंसामां इर्ष्यां करेछे तेओ पीठ अने महापीठनी पेठे हीनपणाने पामे छे; तेटलामाटे विवेकीओए कदि पण गुणी भत्ये मत्सर धारण करवो नहि.

परपरिवायं गिष्हृष्ट, अद्वयविरह्ये स्या रमइ ।

रुद्रकश्च परसिरीए, सकसाओ दुखिखओ निचचं ॥ ६ए ॥

अर्थ—“जे पारका अपवादने ग्रहण करे छे-बोळे छे, आठ मदने विस्तारवामां सदा रमे छे-मदमां आसक्त रहे छे अने पारकी लक्ष्मी-शोभा देखीने दाझे छे-वळंछे एवो सकषायी पुरुष निरंतर दुःखीओ जाणवो.”

विग्गह्विवायसुद्धो, कुलगणसंघेण बाहिरकयस्त ॥

नर्त्थि किरं देवलौए वि, देवसमिहसु अवगासो ॥ ७० ॥

अर्थ—“विग्रह ने विवादनी रुचिवाळा अने कुळ गण संघे वहार करंटा घट्टाने देवलोकरां देवसमाने विषे पण अवकाश एटळे प्रवेश प्राप्त थतो नथी.” ७०-अर्थात् देवकरवामां के मिथ्या विवाद करवामां तत्पर एवा अने कुळ ते नागेंद्रादि. ७० ने कुळ

गाथा ६९—अष्टमदविस्तारणे. गाथा ७०—देवसमायां अवकाशः

સમુદાય અને સંઘ ચતુર્વિધ (સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક ને શ્રાવિકા) તેમણે અયોગ્ય જાણી-
ને જેને બહાર કર્યો હોય-કુલ્લ, ગણ કે સંઘથી દૂર કરેલ હોય તેને સ્વર્ગમાં દેવસભા-
માં પણ અવકાશ મળતો નથી એટલે તે કિલ્લિષ જાતિના નીચ દેવપણે ડપજે છે. તેથી
તેને દેવસભામાં બેસવાનો હક મળતો નથી. એ કિલ્લિષ દેવો મનુષ્યમાં જેમ ઢેઢ ગણાય
છે તેમ દેવતાઓમાં હલ્લકી જાતિના દેવ ગણાય છે.

જઈ તા જણસંવવહાર-વજ્જિય મકજ્જા માયરહ અન્નો ।

જો તં પુણો વિકત્થહ, પરસ્સ વસણેણ સો ડુહિઓ ॥ ૭૧ ॥

અર્થ-“જો પ્રથમ કોઈ અન્ય, જનન્યવહાર-લોકાચારમાં વર્જિત-નિષિદ્ધ एवं
ચૌર્યાદિ અકાર્યને-પાપકર્મને આચરે છે અને જો પુરુષ તે પાપકર્મને (લોકસમક્ષ) વિ-
સ્તારે છે તે પારકે દુઃખે દુઃખીઓ થાય છે અર્થાત્ બીજો માણસ પરનિંદા કરવાથી
નિરર્થક પાપનો માજન થાય છે.” ૭૧

સુહુવિ ઉક્કવમાણં, પંચેવ કરિંતિ રિત્તયં સમણં ।

અપ્પથુહ પરનિંદા, જિન્નો વત્થા કસાયા ય ॥ ૭૨ ॥

અર્થ-“તપસંયમ ક્રિયાને વિષે યદે પ્રકારે ઉદયવંત એવા સાધુને પણ ૧ આત્મ-
સ્તુતિ, ૨ પરનિંદા, ૩ જીહ્વા, ૪ ઉપસ્થ ઇન્દ્રિય અને ૫ કષાય એ પાંચ દોષ, ગુણથી
રિક્તગુણ, રહિત કરે છે. અર્થાત્ તપ સંયમ ક્રિયાવાન હોય છતાં પણ જો આ પાંચ
દોષમાંથી કોઈ દોષ હોય તો તે મુનિ ગુણરહિત થઈ જાય છે.” ૭૨

આત્મસ્તુતિ તે પોતાની પ્રશંસા સ્વમુખે કરવી, પરનિંદા તે પારકા અપવાદ બોલ-
વા, જીહ્વા શબ્દે રસેન્દ્રિયનું પરવશપણું, ઉપસ્થ શબ્દે પુરુષચિન્હ યા સ્ત્રીચિન્હ તેના
વિષયનું અભિલાષીપણું અને કષાય તે ક્રોધાદિ ચાર-આ પાંચ પ્રકારના દોષથી ગુણ-
રહિત થવાય છે.

પરપરિવાયમઈઓ, ડૂસહ વયણોહિં જેહિં જેહિં પરં ।

તે તે પાવહ ડોસે, પરપરિવાઈ હ્ય અપિહો ॥ ૭૩ ॥

અર્થ-“પારકા અપવાદ બોલવામાં નિષુણ મુદ્ધિવાલો પુરુષ જે જે વચનો એ કરીને

ગાથા ૭૧—કસ્થિહ. ગાથા ૭૨—સુહુવિ ઉક્કવમાણં કરિંતિ. અપ્પથુહ.

જિમ્મોવત્થા જિહ્વા ઉમસ્થાઃ ગાથા ૭૩—પરપરિવાયમઈય. અપિહો—અપ્રેક્ષ્યો,

પરને દોષવંત કરેછે તે તે દોષને પોતે પામે છે. ૧ હેતુ માટે પરપરિવાદી પુરુષ અપ્રેક્ષ્ય-અદર્શનીય-ન જોવા લાયક છે, અર્થાત્ પરનિંદાકારક પુરુષવૃંદ્ સુસ્ત પળ જોવા લાયક નથી. ” ૭૩

થક્ષા ઊદ્ધૃપ્પેહી અવન્નવાઈ સયમર્ષ ચવલા ।

વંકા કોહણસીલા, સીસા ઉલ્લેચ્ચગા ગુરુણો ॥ ૭૪ ॥

અર્થ-“સ્તબ્ધ તે અનમ્ન-અભિમાની, ઊદ્ધાન્વેષો તે અવર્ણવાદિ, સ્વયંમતિ તે સ્વેચ્છાચારી, ચપલ સ્વભાવી, વક્ત્ર અને ક્રોધસ્વભાવી-૧વા શિષ્યો ગુરુને હદ્વેગના કરાવનારા હોય છે. ” ૭૪

જસ્સ ગુરંમિ ન જ્જતી, ન ય વહુમાણો ન ગરુવં ન ચયં ।

નવિ લજ્જા નવિ ને હો, ગુરુક્કલવાસેણ કિં તસ્સ ॥ ૭૫ ॥

અર્થ-“ જે શિષ્યને ગુરુને વિષે ભક્તિ ન હોય, વહુમાન ન હોય, ગુરુવું ગૌરવ ન હોય, ગુરુનો મય ન હોય, ગુરુની રજ્જા ન હોય અને ગુરુ ઉપર સ્નેહ પળ ન હોય તેવા શિષ્યને ગુરુક્કલવાસે કરીને શું ? અર્થાત્ તેવા દુર્વિનીત શિષ્યને ગુરુ સમીપે વસવાયો કાંઈ પળ ફલ નથી. ” ૭૫

ભક્તિ પટલે વિનય-ગુરુને આલતા દેલીને ઠમા થવું, આમન આપવું વિનેરે અને વહુમાન તે અભ્યંતર ભક્તિ સમજવી.

રુસઈ ચોશ્જ્જંતો, વહ્હ હિયણ્ણ અણુસયં જ્જણિઓ ।

નય કાઠિં કરણિજ્જે, ગુરુસ આલો ન સો સીસો ॥ ૭૬ ॥

અર્થ-“જે શિષ્ય ગુરુપ પ્રેરણા કર્યો સતો રોષ કરેછે અને બોલાવ્યો સતો અનુ-શય પટલે ક્રોધને હૃદયમાં ધારણ કરે છે તથા કોઈ પળ કાર્યમાં કામ આવતો નથી. તેવો શિષ્ય તે ગુરુને આલરૂપ છે, શિષ્ય નથી. ” ૭૬ શિક્ષાને ગ્રહણ કરે તે શિષ્ય કહેવાય જેનામાં શિક્ષાગ્રહણનો અભાવ છે તે શિષ્ય કહેવાયજ નહિ.

ઉલ્લિહ્ણ સૂચ્ચણ પરિજ્જેહિં, અઈ જ્જણિયુ ડુઠ ભણિણ્ણિં ।

સત્તાહિયા સુવિહિયા, નચેવં ભિંદંતિ મુહરાગં ॥ ૭૭ ॥

ગાથા ૭૪-હલ્લેચ્ચગા-હદ્વેગકારકાઃ

ગાથા ૭૫-ગોરવં.

ગાથા ૭૬-ચોયંજ્જંતો. કમ્પિં.

ગાથા ૭૭-પરખવેહિં. ભિંદંતિ.

अर्थ—“उद्देश्य पमादवाथी, सूचना करवाथी एटळे वचनवडे दोष प्रगट करवाथी अने परिभव के तर्जन करवाथी तेमज अति शिखावचन कहेवाथी के कर्कश वचन कहेवाथी सत्वाधिक एटळे क्रोधादिकनो जय करवामां राभर्थ एवा सुविहितो-सुशिष्यो मोढानो रंग पण मेद पमादता नथी अर्थात् तेमना मोढानो रंग पण बदलातो नथी.” ७७

माणं॑सिणो॒ वि अ॒वभा॑णं, वंच॑णा ते पर॒स्त ते॑ न कर॑ति ।

सुहृ॑दुखुगिरण॑त्थं, साहू॑ उअहि॒व्व गंभी॑रा ॥७८॥

अर्थ—“इन्द्रादिके मानेला छातां पण समुदनी जेवा गंभीर साधुभो (परथी) अपमान थये सते सुखदुःखनो उच्छेद करवाने माटे परनी वंचना करता नथी, अर्थात् तेवा मुनिओ शुभाशुभ कर्मेना छेद करवानाज अर्थी होवाथी अपराधी एवाने पण पोढा उपगावता नथी.” ७८

मउ॒आ नि॒हुअ॑सहा॒वा, हा॑सद॒ववि॑विजि॒जया॑ वि॒गहू॑मु॒क्का ।

अ॒समं॑जस॒ मइ॒वहु॑अं, न भ॑णंति अ॒शुचि॑च्या साहू॑ ॥ ७९ ॥

अर्थ—“सुदुमा सुकुमाल अहंकाररहित, निवृत्त स्वभाववाळा एटळे शांत स्वभाववाळा, हास्य अने दव जे इष्यां तेथी वर्जित, विक्रयामुक्त एटळे देशकथा, राजकथा, भक्तकथा. स्त्रीकथादि विक्रय नहि करनारा एवा साधु वगर पुछ्या सता असंबद्ध एवुं अति प्रचुर बोळता नथी.” ७९ पुछ्या सता पण तेओ केवुं बोळे छे ते कहेछे-

महुरं॑ निउणं॒ थोवं, क॒ळाव॑डिअं अ॒गवि॑वय॒ मतु॑चं ।

पु॒ठ्विम॑इसं॒कलियं, ज॑णंति॒ जं ध॒म्मसं॑जु॒त्तं ॥ ८० ॥

अर्थ—“प्रचुर, निपुणता-चतुराइवाळं, थोड्, कार्ये पूरतं, गर्वरहित, अतुच्छ-तुंकारादि रहित, प्रथम बुद्धिपूर्वक विचारेळं अने ते पण जे धर्म संयुक्त होय ते कहे छे. अर्थात् तेवुं बोळे छे.” ८०

स॒ट्ठि॒वा॒मस॑ह॒स्सा, ति॒सत्त॑खु॒त्तोद॑येण॒ धोए॑ण ।

अ॒णुचि॑न्नं॒ ताम॑लि॒णा, अ॒ज्जा॑णतवु॒त्ति अ॒प्पफ॑लो ॥ ८१ ॥

अर्थ—“तामलि तापसे साठ हजार वर्ष पर्यंत (छह छवने पारणे) त्रिसप्तवार-एक-बीस वार उदकवडे धोयेला अन्नवडे (पारणु करीने) तप आचर्यो, परंतु ते अज्ञान तप

गाथा ७८-करिति. 'ते' नथो. सुहदुखुगिरणत्थं, सुहदुःखोच्छेदनाथ. साहू.

गाथा ७९-हासदव्व. दवः परेषामिष्यादिकारणं. अतिवहुलं-अतिप्रचुरं.

गाथा ८०-कार्येआपतित-कार्ये सति जल्पति पुच्छं. गाथा ८१-सट्ठि. तवचि.

होवायी अल्प फळवाळी थयो." ८१ एटलो तप जो दयायुक्त कर्यो होत तो तेजुं मुक्ति रूप फळ प्राप्त थात. तेयी जिनाज्ञायुक्त तपज प्रमाण छे.

अहीं आटला वधा तपशी मात्र जेने इज्ञानइंद्रपणानी प्राप्ति थइ एवा तामलि तापसजुं दृष्टांत जाणवुं. २२.

तामलि तापसनी कथा.

तामलिनी नगरीमां 'तामलि' नामे शेट वसतो हतो. एक दिवस तेणे पोताना पुत्रने गृहभार सोपीने वैराग्यपरायण थइ तापसी दीक्षा लीधी अने नदीना कांठा उपर रहेवा लाग्यो. तेमज कायम छट्ट करीने पारणु करवा लाग्यो पारणाना दिवसे पण जे आहार लावतो तेने नदीना जळथी एकबोजवार धोइ निरस करीने खातोहतो अने उपर पाछो छट्ट करतो हतो. ए प्रमाणे साठ हजार वर्ष सुधी तेणे दुष्कर अज्ञानतप कर्तुं. छेवट अनश्चन अंगीकार कर्तुं. ते अवसरे वलींद्र च्यवी गयेळ होवायी बलिचंचा राजधानीना रहेनारा असुरोए आवी, अनेक प्रकारनां नाट्य अने समृद्धि वतावी तामलि तापसने विव्रप्ति करी के—'हे स्वामिन् ! तमे नियाणुं करी अमारा स्वामी थाओ. अमे स्वामी रहित छीए.' ए प्रमाणे त्रणवार कष्टा छतां पण तेणे तेमजुं वचन अंगीकृत कर्तुं नहि. पञ्जी आयु पुर्ण थये कषाय अल्प होवायी तेमज अत्यंत कष्ट करेजुं होवायी तेना प्रभाववडे ते काळ करीने इज्ञान देवलोकरमां इंद्रपणे उत्पन्न थया, अने तरतज समकित प्राप्त कर्तुं. माटे ज्ञानपूर्वक तप करवुं एज मोक्ष आपनाहं छे. तेयो थोडुं पण तप दया अने ज्ञानयुक्त करवुं; पण तामलि तापसनी पेठे अज्ञान ने हिंसायुक्त करवुं नहि.

छल्लीवकायवहगा, हिंसकसत्थाइं उवइसंति पुणौ ।

सुबहुंपिं तवकिलेसौ, बालतवस्तीण अप्पफलो ॥ ७१ ॥

अर्थ—'छ जीवकायना वष करवावाळा अने वळी हिंसक शास्त्रोनी उपदेश करे छे एवां वाळ तपस्वीओनी अति मन्त्रु एवां तपक्लेश पण अल्प फळवाळो थाय छे. तेयी हिंसाना त्यागवडेज तप घहाफळने आपे छे एम समजवुं." ८२

अहीं छ जीवकाय ते पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति अने वेईत्रियादि त्रस जीवो समजवा. वाळतपस्वी ते अज्ञान कष्ट करनारा तापसादि जाणवा.

परियच्छंति सर्वं, जहद्वियं अविताहं असंदिद्धं ।

तो जिणवयणविहिन्नू, सहंति बहुअस्स बहुआइं ॥ ७३ ॥

माथा ८३—परियच्छंतिय. बहुअस्स. बहुआए.

અર્થ—“ (જે સાધુ હોય છે તે) યથાસ્થિત, સત્ય અને સંદેહ વિનાનું જીવાંજીવાદિ સર્વ પદાર્થોનું સ્વરૂપ જાણે છે તેથી તેવા જિનવચનની વિધિના જાણવાવાઠા સાધુઓ ઘણાં જનોનાં ઘણાં દુર્વચનાદિ સહન કરે છે. ” ૮૩ તેથી તેમનું તપ મોટા ફલને અર્થ થાય છે.

જૌ જસ્સ વટ્ટણ્ હિયણ્, સૌ તં ઠાવેઈ સુંદરસહાવં ।

વગ્ધી ઢાવં જાણણી, જહં સોમં ચ મન્નેઈ ॥ ૮૪ ॥

અર્થ—“ જે જેના હૃદયમાં વર્તનું હોય છે તે તેને સુંદર સ્વભાવવાલુ સ્થાપે છે—માને છે. અહીં દૃષ્ટાંત કહે છે કે વાઘણ માતા પોતાના વાલકને ભદ્ર અને સોમ્ય માને છે.” ૮૪

જેમ વાઘણ અજ્ઞાનપણથી અભદ્ર અને અશાંત—સર્વ જીવનું મક્ષણ કરી જનાર એવા પોતાના વાલકને પણ ભદ્ર અને શાંત માને છે તેમ અજ્ઞાનીઓ પોતાના ચિત્તમાં ગમી ગયેલા પોતાના અજ્ઞાન તપને પણ સમ્યક્ તપ જાણે છે—માને છે; પરંતુ તે માનવું મિથ્યા છે.

મણિકણગરયણધણપૂરિયંમિ, જવણંમિ સાલ્લિભદ્દોવિ ।

અન્નોવિ કિર મદ્દહ્લવિ, સામિઓત્તિ જાઓ વિગયકામો ॥૮૫॥

અર્થ—“ મણિ, કાંચન, રત્ન અને ધનવઢે પૂરિત—ખરેલા એવા ધુવનમાં રહેતા છતાં પણ શાલિભદ્ર નામે શ્રેષ્ઠી નિશ્ચયે ‘ મારો પણ બીજો સ્વામી છે ’ એમ વિચારતો સતો વિષયામિલાષરહિત થઈ ગયો.” ૮૫ અર્થાત્ ‘ હજુ મારે માથે પણ બીજો સ્વામી છે ’ એમ લક્ષમાં આવતાં, જો એમ છે તો તો આ મારા વૈભવને ચિકાર છે ’ એમ ચિંતવી શાલિભદ્રે વિષયભોગ તજી ચારિત્ર અંગીકાર કર્યું.

અહીં શાલિભદ્રનો સંબંધ મસિદ્ધ હોવાથી સંક્ષેપે કહે છે. ૨૩

શ્રી શાલિભદ્રનું દૃષ્ટાંત.

પૂર્વ મવમાં શાલિગ્રામમાં રહેનારી ‘ ધન્યા ’ નામનો કોઈ દરિદ્રો સ્ત્રી હતો. તે ઉદર ભરવાને માટે ‘ સંગમ ’ નામના પોતાના પુત્રને લઈને રાજશૃહ નગરીમાં આવી, અને પારકું કામકાજ કરવા લાગી. સંગમ પણ ગામના વાહરડાઓ ચારવા લાગ્યો. એક દિવસ કોઈ પર્વ આવ્યે સતે દરેક ઘરે સ્ત્રી થતી જોઈ તે સ્ત્રીની ઇચ્છા થવાથી સંગમે પણ પોતાની માતા પાસે સ્ત્રીરંજન માગ્યું. તેણે પણ પાડોશનો એ આપેલ દૂધ વિગેરેથી સ્ત્રી રંજન સંગમને થાલીમાં પીરસી. તે સ્ત્રી અતિ ઉબળ હોવાથી સંગમ ઝુંકે છે તેવામાં મામલ્સપણા

ગાથા ૮૪— છાવં—સુત. ગાથા ૮૫—પૂર્યંમિ. અન્નો.

पारणे कोइ साधु त्यां वहोरवा माटे पघार्यां. तेमने जोइ संगमने अति हर्ष थवाथी तेणे बहु भावपूर्वक वधी क्षीर ते मुनिने वहोरावी दीधी. पछी ते विचार करवा लाग्यो के-‘आजे साधु रूपी रुत्यात्र मने प्राप्त थवाथी हुं अति धन्य तुं!’ ए प्रमाणे पोताना कार्यनी प्रशंसा करवा लाग्यो. आ प्रमाणे अनुमोदना सहित दान धणुं फळ आपनारुं थाय छे. कहुं छे के-

आनंदाश्रूणि रोमांचो, बहुमानं प्रियंवचः ।

किंचानुमोदना पात्र-दानभूषणपंचकम् ॥

“ आनंदथी नेत्रमां आंशु आववां, रोमराय विकस्वर थवा. बहुमान सहित वहोरावतुं, प्रिय वचन बोलतां आपतुं अने तेनी अनुमोदना करवी; ए पांच सुपात्र दाननां भूषण छे.”

अहीं संगमे साधुने दान आपवाथी धणुं पुण्य उपाज्जन कर्युं. कहुं छे के-

व्याजेस्याद्विगुणं वित्तं, व्यवसाये चतुर्गुणम् ।

क्षेत्रे शतगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनंतगुणं ज्ञेयम् ॥

“ व्याजनी अंदर धन वमणुं थाय छे, व्यवसाय (व्यापारादि)थी चारगणुं थायछे, क्षेत्रमां सोगणुं थायछे, अने पात्रमां आपवाथी तो अनंतगणुं थायछे. ” वळी संगमे जे दान आप्युं ते अति दुष्कर छे. कारणके-

दाणं दरिहस्स पट्टस्स खंती, इहानिरोहोय सुहोश्यस्स ।

तारुणणए इंदियनिग्गहोय, चत्तारि एयाइं सुदुक्कराइं ॥

“ दरिद्री छातां दान आपतुं, सामर्थ्य छातां क्षमा राखवी, मुखने उदय छातां इच्छानो रोध करवा अने तरुणावस्थामां इंदियोने निग्रह करवा-आ चार वानां अति दुष्कर छे. ”

साधुना गया पछी संगमनी मा आवी. तेणे थाळी खाली जोइने बाकी रहेळी क्षीर पीरसी. पछी ते विचार करवा लागी के-“आटळी वधी भुखवाळो मारो पुत्र दर-रोज भुख्योज रहतो जणाय छे, तेथो मारा जीवितने धिकार छे!” ए प्रमाणेनी स्नेह-दृष्टिना दोषथी (पुत्रने दृष्टि लागवाथी) तेज रात्रिण शुभ ध्यानथी मुख्यु पामीने संग-मनी जीव तेज शहरमां गोमद्र नामना शेटने घेर तेनी स्त्री भद्रानी कुक्षिमां परिपूर्ण पाकेळी शालि (डांगर)थी भरपूर क्षेत्रना स्वमथी सूचित पुत्रपणे उत्पन्न थयो.

પિતાપ્ તેતું નામ શાલ્લિકુમાર પાઠ્યું. યુવાવસ્થા પ્રાપ્ત થતાં તેને વૃષ્ટી કન્યા-
ઓ એક લગ્ને પરણાવી. ત્યારપછો ગોમદ્ર શેઠ ચારિત્ર ગ્રહણ કરી માંતે અનશન આદરો
સૌધર્મ દેવલોકેકમાં દેવતા થયા ચલ્લો અવધિજ્ઞાનથી પોતાના પુત્રને જોડને અતિ સ્નેહાતુર
વની ત્યાં આવી તેને દર્શન દીધું અને મદ્રાને કહ્યું કે- 'શાલ્લિમદ્રને સર્વ પ્રકારની મોગસા-
મગ્રી હું પૂરી પાઠીશ.' એટલું કહીને તે ગયો. પછો ગોમદ્રનો જીવ દેવતા તેમને મનવાંછિત
પૂરવા લાગ્યો. દરરોજ ૨ સ્ત્રીઓ અને શાલ્લિમદ્રને માટે ૩૩ પેટી વસ્ત્રોની, ૩૩ પેટી
આમૂષ્ણોની અને ૩૩ પેટી મોજનાદિ પદાર્થોની કુલ ૯૯ પેટી મોકલવા લાગ્યો.

યદ્ગોમદ્રઃ સુરપરિહૃલો ચૂષણાચં દદૌ ય-

જ્ઞાતં જાયાપદપરિચિતં કંવલિરત્નજાતમ્ ।

પણ્યં યદ્વાજનિ નરપતિર્યચ્ચ સર્વાર્થસિદ્ધિ-

સ્તદ્વાનસ્યાદ્ચુતફલમિદં શાલ્લિમદ્રસ્ય સર્વમ્ ॥

‘દેવતાઓમાં શ્રેષ્ઠ એવા ગોમદ્રે જેને મૂષ્ણાદિ આપ્યાં, રત્નકંવલ જેની સ્ત્રીઓના
પગની સાથે પરિષયવાલાં થયાં, એટલે જેની સ્ત્રીઓએ રત્નકંવલ તો પગ લુહવામાં વાપર્યાં,
જેને રાજા (શ્રેણિક) કરિયાણા રૂપ વન્યો અને જેને માંતે સર્વાર્થસિદ્ધિ વિમાન પ્રાપ્ત
કર્યું-આ પ્રમાણે શાલ્લિમદ્રને દાનતું સર્વ પ્રકારનું અદ્ભુત ફલ પ્રાપ્ત થયું.’

પાદાંમોજરજઃ પ્રમાર્જનમપિ ક્ષમાપાલલીલાવતી-

દુઃપ્રાપાન્નુતરત્નકંવલદલૈર્યદ્રહ્ણજાનામચૂત્ ।

નિર્માલ્યં નવહેમમંડનમપિ હ્લેશાય યસ્યાવની-

પાલાલિંગનમપ્યસૌ વિજયતે દાનાત્સુજદ્રાંગજઃ ॥

‘જેની સ્ત્રીઓના ચરણકમલ ઉપર લાગેલો રજતું પ્રમાર્જન રાજાની રાણો લીલા-
વતીને પણ દુષ્પ્રાપ્ય એવા રત્નકંવલના કકઠાવહે થયું, જેને નવીન સુવર્ણનાં ઘરેણાંઓ
પણ દરેક દિવસે નિર્માલ્ય રૂપ થયા, અને જેને મૂષ્ણતિતું આલિંગન પણ હ્લેશને માટે
થયું એવો મુમદ્રાનો પુત્ર શાલ્લિમદ્ર પૂર્વે કરેલા દાનથી વિજય પામે છે.’

આવી શાલ્લિમદ્રની સમૃદ્ધિ જોડને શ્રેણિક રાજાએ પણ આ પ્રમાણે વિચાર કર્યો
હતો કે—

સ્તુહી મહાતર્વહિર્વૃહદ્ભાનુર્યથોચ્યતે ।

સારતેજોવિયોગેઽપિ નરદેવાસ્તથા વયમ્ ॥

“जेम स्तुही नामनुं झाड बहु नातुं होयछे छतां महातरु कहेवायछे, अने अग्नि जसः जेटेलौ होय छतां पण ते बृहद् भानु (मोटामां मोटौं सूर्य) कहेवाय छे, तैवांज सीते अमे सास्त्रभूत सेजः बगरनां छतां पण नरदेव कहेवाइए छोए ।”

शालिभद्रे पण पोताने घेर आवेछां श्रेणिक राजाने पोताना स्वामी जाणीने विचार्यः के—“आ मारी पराधीन लक्ष्मीने धिक्कार छे !” ए प्रमाणे वैराग्यपरायण बनी दररोज एकेक स्त्रीने तजवा लाग्यो. ते हकीकत सांभळीने धन्य नामना तेना बनेबीए आबीने एक साथे सर्वस्त्रीओनो त्याग करी दीक्षा छेवानो; तेनें प्रेरणा करी. आ प्रमाणेनो प्रेरणाशीः संरसंहित बनी श्री महावीर स्वामीनी पासै जइ चारित्र्य ग्रहण करी दुष्कर तप तपी बारः वर्ष पर्यंत दीक्षापर्याय पाळी प्रांते एक मासनीः संछेखना करी सर्वार्थसिद्धि विधानमां तेनोश सांगरोपम आयुष्यवाळा अहमिन्द्र देवपणे उत्पन्न थया.

आ मुनिने धन्य छे के जेप्रणे सघळुं अनुत्तर (सर्वथी बचम) प्राप्त कर्युं.

अनुत्तरं दानमनुत्तरं तपो, ह्यनुत्तरं मानमनुत्तरं यशः ।

श्रीशालिभद्रस्य गुणा अनुत्तरा, अनुत्तरं धैर्यमनुत्तरं पदम् ॥

“तेनां (शालिभद्रनां) दान, तप, मान, यश, गुणो, धैर्य अने पद—ए सर्व अनुत्तर (जेनाथी अन्य श्रेष्ठ नथी एवां) छे.”

आ प्रमाणे ज्ञान सहित तप करवामां आवे तो मोटुं फळ प्राप्त थायछे. :-

न करंति जे तव संजमं च ते लुह्यपाणिपायाणं ।

पुरिसा सम पुरिसाणं, अवस्स पेसत्तण सुविति ॥ ८६ ॥ :-

अर्थ—“ जे प्राणो तप (धार प्रकासे) अने संयम (सत्तर प्रकारे) करता—आदरता नथी तें पुरुषो समान हाथपगवाळा अने सर्वश-पुरुषाकार धारण करनारेतुं सेवकपण अवश्य प्राप्त करे छे. ” ८६.

शालिभद्रे एज विचार कर्यो हतो के—“ श्रेणिकमां ने मारामां कांड पण हाथपगनुं विशेषपणुं नथी ते छतां ते स्वामी ने हुं सेवक, तेतुं कारण मात्र में पूर्वजन्ममां सुकृत कर्तुं नथी ते ज छे ” आम विचारीने तेणे चारित्र्य ग्रहण कर्युं.

सुंदर सुकुमाल सुहोइएण, विविहेहिं तवविसेसेहिं ।

तह सोसविओ अत्था, जह नवि नाओ सभवणेपि ॥ ८७ ॥

१ जेने स्वामी तराके इन्द्र होंता नथी तेओ पोताना पोताना विधानना स्वामी होवाथी अहमिन्द्र कहेवाय छे. २ पद ते स्थान—अनुत्तरविधान. गाथा ८६—करिति. गाथा ८७—सभवणेवि.

अर्थ—“शुंदर (रूपवान), सुकुमाल(सूदृ शरीरवाला)अने सुखोचित अर्थात् सुखना झभ्यासी एवा शाळिभद्रे विविध प्रकारनां तप विनोपवडे करीने पोताना आत्माने(देहने) एवो शोषव्यो—दुर्वळ कर्यो के जेथी पोताने घेर पण ते ओळखी शकया नहि.” ८७

शाळिभद्र मुनि थया पछी पाछा राजशुहीए आव्या त्यारे पोतानी माताने घेर गोचरी निमित्ते जतां तेना सेवकपुरुषोए पण तेमने ओळख्या नहि एवो तेमणे तपस्यावडे देह सुकवी नाख्यो हतो.

दुक्कर मुद्धोसकरं, अवंतिसुकुमालं महूरिसीचरियं ।

अप्पावि नाम तह तज्जा—इत्ति अख्छेरयं एयं ॥ ८८ ॥

अर्थ—“दुक्कर अने सांभळतां पण रोमोत्कंप करे—स्वाढां उभां थाय एवुं अवंति सुकुमाल महविंतुं चरित्र छे; जे महात्माए पोताना आत्माने पण एवा प्रकारे तजित कर्यो के जेमंतुं चरित्र संपूर्ण आश्चर्यकारक थयुं.” ८८

अहीं अवंतिसुकुमालनो संबंध जाणवो. २४

अवंतिसुकुमाल कथा.

अवंती देशमां उज्जयिनी नगरीमां भद्रा नामनी एक शेटनी स्त्री हती. तेने नलिनीशुल्म विमानथी च्यवीने आवेछो अवंतिसुकुमाल नामे पुत्र थयो. ते बचीअ स्त्रीओनी साये विषयसुखनो अनुभव करतो हतो. एक दिवस पोताना घरनी नजीक रहेला सुस्थित आचार्यना गुरुथी रात्रिनी पहेछी पोरपीमां नलिनीशुल्म विमान अध्ययन सांभळी जातिस्मरणज्ञान थवाथी पूर्वभट्टनु स्वरूप जाणी, त्यां (नलिनीशुल्म विमानमां) कवाने उत्सुक थयेछो अवंतिसुकुमाल गुरु पासे जइ विनयपूर्वक पूछवा लाग्यो के— ‘आपे नलिनीशुल्म विमानतुं स्वरूप वेवी रीते जेयु?’ गुरुए कहुं के ‘सिद्धातिरूपी नेत्रथी जेयुं छे.’ पछी अवंतिसुकुमाछे पूछयुं के ‘ते केवी रीते प्राप्त थाय?’ त्यारे गुरुए कहुं के ‘चारित्र पाळवाथी. कारणके चारित्र आळोक अने परलोकमां अनेक प्रकारतुं सुख आपे छे.’ कहुं छे के—

नो दुष्कर्मप्रयासो न क्रयुवतिसुतस्वामिदुर्वाक्यदुःखम् ।

राजादौ न प्रणामोऽज्ञानवसनधनस्थानचिंता न चैव ॥

ज्ञानसिद्धिर्लोकपूजा प्रशमपरिणतिः प्रेत्यनाकायवासि ।

चारित्रे शीवदायके सुमतयस्तत्र यत्नं कुरुध्वम् ॥

गाथा ८८—चरीयं. २ तज्जयति. * आ चोयुं पद भूलवाह जणाय छे.

“ જેની અંદર દુષ્કર્મ સંવંધી પ્રયાસ નથી, જેની અંદર સરાવ સ્ત્રી, પુત્ર કે સ્વામીનાં દુર્વાચ્યશ્રવણનું દુઃખ નથી, જેની અંદર રાજા આદિને પ્રણામ કરવો પડતો નથી, જેની અંદર ભોજન, વસ્ત્ર ધન કે સ્થાન માટે ચિંતા કરવી પડતી નથી, જેની અંદર જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે, છોકો પૂજા કરે છે, શાંતભાવ પરિણમે છે, અને પરમવે સ્વર્ગાદિની પ્રાપ્તિ થાય છે એવા મોક્ષદાયક ચારિત્રમાં હે વિદ્વાન્ પુરુષો ! તમે પ્રવત્ન કરો. ”

‘ માટે ચારિત્ર ગ્રહણ કરી, અનશન કરવાવડે નલિનીશુભ વિમાન મેલવો શકાય છે. ’ એ પ્રમાણે શુભશુભથી સાંભળીને અવંતિસુકુમાલે કહ્યું કે ‘ મેં ચારિત્ર અને અનશન માથથી અંગીકાર કર્યું છે. ’ શુભ જ્ઞાનથી જાણ્યું કે ‘ આતું કાર્ય આ પ્રમાણેજ સિદ્ધ થવાનું છે તેથી તેને રાત્રિએજ સાધુવેષ આપ્યો. તે વેષધારણ કરીને તે શહેરથી બહાર સ્પશ્નભૂમિએ જઈ કંચેર (ધાર) ના ઘનમાં કાયોત્સર્ગ મુદ્રાથી રહ્યા. ત્યાં જતાં માર્ગમાં કાંટા, કાંકરા આદિના પ્રહારથી અતિક્રોધ એવા તેના ચરણના તક્કીયામાંથી કથિર સ્ત્રવા લાગ્યું. તેના ગંધથી પૂર્વ ભવમાં અપમાનિત કરેલાં સ્ત્રીનો જીવ શિયાલ-ળી ઘળાં વચાંઓથી પરિવ્રજ થઈ ત્યાં આવી અને તેજું શરીર સ્વાભા લાગી. પરંતુ તે મુનિ જરા પણ ક્ષુભિત થયા નહિ. તેમનું વિષ્ણુ સ્વરૂપ હોવાથી અતિ વેદના સહન કરતા સતા કાલ કરીને તે નલિનોશુભ વિમાનમાં દેવપણે ઉત્પન્ન થયા. પ્રાતઃકાલમાં તે સગલું તેની માતાં મદ્રાએ જાણ્યું. પટલે એક ગર્ભવંતો વહુને ઘરમાં રાહોને વાકોની તમામ વહુઓ સાથે મદ્રાએ ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું. ઘર આગલ રહેલો વહુને એક પુત્ર થયો. તે પુત્રે સ્પશ્નભૂમિમાં એક મિનમાતાદ ચમાશ્યો અને તેમા મિનપતિમા સ્થાપો. સ્પશ્ના-નનું નામ ‘ મહાકાલ ’ પડ્યું.

જે પ્રમાણે અવંતિસુકુમાલે ધર્મને અર્થે પોતાના શરીરને ત્યાગ કર્યો પરંતુ ગ્રહણ કરેલા વ્રતના ભંગ કર્યો નહિ, તેજા રીતે અન્ય જનોએ પણ ધર્મવિષયમાં યત્ન કરવો, એવો આ કથાનો ઉપદેશ છે.

અચ્છૂઢ સરીરઘરા, અન્નો જીવો સરીર મન્નંતિ ॥

ધમ્મસ્સ કારણે સુવિહિયા, સરીરંપિ ઢંડુંતિ ॥ ૭૫ ॥

અર્થ—“ તમી દીધો છે શરીર રૂપી ઘરનો મોહ જેણે એવા સુવિહિતો—ઉત્તમ પુરુષો ધર્મને કારણે ‘ આ જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે ’ એવી સુદ્ધિવડે કરીને શરીરને પણ તમી દે છે. ” ૮૧

आ देहानो संबध एक भवनोज छे अने ते शरीर जन्मे जन्ममां नहुं नहुं यळवानुं छे, पण धर्म जो तजी दीयो तो ते फरीने प्राप्त थवो दुर्लभ छे, तेथी उत्तम पुरुषो. धर्मने कारणे शरीरने तजे छे पण शरीरने कारणे धर्मने तजता नथी. माटे प्राणति-पण धर्मने न तजवो.

एक दिवसंपि जीवो, पवङ्गमुन्नागओ अन्नन्मणो ।

जइवि न पावइ मुखं, अवस्सं वेमाणिओ होइ ॥ ए७ ॥

अर्थ—“ चारित्र धर्मजुं फळ कहेछे—अन्नन्य मनवाळो जीव एक दिवस पण मत्रज्या. (दीक्षा) प्रतिपन्न करे अर्थात् भवमांते एक दिवस पण शुद्ध दीक्षा पाळे तो ते यद्यपि संहनन काळादिना अभावथी—मोक्ष न पावे, परंतु अवश्य वैमानिक देव तो थाय.” १०.

एक दिवसना विशुद्ध मनयुक्त चारित्रजुं फळ आ काळमां पण वैमानिक देव पणानी प्राप्ति थवा रूप छे.

सीसावेढेण सिरिंमि—वेढिण निग्गयाणि अहीणि ।

मेयज्जस्स जगवञ्चो, नय सो मणसावि परिक्खविञ्चो ॥ ए१ ॥

अर्थ—“ लीलो चायडानी वाधरवडे मस्तकने वेहित कर्ये सते (ते सुकाइने खेंचावाथी-आंखो नीकळी पढी, परंतु ते मेतार्य भगवंत मनयो (छेन्न मात्र) पण (सोनी उपर) कोपायमान थया नहि.” ११

मेतार्य मुनिना मस्तके सोनीए लीलो वाधर वींटी ते सुकावाथी. नसोतुं खेंचाव-थवाने छोथे वंने नेत्र नीकळो पढयां, परंतु मेतार्य मुनि किंचित् मात्र पण ते सोनी-उपर कोपायमान थया नहि. एकी रीते वीना मुनिराजोय पण क्षम करवो.

अहीं मेतार्य मुनिजुं इच्छांत जाणवुं. २५

मेतार्यमुनिनी कथा.

साकेतनपुरमां वंदावत्सक नामे अत्यंत धर्मिक राजा हतो. तेने ‘सुदर्शना’ नामनी स्त्री हती. ते स्त्रीनी कुक्षिथी ‘सागरचंद्र’ ने ‘मुनिचंद्र’ नामे वे पुत्र उत्पन्न थया हता. ते बेर्मा मोटाने युवराजपद आप्युं अने नानाने उज्जयिनी राज्य आप्युं हतं. बीजी ‘मिथदर्शना’ नामे राणीथी ‘गुणचंद्र’ अने ‘वालचंद्र’ नामे वे पुत्र थया हता. ए प्रमाणे चार पुत्र विगेरथी परिवृत्त थइ ते राजा राज्य करतो हतो.

एक दिवस चंद्रावतंसक राजाए पौष्य कर्यो हतो. ते रात्रिए एकांतवासमां रखा-
सता. तेणे धनो अभिग्रह कर्यो के 'ज्यांमुधी आ दीवो वळे त्यांमुधी मारे कायोत्स-
र्गमां स्थित रहेतुं' ते अभिग्रहने नहि जाणनारी कोइ दासीए ते दीवामां तेळ पुर्यां
कर्युं. घणो वखत कायोत्सर्गमां स्थित रहेवाधी. राजाने शिरोवेदना यह, तेथी ते
मृत्यु पाव्यो अने देवलोकरमां गयो. ते जोइ सागरचंद्रे विचार्युं के- 'आ देहनो-संबंध
कृत्रिम छे. जे मातःकालमां जोवामां आवेछे ते मध्यान्हे जोवामां-आवतुं नयी अने
जे मध्यान्हे-जोवामां आवेछे ते रात्रिए नाश-पामेछे. बायुए कम्पावेळा पत्र-जेतुं आ
आयुष्य-क्षण क्षणे क्षोण थतुं-जाय छे. कहुं छे के-

आदित्यस्य गतागतेरहरहः संक्षीयन्ते जीवितम्.

व्यापारैर्बहुकार्यचारयुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥

दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तञ्चूतं जगत् ॥

"सूर्यना गमन ने आगमनथी आयुष्य दररोज क्षय पामेछे, बहु प्रकारना कार्य-
वाळा मोटा मोटा व्यवसायोधी काळ केटलो गयो ते जणातुं नथी, अने जन्म, वृद्धा-
वस्था, विपत्ति ने मरण जोइने माणसोने त्रास उत्पन्न थतो नथी; तेथी (जणःपळे के)
मोहमयी प्रमाद रूपी मदिरातुं पान करीने आ जगत उन्मत्त थयेळुं छे."

ईत्यादि कारणथी जेतुं चित्त वैराग्यवान थयेळुं छे एवो 'सागरचंद्र राज्यथी परा-
दृष्टव हतो छतां पण-तेनो ओरमान माताए कहुं के 'मारा वने पुत्रो हाळ राज्यभार
बहन करवाने अशक्त छे, तेथी तूं आ राज्यधुराने ग्रहण कर.' ए प्रमाणे-बळात्कारथी
'सागरचंद्रने राज्य उपर स्थापित कर्यो, परंतु ते विरक्त मनथी राज्यतुं पाळन करेछे.
अनुक्रमे तेने समृद्धि ने कीर्तिथी बधी गयेछो जोइने तेनी ओरमान माता दुभाणी,
तेथी ते दररोज तेनी ईर्ष्या करेछे अने छिद्र खोळेछे. एक दिवस कोडाने वास्ते
वनमां गयेळा 'सागरचंद्रने' माटे तेनी माताए दासी मारफत एक लाडु भोक्ल्यो. ते
दासी लाडु आपवा जती हती ते वखते तेने बोलावोने ओरमान माताए पूछ्युं के-
'आ थुं छे ?' तेणे कहुं के- 'हूं राजाने माटे लाडु छइ. जाचेंछुं.' तेणे कहुं के- 'जोडं,
ते-केचो छे ?' दासीए तेने आप्यो, एटछे ते ओरमान माताए विषथी खरबायेळा
हायवे ते लाडुने-सारी रीते स्पर्श करी-विषमिश्रित करीने दासीने पाळे आप्यो.
दासीए ते लाडु छइ. नइने राजा पासे मूक्यो. राजाए-ते मनोरंजक लाडु ग्रहण कर्यो.

परंतु ते अवसरे पोतानी आगळ हाथ जोडीने उभेला पोताना वे सावका भाइने जोडने स्नेहवश थड तेणे विचार कयेीं के 'मारा लघु वंधुओने छोडीने मारे लाडु खावो ते उचित नथी.' एम विचारिने तेणे लाडुना वे भाग करी वंनेने व्हेंचो दीवो. पोते खावो नहि. थोडा बलतमां पेला वंनेने विष चढवाथी भूमि उपर पढेला जोडने राजा घणो खिन्न थयो, अने मणि मंत्र आदि प्रयोगोवडे तेमहुं झेर उतार्थुं. पछी (तेहुं कारण शोधतां) दासोना मुखी ओरमान माताना हस्तस्पर्शथी थयेळं विषप्रयोग जाणोने तेनी पासे जइ 'सागरचंद्र' उपाळंभ आपवा लाग्यो के- 'तने धिकार छे ! पहेळां मारा आपनां छतां पण तें राज्य अंगीकार कर्तुं नहि, अने सांप्रत समये आवुं अकार्य कर्तुं ! स्त्रीओना चरित्रने धिकार छे !' कहुं छे के-

नितं बिन्यः पतिं पुत्रं, पितरं ज्ञातरं क्षणम् ।

आरोपयंत्यकार्येऽपि, दुर्वृत्ताः प्राणसंशये ॥

“दुराचरणी स्त्रीओ पोताना पतिने पुत्रने, पिताने अने भाइने क्षणवारमां माणनो संशय थाय तेना अकार्यमां पण जोडी दे छे ” ‘हवे दुर्गतिना कारणभूत आ राज्ययो मारे सर्तुं’ ए मयाणे विचार करी ते ओरमान माताना पुत्र ‘गुणचंद्रने’ राज्य आपी पोते दोसा लइ चाळी नोकल्या.

अनुक्रमे उग्र विहार करतां करतां शाहना पारगामी थया. एकदा उज्जयिनीयो आवेळा एक माघुए सागरचंद्र मुनिने कहुं के 'हे स्वामिन् ! उज्जयिनीमां तमारां भ्रातृपुत्र (भत्रीजे) अने पुरोहितपुत्र वंने मळो साधुओनी मोटी हीलना करे छे. विशेषे कहेवाथो शुं ! ते सांभळी गुरुनी आज्ञा लइने तेमने प्रतिबोध करवाने माटे सागरचंद्र मुनि उज्जयिनी आव्यां अने ज्यां राजपुत्र अने पुरोहितपुत्र हता त्यां जइ उच्च स्वरे धर्मलाभ आप्यो. ते सांभळी पेला वने जणां खुशी थतां थतां तेनी पासे आव्यां, अने 'वाळो आज धर्मलाभ आव्यो छे तेने आपणे नचावीए.' एटळं कही ते मुनिने हाथथी पकडीने महेळ उपर लइ गया. पछी वारणुं वंध करीने तेओ साधुने कहेवा लाग्या के- 'तुं नाच, नहिचो अमे तने मारथुं' त्यारे 'सागरचंद्रे कहुं के- 'तमे वाजिन्न वगाडो एटछे ते मयाणे हुं नृत्य करूं.' तेओए कहुं के 'अमने वाजिन्न वगाडतां आवढतुं नथी.' त्यारे साधुए कहुं के- 'मने नृत्य करतां पण आवढतुं नथी.' त्यारे तेओए कहुं के 'तेा अमारी साथे मळयुद्ध कर.' साधुए कहुं के 'मळे एम हो.' पछी सागरचंद्र मुनिए मळयुद्ध करतां ते कळानो पूर्वे अरुणास करेळो होवायो ते वंने जगना शरीरतंधि जुदा करे नाल्या, अने वारणु उवाडो पोतानां

उपकरणों लई नगरनी बहार नीकळी वनमां कार्योत्सर्गसुद्राप स्थित थया. अहीं राज-
पुत्र अने पुरोहितपुत्र वंनेने घणी वेदना थवाथी ते पोकार करवा लाग्या. एटळे राजाए
आवीने पूछ्युं के- 'तमन शं थयुछे ?' त्यारे वीजा लोकोए कळु के- 'अहीं एक मुनि
आव्या हता तेणे कंइक करेल्लं जणाय छे. ' एटळे राजा ते मुनिने खोळतो खोळतो
वनमां गयो. त्यां पोताना मोटा भाइने जोइ बांदीने अरज करवा लाग्यो के- ' हे
स्वामी ! आपनी जेवा महात्माओंने वीजाने पीडा करवा घटती नथी ' ते सांभळीने
'सागरचंद्र कळु के- 'तुं चंद्रावतंसक राजानो पुत्र पांचयो लोकोपाळं छे, छतां साधुओंने
दुःख देतां तारा पुत्रने तेमज पुरोहितपुत्रने शामाटे अटकावतो नथी ? आबो अन्याय
केम प्रवर्तावे छे ?' त्यारे मुनिचंद्र राजाए कळुं के- 'मारो अपराध क्षमा करो. ते
पुत्रोए जेजुं कर्तुं सेजु तेजुं फळ भोगव्युं. परंतु आपःपिताने स्थाने छे, माटे कृपा
करीने ते वंनेने साजा करो. आपना शिवाय तेओनां अस्थिटेकाणे लाववाने बीजो कोइ
शक्तिवांन नथी.' एम कहिने वंनेने सागरचंद्र 'मुनि संमीपे लाववायां आण्वा. त्यारे
तेमणे कळुं के 'जो जीववानी इच्छा करता हो तो संयम छेवानु कबुल करो.' तेमणे
ए ममाणे कबुल करवाथी सरतज तेओने साजा करवायां आव्या, एटळे चारित्र ग्रहण
करीने तेओ सायेज नीकळ्या.

ए बे मुनिमां पुरोहितपुत्र जाते ब्राह्मण होवाथी तेणे जातिमद करवाने छींषे
नीच गोत्र बांध्युं. चारित्र पाळीने प्रांते ते वंने हेवता थया. तेओ परस्पर स्नेहवाळा
हवा तेथी तेओए संकेत कर्यो के 'आपणामांथी जे प्रथम च्यवीने मनुष्य थाय तेने
स्वर्गमां रहेला बीजाए प्रतिबोध पमाडवो.' पछीं काळांतरे प्रथम पुरोहितजीव च्यवीने
राजपुह नगरमां 'महेर' नामना चंडालना घरयां 'मेती' नामनी भार्यानी कुक्षिमां
जातिमद करवाथी अवतयो. ते चंडालनी भार्या ते महेरमां कोइ शेठने घेर हमेशां आवेछे.
तेने शेठनी स्त्री साये अत्यंत मैत्री थइछे. शेठाणी मृतवत्सा [छोकरां जीवे नहि ते]
ना दोषवाळी होवाथी तेने छोकरां जीवतां नथी. ते वात तेणे चंडालनी स्त्रीने कही
तेणे कळुं के- 'आ वखते जो मने पुत्र थजे तो हुं तमने आपीश.' काळे करीने तेने
पुत्र जन्म्यो एटळे ते पुत्र तेणे शेठाणीने गुप्तपणे आप्या. शेठाणीए पुत्रजन्म्यो महोत्सव
कराव्यो, अने मेतार्य एवुं ते छोकरांतुं नाम पाड्युं. अनुक्रमे ते सोळ वर्षनो थयो.
ते अवसरे मित्रदेव (राजपुत्रनो जीव) पूर्वनो संकेत होवाथी तेनी पासे आर्वीने तेने
बोध करवा लाग्यो, पण ते प्रतिबोध पाम्यो नहि. अन्यदा तेना पिताए आठ
बणिकपुत्राओंनी साये तनो विवाह कर्यो. तेना लग्नवखते मित्रदेवे आवी चंडाल-
स्त्रीना शरीरमां प्रवेश कर्यो तेथी ते लोकोने कहेव लागी के- 'आ मारो पुत्र छे. तमे

तेने पोतानी पुत्रीओ शायाटे आपो छो ? एनो विवाह तो हुं करीस." ए प्रमाणे कही बवात्कारे ते पुत्रने पोताने-चेर-लइ गइ पछी देवे त्यां आवीने मेतार्येने कहुं के "ते मारुं कहेसु कैम कथुं नहि ? जेयुं, तागे केवो तिरस्कार कराव्यो ? माटे हजुं मारा कहेवा प्रमाणे चाळ अने चारित्रग्रहण कर." मेतार्ये कहुं के—"हु दीक्षा केवो रीते ग्रहण करुं ? तमे मने चांडाल ठरावीने लोकोमी अंदर हलको पाडयो, तेथी जे तमे मने पाछो मोटो बनावो. शेट मने पुत्र तरिके स्थापेवने श्रेणिक राजा पोतानी पुत्री मने आपे तो हुं चारित्र लउं." देवे ते प्रमाणे सघळुं करवानुं कबुल कथुं. पछी देवे अशुचिने बढले रत्नेनी लिडीओ करतो एक बकरो तेने घेर बांध्यो, अने चांडालने प्रेरणा करा तेथी तेणे रत्नेनी भरेलो एक एक थाल लइ जइने त्रण दिवस सुधी श्रेणिक राजाने भेट कयो. त्यारे अभयकुमारे पूळ्युं के—"एटलां बघां रत्ने तारीपासे क्यांथी ? तेणे कहुं के 'मने घेर तो बकरो रत्नेनी लीडीओ करेछे.' फरीथी अभय-कुमारे के के 'तुं अमने आ रत्ने का माटे भेट करेछे ?' चांडाले कहुं के 'राजा मारा पुत्रने पोतानी पुत्री परणावे माटे हुं भेट करेछे.' राजाए कहुं के 'ए कैम वने ?' अभयकुमारे कहुं के 'एक वखत तुं बकराने अहीं लइ आव, पछी ययायोग्य करथुं. तेणे बकरे लावने राजाने घेर बांध्यो, एटले त्यां तो ते दुर्गधयुक्त विष्टा करवा लाग्यो ते जेइ अभयकुमारे राजाने कहुं के 'आ कोइ देवनों प्रभाव जणाय छे, नहि तो आ राजपुत्रीनी भागणी केवो रीते करी शके ? माटे तेनी परीक्षा करवी जाइए. जे काय मनुष्य करी शके नहि ते कार्य जे ते करे तो जरूर तेयां देवनों प्रभाव खरो.' आ प्रमाणे विचार करी तेणे चांडालने कहुं के "जे आ राजघट नगरीनी आसपास नवे सोनानो किल्लो करी आपे, वैभार पर्वत उपर सेतुवध (सडक) बांधे, गंगा, यमुना, सरस्वती ने क्षीरसागर-ए चारैने अहीं लावे अने तेंममा पाणीथी तारा पुत्रने नवरावे तो श्रेणिक राजा पोतानी पुत्री तेने आपे." देवप्रभावथी अभयकुमारना कहेवा प्रमाणे सर्व एक रात्रिमां यथुं. पछी ते जळबडे चांडालपुत्रने नवरात्री, पवित्र करीने राजपुत्री परणावी. एटले पेला ऋणिकेए पण पोतानी पुत्रीओ परणवी. ए प्रमाणे तेणे नव स्त्रीओनी साथे पाणिग्रहण कथुं. एटले देवे आवीने कहुं के 'हवे दीक्षा छे.' त्यारे मेतार्ये कहुं के 'हु हमणाज परणेछो छुं, तेथी वार वर्ष सुधी आ स्त्रीओनी साथे विषयसुख भोगवीने पछी चारित्र ग्रहण करीस.' देवे पण ते कबुल कथुं. वार वर्ष गया पछो फरीथी देव आव्यो. त्यारे स्त्रीओए हाथ जोडी फरीथी वार वर्ष माग्यां. विनयथी रोजिथ यथेला देवे फरीथी वार वर्ष आप्यां. ए प्रमाणे चौबीस वर्ष सांसारिक सुख भोगवीभगवान श्री महावीर स्वामी

पासे व्रत ग्रहण करी नव पूर्वतुं अध्ययन करी जिनकल्पीपणुं अंगीकार करीने एकछ विहारी थया.

विहार करतां करतां एक दिवस माससपणने पारणे राजगृह नगरमां भिक्षाने पाटे भमतां एक सोनीने घेर जइने धर्मलाम आप्यो. त्यारे ते सोनी श्रेणिक राजानी आहायी जिनभक्तिने अर्थ घडेला एकसो आठ सोनाना जव वहार मूकीने घरमां गयो. ते समये कोइ एक क्त्रौच पक्षी त्वां आवीने ते सर्व जव गळी गयो. मेतार्यमुनिए ते जोशुं अने क्त्रौच पक्षी पण उढीने उंचे बेठुं. सोनी वहार आण्यो अने जव नहि जौवा-यी साधुने ते विषे पूछयुं. साधुए विचार कर्यो के 'जो हुं पक्षीतुं नाम लइछ तो आ सोनी तेने मारी नाखणे.' तेथी दयाने छीधे मौन धारण करीने उभा रखा. साधुओने ते योग्यज छे. कहुं छे के—

बहु श्रृणोति कर्णाञ्ज्यामक्षिज्यां बहु पश्यति ।

न च दृष्टं श्रुतं सर्वं, साधुमाख्यातुमर्हति ॥

“साधु बंने कानथी घणुं सांभळे छे अने बंने नेत्रथी घणुं जुएछे; छतां पण साधु सघळ जोएछं अने सांभळेछ कहेवाने योग्य नथी.”

साधुने वारंवार पूछतां छतां पण जवाब न देवायी 'आ चोर छे' एम यानी सोनी ए क्रोधवन्न थइ छीला चांमडाथी तेयतुं माथुं बीटीने तेमने तहकामां उभां राख्या. पछी तहकाने छीधे कठण थयेछुं आर्द्र चामडुं खंचावाथी नसोना खंचाणने छीधे ते साधुनां बंने नेत्रो नीकळी पढयां, तेथी घणुं दुःख उत्पन्न थया छतां पण तेमणे तेना उपर रोष बंने नेत्रो नीकळी पढ्या, तेथी घणुं दुःख उत्पन्न थया छतां पण तेमणे तेना उपर रोष आप्यो नहि. क्षमाना गुणथी सघळां कर्मनो क्षय करी आयुष्यने अंते केवलज्ञान पामीने मेतार्य मुनि मोक्षे गया ते समये लाकडानो बोजो पढवायो उत्पन्न थयेला शब्दान भयथी व्याकुल थयेला पेला पक्षीए सघळा जवो वपी नाख्या. ते जवोने जोइ भय पामेलो सोनी विचार करवा छाग्यो के 'अरे ! में बहु खराब काम कर्युं ! में श्रेणिक राजाना जमाइ मेतार्य नामना मुनिने हण्या. जा राजा आ वात जाणणे तो जरूर मारो सह-कुदुब नाश करणे' पछो भयना मार्या तेणे परिवार सहित महावीर स्वामी पासे जइने चारित्र ग्रहण कर्युं. चारित्र पाळो, पापनी आलोचना करीने ते सद्गतिए गयो.

ए प्रमाणे अन्य मुनिमहाराजए पण क्षमा राखवी एवो आ कथानो उपदेश छे.

जो चंद्रणेण बाहुं, आलिपइ वासिणा वि तच्छेइ ।

संयुणइ जो अ निंदइ, महूरिसिणो तथ्य समभावा ॥ एश ॥

अर्थ—“कोइ चंदनबडे मुजाने बिछेपन करे अने कोइ बांसलाबडे तेने छेदे, कोइ स्तुति करे अने कोइ निंदा करे, मुनि ते सर्वनी उपर समभाववाळा होय.” ९२.

गाथा ९२—बाहु, वासिणा—दृष्टमिदाश्लेषः

भक्तिबडे कोइ बाधनाचंदनथी विछेपन करे अने स्तुति करे तेमज द्वेषबडे कोइ भुजानो छेद करे अने निंदा करे, ते बनेनी उपर महर्षिओ समभाव राखेअर्थात् मुनि शत्रु मित्र उपर समभाववाळाज होय.

सीह गिरिसुसीसाणं, महं गुरुवचणसहहंताणं ।

वयरो किर दाही वायणत्ति, नवि कौविअं वर्यणं ॥ ए३ ॥

अर्थ—“ गुरुमहाराजना वचनने सहहनारा एवा सिंहगिरि आचार्यना मुशिष्योळुं कल्याण थाओ. ते शिष्योए ‘आ वज्र मुनि तमने वांचना आपणे’ एवा गुरुमहाराजना वचनने असत्य न कर्युं.” ९३. अर्थात् आ वाळक वज्रमुनि अमने शुं वांचना आपणे? एवो विचार पण कर्यो नहि. गुरुमहाराजना वचन प्रस्ये आवी दृढ श्रद्धा जेने होय तेवा शिष्योळुं कल्याण थाय तेमां शुं आश्चर्य ! अहीं वज्रस्वामीतुं दृष्टांत जाणवुं. २६.

वज्रस्वामीतुं दृष्टांत.

बाल्यावस्थामां पदानुसारिणी लब्धिना वळयी साध्वीमुखे सांभळीने अग्यार अंगतुं जेणे अध्ययन कर्युंछे, अने जेने आठ वर्षनी उमरे गुरुए दीक्षा आपेलोछे एवा वज्रस्वामी गुरुनी साथे विहार करता हता. एक दिवस वज्रस्वामीने उपाश्रयमां मूकी सर्व साधुओ गोचरीए गया हता. ते अवसरे वज्रस्वामीए सघळा मुनिओनी उपधिओ (आसन विगेरे उपकरणों) ने हारबंध गोठवी तेमां मुनिओनी स्थापना करीने (मुनिओ वेठाछे एम माजीने) पोते वचमां वेसी मोटे स्वरे तेमने आचरांगादिनी वांचना आपता होय तेम बोलवा लाग्या. ते अवसरे स्थंडिलभूमिथी आचार्य आष्या. उपाश्रयनां वारणां बंध जोइने गुरुए गुप्त रीते अंदर जोयुं तो वज्रस्वामी सर्व मुनिओनी उपधिने एकठो करी छात्रबुद्धिथी भणावता हता. गुरुए चिंतव्युं के ‘जो हुं एकदम वारणुं उघटावीश तो ते शक्ति थरो.’ एम विचारी मोटे स्वरे ‘निसिहि’ ए प्रमाणे प्रणवार शब्दोच्चार कर्यो. ते सांभळी गुरु आव्या छे एम जाणी वज्रस्वामीए लघुलाघवी कळाए एकदम दरेक उपधिने तेने स्थाने मूकी दइने वारणुं उघाढयुं. गुरुए विचार्युं के ‘आ पुरुवरत्नमां आटळ वधु ज्ञानछे, माटे आनु ज्ञान अजाणपणामांन जाओ.’ एवुं विचारो वोजे दिवसे ‘सिंहगिरि’ आचार्य कंइ कार्यंतुं मिष करीने वीजे गाम जनाने उच्युक्त थया. ते वखते साधुओए पूछ्यु के ‘हे स्वामी ! अमने वांचना कोण आपणे?’ गुरुए कळुं के ‘आ वज्र नामना छपु मुनि तमने वांचना आपणे.’ तेओए कळुं के ‘तहचि’ (वहु सारुं) ते वखते ‘आ वाळरु अमने शुं वांचना आपी शकरो?’ एवी शंका पण तेओए करी नहि. गुरु वीजे गाम गया. शिष्योए सिद्धांतनी वांचना वज्रमुनि पासे लीघी. अध्ययन

बहु सारी रीते थयुं. पछी गुरुमहाराज पधार्यां अने शिष्याने पूछयुं के—'काइ अध्य-
यन थयुं के केम?' तेओए कहु के 'अध्ययन बहु सारी रीते थयुं, थोडा दिवसमां
घणो अभ्यास थयो, माटे हवे पछो आ वज्रस्वामीज अमारा वांचनाचार्य थाओ.'
ए प्रमाणे साधुओए अरज करवाथी गुरु वज्रमुनिने आचार्यपद आयुं अने वांचना-
चार्य तरीके स्थाप्या.

“जेवो रीते सिंहगिरि शिष्योए गुरुजं वचन मान्य कयुं तेवो रीते बीजाओए
पण गुरुना वचनमां संदेह करवो नहि” एवो आ कयानो उपदेश छे.

मिण गोणसंगुलीहिं, गणोहिं वा दंतचक्रलाइ सें ।

इच्छंति भाषिज्जणं, कज्जं तु तपव जाणंति ॥ ९४ ॥

अर्थ—“हे शिष्य ! आ सर्पने अंगुलिबडे माप अथवा तेना दंतस्थान-दांत गण”
एवी रीते गुरुमहाराजे कबे सते शिष्य ‘इच्छुं छुं’ अथवा ‘तद्वत्ति’ कही ते कार्य करवा
चाह्यो जाय पण विचार न करे कारणके तेनुं कार्य तो गुरुमहाराज जाणे छे” ९४.
एदछे तेम शमाटे करवा कहे छे ते हेतु गुरुमहाराज समजे छे, तेमां विनीत शिष्यने
विचारवानी जरज नथी. तेथी तेमां ते विछेच पण करतो नथी. जेने आबो गुरुमहाराज-
नी प्रतीति होय तेनुंज खरं विनीतपणुं समजवुं.

कारणविज्ज कयाई, सेयं कायं वयंति आयरिया ।

तं तह सहहियव्वं, अवियव्वं कारणेण तहिं ॥ ९५ ॥

अर्थ—“कारणना जाण एवा आचार्य कोइक वखत ‘आ कागडो इवेत छे’ एम
बोले तो तेज प्रकारे सदेहयुं, कारणके तेमां काइ पण कारणनुं होवापणुं छे.” ९५. कारण
विना आचार्य तेनुं कहेज नहि, माटे आचार्यना तेवा वचनमां पण शंका करवो नहि.

जो गिहइ गुरुवयणं, भणंतं जावओ विसुद्धमणो ।

ओसहयिव पीज्जंतं, तं तस्स सुहावहं होइ ॥ ९६ ॥

अर्थ—“भावथी विशुद्ध मनवाळो जे शिष्य कहेवातुं एवुं गुरुमहाराजनुं वचन ग्रहण
करेछे—अंगीकार करे छे तेने औषधनी जेम पीवातुं ते गुरुजं वचन सुखने आपनारं थाय
छे.” ९६. जेम पीतां कडवुं लागे एवुं पण औषध पीवुं छतुं परिणामे घणा सुखने आ-
पनारं थाय छे तेम गुरुजं वचन पण अंगीकार फरतां कदी कष्टकारी लागे तो पण जे
अंगीकार करे छे तेने ते परिणामे सुखने आपनारं आ भव परभवमां द्वितकारी थायछे.

गाथा ९४—दंतचक्रलाय—दंतचक्रलाइति दंतस्थानानि तमेव. गाथा ९५—व्वंत
काकं. गाथा ९६—मन्नंतं.

અણુવત્તંગા વિણીયા, વહુસ્વમા નિચ્ચજ્જત્તિમંતાય ।

ગુરુકુલવાસી અમુદ્ધ, ધન્ના સીસા ઇહ સુસીલા ॥ ૧૭ ॥

અર્થ—“ગુરુની અનુવર્તનાણ ચાલવાવાળા, વાહ્યામ્યંતર વિનયવંત, વહુ સહન કરવાવાળા, નિત્ય મક્તિવંત, ગુરુકુલવાસે વસનારા (સ્વેચ્છાચારી નહિ), જ્ઞાનાદિ કાર્ય સિદ્ધ થયે પણ ગુરુને નહિ મૂકવાવાળા અને મુશીલ (સમ્યગ્ આચારવાળા) પણ શિષ્યો આ જગત્તમાં ધન્ય છે.” ૧૭

જીવંતસ્સ ઇહ જસો, કિત્તી મયસ્સ પરમ્ભવે ધમ્મો ।

સુગુણસ્સય નિગુણસ્સય, અજસો કિત્તી અહમ્મોય ॥૧૮ ॥

અર્થ—“ગુણવંત પણ શિષ્યનો જીવતા સતા આ મવમાં યજ્ઞ થાય છે અને કીર્તિ થાય છે, તેમજ મરણ પામ્યે સતે પરમ્ભવમાં તેને ધર્મ પ્રાપ્ત થાયછે. નિર્ગુણી-દુર્બિનીત શિષ્યને આ મવમાં અપયજ્ઞ અને અપકીર્તિ પ્રાપ્ત થાયછે અને પરમ્ભવમાં અધર્મ-નરકાદિ ગતિની પ્રાપ્તિ રૂપ થાય છે.” ૧૮.

બુદ્ધાવોસેવિ ઠિયં, અહવ ગિલાણં ગુરું પરિજ્જવંતિ ।

દત્તુવ ધમ્મવિમંસણાં, દુસ્સિલ્લિચયં તંપિ ॥ ૧૯ ॥

અર્થ—“વૃદ્ધાવસ્થાને વિષે (વિહારાદિની અશક્તિથી એક સ્થાનકે વિધિપૂર્વક) સ્થિત થયેલા અથવા ગ્લાન-વ્યાધિયુક્ત થયેલા પણ ગુરુને દત્ત નામના શિષ્યની જેમ જે પરામ્ભવ કરેછે તે ધર્મવિચારણા વઢે પણ દુઃશિક્ષિત જાણવું, અર્થાત્ દુષ્ટ શિષ્યવૃંદ્ આચરણ સમજવું.” ૧૯. અહીં દત્તવું દૃષ્ટાંત જાણવું. ૨૭

દત્તમ્મનિત્તું દૃષ્ટાંત.

કુલ્લુપુર નામના શહેરમાં સંઘની અંદર કોઈ સ્થવિર (વૃદ્ધ) આચાર્ય હતા તેમણે એક વસ્ત્રને આગલ મોટો ટુપ્કાલ પહવાનો છે એમ જાણી મચ્છના સર્વ સાધુઓને બીજે દેશ મોકલ્યા; પણ વૃદ્ધપણાને લીધે પોતે જવાને અશક્ત હોવાથી તેજ નગરીમાં વસ્તીના નવ માગ કરવી એક સ્થાનવાસી થઈને રહ્યા. એકદા ગુરુસેવાને માટે દત્ત નામનો શિષ્ય ત્યાં આવ્યો. તે શિષ્ય જે નિવાસસ્થાનમાં ગુરુને મૂકીને ગયો હતો તેજ સ્થાન (ભાગ)ની અંદર ગુરુ વિહારક્રમથી આવેલા હતા. તેથી શિષ્ય તેજ સ્થાનમાં ગુરુને જોઈને શક્તિ થઈ વિચાર કરવા લાગ્યો કે ‘ ગુરુ પાસથ્યા અને ઉન્માર્ગગામી યયા જ્ઞાયા છે, તેમણે સ્થાન પણ વદલ્યું હોય એમ જણાવું નથી.’ આમ વિચારીને તે જુદા લપાશ્રયમાં રહ્યો. મિહાર્થે ગુરુની સાથે નીકળ્યો, અને જ્યાં નીચ કુલ્લમાં ફરતાં મિહાર નહિ મલ્લવાથી મનમાં ઉદ્દેગ પામવા લાગ્યો ગુરુ તેના મનનો વિચાર ઈંગિતાકારવઢે

ગાથા ૧૭-વહુ સ્વમા. ગાથા ૧૮-કિત્તિ અમ્મયસ્સ. ગાથા ૧૯-વિમંસણેજ.

आणीने कोइ मोटा शेठने वेर गोचरीने माटे गया.ते शेठनेवेर व्यंतरना प्रयोगधी एक बाळकने रोतो जोइने गुरुए कहुं के—'रो नहि' ए प्रमाणे कही चपटी बगाडी एटछे व्यंतरी नासी गइ अने बाळक शान्त थइ गयुं. तेथी खुशो थयेळां तेनां माता-पिताए गुरुने छाडु व्होराव्या;ते आहार दचने आधीने गुरुए तेने उपाश्रये भोकल्यो. दच विचारवा लाग्यो के 'आहुं स्थापनाकुळ' छतां पण गुरुए मने बहु रसदाव्यो. पछी गुरुए पण सामान्य कुळमां जइ नीरस आहार ग्रहण करी उपाश्रये आधीने आहार कर्यो. प्रतिक्रमण करतां दिवसना दोषोनी आछोचनाने अवसरे गुरुए दचने कहुं के—'रे महाजुषाव ! तें आजे घात्रीपिंड (बाळकोने प्रसन्न करी तेमनां मावाप पासेथी खोराक छेवे ते)तुं भक्षण कर्तुं छे, माटे सारी रीते तेनी आछोचना कर.' ए सांभळीने दत्ते विचार्युं के—'गुरु मारा सूक्ष्म दोषो पण जुएछे अने पोतानां मोटा मोटा दोषो पण जोता नथी.' आम विचाररीने ते गुरु उपर मत्सर धरवा लाग्यो. पछी प्रतिक्रमण करीने पोताने स्थानके जतां गुरुना गुणथी रंजित थयेछी शासनदेवीए 'आ दचने गुरुना पराभवतुं फळ वतातुं.' एतुं विचारी घणो अंधकार विडुर्वी तेने मोह पमाळ्यो. दच कंड पण जोइ शकतो न होवाथो आकुळव्याकुळ थवा लाग्यो अने पोकार करवा लाग्यो. गुरुए कहुं के 'अहीं आव.' त्यारे तेणे कहुं के 'त्यां केवी रीते आहुं? हुं द्वार पण जोइ शकतो नथी.' त्यारे गुरुए पोतानो आंगळी शुकवाळो करीने उंचो करी दीवाना माफक बळती देखाडी. दत्ते त जोइने विचार कर्यो के 'गुरु बहु सावध (अति दोषवाळो) एवा दीपक पण राखता जणायछे.' ए प्रमाणे तेने गुरुना अवगुणो-ज भासवा लाग्या. पछी शासनदेवताए कहुं के 'अरे दुरात्मन् ! पापी ! तुं गौतम जेवा गुरुनो पराभव करे छे ? शुं तारे दुर्गतिमां जतुं छे ?' ए प्रमाणे घणां कर्कश वाक्योथी तेने शिक्षा आपी. तेथी दत्त मुनि पश्चाताप करतो सतो गुरुचरणनी अंदर पळ्यो अने वारंवार पोतानो अपराध खमाळ्यो. छेवटे पापकर्मनी सम्यक् प्रकारे आछोचना करीने ते सद्गतिए गयो.

आ प्रमाणे दत्त मुनिना हृष्टांतथी शिष्ये गुरुनी अवज्ञा करवी नहि, एवो आ कथानो उपदेश छे.

आचार्य भक्तिरागो, कस्त सुनखलत्त महारिसि सरिस्तो ।

अवि जीविञ्चं ववसिअं, न चैव गुरुपरिञ्चवो सहिञ्चो ॥१००॥

अर्थ—'गुरु उपर भक्तिरागतुं हृष्टांत कहे छे—आचार्य उपर भक्तिराग सुनसन्न महर्षि जेवो कोने छे के जेणे जीवितव्य पण तजी दीधुं, परंतु गुरुनो पराभव सहन कर्यो नहि.' १००. अहीं सुनसन्न मुनिनो संबंध जाणवो. २८.

१ मुकरर करी राखेला घर के न्यांथी योग्य आहार गमे त्यारे मळी हाके ते स्थापनाकुळ कहेवाय छे.

सुनक्षत्र मुनिजुं वृत्तांत.

एक वखत श्रीवीरमञ्जु श्रावस्ती नगरीमां समवसर्यां, त्यां गोशाळक पण आब्यो. नगरमां एवी वात फेलाइ के आजे नगरयां बे सर्वज्ञ आवेळा छे. एक श्रीवीरमञ्जु अने बीजो गोशाळक. ए वात गोचरीए गयेळा श्रीगौतम स्वामीए सांभळी, तेथी तेणे भगवंतने पूछयुं के 'आ गोशाळक कोणछे के जे लोकोनी अंदर सर्वज्ञ एवुं नाम धरावे छे.' भगवाने कहुं के "हे गौतमा सांभळ. सरवण नामना गाममां मंखळि नामनो मंख जातिनेो एक पुरुष हतो. तेने भद्रा नामनी स्त्री हती, तेनी कुक्षिथी ते जन्म्यो छे. जेने घणी गायो हती तेवा एक ब्राह्मणनी गौशाळामां जन्मवाथो तेजुं नाम गोशाळक पाडयुं हतुं. ते युवान थयो तेवामां हुं छन्नस्थ अवस्थाए फरतो राजगृह नगरने विशेष चातुर्मास रह्यो हतो. ते पण फरतो फरतो त्यां आब्यो. में चार माससपणनां पारणां परमात्म (श्रीर) वडे कर्यो. तेनो महिमा जोइने ते विचार करवा लाग्यो के 'जो हुं आनो शिष्य थालं तो दररोज मिष्टान्न मळे.' ए प्रमाणे विचारी 'हुं तमारो शिष्य छुं' एम कही मारी पाळळ लाग्यो. ते मारी साथे छ वर्ष पर्यंत भग्न्यो. एक दिवस कोइ योगिने जोइने तेणे मश्करी करी के 'आ जूओतुं शय्यातरछे' तेथी क्रोधितथयेळा ते योगिए तेनापर तेजोछेइश्यामूकी. में शीतछेइश्या मूकीने तेने बचाब्यो. पछी तेणे तेजोछेइश्या उत्पन्न करवानो उपाय मने पूछ्यो. में पण भावि भाव जाणीने तेनो उपाय कह्यो, एटलेते माराथी जुदो पळ्यो. ते छ मास कष्ट वेठी तेजोछेइश्या साधी, अने अष्टांग निमित्तोनेो पण जाण थयो. पछीथी प्रमाणे जनसमुदाय आगळ ते पोतातुं सर्वज्ञपणुं स्थापित करेछे; परन्तु ते खोडुं छे. ते कांइ जिन नथी अने सर्वज्ञ पण नथी." आ प्रमाणेनी भगवंते कहेळी हकोकत सांभळीने त्रिक (त्रण मार्ग मळे ते स्थान) मां, चोकमां अने राजमार्गमां सघळा लोको कहेवा लाग्या के 'आ गोशाळक सर्वज्ञ नथी.' ए सघळुं वृत्तांत गोशाळके कोइन मुखथी सांभळयुं, एटले तेने क्रोध उत्पन्न थयो. ते अवसरे आनंद नामना एक सांधुंने गोचरीए जतां जोइने तेणे वोळाव्या अने कहुं के "हे आनंद! तुं एक द्रष्टांत सांभळ-केटलाएक वाणीआ करियाणांना गाढां भरीने चाल्या. तेओ जंगलमां गया. त्यां तेमने घणी वृषा लागवाथो पापीनी शोध करतां तेओए चार राफडानां शिखरो जोयां. तेओ एक शिखर तोडयुं, एटले तेमांथी गंगाजळ जेजुं निर्मळ जळ नीकल्युं. सघळाओ ते जळ वारंवार पीने संतुष्ट थया. वीजुं शिखर तोडवा जतां साथेना कोइ एरु वृद्ध माणरे तेमने वायां, परंतु तेओ वायां रह्या नहि. ते शिखर तोडतां अंदरथी सोडुं नीकल्युं. ए प्रमाणे वीजुं शिखर भेदतां अंदरथी रत्नो नीकल्यां. चोथुं शिखर भेदवां वखते वृद्धे घणा वायां छतां पण तेओए ते शिखर तोडयुं तो तेमांथी अति भयंकर दृष्टिविष सर्व नीकळयो. तेणे सूर्य सांधुं जोइने तेमनी उपर दृष्टि फेको, जेथी ते सघळा भस्म

धइ गया. पेछो वृद्ध चाणीयो वरुयो तेवी रीते हे आनंद ! तारो धर्माचार्य पण पो-
तानी कऱ्दियी वृत्त न यतां मारी इर्या करेछे तेथी हुं तेने वाळीने भस्म करी ना-
खीश. परंतु तुं तेने हितोपदेश देनार थवायी तने हुं वाळीश नहि.” ए प्रमाणे सां-
भळीने भयभीत थयेला आनंद भगवानने सर्व हकीकत कही. भगवंतनी आज्ञायी गौ-
तम-आदि मुनिओने ते घात जणावी; जेथी तेओ सर्व भगवतथी दूर पोतपोताने स्थाने
बेसी गया. एटळामां गोशालक त्यां आधी प्रभुने कहेवा लाग्यो के ‘हे काश्यप ! तुं
मने पोतानो शिष्य कहेछे ते खोडुं छे. ते तारो शिष्य तो मरी गयो. हुं तो तेतुं श-
रीर बळवान जाणीने ते शरीरमां स्थिति करीने रह्यो छुं.’ ए सांभळीने ‘आ
भगवाननी अवज्ञा करेछे’ एम जाणी गरुभक्तिमां अत्यंत रागवाळा सुनस्रत्र नामना
साधुए गोशालकने कहुं के ‘अरे ! तु तारा धर्माचार्यनी निंदा केम करेछे? तेज तुं
गोशालक छे (बीजा नथी).’ ए सांभळीने गोशालके क्रोधवश थइ तेजोछेइयाथी
सुनस्रत्र मुनिने वाळी नाख्या. समाधिथी मृत्यु पामी ते आठमा देवळोकमां देवपणे
उत्पन्न थया. ए समये बीजा सर्वांनुभुति नामना साधुए पण सर्व जीवोने स्वभावां
अनश्न करी गोशालकनी सन्मुख आवीने कहुं के ‘तुं स्वधर्माचार्यनी निंदा केम करे
छे?’ तेथी द्रष्ट गोशालके तेमने पण वाळी नाख्या. ते मरीने बारमा देवळोकमां उ-
त्पन्न थया. पछी भगवाने कहुं के “ हे गोशालक ! तुं आ माटे तारा देहने गोपवे
छे? जेम कोइ चोर भागतो सतो कोड न देखे तेदळा माटे तरणुं पोतानी आहुं घरेछे
पण तेथी ते छानो रहेतो नथी, तेवी रीते तुं पण माराधीज बहुश्रुत थयो छे अने
मारीज अपलापना करेछे.” इत्यादि वचनोथी क्रोधित थइने तेणे भगवाननी उपर
पण तेजोछेइया मूकी ते तेजोछेइया भगवानने त्रण प्रदक्षिणा करी पाछी वळीने
गोशालकना शरीरमांज पेठी. पछी गोशालक वोल्यो के ‘हे काश्यप तुं आजयी सा-
तये दिवसे मरण पामीश.’ त्वारे भगवाने कहुं के ‘हुं तो सोळ वर्ष मुथी केवळीपणे
विचरीश, परंतु तुंनो आजयी सातये दिवसे मोठी वेदना भोगवीने मरण पामीश.’
पछी गोशालक पोताने स्थाने आब्यो. सातये दिवसे शांत परिणामथी समकित फ-
रशुं तेथी ते मनमां विचार करवा लाग्यो के ‘अरे ! में आ अत्यंत विरुद्ध आचरण
कर्युं. में भगवाननी आज्ञानो लोप कर्यो ! में साधुओनो घात कर्यो ! आवता भवमां
मारी शी गति थने?’ ए प्रमाणे विचारी शिष्योने वोलावो कहुं के “मारा मरण पछी
मारा कळेवरने पमथी वांवीने श्रावस्ती नगरीमां चारे तरफ फेरवजो. कारणके हुं
जिन नहि छतां ‘ हुं जिन छुं ’ एजुं में लोकमां कहेराव्युं छे” आ प्रमाणे आत्मनिंदा
करतो सतो मरण पामीने ते बारमा देवळोकमां उत्पन्न थयो. पछी शिष्योए गरुनुं
वचन मान्य करवा मांटे उपाश्रयनी अंदर श्रावस्ती नगरी आलेखी कमाह वंघ करो
कळेवरने पगे रब्जु वांधीने चारे तरफ फेरव्युं.

ए प्रमाणे सुनस्रत्र मुनिनी पेठे अन्य साधुए पण गरुभक्तिमां राग करवो, एवो
आ कयानो उपदेश छे.

પુત્રોહિં ચૌશ્યા પુરકહોહિં, સિરિભાયણં મંવિચ્ચસંત્તા ।

ગુરુ માગમેસિજહા, દેવયર્મિવ પજ્જુવાસંતિ ॥ ૧૦૧ ॥

અર્થ—“ પૂર્વકૃત પુણ્યવદે પ્રેરાયલા, હક્ષ્મીના ભાજન અને આગામિ કાલે જેમનું કલ્યાણ થવાનું છે એવા મન્ય જીવો પોતાના ગુરુને દેવતાની જેમ સેવે છે. અર્થાત્ જેવી રીતે દેવની સેવા કરે તેવી રીતે ગુરુની પણ સેવા કરે છે. ” ૧૦૧.

બહુ સુલ્લ સયસહસ્સાણ, દાયગા મોચ્ચગા દુહસહસ્સાણં ।

આયરિચ્ચા ફુડ મેચ્ચં, કેસિ પ્પસિચ્ચ તેહેહ ॥ ૧૦૨ ॥

અર્થ—“ બહુ પ્રકારના હાલોગમે સુલ્લના આપનારા, અને સેકડો અથવા હજારો દુઃખથી સૂકાવનારા ધર્માચાર્ય હોય છે, એ વાત પ્રગટ છે (એમાં સંદેહ જેવું નથી). પ્રદેશી રાજાને કેશી ગણધર તેવીજ રીતે સુલ્લના હેતુ થયેલા છે. ” ૧૦૨.

અહીં કેશી ગણધર અને પ્રદેશી રાજાનો વપનય જાણવો. ૩૧

જંબૂદીપના ભારતવર્ષમાં કૈકયાર્દ્ધ દેશમાં શ્વેતાંબી નામની નગરી છે. ત્યાં અઘર્મીનો શિરોમણિ જેના હસ્ત નિરંતર રુચિરથી હેપાયેલાજ રહે છે એવો, પરલોકની દર-કાર વિનાનો અને પુણ્યપાપમાં નિરપેક્ષ પ્રદેશી નામનો રાજા હતો. તેને ચિત્રસારથિ નામનો મંત્રી હતો. તેને એક દિવસે પ્રદેશી રાજાએ શ્રાવસ્તી નગરીમાં જિતશ્ચુ રાજાની પાસે મોકલ્યો. ત્યાં તે કેશિકુમાર નામના મુનિની દેશના સાંભળીને પરમ શ્રાવક થયો. પછી તેણે કેશિકુમારને વિદ્યવ્રત કરી કે ‘ હે સ્વામીન્ ! એક વસ્ત્ર આપે શ્વેતાંબી નગરીએ પધારવાની કૃપા કરવી. આપને તેથી હામ થશે. ’ કેશિગણધરે કહ્યું કે ‘ તમારો રાજા બહુ દુઃખ છે તેથી કેવી રીતે આવીએ? ’ ચિત્રસારથિએ કહ્યું કે ‘ રાજા દુઃખ છે તો તેથી શું? ત્યાં ઘોજા મન્ય જીવો પણ ઘળા વસે છે. ’ ત્યારે કેશિકુમારે કહ્યું કે ‘ પ્રસંગે જોઈશું ’ પછી ચિત્રસારથિ શ્વેતાંબીએ આવ્યો. અન્યદા કેશિકુમાર પણ ઘળા મુનિઓથી પરિવ્રત થઈ શ્વેતાંબીની વહાર યુગવન નામના વપવનમાં સમવસર્થા. ચિત્રસારથિ તેમનું આવવું સાંભળી મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યો કે ‘ હું રાજ્યચિંતક છતાં દુર્બુદ્ધિ અને પાપી એવો મારો રાજા નરકે ન જવો જોઈએ, માટે તેને આ મુનિ પાસે લઈ જાઉં. ’ એવું વિચારી અશ્વક્રીડાના મિષથી રાજાને નગર વહાર લઈ ગયો. પછી અતિ શ્રમથી થાકી ગયેલ રાજા શ્રી કેશિકુમારે અલંકૃત કરેલા વનમાં આવ્યો. ત્યાં ઘળા લોકોને દેશના દેતાં તેમને જોઈને રાજાએ ચિત્રસારથિને પૂછ્યું કે ‘ આ મુંદો જડ અને અજ્ઞાની લોકોની આગલ શું કહે છે ? ’ ચિત્રસારથિએ

ગાથા ૧૦૧-પુણ્ણેહિં. ગાથા ૧૦૨-દુહસયાણં. તેહેહ-તદ્વદ્વઃ સુલ્લહેત્તઃ

कह्युं के 'हुं जाणतो नयो.' जो आपनी इच्छा होय तो चालो. त्यां जइने सांमळीए, ए प्रमाणे कहेतां राजा चित्रसारथिनी साथे त्यां गयो, अने बंदनादि विनय कर्वा विना गुरने पूछ्युं के 'आपना हुकम होय तो बेसुं ?' गुरए कह्युं के 'आ तमारी भूमि छे, माटे इच्छा मुजब करो.' ए सांमळीने राजा तेमनी आगळ वेठो. तेने वेठेळो जोइने आचार्ये विद्येये करीने जीव आदिजुं स्वरूप वर्णव्युं. ते सांमळीने राजाए कह्युं के "आ सर्व असंबद्ध छे. जे वस्तु प्रत्यक्ष देखायः तेज सत् होय छे. जेम पृथ्वी जळ, तेज ने वायु प्रत्यक्ष देखाय छे तेम आ जीव प्रत्यक्ष देखायो नथो तेथी आकाश-पुष्पवत् अविद्यमान एवो जीवसत्ता केम मानो शक्याय ?" त्यारे केशिङ्गमारे कह्युं के 'हे राजा ! जे वस्तु तारी नजरे देखाय नहि ते थुं संघळानो नजरे न देखाय ? जो तुं कहीशके 'जे हुं देखुं नहि ते सर्व असत्य छे' तो ते मिथ्या कथन छे. कारण के सघळाप जोयुं होय अने एके न जोयुं होय तो ते असत्य ठरतुं नथो. वळी जो कही शके 'सघळो जोइ शकता नथी' तो तुं थुं सर्वज्ञ छे के जेथी बधा जोइ शकता नथी एवो तने खबर पदी ? जे सर्वज्ञ छे ते तो जीवने प्रत्यक्ष जुए छे. तुं तारा शरीरना अग्र भाग जोइ शकेछे पण पृष्ठ भाग जोइ शकतो नथी तो जीवजुं स्वरूप के जे अरुपी छे ते तो शी रीते जोइ शके ? माटे जीवसत्ता छे एम मानिने प्रलोकाजुं साधन छे एम प्रमाण कर." त्यारे प्रदेशि राजाए कह्युं के 'हे स्वामी ! मारो पितामह अंत्यंत पापी हतो ते तमारा मत प्रमाणे नरके जवो जोइए. तेने हुं घणोज मिय हतो, पण तेणे आवीने मने कह्युं नहि के पाप करीश नहि. पाप करीश तो नरके जवुं पडशे, त्यारे जीवसत्ताने हुं केवी रीते मान्य करुं ?' केशिङ्गमार' मुनिए कह्युं के 'तेनो उत्तर सांमळ-तारी सूरिकंता राणीनी साथे विषयसेवन करतां कोइ परपुरुषने जो तुं जुए तो तेने तुं थुं कर ?' राजाए कह्युं के 'हुं तेने एक घाए वे डुकडा करी मारो नाखुं, एक क्षण कुडंबेळाप करवाने माटे तेने घेर जवानी पण रजा आपुं नहि.' गुरए कह्युं के 'ए प्रमाणे नारकीओ पण कर्मथी बंधायेळा होवाथी अत्रे आवो शकता नथी.' फरीयो राजाए कह्युं के 'अति धर्मिष्ठ एवी मारी माता तमारा मत प्रमाणे स्वर्गमां गइ हशे. तेणे पण आवीने मने कह्युं नहि के वत्स ! पुण्य करजे. पुण्य करवाथी स्वर्ग मळे छे, तो हुं जीवसत्ताने केवी रीते प्रमाण करुं ?' त्यारे केशिङ्गमारे कह्युं के 'तमे भ्रम्य वल्ल पहेरो चंदन आदिथी शरीरने लिप्त करी स्त्रीनी साथे महेलमां क्रीडा करता हो ते वल्लते कोइ चंडाल तपने अपवित्र भूमिमां बोळावे तो तमे त्यां जाओ के नहि ?' राजाए कह्युं के 'न जावं.' गुरए कह्युं के तेवी रीते देवो पण पोताना भोगेने छोडीने दुर्गंधी भरेळा अः गुरुळ नां आरता नथो. कः टुं के—

चत्वारिपंचजोयणसयाइं, गंधोश्च मण्डुश्च लोणस्त ।

उहं वद्मइ जेणं, न हु देवा तेण आवंति ॥

“आ मनुष्यलोकनो दुर्गंध चारुश्च पाचशं योजन सुधी उंचो जाय छे, तेथी देवताओ अहीं आवता नथी.” फरीथी राजाए कहुं के ‘हे स्वामी ! एकवार ये एक चोरने जीवतो पकड़्यो अने छोडानी कौठीयां नाखी तेजुं चारणुं बंध कर्हुं. काळे करीने ते कौठीजुं चारणुं उघाडी जेयुं तो चोर मरी गयो इतो अने तेना कछेवरयां घणा जीवडांओ उत्पन्न थयां इतां. पण सेमां छिद्र परेळां नहोतां तो ते जीवने नीकळवाना अने बीजा जीवने आवधानां छिद्रो तो होवां जोइए. में ते जेयां नहि तेथी कहुंछुं के जीव नथी. केशिकुमारे कहुं के ‘कोइ एक पुरुषने घरना नभांगांयां राखवामां आवे आवे घरमां सर्व द्वार बंध करवामां आवे; पछी ते मध्ये रह्यो सतो अंख ने येरी विगेरे बाजिन्न वगाडे, तो तेनो शब्द बहार संभळाय के नहि ?’ राजाए कहुं के ‘संभळाय.’ शुरुए कहुं के ‘बहार शब्द आवघाथी शु ओरहानी भीतमां छिद्रो पटेछे ?’ राजाए कहुं के ‘पहतां नथी. ’ शुरुए कहुं के ‘जे रूपी शब्दथी छिद्र पहतां नथी तो अरुपी जीवथी छिद्रो केम पटे ?’ फरीथी शदेकी राजाए कहुं के ‘हे स्वामी ! एक चोरना में ककडे ककडा करी तेना दरेक प्रदेस जेया पण सेमां जीव जेवामां आब्यो नहि. ’ केशिगणधरे कहुं के ‘तु कठीयारानी जेवो मूर्ख देखाय छे. केटलाएक कठीयाराओ छाकडां छेवाने माटे बनमां गया. तेमांथी एक कठीयाराने कहुं के ‘आ अग्नि छे. तेथी रसोइनो बखत थाय त्यारे रसोइ करजे. कदि आ अग्नि बुझाइ जाय तो आ अरणीना काष्ठमांथी अग्नि उत्पन्न करजे. ’ ए प्रमाणे कहीने तेओ गया. अहीं अग्नि बुझाइ गयो तेथी पेला मूर्ख कठीयारे अरणीजुं लाकहुं लावी तेना चुरेचुरा कर्या, परंतु अग्नि उत्पन्न थयो नहि. तेटलामां पेला कठीयाराओ आब्या. तेओए तेनी मूर्खता जाणी बीजुं अरणीजुं काष्ठ लावी तेजुं मयन करीने तेमांथी अग्नि प्रगट कर्यो, अने रसोइ करी भोजन कर्हुं. एम जेवी रीते काष्ठनी अदर रहेलो अग्नि वाप्यथी सधाय छे तेवी रीते देहमां रहेलो जीव पण साधी शक्याय छे. ” ए. प्रमाणे सांभळीने प्रदेशि राजाए कहुं के “हे स्वामिन् ! में एक चोरजुं वजन करी तेना न्वासतुं रंधन करीने तेने मारी नाख्यो. तेने फरीथी तोल्यो तो ते तेटलाज वजननो थयो. त्यार में जाण्युं के ‘जीव नथी.’ जो तेनामां जीव होत तो जीव जतां ते कांइक ओछे थात.” केशिगणधरे कहुं के “हे महीपति ! जेम पूर्वे जोखेली चामडांनी धमणने पांछ्कथी वायुथी पूर्ण करीने जोखनां पण ते तेटलीज थाय छे—भार बधतो नथी, तेवी रीते जीव संबधी तूं सारी रीते विचार कर. ज्यारे रूपी द्रव्य रूप वायुथी

भार बध्दो नहि तो अरूपी द्रव्य जीवना जवायी न्यूनता श्री रीते थाय? सूक्ष्म एवा रूपी द्रव्योनी पण विचित्र गतिछे तो अरूपी द्रव्यनी विचित्र गति होय तेमां तो शं कहेवुं! माटे आ बावतमां तुं शामाटे शंकित थाय छे ! आत्मा आपणने अनुमान प्रमाणयी गम्य छे अने केवलीने प्रत्यक्ष प्रमाणयी गम्य छे. वळी 'हुं सुखी छुं हुं दुःखी छुं' ए प्रकारनुं जे ज्ञान थाय छे ते आत्मानुंज लक्षण छे. माटे जेम तळनी अंदर तेळ, दुधनी अंदर घी अने काष्ठनी अंदर अग्नि रहेळ छे नेम देहनी अंदर जीव रहेळो छे." इत्यादि अनेक पश्चोना उत्तर शास्त्रयुक्तियी आप्या. तेथी संदेहरहित थयेलो राजा विचार करवा लाग्यो के 'आ वात सत्य छे, आ ज्ञानने धन्य छे, पळो गुहने नमस्कार करीने राजाए विज्ञप्ति करी के 'हे भगवन् ! तमारा उपदेश रूपी मंत्रयी मारा हृदयमां रहेळो मिथ्यात्व रूपी पिशाच भागी गयो, परंतु कुलपरंपरायी आवेळा नास्तिक मतने हुं कैयी रीते छोडूं ?' त्यारे केशिकुमार मुनिए कहुं के " हे प्रदेशि राजा ! तुं लोहवणिकनी पेटे मूर्ख केम वने छे ? ते वार्ता आ प्रमाणे छे-

केटकाक वणिको व्यापार करवाने माटे परदेशे जवा चाल्या. मार्गमां तेओए एक लोहानी खाण दोडो, एटछे तेओए लाहानां गाढां भयीं. आगळ चालतां तां वानी खाण जोइ, तेथी लोहुं खाळी करीने ताडु भयुं. मात्र एक वाणोआए लोहुं खाळी कर्युं नहि. आगळ चालतां तेओए रुपानी खाण जोइ, एटछे तांहुं खाळी करी रुपुं भयुं. घणुं कहेतां छतां पण पेळा लोहवणिके लोहुं काढो नांखुं नहि आगळ चालतां तेओए सोनानी खाण जोइ, तेथी खुं खाळा करी सोनुं भयुं. आगळ चालतां रत्नोनी खाण जोइ, एटछे सोनुं खाळी खरो रत्नो भयीं. ते वस्तते तेओ पेळा लोहवणिके कहेवा लाग्या के 'हे मूर्ख ! आ मेळवेळो रत्नसमूह तुं शामाटे गुमावे छे ! लोहुं तजो द्दने रत्नो ग्रहण कर, नहि तो पाठळयी जहर तने पश्चाताप करवो पडशे' ए प्रमाणे तेने घणुं कहेवामां आण्युं छतां तेणे मान्युं नहि अने कहेवा लाग्यो के 'तमारामां स्थिरता नथी, तेथी एकने छोडां बीजाने ग्रहण करोळो अने बीजाने छोडी बीजाने ग्रहण करोळो पण हुं ए प्रमाणे करता नथी. में तां जेनी स्वीकार कर्यो तेजो कर्यो.' पळां ते सघळा घेर आब्या, अने रत्नना प्रभावयो पेळा वणिको सुखी थया. तेमने सुखी थयेळा जोइने लोहवणिक मनमां पश्चाताप करवा लाग्यो के 'अरे ! में आ शं कर्युं ! तेओनुं कहेवुं में मान्युं नहि.' एम तेणे घणा काळ सुधी शोच कर्यो. ए प्रमाणे हे प्रदेशि राजा ! तने पण लोहवणिकनी पेटे पश्चाताप करवो पडशे. वळी जे विवेकी होयछे ते शं कुलपरंपरायी आवेळ रोग के दारिद्र्यनो त्याग करवा नथो इच्छतो ? जो कुळमार्ग तेज धर्म होय तो पळो दुनियांमां अधर्मनुं नर्म पण नट थशे. वळी-

દારિદ્ર્યદાસ્યદુર્નયદુર્ભગતાદુઃખિતાદિં પિતૃચરિતમ્ ।

નૈવં ત્યાજ્યં તનયૈઃ સ્વકુલાચારૈકકથિતનયૈઃ ॥

“ દારિદ્ર્ય, દાસપણું, અનીતિ, દુર્ભાગીપણું અને દુઃખીપણું આદિ જે પોતાના પિતાદિએ આચર્યું હોય તેને પોતાનો કુલાચાર એજ નીતિ છે, એમ કહેનારા પુત્રોએ નજ તજવું જોઈએ.” માટે હે રાજા ! કુલાચાર એ ધર્મ નથી, કિંતુ જંતુની રક્ષા કરવી ઇલાદિજ ધર્મ છે.” ઇત્યાદિ વચનોથી પ્રતિબોધ પામેલો પ્રદેશિ રાજા વિનય પૂર્વક બોલ્યો કે ‘ હે ભગવાન ! આ આપણું વાક્ય સત્ય છે અને તત્ત્વ રૂપ છે, એજ સ્વરો અર્થ છે, એ શિષ્યાય બીજું સર્વ અનર્થજ છે.’ એ પ્રમાણે કહીને પ્રદેશિ રાજાએ સમક્ષિતમૂલ વાર વ્રતો ગ્રહણ કર્યાં. ફરીથી શિક્ષાને અવસરે કૈશિ ગણધરે કહ્યું કે—

માણં તુમ પપ્સી પુઠિવ રમણિલ્લો જવિત્તા પચ્છા અરમણિલ્લો
ભવિલ્લાસિદ્ધતિ.

આં રાજપ્રશ્નીય સૂત્રનો આહ્વાનો છે. તેનો માવાર્થ એ છે કે ‘ પ્રદેશિ રાજા ! તું પૂર્વે રમણિક થઈને પશ્ચાત્ (હવે) અરમણિકન થઈશ. ’ એટલે પ્રથમ અન્યનો દાતા થઈ સાંપત કાલે જિનધર્મની પ્રાપ્તિ થવાથી તેમનો અદાતાન થઈશ; કેમકે તેમ થવાથી અમને અંતરાય કર્મ વંધાય અને જિનધર્મની અપભ્રાજના (નિંદા) થાય. વઠ્ઠી લાંબા વસંતથી ચાલ્યા આવતા દાનનો નિષેધ કરવાથી ઓકવિરુદ્ધતા અને અપભ્રાજનાદિ દોષ તને પણ પ્રાપ્ત થાય. માટે જેને આપતો હો તેને આપણું પણ પાત્રબુદ્ધિએ ન આપણું અરિ-હંત વિગેરે પણ ઉચિત દાનનો નિષેધ કરતા નથી, માટે તારે તો મિથ્યાત્વને તજવું અને સર્વથી ઉત્તમ એવા દયાદાનને નિરંતર ધારણ કરવું.” એ પ્રમાણે શુદ્ધી શિક્ષા ગ્રહણ કરીને પ્રદેશિ રાજા ઘેર આવ્યો, અને પોતાના ધનનો (રાજ્યની આવદાનીનો) એક માગ અંતઃપુર માટે, બીજો માગ સૈન્ય માટે, ત્રીજો માગ મંદાર માટે અને ચોથો માગ દાનશાલા માટે ઉપયોગમાં લેવો. એ પ્રમાણે શુકર કરીને સર્વઉપજ ચાર ભાગમાં વહેંચી દીધી. અનુક્રમે શ્રાવકપણું પાઠતાં કેટલોક કાલ વ્યતીત થયા બાદ એકદા પર-પુરુષમાં હ્રુષ્ થયેલી ‘ સૂર્યકાન્તા ’ નામની તેની પટ્ટરાણીએ-તેને મોજનમાં વિષ આપ્યું તે વાતની મોજન કર્યા પછી પ્રદેશિ રાજાને સ્વર પડ્યો, પરંતુ અવ્યાકુલ ચિત્તે રાણો ઉપર કિંચિત્ પણ ક્રોધ કર્યા વિના પૌષ્પશાલામાં આવી, ધર્મનો સંચારો કરી, ઈશાન કોણ સન્મુખ બેસી, ભગવાન ધર્માચાર્ય શ્રીકૈશિ ગણધરને નમસ્કાર કરી, પોતે લીધેલા વ્રતમાં કાનેલા અતીચારોની સમ્યક્ પ્રકારે આલોચના પ્રતિક્રમણા કરીને તેણે કાઠ કર્યો, અને સૂર્યામ નામના વિમાનમાં ચાર પલ્યોપમ આયુધ્યવાલો સૂર્યામ નામનો દેવ થયો. પાછો ત્યાંથી વ્યવી મહાવિદેહમાં અવતરીને મોક્ષે જશે.

શ્રી પ્રમાણે નરકમાં જવાને તૈયાર થયેલા અતિપાપી પ્રદેશિ રાજાએ જે દેવવિમાન પ્રાપ્ત કર્યું તે કેશિગણધરનું મહાત્મ્ય છે. માટે “દુઃસ્વનું નિવારણ કરનાર અને સુંઘને પ્રાપ્ત કરાવનાર ધર્માચાર્યોની જ યત્ન પૂર્વક સેવા કરવી ” એવો આ કથાનો ઉપદેશ છે.

આજ હકીકત ગાથા ૧૦૩ માં ગ્રંથકર્તા પોતે જ કહે છે તે આ પ્રમાણે—

નરયગ્નગમણપડિહૃત્થણકણ, તહ્ પણસિણા રચ્ચા ।

અમરાવિમાણં પત્તં, તં આચરિયપ્પજાવેણં ॥ ૧૦૩ ॥

અર્થ—“ તેમજ નરકગતિએ જવાનું પ્રસ્થાનું કર્યા છતાં પ્રદેશિ રાજાએ જે દેવવિમાન પ્રાપ્ત કર્યું તે આચાર્યના પ્રભાવથી જ જાણવું.” ૧૦૩. તેથી શુભની સેવના જ મોટા ફલને આપનારી છે. વ્હી—

ધમ્મમણ્ણહિં અશ્સુંદરોહિં કારણગુણોવણીણ્ણહિં ।

પહ્હાયંતો ય મણં, સીસં ચોણ્ણે આચરિઓ ॥ ૧૦૪ ॥

અર્થ—“ આચાર્ય ધર્મમય, અતિસુંદર અને જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર રૂપ કારણ સંવંધી ગુણોએ સહિત એવાં વચનો વહે (શિષ્યના) યત્નને આનંદ ઉપજાવતા સતા શિષ્યને પ્રેરણા કરે છે—શિક્ષા આપે છે.” ૧૦૪

ધર્મમય તે ધર્મનો પ્રચરતાવાળાં અને અતિસુંદર એટલે દોષરહિત એવાં વચન જાણવાં.

જીશ્ચં કાહણ પણં, તુરમણિ દત્તસ્સ કાલિશ્ચજ્જેણ ।

અવિશ્ચ સરીરં ચત્તં, નય જાણિઅ મહ્મસંજુતં ॥ ૧૦૫ ॥

અર્થ—“તુરમણિ નગરીમાં કાલિકાચાર્યે દત્ત રાજાની આગલ જીવિતવ્યનું પણ કરીને શરીર પણ (મનવહે) તજ્યું, પરંતુ અધર્મસંયુક્ત (અસત્ય વચન) વોલ્યા-નહિ.” ૧૦૫

દત્ત રાજાએ યજ્ઞનું ફલ પૂછ્યે સતે કાલિકાચાર્યે તેનો ભય માત્ર અવગણીને મનવહે શરીર પણ તજીદેને ‘તેનું ફલ નરક છે’ એમ સ્વહૃ કહ્યું, પણ ધર્મ વિરુદ્ધ ઉત્તર આપ્યો નહિ. એ પ્રમાણે અન્ય યુનિએ ભયના પ્રસંગમાં પણ અસત્ય વચન વોહ્યું નહીં. અહીં કાલિકાચાર્યનો સંવંધ જાણવો. ૩૦

કાલિકાચાર્યની કથા.

તુરમણિ નામના નગરમાં ‘જિતશત્રુ’ નામે રાજા હતો. તે ગામમાં એક ‘કાલિક’ નામનો બ્રાહ્મણ રહેતો હતો. તે બ્રાહ્મણને ‘મદ્રા’ નામે વહેન હતી, અને તે મદ્રાને ‘દત્ત’ નામે પુત્ર હતો. એકદા કાલિક બ્રાહ્મણે પ્રોતાની મેઠે પ્રતિવૌષ, પામોને ચારિત્ર-ગ્રહણ

ગાથા ૧૦૩-નરકગ. પ્રસ્થાનકે કૃત. ગાથા ૧૦૪-ધમ્મમણ્ણહિં. ગાથા ૧૦૫-તુરિમણા.ત્પકં.

કર્તુ અને અનુક્રમે તેમણે આધાર્યપદ યેઠવ્યું. તેમનો ભાણેજ દત્ત સ્વચ્છંદો થયો અને છૂત આદિ વ્યસનોથી પરામવ પામી રાજાની સેવા કરવા લાગ્યો. કર્મયોગે રાજાએ તેને મંત્રીપદ આપ્યું. અધિકાર મઠ્ઠાં રાજાનેજ પદમ્હૂ કરીને તે રાજ્ય પચાવી પચ્યો. રાજા પળ તેના મયથી નાસો ગયો અને ગુણપણે કોઈ સ્થાનકે રહ્યો. પછી મહાક્રૂર કર્મ કરનારો તે દત્ત રાજા મિધ્યાત્વથી મોહ પામીને અનેક યજ્ઞો કરાવવા લાગ્યો અને સંખ્યાવંશ પશુઓનો ઘાત કરવા લાગ્યો. અન્યદા અવસરે કાલિકાચાર્ય મહારાજ ત્યાં સમવસર્યા, ત્યારે મદ્દા માતાના આગ્રહથી દત્ત રાજા વાંદવાને આવ્યો. શુભમહારાજે દેશના આપી કે—

ધર્માઠ્ઠનં ધનત ઇવ સમસ્તકામા

કામેઠ્ઠ્ય ઇવ સકલેંદ્રિયજં સુખં ચ ।

કાર્યાર્થીના હિ સ્વલુકારણમેષણીયં

ધર્મો વિધેય ઇતિ તત્ત્વવિદો વદન્તિ ॥

“ધર્મથી ધન મઠ્ઠે છે, ધનથી સમસ્ત કામનાઓ સિદ્ધ થાય છે અને સર્વ કામનાની સિદ્ધિથી સમગ્ર ઇંદ્રિયજન્ય સુખ માત્ર થાયછે. માટે કાર્યાર્થીએ તો અવશ્ય કારણ શોધવું જોઈએ, તેથી ધર્મ કરવો ઇવું તત્ત્વવેતાઓ કહે છે.”

આ પ્રમાણે સાંભળીને દત્તે યજ્ઞનું ફલ પૂછ્યું. શુભ કહ્યું કે ‘જ્યાં હિંસા હોય ત્યાં ધર્મનો અભાવ છે.’ કહ્યું છે કે—

દમોદેવગુરૂપાસ્તિર્દાનમધ્યયનં તપઃ ।

સર્વમપ્યેતદફલં હિંસાં ચેન્ન પરિત્યજેત્ ॥

“ઇંદ્રિયોનું દમન, દેવશુભની સેવા, દાન, અધ્યયન અને તપ—એ સધળાં જો હિંસાનો ત્યાગ ન કરે તો વ્યર્થ છે.”

ફરીથી દત્તે યજ્ઞનું ફલ પૂછ્યું. ત્યારે શુભ કહ્યું કે ‘હિંસા દુર્ગતિનું કારણ છે.’ કહ્યું છે કે—

પંગુકુષ્ટિકુષિત્વાદિ દૃષ્ટ્વા હિંસાફલં સુધીઃ ।

નિરાગચ્છસર્જતૂનાં હિંસાં સંકલ્પતસ્ત્યજેત્ ॥

“હાહ્યા માણસે પાંગલાપણું, કોઢીઆપણું ને ડુંઘાપણું વિગેરે હિંસાનાં ફલ છે એમ જાણીને નિરપરાધો ઇવા ત્રસ પ્રાણીઓનો હિંસા સંકલ્પવડે પળ ન કરવી.” ત્યારે ઠ્ઠી દત્તે કહ્યું કે ‘તમે આવો આઢો આઢો સ્તર કેમ આપો છો? યજ્ઞનું ફલ જેવું હોય

तेवुं सत्य कहे. 'त्युरे कालिकाचार्ये विचार कर्यो के 'जेके आ - राजा छे अने यद्दमां प्रीतिवाळो छे ते छतां जे वनवातुं होय ते वनो पण हुं मिथ्या-बोलोश नहि. प्राणाते पण मिथ्या बोलवुं कल्याणकारी नयी.' कहुं छे के—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अथैवा वा मरणमस्तु युगान्तरे वा

न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

“ नीपुण गणाता लोको भळे तिंदा करो अथवा स्तुति करो, लक्ष्मी भळे प्राप्त थाओ अथवा मरजी हुजव चाळी जाओ, मरण आज थाओ अथवा युगने अंते थाओ, परंतु धोर पुरुषो नीतिना मार्गधी एक पगळे पण स्वसता नयो. ”

आ प्रमाणे विचारी कालिकाचार्ये कहुं के 'हे दत्त ! हुं नियय पूर्वक कहुं छुं के नरकगति एम यद्दतुं फल छे." कहुं छे के—

यूपं ह्रित्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दमम्

यद्येवं गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥

“ यद्दस्तंभ छेदो, पशुओने हणो अने रुधिरनो कोचड करी जो स्वर्गे जवातु होय तो पछी नरकमां कोण जशे ? ” दत्त कहुं के ' ए केवो रीते जणाय ? ' शुष्य कहुं के ' आजयो सातमे दिवसे घोडाना पगना डाबलायी लडेळी विष्टा वारा मुखमां पडशे, अने पछी तुं लोडानी कोठीमां पूराइश. आ अनुमानयी तारी अबश्य नरकगति यवानी छे एम जाणजे. ' दत्ते कहुं के ' तमारी श्री गति यशे ? ” शुष्य कहुं के ' अमे धर्मना प्रभावयी स्वर्गे जइयुं. ' आ प्रमाणे सांभळीने क्रोधित थयेळा दत्ते विचार कर्यो के ' जो सात दिवसनी अंदर आ वाक्य प्रमाणे नहि बने तो पछी हुं अबश्य आपने मारी नांखीश. ' आम विचारी कालिकाचार्यनो आसपास राजसेवकोने सूको पोते नगरमां आब्यो, अने आखा शहेरना तमाम रस्ताओमांथी अपवित्र पदार्थो काडी नखायी साफ कराव्या अने सर्व स्थळे पुष्पो बेराव्यां. पोते अंतःपुरमांज रशो. ए प्रमाणे छ, दिवसो व्यतीत थया पछी आठमा दिवसनी भ्रांतियो सातमे दिवसे क्रोध-युक्त वनी घोडा उपर स्वार थइ शुक्ने हणवा चाल्यो. तेवामां कोहएक वृद्ध माळी दस्त जबानी हाजतयो पीडा पापवाने लीधे रस्तामांज विष्टा करी तेने पुष्पोथी डांकीने चाल्यो गयो. तेना उपर दत्त राजाना घोडानो पग पळ्यो, तेथी विष्टानो अंक्ष लखळीने राजाना मुखमां पडयो. पटले शुक्ना बचनपर विश्वास आववायी राजा पाछो बळ्यो

त्यां एकांत जाणीने जितशत्रु राजांना सेवकोए तेनें एकही लीषो अने जितशत्रुने गादीए बेसायेीं. पछीं सामंतराजाओए विचार्युं के 'जेो आ जीवतो रहेसे तो दुःख-दायी थणे.' एम विचारी तेओए तेने छोडानी कोठीमां नांखयो. पछी घणा दिवस पर्यंत महान दुःख भोगवतो सतो विछाप करतो अने पोकार करतो ते मृत्यु पाव्यो. मरीने ते सातमी मरके गयो, अने श्रीकालिकाचार्य तो चारित्रने सेवीने स्वर्गे गया.

ए प्रमाणे साधुए प्राणांते पण मिथ्या भाषण न करवुं एवो आ कयानो उपदेश छे.

फुडपांगरुमकहंतो, जहडिश्चं बोहिलाभ मुवहण्णश् ।

जह भगवन्तो विसाळो, जरमरणमहोअही श्यासि ॥ १०६ ॥

अर्थ—'स्फुट प्रगट (सत्यार्थ) न कहेवाथो यथास्थित-सत्य एवा बोधिलाभने आगाधी भवे धर्मप्राप्तिने हणो नाखे छे-विनाश करे छे. जेम भगवंत श्री महावीर स्वामीने (मरिचिना भवमां सत्य न कहेवाथी) विशाळ एवो जरा मरण रूप महोदधि-महासमुद्र थयो. अर्थात् कोठाकोटि सागरोपम प्रमाण संसार वधार्यो." १०६.

अहीं श्री महावीर स्वामीना पूर्वभवनो संबंध जाणवो ३१.

प्रथम भवमां पश्चिम महाविदेहने विषे 'नयसार' नामे कोइ ग्रामाधिपति (गामेती) इतो. ते एक दिवस काष्ठ छेवाने माटे बनमां गयो. मध्यान्हसमये भोजन तैयार कर्युं. ते अवसरे साथथी विवुडा पडी गयेळो कोइ एक मुनि त्यां आव्या तेने जेोइने नयसार घणो खुशी थयो अने भावथी श्रद्धा पूर्वक तेने आहार आप्यो. आहार करी रखा पछी साधुने मार्ग वताववाने माटे ते साथे गयो. साधुए पण योग्य जीव जाणीने तेने देशनावडे सम्यक्त्व प्राप्त कराव्युं. पछी ते साधुने नमीने घेर गयो. कालांतरे मरण पामीने ते सौधर्म देवलोकरमां उत्पन्न थयो. ए बीजो भव थयो.

त्यांथी च्यवीने त्रीजा भवमां मरिचि नामे भरत चक्रवर्तीना पुत्र थयो. श्रीऋषभदेव भगवाननी देशना सांभळो, भोगेनो त्याग करी स्थविर मुनि पासे चारित्र ग्रहण कर्युं. पछी अग्यारअगतुं अध्ययन करी चारित्र पाळतां एरुवार उष्णकाळमां तापथो पीडित थइने ते विचार करवा लाग्यो के 'माराथी चारित्र पळवुं मुश्केळ छे; आ चारित्रधर्म अति दुष्कर छे, तेथो माराथी ते पाळी शक्याय तेम नथो अमे घेर जवुं ए पण योग्य नथी.' ए प्रमाणे विचार करीने तेणे एक नवो त्रिदंडी वेव ग्रहण कर्यो; परंतु जे कोइ तेने धर्म पूछे तेनी आगळ साधुधर्म प्रकाशित करे अने जे कोइ तेनी देखनाथी प्रतिबोध पामे तेने भगवाननो पासे मोकळे. आ प्रमाणे तेणे अनेक राज-

पुत्रोने प्रतिबोध पमाडथो. आ स्थितिमां पण मरीचि भगवाननी साये विचरे छे. विहार करतां करतां एक वार भगवान अयोध्यामां समवसयां. भरत चक्री प्रभुने वांदावा आव्या अने देशनाने अंते पूछ्युं के ' हे भगवन् ! आ आवी मोटी सभामां कोइ पण भावो (थनार) तीर्थकर छे ? ' भगवाने कहुं के ' आ त्रिदंडी सन्यासो वेषधारी मरीचि नामे तारो पुत्र आ चोवीशीमा चोवीशमा 'वर्षमान' नामे तीर्थकर, महाविदेहने विषे सूका नगरीमां ' प्रियमित्र ' नामे चक्रवर्ती अने आ भरतक्षेत्रमांज 'त्रिपृष्ठ' नामे पहेछो वासुदेव थशे. ए प्रथम वे पदवीने भोगवी छेवटे तीर्थकर थशे. ' ए सांभळी भरते मरीचि पासे जइ, व्रण प्रदक्षिणा दइ, नमस्कार करीने कहुं के " हे मरीचि ! आ संसारमां जेटला छाम छे तेटला बधा तें मेळव्या छे. कारणके तुं चक्रवर्ती, वासुदेव अने तीर्थकर थनार छे; माटे हुं तारा परिव्राजक वेषनी अनुमोदना करतो नथी; परंतु तुं छेछो तीर्थकर थनार छे तेथी हुं तने वांडु छुं. " ए प्रमाणे कहीने भरत चक्रीना गया पछी मरीचिए व्रण बलत दग पछाडी नाचतां नाचतां कहुं के ' हुं व्रण पद मेळवीष तेथी मारुं कुळ लक्ष्म छे. ' ए प्रमाणे वारंवार कुळनो मद करवाथी तेणे नीच मोत्र वांध्युं. अन्यदा प्रथम प्रभु मोक्षे गया पछी साधु साये विहार करतां तेना शरीरे मांदगी आवी, परंतु साधुना आचारथी रहित होवाने छीधे तेनी कोइए सेवा चाकरी करी नहि. तेथी ते विचार करवा लाग्यो के 'जो हुं साजो थांउं तो एक शिष्य करुं.' अनुक्रमे ते स्वस्थ थयो. एक दिवस कोइ ' कपिल ' नामे राजपुत्र मरीचिनी देशना सांभळी प्रतिबोध पाभ्यो. त्यारे मरिचिए कहुं के ' हे कपिल ! तुं साधु पासे जइ चारित्र ग्रहण कर. ' तेणे कहुं के ' हुं तमारो शिष्य थइश. ' पछी मरीचिए पोतानुं स्वरूप यथार्थ कही वताव्युं अने कहुं के ' मारामां चारित्र नथी. ' तोपण कपिल मान्यो नहि अने कहेवा लाग्यो के ' शुं तमारा दर्शनमां सर्वथा धर्म नथीज ? ' त्यारे मरीचिए जाण्युं के ' आ कपिल मने योग्य मळ्यो छे. ' एम जाणी मरीचिए कहुं के ' कपिला इत्यं पि इहं पि ' हे कपिल ! साधु समीपे महान धर्म छे, अने मारी पासे अल्प धर्म छे. ' ए प्रमाणे सूत्रविरुद्ध कथनथी तेणे एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण संसारनी वृद्धि करी. तेनी आलोचना कयां वगर चोराशो लाख पूर्वजुं आयुष्य पाळीने तेचोथा भवे पांचमा देवळोकमां दश सागरोपमना आयुष्यवाळो देवता थयो.

त्यांथी च्यवी पांचमा भवमां कोछाग संनिवेश गाममां एंशी लाख पूर्वना आयुष्यवाळो ब्राह्मण थयो. ते भवमां त्रिदंडी थइ घणो काळ संसारमां भटक्यो. (आ भवो गणनीमां लोधा नथी, स्थूळ भवोत्र गणेलाछे.) छट्टा भवमां स्थूणा नगरीमां बांतेर लक्ष पूर्वना आयुष्यवाळो 'पुष्य' नामे ब्राह्मण थयो, ते त्रिदंडी थइ मरण पायीने सातमा भवे

प्रथम देवलोकां मध्यम स्थितिवाळो देव थयो. त्यांथी च्यवी आठमा भवमा चैत्यसं-
निवेश नामना गामयमां साठ लाख पूर्वना आयुष्यवाळो 'अग्निद्योत' नामे ब्राह्मण थयो.
छेवटे त्रिदंडी थइ मृत्यु पामीने नवमा भवे बीजा देवलोकांमध्यम स्थितिवाळो देवथयो.
त्यांथी च्यवी दशमा भवे मंदिरसंनिवेशे साठ लाख पूर्वना आयुष्यवाळो 'अग्निभूत' नामे
ब्राह्मण थयो. प्रांते त्रिदंडी थइ मृत्यु पांम्यो. अग्यारमा भवे त्रीजादेवलोकां मध्यम स्थिति
वाळो देव थयो. त्यांथी च्यवी बारमा भवमां श्वेताम्बरी नगरीमां चोराशीलाख पूर्वना आयु-
ष्यवाळो भारद्वाज नामे ब्राह्मण थयो. छेवटे त्रिदंडीपणे मृत्यु पामी तेरमा भवे चोथा देवलो-
कां मध्यम स्थितिवाळो देव थयो. पछी घणो काळ ससारमां भटकीं चौदमा भवे राजगृह
नगरमां चोत्रीश लाख पूर्वना आयुष्यवाळो 'स्थावर' नामे ब्राह्मण थयो. छेवटे त्रिदंडी
थइ मृत्यु पांम्यो. पंदरमा भवे पांचमां देवलोकां मध्यम स्थितिना देव थयो. त्यांथी
च्यवी सोळमा भवमां एक क्रोध वर्षना आयुष्यवाळो 'विश्वभृति' नामे युवराजपुत्र
थयो. ते जन्ममां तेणे वैराग्यपरायण थइ सभृति मुनि पासे चारित्र ग्रहण करी अत्यंत
तीव्र तप कर्युं. एक दिवस माससपणने पारणे मथुरा नगरीमां गोचरीए गया हता. त्यां
दुर्वलपणाथी एक गायना अथडावाथी ते भूमिउपर पडां गया. तेने जोइने तेना काकानो
छोकरो वैशाखनंदी हास्य करीने बोल्यो के 'तुं एक मुष्टिना महारथी कोठाना झाडना
तमाम फळने भूमि पर पाडी नाखतो हतो ते दिवस क्यां गयो ?' आ वचन सांभळीने
क्रोधायमान थइ ते गायने शींघडावती पकडी आकाशमां फेरवीने एतुं नियाणु कर्युं के
'जो आ तपतुं फळ होय तो आगामी भवे हुं घणो बळवान थाउं.' ए प्रमाणे हजार
वर्ष तप तपी प्रांते पापनी आलोचना कर्यां विना मरण पामी सत्तरमा भवे सातमा देव-
लोकां उत्कृष्ट स्थितिवाळो देव थयो. त्यांथी च्यवी अठारमा भवे पोतनपुर नगरमां
प्रजापति नामना राजाने घेर पोते परणेळी पोतानी पुत्री जे मृगावती तेनी कुक्षिमां सात
स्वप्नथी सूचन करायेल 'त्रिपृष्ठ' नामने वासुदेव थयो ते भवमां भरतार्धने साधी घशुं
पाप करी चोराशी लाख वर्षतुं आयुष्य भोगवी भोगणीशमा भवे सांतमी नरके गयो.
त्यांथी च्यवीने बीशमा भवे सिंहपणे उत्पन्न थयो. एकवीशमा भवे चोथी नरकां नारकी-
पणे उत्पन्न थयो. त्यापछी पाछो घणा काळ सुधी संसारमां भटक्यो. पछी द्वावीशमा
भवे एक क्रोध वर्षना आयुष्यवाळो मनुष्य थयो. ते भवमां शुभ कर्मो करी त्रेवीशमा भवे
महाविदेहमां मूका राजधानीमां 'धनंजय' राजाने घेर धारिणी राणीनी कुक्षिमां चौद
स्वप्नथी सूचन करायेल 'प्रियमित्र' नामे चक्रवर्ती थयो प्रांते पोष्टिलाचार्य पासे चारित्र
ग्रहण करी एक कोटी वर्ष सुधी चारित्र पाळी पुरेपुहं चोराशी लाख पूर्वतुं आयुष्य

भोगवी चोवीशमा भवे सातमा देवलोकरां देवपणे उत्पन्न थयो.त्यांयी च्यवी पचीशमा भवे छत्रिका नगरोमां जितशत्रु राजाने घेर भद्रा नामनी राणोनो कुक्षिमां पचीश लाख वर्षना आयुष्यवाळो नंदन नाये पुत्र थयो. तेणे ते भवमां पोहिलाचार्य पासे दीक्षा ल्ह यावज्जीव मासक्षण करी वीशस्थानकनी आराधनावडे तीर्थकरनामकर्म उपाजन कर्युं. एक लाख वर्ष सुधी चारित्र पाळोने प्रांते एक मासनी संछेखनवडे छवीशमा भवने विषे दशमा देवलोकरां पुष्पोत्तरावतंस विमानमां वीश सागरोपमना आयुष्यवाळा देवता थया. त्यांयी च्यवी सतावीशमा भवे चोवीशमा तीर्थकर थयां.

आ प्रमाणे मरीचिना भवमां तेणे उत्सूत्र भाषणयी कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण संसारनी वृद्धि करी. ए प्रमाणे अन्य जीवो पण जो उत्सूत्र भाषण करे तो संसारनी वृद्धि करे; माटे उत्सूत्र भाषण फदि पण करवुं नहि, एवो आ कयानो उपदेश छे.

कारुण्यरुद्रसिंगार—जावजयजीविअंतकरणेहिं ॥

साहू अविश्र मरंति, नय निश्रनिअमं विराहंति ॥१०७॥

अर्थ—“कारुण्यभाव, रुदन, शृंगारभाव (हावभावादि) राजादिकनो भय अने जीवितांतकारी अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गवडे साधु कदाचिद् मरण पामे छे, परंतु पोताना नियमने विराधता नथी.” १०७अर्थात् पूर्वोक्त कारणो प्राप्त थतां प्राण तजी देछे, पण व्रत तजता नथी—कारुण्यादिवडे व्रतनी विराधना करता नथी.

अप्यह्निअ मायरंतो, अणुसोअंतो अ सुग्गइं लहइ ॥

रहकार दाणअणुसोअगो—मिगो जह य बलदेवो ॥ १०८ ॥

अर्थ—“आत्महित एटछे तप संयमादि तने आचरतो सतो प्राणी सदगतिने पामेछे, तेमज तेने—दानादि धर्मने अनुमोदतो सतो पण सदगतिने पामेछे.जेव मुनिने दान देनार रथकार, तेना दाननी अनुमोदना करनार शृंग अने तपसंयम आचरनार बळदेव मुनि सदगतिने पाम्या तेम. ” १०८

बळदेवमुनि, रथकार ने शृंग ए प्रणे पांचये देवलोके गया, तेथी तप संयमादि तेमज दान शीछादि धर्म कर्यो, कराव्यो अने अनुमोघो सतो पण बहु फळने आपेछे. अही बळदेव, रथकार ने शृंगनो संबंध जाणवो. ३२

बळदेव रथकारने शृंगनी कथा.

द्वारिका नगरीने बाळी नांखवाळुं जेणे नियाळुं करेछे एवा द्विपायन ऋषि ए-अधिकमारपणे उत्पन्न थइ ज्यारे द्वारिकाने घाळो त्यारे मात्र कृष्ण अने बळभद्र वेज

बचवा पाय्या. बीजा सर्व बली गया. वने भाइओ वनमां गया. त्यां कृष्णने धर्णी तुषा लागी तेथी बलभद्र पाणी लाववाने गया. त्यां वैरीनी साथे युद्ध थतां रात्रि पढी मइ: अहीं कृष्ण एक वृक्षनी नीचे पग उपर पग चढावीने सुता हता. त्यां कृष्णतुं मृत्यु पोताने हाथे थवातुं छे एवुं श्री नेमोश्वरना मुखथी जाणीने जेणे ते प्रमाणे नः थवाने माटेज वनवास ग्रहण करेलो छे एवो वसुदेवनी जरा राणीनो पुत्र जराकुमार त्यां आब्यो. तेणे फरतां फरतां रात्रिए कृष्णना पगने तळीए रहेछुं पत्र दूरथी दीठुं; एटछे आ चक्रचकित मगनुं नेत्र जणाय छे एवुं धारी तेजे कर्ण पर्यंत वाण खंचीने कृष्णनो चरण वींधी नांख्यो. पासे आवतां ते पोतानो भाइछे एम जाणी पश्चाचाप करतो सतो जराकुमार विलाप करवा लाग्यो. ते वखते कृष्णे कहुं के 'हे पापी ! तुं अहींथी जलदी चाल्यो जा, हमणा बलभद्र आवशे तो ते तने मारी नांखशे.' ए प्रमाणे कहेवाथी जराकुमार तरतज त्यांथी चाल्यो गयो. पछी आयुष्यना प्रांत भागे कृष्णने क्रोध उत्पन्न थयो, तेथी ते मनमां विचार करवा लाग्यो के 'अरे ! जुओ व्रणसें ने साठ संग्राभनो करनारो एवो हुं महाबळवान छतां मने वाणथी हणीने आ राजकुमार क्षेमकुशळ गयो !' ए प्रमाणे दुर्घ्यानने वस्र थइ मरण पापीने कृष्ण जीजी नरके गया.

ते समये जळ छइने बलभद्र पण त्यां आब्या तेणे कृष्ण प्रत्ये कहुं के 'हे बंधु ! मे तारा माटे ठंडु जळ आपुं छे, तुं उठ अने जळ पी., ए प्रमाणे कहेवामां आब्या छतां कृष्णे उत्तर आप्यो नहि त्यारे बलदेवे विचार कर्यो के 'मे जळ लाववामां धणो वखत गुमाव्यो तेथी आ मारा वंधु क्रोधित थयेछा जणाय छे तेथी हु तेने खमातुं.' ए प्रमाणे विचार करी पगमां पढीने अरज करवा लाग्या के 'हे वंधु ! आ क्रोधनो अवसर छे ? आ मोटा जंगलमां आपणे वने एकला छीए माटे तुं उठ.' ए प्रमाणे चारंबार कहेतां छतां पण ज्यारे ते बोल्या नहि त्यारे बलदेव मोहवश थइ कृष्ण मृत्यु पामेला छे छतां तेने जीवता जाणी पोताना स्कंध उपर छइने चाल्या. आ संसारमां व्रण वस्तु सर्वथी अधिक छे. कहुं छे के—

तीर्थकराणां साम्राज्यं, सपत्नीवैरमेव च ।

वासुदेवबलस्नेहः, सर्वेभ्योऽधिककं मतम् ॥

अर्थ—“ तीर्थकरोतुं साम्राज्य, सपत्नी (शोक) तुं वैर अने वासुदेव ने बलदेवनो स्नेह ए व्रण वानां सर्वथी अधिक गणायेछां छे.”

एप्रमाणे मरण पामेला भाइने स्कंध उपर धारण करीने तेनो सेवा करता सता ते बलदेवने एकदिवसे सिद्धार्थ नामना देवे आबी यंत्रमां रेतीपीळवातुं वतावीने बोध कर्याछतां पण ते बोध पाय्या नहि. उलटा खड्ग उगामी 'मारा भाइने मरण पामेछो तुं केम कहेछे!'

एष धौलता तेनी पछवाडे मारवाने दोडया, पण देव अदृश्य थइ गयो. वळी फरीथी ते देवने पर्वतनी शिळा उपर कमल वावतो जोइने बलदेवे कळु के 'रे मूर्ख ! शिळानी अंदर थुं कमळनी उत्पत्ति संभवे छे?' देव कळु के 'जो तारो मृत्यु पामेळो भाइ उभो थइ तने 'हे भाइ !' ए प्रमाणे कहेछे तो आ शिळानी विषे पण कमळनी उत्पत्ति थसे.' ए प्रमाणे कहेतां छतां पण बलदेवनी मोहने वञ्च थयेळा होवाथी पोतानो भाइ मृत्यु पामेळो छे एम तेमणे जाण्युं नहि. ए प्रमाणे तेमणे छ मास सुधी परिभ्रमण कर्युं. पळी तेमणे ते शरीरने विनाश पामेळुं जाण्युं एटळे छोडी दीथुं. सिद्धार्थदेवे ते शरीरने समु-द्रमां क्षेपन कर्युं. पळी वहुं विलाप करता एवा बलदेवने श्री नेमिनाथे मोकळेळा चारण मुनिए आर्वीने प्रतिबोध पमाडयो, तेथी वैराग्यपरायण थइने तेमणे ते चारण मुनि पासे दीक्षा लीषो. पळी पर्वत उपर रही लग्न तप करवा लाग्या. एक वार मासक्षणने पारणे शहरनी अंदर आहार छेवाने माटे आवतां तेमने कुवाने कांटे उभेळी एक स्त्रीए जोया. तेना रूपथी मोहित थयेळी ते स्त्रीए घडानी भ्रांतियी पुत्रना गळामां दोरडानो गा-ळीओ नांख्यो. ते जोइने बलराम मुनिए कळु के 'हे मुग्धे ! तूं आ थुं करे छे ? मोहयो पराधीन थइने पुत्रने कैय मारे छे ?' पळी तेमणे विचार कर्यो के 'मारा रूपने धिक्कार छे ! हवेथी मारे नगरमां आवतुं श्रेयस्कर नथी; वनवास सेववाज सारो छे.' ए प्रमाणे अभिग्रह करीने तुंगिका पर्वत उपर रखा. त्यां पारणाने दिवसे जो कोइ सार्थ अथवां कोइ कठीयारो आवे छे अने ते तेमने शुद्ध अन्न बहोराव्हे छे तो ते आहार करे छे. नहि तो तपमां वृद्धि करेछे. ए प्रमाणे तप करतां तेमनं अनेक लब्धियो उत्पन्न थइ, अने देशनावडे अनेक व्याघ्र तथा सिंह विगेरे प्राणीओने प्रतिबोध पमाडयो. पेळो सिद्धार्थदेव पण तेमनी सेवामांज रहेवा लाग्यो. त्यां एक अतिभद्रक मृग देशनाथी प्रतिबोध पाभ्यो. ते अहर्निश तेमनी सेवा करेछे अने वनमां भ्रमेछे. ज्यां ते आहारनो योग जाणेछे त्यां ते संबधी संज्ञावडे बलभद्र मुनिने जणाव्हेछे. मुनि पण तेने आगळ करीने त्यां जायळे.

एक दिवस कोइ रथकार (सुतार) ते वनमां आब्यो. ते कोइ मोटा वृसनी शाखा कापतां कापतां अरधी मूकी तेनी रसोइ करवा लाग्यो. पेळा मृगे ते जोइने संज्ञावडे मुनिने निवेदन कर्युं. मुनि मृगनी साथे त्यां आब्या. साधुने आवेळा जोइ रथकार घणो हर्षित थइने बहोराववा लाग्यो. ते बखते पेळो मृग पण आगळ उभो रही शुभ भावना भावेछे, तेवामां पेळी अरधी कापेळी डाळी एकाएक जुटी पटी ने समकाले त्रणेना उपर पडवाथी ते त्रणे जणा काल करी पांचमा देवळेके उत्पन्न थया.

तप करनार बलदेव साधु, सहाय करनार रथकार अने अनुमोदना करनार मृग—ए त्रणे जणाए सरखुं फळ मेळ्ळ्युं. माटे आ जैनधर्म आचर्यो होय, वीजा पासे पळ्ळव्यो होय अने कोइ पाळ्वनारनी अनुमोदना करी होय तो ते समान फळ पण आपेछे;

तेषां निरंतरं धर्ममां उद्यम करवो, एवो आ कथानो उपदेश छे.

ज तं कयं पुरा पूरणेन, अशुद्धकरं चिरंकालं ।

जइ तं दयावरो इह, करित्तु तो सफल्यं हुंतं ॥ १०९ ॥

अर्थ—“जे ते अतिदुष्कर एवो तप पूर्वं चिरकाल-घणा. काळ पर्यंत पूरण तापसे कर्यो. ते तप जो आ संसारमां (ते भवमां) दयातत्परपणे कर्यो होत तो ते सफल यात. ” १०९. परंतु तेणे करेछो तप घणो छतां अज्ञान दोषवाळो होवाने छीषे तुळ फळ प्राप्त थयेछु होवाथी ते निष्फल गयेज कहेवाय.

पूरण तापसे तामळी तापसनी जेवो वार वर्ष पर्यंत तप कर्यो तेने परिणामे ते चमेरन्द्र थयो, विशेष फळ मळ्युं नहि. अहीं पूरण तापसनेो संबंध जाणवो. ३३

पूरण तापसनेो वृत्तांत.

विंध्याचळ पर्वत पासि पेढाळ-नामे गाममां पूरण नामे एक श्रेष्ठ रहेते। हतो. एक दिवस वैराग्यवान थवाथी. पोताना पुत्रने पोताने स्थाने स्थापीने तेणे तामळि मुनिनी पेठे तापसी दीक्षा छीषी. ते. हमेशां छठ करीने पारयुं करेछे; अने पारणाने दिवसे चतुष्कोण (चार खानावाळ) पात्र, छइने परिमित घरे भिक्षा अर्थे भमेछे. तेमां जे अन्नादि पात्रना प्रथम खंडमां (खानामां) पढे ते पक्षीओने आपी देछे, बीजा खंडमां पढ्युं होय ते मस्त्यने आपी देछे, त्रोजा खंडमां पढ्युं होय ते स्थलचर जीवोने आपी देछे, अने चौथा खंडमां पढ्युं होय ते पोते खायछे. आ प्रमाणे अति उग्र अज्ञान तप वार वर्ष. सुधी करी एक मासनी संछेखनाथी काळधर्म पाभी चमरचंचा नामनी राज-धानीमां चमेरन्द्र थयो. आठळ तप जो तेणे दया पूर्वक क्युं होत तो तेने बहु फळ प्राप्त यात. माटे ज्ञान पूर्वक तप करहुं, एवो आ कथानो उपदेश छे.

कारण नीयावासी, सुदुय्यरं उज्जमेण जईयव्वं ।

जह ते संगमथेरा, सपाडिहेरा तथा आसि ॥ ११० ॥

अर्थ—“ वृद्धावस्थादि कारणे करीने नित्यावासी पढे एक स्थानके रहेतां छतां पण अतिशय उद्यमे करीने (चारित्रविषये) प्रयत्नवान रहेहुं. जेम तेवा—चारित्रविषये उद्यमव्रतं ‘संगम स्थविर’ नामे आचार्य ते काळे (देवसानिधयथी) समातिहार्य के० महात्म्यवाळा होता-हवा. ” ११०

एवंत नीयावासी, धरस्तरणाइसु जइ ममत्तंपि ।

कह नपडिहंति कलिकलुसरोसदोसाण आवाप ॥ १११ ॥

गाथा १०९—पूरणेण. चिरकालं, करतो होतं. गाथा ११०—नीयावासे. तथा-तथा. गाथा १११—नीयावासे. धरस्तरणाइसु. आवाप-आपदि.

અર્થ—“ રોગાદિ કારણ વિના એકાંત નિત્યાવાસી કે૦ નિત્ય એક સ્થાને રહેનાર મુનિ, ઘર સજ્જ કરવા વિગેરેમાં એટલે પોતે જે મકાનમાં રહેતા હોય તે મકાન દુરસ્ત કરવા વિગેરેમાં જો મમત્વપૂર્ણ ધારણ કરેછે તો તે મુનિ કહિ કે૦ કહેવો—કઢ્ઢ, કલુષ તે મલિન આચરણ અને રોષ કે૦ ક્રોધ તદુપ અથવા તેના જે દોષ તેની આપદામાં કેમ ન પડે ? અર્થાત્ પહેલ.” ૧૧૧.

અવિકૃત્તિઠ્ઠા જી વે કત્તો ઘરસરણગુત્તિસંઠપ્પં ।

અવિકૃત્તિઆશ્ તં તહ, પહોઆ અસંજયાણ પહે ॥ ૧૧૨ ॥

અર્થ—“ જીવને હથાવિના ઘરનું સંમાર્જન અને ઘર ફરતું ઘોઢ વિગેરે નાસ્તવા ઘટે સંરક્ષણ ક્યાંથી થાય ? નજ થાય. તેથી તેવા પ્રકારના વેષધારી જીવધાતકો અસયવિના માર્ગમાં પહેલાજ જાણવા.” ૧૧૨

હવાશ્રયને ઘર કરી વેસનારા અને તેની સારસંભાલ વિગેરે કરવા કરાવવા વાલા મુનિવેષધારીને માટે આ ઉપદેશ જાણવો. તેમને અસંયતિજ જાણવા.

થોવોવિ ગિહ્વિપસંગો, જશ્ણો સુરુસ્સ પંક માવહ્હ ।

જહ સા વરિત્તરિસિ, હસીઓ પહ્લોઅનખશ્ણા ॥ ૧૧૩ ॥

અર્થ—“ થોહો પળ ગૃહસ્થનો પ્રસંગ શુદ્ધ મુનિને પળ પાપ રૂપ પંક કે૦ કર્દમ—કાદવ લગાડેછે. જેમ તે વાર્તક નામના મુનિની ઘંદમઘોત નામે રાજાએ હાંસી કરી કે ‘ હે નૈમિત્તિક ! તમને બંદન કરું છું. ’ માટે મુનિ મહારાજાએ થોહો પળ ગૃહસ્થનો પ્રસંગ ન કરવો.” ૧૧૩. અહીં વરદત્ત મુનિનો સંવંધ જાણવો. વાર્તક ઋષિનું બીજું નામ વરદત્તમુનિ જાણવું. ૩૪

વરદત્ત મુનિનું દર્શાવ.

ચપાનમરીમાં ‘મિત્રમય’ નામે રાજા હતો. તેને ‘ધર્મઘોષ’ નામે મંત્રી હતો તે નગરમાં ‘ધનમિત્ર’ નામે એક અત્યંત રાજમાન્ય શેઠ હતો. તે શેઠને ‘ધનશ્રી’ નામે માર્યા હતી. તેમને ‘સુજાતકુમાર’ નામે અતિ કાવિવાન, રૂપલાવણ્યથી યુક્ત અને સ્ત્રીઓને અતિમિય લાગે તેવો પુત્ર થયો હતો. એક દિવસ ધર્મઘોષ મંત્રીના અંતઃપુર પાસે યદને તે જતો હતો, તેવામાં ‘મિયંશુમંજરી’ નામની મંત્રીપત્નીએ તેને જોયો. તે કુમારનું રૂપલાવણ્ય જોઈ મોહિત થયેલી મંત્રીની—સર્વ સ્ત્રીઓ પરસ્પર કહેવા લાગી કે ‘ હે સ્ત્રીઓ ! આપણને આ પુરુષ ઘણો મિય લાગે, પરંતુ જે સ્ત્રીને આ મોક્ષા થશે તે સ્ત્રીને ઘન્ય છે ! ’ એ પ્રમાણે વિચાર થયેલો હોવાથી એક દિવસે મિયંશુમંજરી શુભપણે સુજાતકુમા-

ગાથા ૧૧૨—અવિકૃત્તિઠ્ઠા. સંઠપ્પં. અવિકૃત્તિઆય પહિયા. અસંજયાણ. અહત્વા જીવધાતકા. ગાથા ૧૧૩—થોવોવિ. વારિત્તરિસિ. વારિત્તિસિ. નરવયણા.

રનો વેષ ધારણ કરીને શોકોની સાથે પુરુવની પેટે ક્રીડા કરતી પરસ્પર खेलવા છાગી મંત્રીએ તે સઘલું જોયું. તેથી તેના મનમાં ઈર્ષ્યા ઉત્પન્ન થઈ. તે વિચાર કરવા લાગ્યો કે ' અરે ! મારી સઘલી સ્ત્રીઓ મુજાતકુમારની સાથે વિલાસ કરે છે ' પછી તેણે મુજાતકુમાર ઉપર દ્રેષ રાખ્યો, અને સર્વ સ્ત્રીઓનો ત્યાગ કર્યો.

એક દિવસ મંત્રીએ કૂટપત્ર લક્ષ્મી રાજાના હાથમાં આપ્યો અને કહ્યું કે 'આવા કૂટલેખ લલનાર મુજાતકુમારને મારી નાંચવો જોઈએ.' એ પ્રયાણે સાંમલીને રાજાએ વિચાર કર્યો કે ' જો હું તેને અહીં એકદમ મારી નાંચીશ તો મારી અપકીર્તિ થશે.' એ જાણી મુજાતકુમારને કૂટપત્ર લક્ષ્મી આપીને 'ચંદ્રધ્વજ' રાજાની પાસે મોકલ્યો. તે પત્રમાં લખ્યું કે ' આ પત્ર લાવનાર મુજાતકુમારને મારી નાંચવો.' તે વાક્ય વાંચીને ચંદ્રધ્વજ રાજાએ વિચાર કર્યો કે 'આ પુરુષરત્નને મારી નાંચવાનું શામાટે કરે છે ?' પછી શુભ ચર મોકલી તેણે સર્વ હકીકત જાણી લીધી. પછી તેણે પેલો કૂટપત્ર શુભરીતે પોતાની પાસે સાચવી રાખ્યો, અને પોતાની વેન 'ચંદ્રયજ્ઞાને' મુજાતકુમારની સાથે પરણાવી તેને પોતાના મહેલમાં રાખ્યો. ચંદ્રયજ્ઞાના સંયોગથી મુજાતકુમારને રોગ ઉત્પન્ન થયો, તેથી ચંદ્રયજ્ઞા વિચારવા લાગી કે 'મને ધિકાર છે કે મારા સંયોગથી આ પુરુષ રોગી થયો.' ત્યારે મુજાતકુમારે કહ્યું કે ' હે મુલોચના ! આમા તારો કાંઈ અપરાધ નથી, મારાં અશુભ કર્મનોજ આ દોષ છે.' ઇત્યાદિ વચનોથી ચંદ્રયજ્ઞા પ્રતિવેદ:પામી, વૈરાગ્યપરામણ થઈ, અનજ્ઞાન અંગીકાર કરીને સમાધિથી મૃત્યુ પામી દેવપણે ઉત્પન્ન થઈ અવધિજ્ઞાનથી પૂર્વભવ જાણી ત્યાં આવી અને મુજાતકુમારને કહ્યું કે 'હે સ્વામિન ! તમારા પ્રસાદથી હું ચંદ્રયજ્ઞાનો જીવ દેવ થયેલ છું, માટે જે આજ્ઞા હોય તે કરું.' મુજાતકુમારે કહ્યું કે 'મને મારાં માતાપિતા પાસે પહોંચાડ અને મારું કલંક ઉતાર, જેથી હું દીક્ષા ગ્રહણ કરું. દેવે તત્કાલ તે પ્રમાણે કર્યું. મુજાતકુમારને ચંપાનગરીના ઉચ્ચાનમાં મૂક્યો અને નગરપ્રમાણ શિલા વિકુર્ષીને ચંદ્રપ્રભ રાજાને ભય પમાડી કહ્યું કે 'હે નરાધમ ! તેં આ મુજાતકુમાર ઉપર વિરદ્ધ આચરણ કેમ કર્યું ?' તેથી રાજાએ ભયઝાંત થઈ પગમાં પહીને સઘલી હકીકત યથાર્થ નિવેદન કરી અને મુજાતકુમારના પગમાં પહો વારંવાર સ્વમાવવા લાગ્યો. દેવે પણ શિલા સંહરી લીધી. પછી રાજાએ મુજાતકુમારને હાથી ઉપર વેસાઈ મોટા મહોત્સવ સાથે નગરમાં આણ્યો. મુજાતકુમાર પિતા સાથે દીક્ષા કરી કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને મોક્ષે ગયો.

ધર્મવેપ મંત્રીને રાજાએ દેશનિકાલ કર્યો. તેના છોકરાઓએ તથા સ્ત્રીઓએ તેને ઘણો ધિકાર આપ્યો. તે ભયતો ભયતો રાજગૃહ નગરે આવ્યો. ત્યાં તેણે સ્થવિર મુનિ પાસે વૈરાગ્યપરાયણ થઈને દીક્ષા લીધી અને ગીતાર્થ (સૂત્ર ને અર્થનો જાણનાર) થયો. વિહાર કરતાં અન્યદા વરદત્ત નામના નગરમાં વરદત્ત મંત્રીને ઘેર ગોચરીને માટે ગયા. વરદત્ત

मंत्री दूषपाकलुं भोजन लइने सन्मुख बहोराववा आव्यो अने कलुं के 'हे स्वामी ! आ निर्दोष अन्न ग्रहण करो.' तेवामां ते पात्रमांथी एक बिंदु नीचे पड्युं. ते जोइ धर्मघोष मुनि पाछा बळी गया. त्यारे वरदत्त मंत्रीए विचार कर्यो के 'मुनि आहारमाटे आवेळ छतां आ शुद्ध आहार तेमणे ज्ञा माटे ग्रहण कर्यो नहि !' ए प्रमाणे ते विचार करेछे तेवामां नीचे पडेला दूषपाकना बिंदु उपर एरु मलिका (मांखी) बेठी, ते मांखीने जोइने तेना उपर एक गरोळी आबी, ते गरोळी उपर एक काकोडो आव्यो ते काकोडाने मारवाने एरु बिलाडी दोडी, त बिलाडीना वध माटे घरनो कूतरा आव्यो, अने ते कूतराने मारवाने माटे शेरीनेा कूतरा दोड्यो, शेरीना कूतराने घरना नोकरोए मारी नांख्यो. त्यारे शेरीना लोकोए घरना कूतराने मारी नांख्यो. पछी घरना नोकरो अने शेरीना लोको वच्चे परस्पर गाळामाळी थवा लागी. तेमांथी कत्रीओ बध्यो, अने क्रोध बधी जवायो वायो अने सडुगोवडे युद्ध थवा लाग्युं. ते जोइ वरदत्त मंत्रीए विचार कर्यो के 'अहो ! आ साधुने धन्य छे के जेणे आवो भाबी उपद्रव जाणीने शुद्ध अन्न आपतां छतां पण ग्रहण कर्तुं नहि. आ जिनधर्मने पण धन्य छे हवे ए जंगम तीर्थ रूप साधुनो मने केवी रीते मेल्यप थरो ?' एम विचार करतां तेने जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुं एट्ठे सघलुं पूर्व भवतुं वृत्तांत दीक्षाग्रहणादि स्मरणमां आब्युं. पछी स्वयमेव चारित्रि लइ देवताए आपेछो वेप धारण करो स्वयंबुद्ध एवा वरदत्त मुनि विहार करतां सुसमारनगरे आब्या, अने नागदेवना चैन्यमां कायोत्सर्ग करीने स्थित थया.

सुसमारपुरना राजा धुंधुमारने 'अंगारवती' नामे अति रूपवती पुत्री हती. तेणे एक दिवस कोइ योगिनीनी साथे विवाद कर्यो अने योगिनीने निरुत्तर करी. योगिनीने क्रोध उत्पन्न थयो, तेथी तेणे अंगारवतीलुं रूप चित्रपटमां आछेलीने उज्जयिनीना राजा 'चंद्रप्रद्योत' ने वताब्युं. तेना रूपधी मोहित थइने अने योगिनीना सुखथो पण ते बहु रूपवती छे एम सांभळोने ते राजाए धुंधुमार राजा पासे दूत मोकली अंगारवतीनी मागणो करी. धुंधुमारे कहेवरान्युं के 'पुत्री मननी प्रसन्नताथो अपाय छे पण बळात्कारथी लइ शकतीं नथी.' ए प्रमाणे दूतनः सुखथी सांभळी चंद्रप्रद्योत राजाने अति क्रोध उत्पन्न थयो, तेथी मोहुं लइकर लइ सुसमारपुर आवीने घेरो घाल्यो. अल्प सैन्यबाळो धुंधुमार राजा नगरनी अंदरज रल्लो, बहार नीकळ्योज नहि. ए प्रमाणे घणा दिवसो व्यतीत थतां धुंधुमार राजाए कोइ निमित्तियाने पूछ्युं के 'मारो जय थरो के परानय ?' निमित्तिये कलुं के 'हुं निमित्त जोइने कहीश.' पछी पेळा निमित्तियाए चोकमां आवीने घणां बाळकोने ढहीवरान्यां; एट्ठे ते बाळको मय पामोने नागमासादमां रहेछा वरदत्त मुनिनी पासे गयां. थयथी आकुळव्याकुळ थयेछा ते बाळकोने

जोड़ने मुनिए कहुं के ' हे बाळको ! तमे बीवो नहि, बीवो नहि, तमने भय नथी. ' आ प्रमाणेनुं मुनिनुं वाक्य सांभळीने ते निमित्तियाए आवी राजाने कहुं के ' हे राजन ! आपने कोइ पण प्रकारे भय नथी. आपनो जय थशे. ' ए प्रमाणे सांभळीने धुंधुमार राजा अति हर्षित थयो अने नगरथी बहार नीकळी युद्धयां चंडप्रद्योतनो पराजय करी तेने जीवतो पकडीने नगरमां दाखळ थयो. धुंधुमार राजाए चंडप्रद्योतने कहुं के ' हुं तने कया प्रकारनो दंड करूं ? ' त्यारे चंडप्रद्योते कहुं के ' हुं तमारे घेर परोणे आव्यो छुं. माटे परोणाने उचित होय ते दंड आपो. ' ए प्रमाणे बिनययुक्त कोमळ वाक्य सांभळीने धुंधुमारे विचार कयो के-

गुरुरग्निर्द्विजातीनां, वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।

पतिरेवगुरुः स्त्रीणां, सर्वस्याच्यागतो गुरुः ॥

" ब्राह्मणोनो गुरु अग्नि छे, वर्णोनो गुरु ब्राह्मण छे, स्त्रीओनो गुरु पति छे, अने अभ्यागत (परोणो) सर्वनो गुरु छे. " ए प्रमाणे कहेलुं होवाथी आ चंडप्रद्योत मारे सर्व रीते पूव्य छे. वळी मोटा पुरुषनी प्रार्थनानो भंग करवो ते पण श्रेयने माटे नथी. कहुं छे के-

याचमानजनमानसवृत्तिः, पूरणाय बत जन्म न यस्य ।

तेन चूमिरति भारवतीयं, न द्रुमैर्न गिरिर्जिनं समुद्रैः ॥

" जे माणस जन्मीने याचना करनार माणसना मनोरथने पूर्ण करी शकतो नथी ते माणसज आ भूमिने भाररूप छे. वृक्षो, पर्वतो के समुद्रथी भूमि भारवाळी नथी. " आ प्रमाणे विचार करीने तेणे पोतानी पुत्री तेने परणावी अने कहुं के ' तमारे आ मारी पुत्रीने विशेष मानवती करवी. ' तेथी तेणे पण तेने पट्टराणी करी.

एक दिवस चंडप्रद्योते एकांतमां अंगारवती राणीने पूछयुं के ' तारो पिता स्वल्प-सैन्यवाळा छतां मने केवो रीते जीती शकयो ? ' त्यारे अंगारवतीए कहुं के ' स्वामिन ! नागमासादगां रहेंळा एक मुनिए कहेळा निमित्तना प्रभाषयो मारा पितानो जयथयो. ' ते सांभळी चंडप्रद्योत राजाए त्यां आवी ते मुनिने कहुं के ' हे नैमित्तिक मुनि ! हुं तमने वांटुं छुं. ' ए प्रमाणे मुनिनुं हास्य कयूं. वरदत्त मुनिए विचार्युं के ' मे क्यारे निमित्त कहेलु छे ? ' ए प्रमाणे विचारतां तेमणे जाण्युं के " सत्य छे, त्रास पामीने अहीं आवेळा बाळकोने ' तमे बीवो नहि, तमारे भय नथी ' ए प्रमाणे कहेवाथी मने निर्मत्तदोष छान्योळे. " एही तेनो आलोचना करी चारित्रने आराधने ते मुनि सद्गतिना भाजन

धया. ए प्रयाणे शुद्ध चारित्रवाक्योप जरा पण गृहस्थोने प्रसंग करवो नहि, एवो आ कयानो उपदेश छे.

सज्जावो वीसंजो, नेहो रहुवश्यरो जुवहुजणो ।

सयणघरसंपसारो, तवसोलवयाइं फेडीज्जा ॥ ११४ ॥

अर्थ—“सद्भाव के० स्त्रीनी आमळ हृदयनी वार्तातुं कहेवुं. विश्रंभ के० स्त्रीनी विश्वास, नेह के० स्त्रीनी साथे स्नेह करवो, रतिव्यतिकर के० कामकथातुं कहेवुं अने स्त्रीनी साथे स्वप्न संवधी घर एटछे पोवातुं मंदिर तेनो संपसार एटछे वारंवार आळोचवुं—ए सर्वे वातो तप—छट्ट अट्टमादि, शील—सदाचार अने व्रत ते मूळगुण तेनो नाश करेछे.” ११४.

जोइस निमित्त अखर, कोठ आयस चूडकम्मोहिं ।

करणाओओआणाहिअ, सानुस्स तवखलओ होइ ॥ ११५ ॥

अर्थ—“ज्योतिष ज्ञानतुं कहेवुं. निमित्त ते हेरादिनुं कहेवुं, अक्षराना अनुयोगतुं कहेवुं, कौतिक ते सन्दर्षादिनुं कहेवुं. आदेश ते ‘आ वात आमन्न यज्ञे’ एम कहेवुं अने भूविद्रुम ते भूवेर्ला साख दिनेरेनुं आशु—एटछां बानां पोते करवाधी बीजा पासे कराववाधी अने त ते कार्य वरनारनी अनुमोदना करवाधी साधुना तपनो क्षय थाय छे; बाटे साधु एटछां दानां आचरता नयी.” ११५.

जहुजहु करइ संगो, तहुतहु पसरो खणोखणो होइ

ओवोवि होइ वहुओ, नय लहुइ धिइं निरुंमंतो ॥ ११६ ॥

अर्थ—“जेम जेम गृहस्थनो संग मुनि करेछे तेम तेम क्षणे क्षणे तेनो प्रसार थापछे अर्थात् बसतो जाय छे, बोझो हेय तो पण ते बहु थायछे; अने पत्नी ते मुनि गुरुवचने रोकथो सतो पण छूति जे सेतोप तेने पामतो नयी.” ११६. बाटे मुनि ए गृहस्थनो प्रसंगज करवो नही.

जो चयइ उत्तरगुणै, मूल गुणैवि अचिरण सो चयइ ।

जहुजहु कुणइ पमायं. पिळ्ळिऊइ तहु कसाएहिं ॥ ११७ ॥

अर्थ—“जे मुनि उत्तर गुण जे आहागशुद्धि विगैरे तेने तजे छे ते मुनि थोडा

गाथा ११४ फदिश्ला गाथा ११५—काहेअयापस. करणाओओआणेहिअ.

गाथा ११६—येवोवि धियं धृति. गाथा—११७—पिळ्ळिऊइ प्रयेत.

काळमांज मूळगुण जे प्राणातिपातविरमणादि तेने पण तजे छे-उत्तर गुणनो नाश थये सते मूळगुणनो नाश पण थायज छे. कारण के जेम जेम आ जीव प्रयाद-शिथिलता करेछे तेम तेम ते क्रोधादि कषाये करीने प्रेराय छे. " ११७. एटछे प्रथम शिथिलता थवाथी उत्तर गुणनी हानि थायछे; पछी कषायनो उद्भव थवाथी मूळगुणनी हानि थायछे; माटे उत्तर गुण पण तजवा नहि.

जो निच्छएण गिन्हइ, देहञ्चाएवि नयं धिइं मुअइ ।

सो साहेइ सकळां, जह चंदर्वडिंसओराया ॥ ११८ ॥

अर्थ-“ जे प्राणी निश्चयवदे-स्थिरताए करीने व्रत नियमादि ग्रहण करेछे अने देहत्यागे-प्राणांत कष्ट प्राप्त थये सते एण जे धैर्यने मूढता नथी अर्थात् ग्रहित अभिग्रहने तजता नथी ते प्राणी पोताना मुक्ति साधनरूप कार्यने साधे छे. जेम चंद्रावतंसक राजाए प्राणांत कष्ट उत्पन्न थये सते पण ग्रहण वरेलो अभिग्रह तज्यो नहि तेम बीजाए पण भवर्तुं. ” ११८. अहीं चंद्रावतंसक राजाजुं दृष्टांत जाणवुं. ३५.

चंद्रावतंसक राजाजुं दृष्टांत.

साकेतपुर नगरमां चंद्रावतंस नामनो राजा हतो. तेने सुदर्शना नामे राणी हती. ते राजा परम श्रावक हतो, अने समकितमूळ श्रावकनां वार व्रतो सारी रीते पाळनो सतो राज्य करतो हतो. एक दिवस सभा विसर्जन करी अंतःपुरमां जइ सामायक करी कायोत्सर्गमुद्राए मनमां एवुं धारीने स्थित थयो के 'ज्यांसुधी आ दीवो बळे स्यांसुधी मारे कायोत्सर्गमुद्राथी अर्हीज स्थिर रहेवुं.' ए प्रमाणे पहेछे पहेर गयो. पछी दीवाने झांखे पढेछे जोइ राजाना अभिग्रहने नहि जाणता दासीए तेमां तेल पूर्युं. ए प्रमाणे बीजे पहेर गयो. एटछे फरीने तेल पूर्युं. ए प्रमाणे तेल पूरवाथी जार पहेर सुधी अखंड दीवो बळयो;अने अखंड अभिग्रहवाळा राजाए पण प्रातःकाळमां दीवो ओळवाया पछी कायोत्सर्ग पायो. परंतु राजा धणो कोमळ हेवाथी चार पहेर सुधी एक स्थाने स्थिति करवाने लीवे घणी वेदना अनुभवी विशुद्ध ध्यानवदे काळ करी देवलोकां उत्पन्न थयो.

ए प्रमाणे अन्य मनुष्योए पण दहता राखवी, एवो आ कथानो उपदेश छे.

सीउएहखुप्पिवासं, दुस्सिज्जापरिसहं किलेसं च ।

जो सहइ तस्स धम्मो, जो धिइमं सा तवं चरइ ॥११९॥

અર્થ—“ જે મુનિ શીત પરીસહ, ઉષ્ણ પરીસહ, હ્રુષા પરીસહ, પિપાસા તે તૃષા પરીસહ તથા દુષ્ટ શ્વયા તે તૃષા સંસ્તારકે તદ્રૂપ પરીસહ અને વલેચ તે છોચાદિ કાય-કષ્ટ—તેને સહન કરેછે તેને ચારિત્રધર્મ હોયછે. જે પુરુષ પરીસહ સહવામાં ઘૃતિમાન્ કે^૦ નિશ્ચલ ચિત્તવાલ્ય હોયછે તેજ તપને આચરેછે—આચરી શકેછે.” ૧૧૯.

ઘમ્મ મિણં જાણંતા, ગિહ્ણોવિ દહબ્વથા કિમુઅ સાહૂ ।

કમલામેલાહરણે, સાગરચંદ્રેણ ઈત્યુ વમા ॥ ૧૨૦ ॥

અર્થ—“ આ મિનયાવિત ધર્મને જાણનારા—તેને સમ્યગ્ પ્રકારે સમજનારા एवा गृहस्थ श्रावको पण दहव्रतवाळा—વ્રત ધારણ કરવામાં દહ હોય છે, તો પછી સાધુ કેમ દહ વ્રતવાळा ન હોય ? હોયજ. અહીં કમલામેલાના સંવંધમાં આવેલા સાગરચંદ્ર કુમારની વપમા અર્થાત્ તેનું દૃષ્ટાંત જાણવું.” ૧૨૦ અહીં સાગરચંદ્ર કુમારનો સંવંધ જાણવો. ૨૬ સાગરચંદ્ર કુમારનું દૃષ્ટાંત.

દ્વારિકા નગરીમાં કુણ્ણ રાજા રાજ્ય કરેછે. તેમને વલ્લભદ્ર નામે મોટા ભાઈ છે, અને નિષઘ નામે પુત્ર છે. તે નિષઘને સાગરચંદ્ર નામે કુમાર છે. તે નગરીમાં ઘનસેન શ્રેષ્ઠીની પુત્રી કમલામેલા નામે છે. તેને વગ્રસેનના પુત્ર નમસેન વેરે આપેછી છે.

एकदा नभसेनने घेर नारद मुनि आव्या. ते वल्लते नभसेने क्रीडायां व्यग्र चिच होवाने छीषे तेमने आदर आप्यो नहि; तेथी अति क्रोधित यह नारद मुनि त्याथी उहीने सागरचंद्रने घेर आव्या. तेणे नारद मुनिनो विनय पूर्वकं घणो आदरसत्कार कर्यो अने सिंहासन उपर वेसाळ्या. पळी सागरचंद्र तेमना पग धोइ हाय जोढो उभो रहीने कहेवा लाग्यो के ‘ हे स्वामिन् ! आपे जोयेळं, अनुभवेळं के जाणेळं आश्चर्यकारी कोइक कौतुक कहो.’ तेना विनयथी रंजित थयेला नारद मुनि ए कहु के “ हे कुमार ! पृथ्वीयां कौतुको तो घणा जोवायछे, पण कमलामेलातुं रूप जे में जोयुंछे ते महा आश्चर्यकारक छे. एना जेवुं रूप कोइ पण स्त्रीतुं नथो. जेणे ए स्त्रीने जोइ नथो ते माणसनो जन्मज हुथा छे, परंतु तेना भावापिताए तेने नभसेनने आपीने काच अने मणिनी पेठे तेनो अयोग्य संवंध कर्योछे.” ए प्रमाणे कही सागरचंद्रना मनमां प्रीति उत्पन्न करीने नारदमुनि कमलामेलांना मंदिरे आव्या. तेणे पण नारद मुनिनो अति सत्कार कर्यो अने: पूछ्युं के ‘ कांइक आश्चर्यकारी वार्ता कहो.’ त्यारे नारदे कहुं के ‘ जेवुं आश्चर्यकारक रूप सागरचंद्रतुं छे तेवुं रूप आ पृथ्वीयां बीजा कोइ पुरुषतुं नथी. तेना रूपनी वपमा भूमि उपर तो नथी. तेना रूपमां अने नभसेनना रूपमां मोटो तफावत छे.’ ए प्रमाणे कहाने नारद मुनि उत्पत्ती गया.

हृदे नारदनां वचनोथी कमलामेला सागरचंद्र उपर रागवाळी थइ; तेथी नमसेन प्रत्ये विरक्त मनवाळी थइने विचार करवा लागी के 'एतुं मारुं भाग्य कयांथी होय के सागरचंद्रनी साथे मारो संबध जोडाय. तेना विना मारुं यौवन तथा आ मारो देह वृथा छे.' ए प्रमाणे मननी अंदर सागरचंद्रतुं ध्यान करती रहेली छे. ते अवसरे नारदना मुखथी कमलामेळानी प्रीति जेणे जाणेलीछे एवो सागरचंद्र पण ते वाळातुं ध्यान करतो सतो क्षणमात्र पण आनंद मेळवी शकतो नथी. जेम धतुरातुं भक्षण करवाथी माणस चारे तरफ सुवर्ण जुएछे, तेम सागरचंद्र पण मोहवन्न थइने रावन्न कमलामेळानेज जुएछे, ते तेनायां तन्मय थइ गयो छे. कळुं छे के-

प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृथतः सा पुरस्ता
पर्यंके सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य ।
हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा सा जगति सकले कोयमद्वैतवादः ॥

“ कमलामेळाना वियोगथी आतुर थयेळा सागरचंद्रने महेळयां. दरेक दिनामां पृष्ठे तेमज अग्र भागमां, शय्यायां तथा दरेक रस्तानां ज्यां जुएछे त्यां कमलामेळान जोवायां आवेछे. अरे चित्त ! ते वाळा माराथी जुदी छे, ते कांइ भारी (प्रकृति) नथी छतां जगतयां सर्वत्र तेज दृष्टिगत थायछे, तेथी आ अद्वैतवाद (परुख्यता) कया प्रकारनो छे ?”

सागरचंद्र तेना विना आखुं जगत अंधकारमय मानवा लाग्यो. कळुंछे के-

सति प्रदीपे सत्यशौ, सत्सु नानामणिषु च ।
विनैकां मृगशावाक्षि, तमोच्चूतमिदं जगत् ॥

“ दीवो छतां, अग्नि छतां अने विविध तरेहना मणिओ छतां मृगशिथुना नेत्र जेवा नेत्रवाळी ते वाळा विना सधळं जगत अंधकारमय छे.” ते भ्रांतिथी सर्वत्र कमलामेळानेज जुएछे. भ्रांतिथी जोवायां आवेळी ते वाळा प्रत्ये 'हे प्राणमिये ! मारी पासे आव, तारुं आलिंगन आप' एम बोळता अने अनेक प्रकारनी चेष्टा करता-एवा तेने शंबकुमारो जोयो. तेथी तेणे पाछळथी आवी हास्यथी सागरचंद्रनी आंगवो वंध करी, त्यारे सागरचंद्र बोळ्यो के 'हुं जाणुं के तुं कमलामेळा छे. तुं मारी आंखो श्यामाटे वंध करेछे ? तुं आवीने मारा खोळयां बेस तो वधारे सारुं.' ए सांभकीने शंबकुमारने हसवु आखुं. ते बोळ्यो के 'वत्स सागरचंद्र ! हुं कांइ कमलामेळा नथी. हुं तो कमला-

मेलानो मेलाप करवानारो तारो काको छुं. माटे आंखो उघाड अने सारी रीते जो. अहो ! कामांधपणुं केहुं छे ! कहुं छे के—

दिवा पश्यति न घूकः, काको नक्तं न पश्यति ।

अपूर्वः कोऽपि कामांधो, दिवा नक्तं न पश्यति ॥

“ छुवड दिवसे जोड शकतो नथी. कागढो रात्रिप जोड शकतो नथी, पण कामांध तो कोइ अपूर्व अथ छे के ते दिवसे तेमज रात्रिप—कोइ वखन जोइ शकतो नथी. ” एटछुं कहेतां सागरचंद्रे काकाने जोया एटछे ते तेना चरणमां पड्यो; अने पोतानो अबिनय खमाधी लज्जा सूकीने वोल्यो के ‘ हे तात ! आप बोल्याओ के हुं कमला-मेलानो मेलाप करावनार छुं तो ते बात सत्य करो. सत्पुरुषो पोतानुं बोखेलु पाळेछे.’ कहुं छे के—

जं भासंतेणवि सज्जणेषु, जं भासियं मुहे वयणं ।

तद्वचनसाहणत्यं, सत्पुरिसा हुंति उज्जमिया ॥

“ बोलतां बोलतां सज्जनो पोताने मुखे जे वचन वाळेछे ते वचन माववाने—सत्य करवाने माटे सत्पुरुषो उद्यमवत होयछे. ” वळो सत्पुरुषो परांपकार करवामां पण कुशल होयछे. कहुं छे के—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-

स्त्रि शुवनमुपकारश्रेणिजिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणु पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदिविकसन्तः सन्ति सन्तः क्रियन्तः ॥

“ मन वचन अने कायामां पुण्यरूपी अमृतथी भरैला, अनेक प्रकारना उप-कारोथो आखा त्रिछुवनने पसल करनारा अने हमेगां अन्वना परमाणु जेवा अल्प गुणोने पण पर्वत जेवा मांटा करीने स्वहृदयमां आनंद पामता एवा कोइकज सत्-पुरुषो होय छे. ” ए कारणथी हे काका ! कमलामेलानो मेलाप मने करावो. ’

आ प्रमाणे सांभळीने श्रांविजुंमारै ते घात कबुल करी. पछो पोतानो विद्याना बळ्यो कमलामेलाना घर नुवो नुरंग देवराओने ते सुरगद्वाराप कमलामेलानुं हरण कर्तुं अने द्वारिका नगरीना उद्यानमां अणो. पछो नारद श्रानने बोलोवीने तेनी साक्षाए शुभ मुद्रते सागरचंद्रनी साथे तेने पन्जाधी. अर्धी ते कन्याना मानपिताप कन्यानुं हरण थयुं छे एप्र जाणो सर्वत्र तपास करी तो ते वनमां माल्य पडी. एटछे तेजने कृष्णनी

आगळ फरियाद करी के 'हे स्वामिन् ! आप समर्थ नाथ छतां हुं अनाथ होवं एम जाणी मारी कन्या कोइएक विद्याधरे हरण करीने वनमां सूकीछे.' ते सांभळीने सैन्य सहित देवकीपुत्र (कृष्ण) त्यां आंव्या. तेने आवतां जोइ नारदनी साथे श्राव सन्मुख आवी पिताना पगमां पळ्यो अने सर्व हकीकत जणावी. 'पोताना पुत्रतुं आ कृत्य छे' एम जाणी कृष्ण मौन थडने उभा रखा. पछी सागरचंद्रे आवी नभसेनना चरणमां पढी तेने खमाव्यो, पण नभसेने तेने खमाव्यो नहि.

हवे सागरचंद्रे कमलामेलानी साथे विपयसुख भोगवतां केटलोक काळ ध्यतीत कर्यो. पछी एक दिवस भगवान नेमि प्रभुनी देशना सांभळीने तेणे श्रावकनां वार व्रतो अंगी-कार कर्यो. दररोज स्वव्रततुं पालन करता सता एक वखत श्रावकनी पडियातु वहन करतां ते स्मशानभूमिमां जडने कायोत्सर्गे र १. ते वखते नभसेन जे हमेशां तेतुं छळ शोधतो हतो ते सागरचंद्रने स्मशानमां कायोत्सर्गे रहेछे जोइने विचार करवा लाग्यो के 'आजे वखस बराबर मळयो छे, तेथी मारी कमलामेलाना भोक्ता सागरचंद्रने आजे मृत्यु पमाहुं' एमाणे विचारोने तेना माथा उपर माटीनी पाळ वांधीने तेमां घगघगता खेरना अंगारा भरी ते अन्यत्र चाल्यो गयो. अहीं तेनी वेदनाने सम्पग भावे सहन करतो निश्चल मनवाळे सागरचंद्र शुभधानथी मृत्यु पामीने स्वर्गे गयो.

आ प्रमाणे श्रावके पण आवा लपसर्गो सहन कर्योछे तो साधुए तो विशेषे करी सहन करवा जोइए, एवो आ कथानो उपदेश छे.

दै०हिं काम०दे०, गि०ही०वि० न०वि० चा०लि०ओ तव०गु०णे०हिं ।

मत्तगयंदं जुयंगम, ररुखसघोरदृहासोहिं ॥ १११ ॥

अर्थ—“कामदेव नामना गृहस्थ श्रावकने पण तप शुणथी मदीन्मत्त हस्ती सर्प अने राक्षसना भयंकर अट्टहास विगेरेथी देवता चळावी शक्यो नहि.” अर्थात् देवकृत भयंकर लपसर्गशी कामदेव श्रावक छतां पण चळयो नहि तो मुनि तो शेनाज चळे ? आ दृष्टांत बीजा मुनि अने श्रावकोए ग्रहण करवुं. अहीं कामदेव श्रावकनो संबंध जाणवो. ३७

कामदेव श्रावकतुं वृत्तांत.

चंपा नामनी मोटी नगरीमां जितशत्रु नामे राजा राज्य करतो हतो. ते नगरीमां कामदेव नामे माथापति (व्यापारी) बसतो हतो, ते बहु धनधान्यथी समृद्धिवान हतो. तेने भद्रा नामे स्त्री हती. तेणे एक दिवस महावीर स्वामीनी देशना सांभळी. भगवाने प्रथम समकिततुं स्वरूप निरूपण कर्युं. तेमां जणाव्युं के दर्शन

મોહનીય કર્મના લપ્સમાદિયથી અર્હિંતે કહેલા જીવાદિ તત્ત્વોમાં સમ્યક્ શ્રદ્ધા થવી તે સમ્યક્ત્વ જાણવું; અથવા આત્માના શુભ પરિણામ દટલે જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર રૂપ ત્રણ તત્ત્વોના અધ્યવસાય તે સમ્યક્ત્વ જાગવું. કહ્યું છે કે-

અરિહં દેવો ગુરુણો. સુસાહુણો જિણમયં મહપ્પમાણં ।

इच्छाश् सुहो जात्रो, सम्मत्तं विंनि जगगुरुणो ॥

“ અર્હિંત દેવ, સુસાધુ ગુરુ અને જિનમત એ મારે પ્રમાણ છે, इत्यादि शुद्ध भावने जगतगुरुओ समकित कहेछे.” અર્હત્યર્મદું મૂલ સમકિત છે. કહ્યું છે કે ‘શ્રાવ-કના વાર વ્રતના તેરસેં ચોરાશી ક્રોડ. વાર લાખ, સત્તાવીશ હજાર, વસો ને વે માંગા થાયછે; એ સર્વ માંગામોશા સમાકિત પહેછેા માંગો છે. સમકિત વિના બીજા એક પણ માંગાનો સંભવ નથી. કહ્યું છે કે-

मूर्खं दारं पइठाणं, आहारो जायणं निही ।

दुट्ठक ताविधम्मस्स सम्मत्तं परिकित्तियं ॥

“ દુટ્ઠક કે૦ વાર પ્રકારના શ્રાવકધર્મતું મૂલ, દ્વાર, પ્રતિષ્ઠાન, આહાર, માજન અને નિર્વિ સમ્પત્તર કહેલું છે ”

सम्पत्तवतुं फल आ प्रमाणे-

अंतोमुहुत्तमित्तंपि, फासिअं दुक्का जेहिं सम्मत्तं ।

तेसिं अच्चहुपुग्गल, पारेअट्ठो चेव संसारो ॥ १ ॥

जं सक्कश् तं कोरइ, जं नसक्कश् तयंमि सदहणा ।

सदहमाणो जोशो, वच्चइ अयरामरं ट्ठाणं ॥ २ ॥

“ અંતર્મુહૂર્ત માત્ર પણ જે જીવને સમકિત ફરત્યું હોય તેને અર્થ પુદ્ગલપરાવર્તત્ર સંસાર રહેછે-વધારે રહેતા નથી. વ્રતાદિ જે કાંઈ થની શકે તે કરવું અને જે ન થની શકે તેમાં શ્રદ્ધા રાખવી. એ પ્રમાણે સર્વદેનારો જીવ પણ અજરામર સ્યાનકને પામે છે.” માટે સમકિત મૂલ રૂપ વ્રતો સમકિત સહિત સારી રીતે આરાધ્યાં હોય તો બાલોકર્મા ને પરલોકપ્રાપ્તિ વહુ ફલદાયો થાયછે. ”

આ પ્રમાણે ભગવાનની દેશના સાંધલોને પરમ સંવેગ લેને પ્રાપ્ત થયેલ છે એવો કામદેવ શેઠ પ્રકૃતિના ઉચ્ચાર પૂર્વક વાર વ્રતધારી થયો, અને જીવાજીવાદિ તત્ત્વનો જાણ થઈ સારી રીતે શ્રાવકધર્મને પાઠવા લાગ્યો.

एक दिवस सौषर्ष इद्रे तेनां उखाण करी के 'कामदेव आदक दृढधर्मी छे देव पण तेने धर्मधी चलाववाने समर्थ नहीं. अरे शु तेनु धैर्य छे!' ए प्रमाणे कामदेवनं बहु प्रशंसा सामळी कोइ एक मिथ्यादृष्टि देव देवेन्द्रनी वाणी अन्यथा करवाने मां कामदेव पासे आव्यो. ते अवसरे कामदेव पोरह करी पापघनाळामां कायोत्सर्गद्राए रक्षो इतो. पेळो देव मध्य रात्रए भयंकर राक्षसजु रूप ग्रहण करी हाथमां यमनं जिहा जेवुं खड्ग लइ पादप्रहारथी भूमिने कपावटो. श्रुत पढोळु करी अट्टहास करते कामदेवनी पासे आव्यो अने बोल्यो के 'आ पञ्चख्वाणने तु छोडी दे अने अ कायोत्सर्गमुद्रानो त्याग कर, नहितो आ खड्गवडे तारा दुकडे दुकडा करी नाखीज जेथी तूं आर्तध्यानथी अकाळे मृत्यु पामीज.' ए प्रमाणे वारंवार कहेनां छतां कामदेव ध्यानथी चलिंत थयो नहि. पछी-क्रोध उत्पन्न थवाथी ते देवे खड्गवडे कामदेवतुं शरीर छेवुं, जेथी तेने घणी वेदना थवा लागी, पण ते ध्यानथी क्षोभ पाम्यो नहि. पछी देवे पर्वत जेवुं मोडुं हाथीतुं रूप विदुर्व्यु, अने शुद्धने उलाळतो भयंकर हस्तीने रूपे कामदेव प्रत्ये बोल्यो के 'हे कामदेव ? आ त्रणेने छोडी दे अने आ कायोत्सर्गमुद्रानो त्याग कर, नहितो आ श्रुं वडे नने उपाडो. भूमि उपर पछाडी दंतप्रहारथी तने छुंदी नाखीज.' आ प्रमाणे कहेतां छतां पण ते ध्यानथी चलिंत थयो नहि. त्यारे तेने श्रुं वडे उंचे उछानीने पृथ्वी उपर पछाड्यो अने दंतप्रहागेथी दीर्घी नाख्यो; छतां ते जरा पण क्षोभ पाम्यो नहि अने मनमां विचार करवा लाग्यो के-

सर्वेभ्योऽपि प्रियाः प्राणास्तेऽपि यांत्वधुनापि हि ।

न पुनः स्वीकृतं धर्मं, खंडयाम्यल्पमप्यहम् ॥

“सर्व वस्तु करता प्राण वहाला होयछे परंतु ते पण हमणा भळे जाओ, पण स्वीकृत करेला धर्मने हुं अंशमात्र पण खंडित करीश नहि.” पछी ते देव व्रीजी वसंत महा-भयंकर, मुखळ जेवी जेनी काया छे, काजळ जेवो जेनो वर्ण छे, फणना आंड-बुरथी जे मुशोमित छे, जेनो वे जिहा लपलपायमान थइ गहेळो छे अने जेना दर्श-ज्याप्रथीज कायर मज्जुण्यना प्राण नाश पामेछे—एवा तीव्र त्रिषवाळा सर्पनु रूप त्रिकुर्वी कामदेव प्रत्ये बोल्यो के 'तुं ग्रहण करेला व्रतने त्याग कर. नहितो मारी दाहना विषवडे अकाळे मृत्यु पामीज.' ए प्रमाणे कळा छतां पण ते विलकुळ भयाकुळ थयो नहि अने मनमां विचार करवा लाग्यो के 'मारां व्रतोमां जग पण अतीचार मने लागो नहि. स्वल्प अतीचारथी पण मोटो दोष उद्भववे छे. कहुं छे के-

અત્યલ્પાદપ્યતીચારાદ્, ધર્મસ્યાસારતૈવ હિ ।

અંધ્રિકંટકમાત્રેણ, પુમાન્પંગૂયતે ન કિમ્ ॥

“ અતિશ્લેષ અતીચારથી પણ ધર્મનો નિઃસારતા થઈ જાય છે. પગમાં માત્ર કાંટો વાગવાથી શું પુરુષ હંગડો થતો નથી !” થાય છે. એ પ્રમાણે નિશ્ચય આત્માવાળો તેને જાણીને સર્પરૂપ દેવ તેને ઢસ્યો. અત્યંત દુઃખ ઉત્પન્ન કરનારા તે દંડથી કામદેવનું શરાર કાઢજ્વરથી જાણે પીઠાય છે હોય તેવું થઈ ગયું અને તેને ઘણો વેદના થવા લાગી, પણ તે ધ્યાનથી ચ્છિત થયો નહિ. તે મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યો કે-

સંહનાયાં તુ ધર્મસ્યાનંતૈરપિ જવૈર્જૈઃ ।

દુઃખાંતો ભવિતા નૈવ, ગુણસ્તત્ર ચ કશ્ચન ॥

“ ધર્મનું સંહન કરવાથી અનંતા મદો મમતાં પણ દુઃખનો અંત આવતો નથી અને તેમાં કોઈ જાતનો લાભ તો છેજ નહિ. ”

દુઃખં તુ દુષ્ટતાજ્ઞાતં, તસ્યૈવ ક્ષયતઃ ક્ષયેત્ ।

સુકૃતાન્તક્ષયશ્ચ સ્યાત્, તત્તસ્મિન્ સુદૃઢો ન કઃ ॥

“ દુઃખ દુઃકૃતથી ઉત્પન્ન થાય છે અને દુઃકૃતનો ક્ષય કરવાથી તેનો ક્ષય થાય છે; દુઃકૃતનો ક્ષય સુકૃતથી થાય છે, ત્યારે તે દુઃકૃતમાં કોણ પ્રાણી સુદૃઢ ન હોય ? ” એ પ્રમાણે કામદેવને શુભધ્યાનપરાયણ જાણો દેવે પોતાનું સ્વરૂપ પ્રગટ કર્યું અને તેને સારી રીતે સમજાવ્યો. પછી તે કહેવા લાગ્યો કે ‘ હે કામદેવ ! તને ધન્ય છે, તું પુણ્યશાળો છે અને તે જીવિતનું ફલ યેઠવ્યું છે. સૌધર્મ દેવલોકમાં ઈંદ્રે તારી પ્રશંસા કરી. તે શબ્દો ઉપર મને શ્રદ્ધા ન આવવાથી હું અહીં તારી પરીક્ષા કરવાને માટે આવ્યો હતો. પરંતુ જે પ્રમાણે ઈંદ્રે તારી પ્રશંસા કરી હતી તે પ્રમાણેજ મેં મારી નજરે જોયું છે. ” આ પ્રમાણે કહી સ્તુતિ કરીને તે દેવ પાતાને સ્થાનકે ગયો.

પાતઃકાલે કાયોત્સર્ગને પારો કામદેવ શ્રાવક સમવસરણમાં ભગવાનને વાંદવા ગયો. ત્યાં તેને મગવંતે કશું કે ‘ હે કામદેવ ! આજ મધ્યરાત્રિએ કોઈ દેવે તને ઋણ ઉપસર્ગ કર્યા એ વાત સ્ત્રી છે ? ’ કામદેવે કશું કે ‘ હે સ્વામી ! તે વાત સ્ત્રી છે. પછી ભગવાને સર્વ સાધુઓ અને સાધ્વીઓને વોલાવીને કશું કે ‘ હે દેવાનુમિયો ! જ્યારે આ કામદેવ શ્રાવકધર્મમાં રહેતો સતો પણ દેવોએ કરેલા ઉપસર્ગોને સહન કરે છે તો શ્રુતના જાણ સાધુઓએ તો તે રમ્મક પ્રારંભે સહન કરવાનું જોઈએ. ” આ પ્રમાણેનું મગવાનું વાક્ય બિનય પૂર્વક સઘળા સાધુ સાધ્વીએ સાંભળ્યું અને અંગીકાર કર્યું.

आ कामदेव धन्यात्मा छे के जे कामदेवनी भगवाने पोताना मुखे प्रशंसा करी.
कहुं छे के—

धण्णा ते जिञ्चलोए, गुरवो निवसन्ति जस्स हिययंमि ।

धन्नाए वि सो धन्नो, गुरूणहियए वसई जो ऊ ॥

“ आ जीवलोकरां ते पुरुष धन्य छे के जेना हृदयमां गुरुमहाराज वसेछे, अने ते तो धन्यमां पण धन्य छे के जे गुरुमहाराजना हृदयमां वसेछे. ”

आ प्रमाणे लोकोत्थी स्तुति करातो कामदेव भगवानने बांदो पोताने घेर आब्यो. पछी तेणे श्रावकोनी दर्शन आदि अग्यार प्रतिमाओने सारी रीते आराधी अने बीस वर्ष सुधी श्रावकपर्याय पाळी छेवटे एक मासनी संखेखणावडे सारी रीते सर्व पापनी आलोचना प्रतिक्रमणा करीने काळ मासे काळ करी मौधर्म नामना देवलोकरां अरुणाभ नामना विमानमां चार पल्पोपमना आयुष्यवाळो देव थयो. त्यांथी च्यवाने महाविदेहमां सिद्धिपदने पामने.

जेवी रीते कामदेवे श्रावक छातां पण भयंकर उपसर्गो सहन कर्या तेवी रीते मोक्षार्थी साधुओए पण उपसर्गो सहन करा, एवो आ कथानो उपदेश छे.

भोगे अञ्जमाणावि, केइ मोहां पंडति अहर गइं ।

कुविओ आहारथी, जत्ताइजणस्स दमगुठ्व ॥ १२२ ॥

अथे—“ केटलाक प्राणीओ भोगने भोगव्या विना तेनो इच्छा करता सता पण मोह ने अज्ञान, ते थको अधोगति—नरव तिर्यच गतिमा पदेछे कोनो जेम ? यात्राए—जजाणी अर्थे वनमां गयेछा लोकोनी उग्र (आहार न आपवाथी) कोपायमान थयेछा आहारना अर्थी हुमक एटछे भिक्षुकनी जेम. ” १२२

मनवडे दुध्यांन चित्तववाथो जेम तेणे दुर्गतिरूप फळ प्राप्त कर्युं तेम बीजा पण प्राप्त करेछे. अहीं ते हुमकनो संबंध जाणवो. ३८

हुमकहुं दृष्टांत.

राजगृह नगरने विषे कोइ एक उत्सवमां सर्व लोको वैभारगिरि उपर जजाणीए गया हता. ते वखते कोइ एक भिक्षुक भोजननी इच्छाथो नगरमां भयतां भोजन नहि मळवाथी वनमां आब्यो. त्यां पण ते सर्वत्र भटक्यो, पण अंतराय कर्मना उदयथी तेने कोइए भिक्षा आपी नहि; तेथी ते सर्वनी उपर गुम्से थइ विचारवा लाग्यो के “ अरे !

याथा १२२—अहरगमे—अधोगति । जत्ताप ।

अ नगरना ओको अति दृष्ट छे. कारणके तेओ खायछे, पीएछे, इच्छा भुजव भोजन करेछे, परतु मने नरा पण स्वावाहुं आपता नयो: तेथी हुं वभारगिरि उपर चढी मोटी शिखा गवढावीने आ सर्व दुष्टोने चूर्ण करी नाहुं ” ए प्रमाणे विचार करतो रौद्र ध्यानथी वैभारगिरि उपर चढयो अने त्यांथी एक मोटी शिखा गवढावी ते शिखाने पढती जोइ सर्वे लोको नासी दूर गया. परंतु तेज भिक्षुक दुर्भाग्यने लीधे ते गवढती शिखानी नीचे आवी गयो अने तेना भारथी दबाइ जइ तेजुं वधुं शरीर चूर्ण थइ गयुं; जेथी ते रौद्र ध्यानवडे मृत्यु पायी सातमी नरके गयो. अहो ! मननो व्यापार केवो बळवान छे ! कथुं छे के-

मनायोगोबलीयांश्च ज्ञाषितो जगवन्मते ।

यः सप्तमीं कृणार्द्धेन नयेद्वा मोक्षमेव च ॥

“सर्व योगोमां मननो योग बळवान छे, ए प्रमाणे भगवाने कथुं छे. कारणके ते मननो योग अर्ध क्षणमां सातमी नरके लइ जायछे अथवा मोक्षे पण लइ जायछे. ” वली-

मन एव मनुष्याणां, कारणं बंधमोक्षयोः ।

यथैवालिंग्यते ज्ञार्या, तथैवालिंग्यते स्वसा ॥

“मनुष्योने वंध तथा मोक्षहुं कारण मनज छे. कारणके जेवी रीते भार्याहुं आलिंगन करायछे तेवीज रीते (मळती बखते) बेनने पण आलिंगन करायछे. ” (परंतु तेमां मनना विचारनेज तफावत छे).

एवी रीते जेम ते भिक्षुके रौद्र ध्यानथी नरकहुं दुःख मेळव्युं तेवीज रीते अन्य पण नरकहुं दुःख मेळवेछे. माटे मनथी पण भोगनो इच्छा न करवो, एवो आ कथानो उपदेश छे.

जवसयसहस्सदुखहे, जाइजरामरण सांगरुत्तारे ।

जिणवयणंमि गुणायर, खणमवि माकाहिसि पमायं ॥१२३॥

अर्थ-“ हे गुणाकर ! छाखो भवे पण पापवा दुर्लभ अने जन्म जरा मरण रूप समुद्रथी पार उतारनार एवा जिन वचनने विषे क्षणमात्र पण प्रमाद न करोइ. ” १२३. अर्थात् प्रमाद तजोने जिनवचन आराधवा योग्य छे.

जं न खहइ सम्मत्तं, लरूणवि जं न एइ सर्वंगं ।

विसयसुहेसु थ रज्जइ, तो दोसो रागदोऽणं ॥ १२४ ॥

અર્થ—“આ જીવ જે સમ્યક્તને પામતો નથી, સમ્યક્ત પામ્યા છતાં પણ જે સંવેગને પામતો નથી અને વિષયમુક્ત જે શબ્દાદિ તેને વિષે જે રક્ત થાયછે તે સર્વે રાગદ્વેષનો જ દોષ છે.” ૧૨૪. તંથી દોષના હેતુ ઇવા રાગદ્વેષજ તજવા યોગ્ય છે. અહીં સવેગ ને વૈરાગ્ય-સંસારથી ડાસાં ભાવ ને માક્ષનો અભિલાપ સમજવો.

તો बहुगुणनासाणं, सम्मत्त चरित्तं गुणविणासाणं ।

न ह्यवस मागंतव्वं, रागदोसाणं पावाणं ॥ १२५ ॥

અર્થ—“તે માટે વહુ ગુણનો નાશ કરનાર અને સમ્યક્ત તે શુદ્ધ શ્રદ્ધાન, ચારિત્ર તે પંચાશ્રવનિરોધ અને ગુણ તે ઉચ્ચગુણ તેનો વિનાશ કરનાર ઇવા રાગદ્વેષ રૂપ જે પાપ તેને વશ નિશ્ચે ન આવવું.” ૧૨૫.

नवि तं कुण्डं अमित्तो, सुद्वुवि सुविराहिओ समथ्योवि ।

जं दोवि अणिग्गहिया, करंति रागोअ दोसोअ ॥ १२६ ॥

અર્થ—“જેવો અનર્થ નિગ્રહ નહિ કરેલા-નહિ રોકેલા ઇવા રાગ અને દ્વેષ એ વંને કરેછે તેવો અન્ય અતિશય સારી રોતે વિરાગેછો અને સમર્થ ઇવો પણ અમિત્ર જે શત્રુ તે કરી શકતો નથી.” ૧૨૬ અર્થાત્ શત્રુ તો વિરાગ્યો સતો એક ભવમાં મરણ આપે પણ રાગદ્વેષ તો અનંતા જન્મમરણ આપે માટે રાગદ્વેષજ તજવા યોગ્યછે.

इहलोए आयासं अजसं च करंति गुणविणासं च ।

पसवंति परलोए सारीरमणोगए दुखे ॥ १२७ ॥

અર્થ—“રાગદ્વેષનાં ફલ કહેછે-આ લોકમાં આયાસ કે. શરીર ને મન સંબંધી ક્લેશ તથા અપયશ અને ગુણ તે જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર તેનો વિનાશ કરેછે અને પરલોકમાં શરીર સંબંધી ને મન સંબંધી દુઃખો પ્રસવેછે-આપેછે. અર્થાત્ રાગદ્વેષ નર.તિર્યંચ ગતિના આપનાર હોવાથી તેમજ અનર્થમૂલક હોવાથી પરલોકમાં પણ અનેક પ્રકારનાં દુઃખો પ્રાપ્ત થાયછે.” ૧૨૭

द्धिद्धि अहो अकज्जं, जं जाणंतोवि रागदोसेहिं ।

फल मउलं कमुअरसं, तंचेवं निसेवए जीवो ॥ १२८ ॥

અર્થ—“અહો મહા આશ્ચર્યકારી આ અકાર્ય છે ! ધિકાર છે. ધિકાર છે આ જીવને-! કે જે આ રાગ દ્વેષને (મહા અનર્થકારી છે એમ) જાણતો સતો અને તેનાં ફલ

(વિપાક) અતૂલ (વિસ્તીર્ણ) અને અતિ કઢવાં છે એમ પણ જાણતો મતો તેનેજ તે રાગદ્વેષનેજ અથવા તેના કઢને જીવ (અમૃતગમની બુદ્ધિ) ફરી ફરીને સેવે છે. ”
૧૨૮ તેથી આ સસારવાસી જીવોને ધિક્કાર છે !

કૌ દુરકં પાવિજ્જા, કસ્સવિ સુલ્લેહિં વિહ્મઓ હુજ્જા ।

કૌ નવિ લ્હિજ્જા સુલ્લેહં, રાગદોસાં જહ્ ન હુજ્જા ॥ ૧૨૯ ॥

અર્થ—“ જો રાગદ્વેષ ન હોત તો કોણ દુઃખ પામત ? કોને સુલે કરીને વિરુપ યત ? (કે અહો આ મહાસુલી છે) અને કોણ જીવ મોક્ષ ન પામત ? અર્થાત્ સર્વે જીવો માર્ક્ષે જાત. ” ૧૨૯

માણી ગુરુપટ્ટિણીઓ, અણથ્યભરિઓ અમગ્ગચારીય ।

મૌહં વિલેસજાલં, સા ળાહ્ જહેવ્ ગોસાલો ॥ ૧૩૦ ॥

અર્થ—“ જે શિષ્ય માની (અહકારી), ગુરુનો પ્રત્યનિક (ગુરુના અપવાદ ઘોષનારો), પોતાના અશુદ્ધ સ્વભાવથીજ અનર્થનો ભરેલો અને રત્સુત્ર પ્રરુપનારૂપ ઝન્યા-ર્ગે—અમ ગે ચાલનારો હોય તે શિષ્ય ફોગટ અનેક પ્રકારના ક્લેષ (શિરોધુંડન સંયમાદિ) સમૂહને ભોગવે છે અર્થાત્ નિષ્ફલ તપ સંયમાદિ કષ્ટને સહન કરે છે, ગોસાલોનો જેમ. ” ૧૩૦

મગધંતના શિષ્યાભાસ ગોસાલે જેમ ફોગટ તપ સંયમાદિ કષ્ટ ભોગવ્યું. ડપર જણાવેલા દોષવાલો હોવાથી તેને તપ સંયમાદિનું કાંઈ પણ ફલ પ્રાપ્ત થયું નહીં, તેમ સમજવું.

કલહ્ણ કોહ્ણસીલો, ઝંરુણસીલો વિવાયસીલો ય ।

જીવો નિચ્ચુજ્જલિઓ, નિરથ્યયં સંયમં ચરહ્ ॥ ૧૩૧ ॥

અર્થ—“ જે લોષ કલહ કરવાના સ્વભાવવાલો હોય, ક્રોધ કરવાના સ્વભાવવાલો હોય, મંદન કરવાના સ્વભાવવાલો હોય અને વિવાદ કરવાના સ્વભાવવાલો હોય તે નિત્ય પ્રલ્બલિત રહે છે તેથી તે નિરર્થક ચારિત્રને આચરે છે. ” ૧૩૧ અર્થાત્ ક્રોધ થી ચારિત્રનો વિનાશ થાય છે અને આ વધા ક્રોધનાજ પ્રકાર છે, તેથી ક્રોધને તજીને ચારિત્ર પાલવું તેજ શ્રેયકારી છે.

માથા ૧૨૯ વિહિઓ. હોજ્જા । લ્હમેજ્જ । રાગહોસા. માથા ૧૩૦—સીવ—ઠ્યર્થ । ળાહ્ ઝુક્તે.
માથા ૧૩૧—વિવાગસિલીલ । સંજમં.

પરસ્પર રાહો પાટીને ઘોલકું તે કઠ્ઠહ સમજવો. પાગકા ગુણને મહન ન કરી શકવાનો તે સ્વભાવ તે ક્રોધનશીલ સમજવો, યદ્દિ યદ્દિ વિગેરેથી યુદ્ધ કરવાનો જે સ્વ-ભાવ તે મંદનશીલ જાણવો અને વચનવઢે વાદવિવાદ કરવો તે વિવાદશીલ જાણવો.

જહ્ વણદવો વણં, દવદવસ્સ જલિશ્ચો સ્વણેણ નિદ્દહ્ ॥

एवं कसायपरिणश्चो, जीवो तव संजमं दह् ॥ १३२ ॥

અર્થ—‘ જેમ વનમાં લાગે.ો દાવનલ્લ ઉતાવલ્લો ઉતાવલ્લો જ્વલિત થઈને ક્ષણ માત્રમાં આસા બનને વાઠી નાસેછે તેમ કષાયપરિણત કષાય પરિણામે ઘટતો જીવ તપસંયમને પણ ઘોષ્ટ્ર વાલ્લે છે—નાશ પમાડેછે. ’ ૧૩૨. તેથી સમતાજ ચારિત્રધર્મનું મૂલ્ય છે એમ સમજવું.

परिणामवसेण पुणो, अहिश्चो ऊणयरउ व हुञ्जा स्वश्चो ।

तहवि व्यवहारमित्तेण, जज्ञइ इमं जहा थूलं ॥ १३३ ॥

અર્થ—‘ વઠી પરિણામને વસે પટલે જેવા જેવા પરિણામ થાય તે પ્રમાણે અધિકો અથવા ઓછો તપસંયમનો ક્ષય થાય છે, તથાપિ વ્યવહાર માત્રે કરીને આ કહેવાયછે કે જેમ સ્પૂલ્લ ક્ષય થાયછે. ’ ૧૩૩. પરંતુ તે વ્યવહારનયનુ વચન મ્મનનું. નિશ્ચયનયે તો કષાયના તીવ્રતર પરિણામે કરીને ચારિત્રનો તીવ્રતર ક્ષય થાયછે અને મંદ પરિણામે મંદ ક્ષય થાયછે. તેથી જેવા જેવા પરિણામ તે અનુસારે ક્ષય થાયછે એમ જાણવું.

फरुसवयणेण दिणतवं, अहिस्खवंतो हणइ मासतवं ।

वरिसतवं सवमाणो, हणइ हणतो अ सामन्नं ॥ १३४ ॥

અર્થ—‘ કઠળ વચન કહેવાથી—ગાલ્લ દેવા વિગેરેથી તે દિવસના કરેલા તપ સંયપાદિ પુણ્યને હણે (ક્ષય પમાડેછે), અધિક્ષેપ પટલે અતંત ક્રોધ કરીને જાતિ કુલ્લ મર્માદિ પ્રકાશતો સતો મહિનાના તપસંયમનો ક્ષય કરેછે, ‘ તારું આવું અશ્રેય થશે ’ એમ જાપ દેતો સતો વર્ષ પર્યંતના તપસંયમને હણે અને યદ્દિ સ્વદ્ગાદિ વઢે પરનો ઘાત કરતો સતો જન્મ પર્યંતના શ્રામણ્યને (શ્રમણપણાને) હણે છે. ’ ૧૩૪.

આ વધા વ્યવહારિક વચનો સમજવાં.

अह जीविअं निकितइ, हंतूण य संजमं जलं चिणइ ।

जीवो पमायबहुलो, परिभमइ जेण संसारं ॥ १३५ ॥

गाथा १३२ दवदवस्सेति शीघ्रशीघ्र दहइ ।

गाथा १३३-अहिउ ।

गाथा १३४-फरुसवयणेण । अहिसिखतो ।

गाथा १३५-हतूणइ ।

અર્થ—“ અથ દુષ્ટે કષાયનાં ફલ કહ્યાંથી અનંતર પ્રમાદનાં ફલ કરે છે— પ્રમાદ વહુલ દુષ્ટે વહુ પ્રમાદવાળો (પ્રમાદપરવશ) સંસારી જીવ સંયમ સ્ત્રી જીવિતને ઠગે છે અને સંયમને ઠગીને પાપકર્મ રૂપ મળને પુષ્ટ કરે છે, જેને કરોને તે સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે. ” ૧૩૫. તેથી પ્રમાદને પરિહરવા—ત્યજવા.

અહીં સંયમના—પાંચ આશ્રવનો ત્યાગ, પાંચ ઈન્દ્રિયોનો નિગ્રહ, ચાર કષાયોનો જય અને પ્રણદંડની વિરતિ રૂપ સત્તરમેદ સમજવા.

અક્રોસણ તજ્ઞાણ તારુણા, અવમાણ હીલણાશ્ચો અ ।

મુણિણો મુણિયપરજવા, દહપ્પહારિવ્વ વિસહંતિ ॥ ૧૩૬ ॥

અર્થ—“ જેમણે અગ્રેતન—પરમવત્તું સ્વરૂપ જાણ્યું છે એવા મુનિઓ આક્રોશ, તર્જનો તાહના, અપમાન અને દિલ્લગા વિનેરે દહમહારીની જેમ સહન કરે છે. ” ૧૩૬.

જેમ દહમહારીએ સહન કર્યું તેમ અન્ય વીનાઓ પણ સહન કરવું આક્રોશ તે આપ દેવો, તર્જન તે મુક્તિ ઠંગાદિવઢે નિર્ભત્સના કરવી, તાહન તે લાકઢી વિનેરેથી કુટવા, અપમાન તે અનાદુર અને ઢીલના તે જાત્યાદિતું ઉદ્ધાટન કરીને નિંદવા—એ પ્રમાણે સમજવું. અર્થાત્ એ સર્વ સહન કરવું એવો આ ગાથાનો ઉપદેશ છે. અહીં દહમહારીતું ઉદાહરણ સમજવું ૩૯

દહ મહારીતું દુર્ચાત.

માકંદી નામની થોટી નગરીમાં સમુદ્રદત્ત નામે એક બ્રાહ્મણ વસતો હતો. તેને સમુદ્રદત્તા નામે માર્યા હતી. એક દિવસ તેણે એક પુત્રને જન્મ આપ્યો. તે પ્રતિદિન વધતો સતો સેંકડો અન્યાય કરે છે. યુવાવસ્થા પ્રાપ્ત થતાં તે બીકોને મારે છે, ઘોઠું વોળે છે, ચોરી કરે છે, દરસીસમાગમ કરે છે, મહ્યામહ્યાના વિવેકને જાણતો નથી, કોઢની શીલામણ માનતો નથી, માતાપિતાની અવજા કરે છે, એ પ્રમાણે મહા અન્યાયાચરણમાં ચતુર એવો તે શહેરમાં મહ્યા કરે છે એક દિવસ રાજાએ તેના સંવંધી હકીકત સાંભળીને આ અયોગ્ય છે એમ જાણી દુર્ગપાલને વોલાવીને કહ્યું કે ‘ વિરસ વાંજિતો વગાહવાં આ અથમ બ્રાહ્મણને શહેરની વહાર કાઢો મૂકો ’ ઢોકોએ પણ એ વાવતમાં અનુમોદન આપ્યું. દુર્ગપાલે તે પ્રમાણે કર્યું. તે બ્રાહ્મણ પણ મનમાં અતિ દ્વેષ રાસી નગરમાંથી નીકળી મીલ્લપણીમાં ગયો. ત્યાં તે મિલ્લપતિને મળ્યો. મિલ્લપતિએ પણ ‘ અમારા કામમાં આ કુશલ છે ’ એવું લક્ષણોથી જાણી તેને સ્વપુત્ર તરોકે સ્થાપિત કર્યો અને પોતાના ઘરનો સખલો સંપતિ તેને સ્વાધીન કરી. તે કુમારપણે વિચરે છે. ત્યાં રહેતો હતો તે ઘણા જીવોને નિર્દયપણે મારે છે તેથી ઢોકામાં દહમહારી એ નામથી તે પ્રસિદ્ધ થયો.

एक दिवस ते भोटुं घाडुं छइने कुसुमगल नगर छुंटावने गयो. ते बखते ते नगरमां देवशर्मा नामने एक दरिद्रो ब्राह्मण बग्तो हतो. ते दिवसे घणा मनोरथ पूर्वक तेणे पोताना घर आगळ क्षीरतुं भोजन रंधाव्युं हतुं, अने पोते स्नानार्थे नदीए गयो हतो. ते अवसरे कोइ एक चोरे ते ब्राह्मणना घरमां दाखळ थइ ते क्षीरतुं भाजन उपाडयुं. ते जोइने रुदन करतां करतां ते ब्राह्मणनां बाळकोए नदीए जइ तेमना पिताने ते कळुं. धुधातुर थयेळ ते ब्राह्मण पण जलदी घेर आवी क्रोधित यइने मोटी भोगळ लइ मारवाने माटे ते चार पासे आब्यो. बने परस्पर. लढवा लाग्या ते बखते पेळा हदमहारीए आवीने खड्गयी ब्राह्मणने मारी नांख्यो. तेने भूमिपर पडेछो जोइने क्रोधावेशयी परबश थइ पोतातुं पूछहु उंचुं करो ते ब्राह्मणना घरनी गाय ते हदमहारीने मारवाने माटे दोडी, परंतु हदमहारीए भयंकर परिणाम पूर्वक ते गायने पण मारी नांखी. ते अवसरे पोताना पतिने मरेछो जोइने आंग्र पाडती, विलाप करती अने गाढ स्वरे आक्रोश करती ते ब्राह्मणी सगर्भा स्त्री त्यां आवी. तेने पण ते हदमहारीए मारी नांखी. तेना पेट उपर महार करवायी तेनी कुक्षिमां रहेछो गर्भ नीकळीने पृथ्वी उपर पडयो. ते गर्भने भूमि उपर तरफडतो जोइने ते निर्देय हतो छतां तेना मनमां दया उत्पन्न थइ. ते विचारवा लाग्यो के “अरेरे ! अति अवम कर्म करनार मने धिक्कार छे ! में निष्कारण आ अनाथ अने गर्भवती अवळाने मारी नांखी. मने चारे इत्या लामी. एक पण इत्यायी निश्चय नरकगति प्राप्त थायछे तो में आं चार इत्या करीछे तेथी मारी केवो गति थरो ? दुर्गति रूप कूचामां पढतां मने कोण शरणभूत थरो ?” आ प्रमाणे विचार करी व्यग्र मने नगरमांयां नोकळो बनमां गयो. त्यां तेणे एक साधुने जोया. तेमना चरणमां पढी पोताना पापतुं स्वरूप निवेदन कर्युं अने कळुं के ‘हे भगवन् ! आ इत्याओना पापमांयां हुं केवी रीते मुक्त थाउं ते कदो.’ साधुए कळुं के ‘शुद्ध चारित्र्यधर्मेने आरांध्या शिवाय तुं ते पापयी मुकाइश नहि.’ ते साधुना वचनयी वैराग्य पामीने तेणे चारित्र्य ग्रहण कर्युं.

पछी तेणे एवो हद अभिग्रह कर्यो के ‘ज्यांमुघो आ चार इत्याओ मारा स्मरणमां आवे त्यांमुघी अन्न के पाणी मारे छेवुं नहि.’ एवो अभिग्रह लइ तेज नगरना एक दरवाजे कायोत्सर्ग करीने उभो रन्नो. पछो ते दरवाजे थइने आवता जता नगरना छोको ते इत्याओतुं बारंवार स्मरण करावीने ‘आ महा दुष्ट कर्मनो करनार छे’ ए प्रमाणे करी तेनी साहना तर्जना करवा लाग्या. केटलाक लाकडीवडे मारेछे. केटलाक मुष्टिप्रहार करेछे, केटलाक गाळो देछे, केटलाक पथथरो फेंकेछे अने केटलाक दुर्वचनोयी तेजो तिरस्कार करेछे, परंतु ते जरा पण क्रोध करतो नथो. छोकोए मारेछा पयरा

अने इंदोवडे ते गळा सुयी हंकाइ गयो. छेवटे पांनानो भास रंघाय छे एम जाणुं त्वारे कार्योःसर्गने पारी ते बीने दरवाजे जइने काउसग्ग करी-उभो रळो. र्पां पण तेणे तेज प्रमाणे परिसहोने सहन कर्यां. पछी ब्रोजे दरवाजे गयो पछो चोये दरवाजे गयो. त्यां गाळ, मार अने प्रहार विगेरे सहन करतां जेणे चतुर्विध आहारतुं पंच-रुखाण कर्युं छे एवा ते दृढधारोने छ मास व्यतीक्रम्या, परंतु ते पोताना नियमयी जरा पण चलित थयो नहि. विशुद्ध ध्यानथो तेतुं अंतःकरण क्षमावडे निर्मळ थयुं अने घातिकर्मनो क्षय थवाथो तेने केवलज्ञान उत्पन्न थयुं. पछो घणा जोवोने प्रतिबोध पमादी दृढमहारी केवळी भोक्षे गया.

ए प्रमाणे बीजा पण जेओ आक्रोश आदि अनेक प्रकारना उपसर्गोने सहन करेछे तेओ अनंत सुखना भोगवनारा थायछे, एवो आ कथानो उपदश छे.

अहमाहृद्योत्ति नय पडिहृषति, सत्तत्रि नय पडिसर्वति ॥

मारिज्जंतावि जइ, सहंति सहस्समल्लुव्व ॥ १३७ ॥

अर्थ—“ मुनिओ आपणे मने हण्योछे एम आप्या छातां पण तेने हणता नयी, कोइए आप दीषा छातां पण तेने सामो आप देता नयी अने मार्यां छातां पण ते सहन करेछे. सहस्रमल्लनो जेम. ” १३७

अहीं हण्योछे एटछे पीढा उपजावी छे—सामान्य महारादि करेछे एम समजतुं जेम सहस्रमल्ल साधुए महारादि सहन कर्यां तेम वोजाए पण सहन करवा. अत्र सहस्रमल्लतुं दृष्टान जाणतुं. ४०

सहस्रमल्लनी कथा.

शंखपुर नगरमां कनकध्वज राजा राज्य करतो हतो तेनी सभामां वीरसेन नामनो कोइ सुभट राजसेवा करतो हतो. राजाए तेने पांचसे गाम आपवा मांडया छातां तेणे ते छीथां नहि तेणे मळुं के ‘ हे राजन् ! मारे आपनी सेवा पगार पण छीथा वगर करवी जोइए आप प्रसन्न थना तो सघळ सारं थये. ’ ए प्रमाणे कहां इमेश राजानी सेवा करेछे हवे ते बलते कालसेन नामनो ते राजानो एक दुर्जय शत्रु छे, ते कोइमायो वध थतो नयी. अनेक गामां ने शहरोने ते उपद्रव करेछे. एकदा सभामां वेठेला राजाए कळु के ‘ एवो कोइ बळवान छे के जे कालसेनने जांवतो पकडीने मारी पासे लावे ? ’ राजानु ते वचन सांभळीने सघळा भौन रळा, कोइ बाल्युं नहि. एटछे वीरसेन बोल्यो के ‘ हे राजन् ! आप बाजाभोने शामाटे कहेछो ? मने आझा करो तो हुं एकळो जइ तेने बांभोने आपनी सपस लातुं. ’ राजाए आझा

गाथा १३७-उज्जा सहस्समल्लुव्व, सहस्समल्लुव्व । अहंजाहृतः इति । श्रुत्वा अपि-श्रापित्वा अपि । यति ।

आपी एटले उपर प्रमाणेनी राजा पासे प्रतिज्ञा करी तैयार थइने मात्र खइ लइ एक-
छोत्रे कालसेननी सामे चाल्यो. कालसेन पण पोतानुं ऋत्कर लइ सन्मुख आव्यो.
योडुं युद्ध यता कालसेननुं सघल्लं सैन्य नासी गयुं. एटले वीरसेन एकला रहेछा
कालसेनने बांधोने रानानो समीपे छाव्यो. राजा पण वीरसेननुं तेनुं वळ जोइने
आश्रय पाम्यो, अने 'जे छाखो माणसोयी जीती शकाय तेवो नहोतो तेने छोला-
भांभमां आणे पराजित कर्यो' ए प्रमाणे कही समाना लोको पण तेनी प्रशंसा करवा
छांय्या. संतुष्ट थयेछा राजाए तेने छस्रमल्ल आपी सहस्रमल्ल एवुं तेनुं नाम स्थापन कर्युं
अने तेने एक देशने राजा बनान्यो. पछो कालसेन पासे पण पोतानी आज्ञा मनावी
तेनुं राज्य तेने पाळुं सोंप्युं.

सहस्रमल्लने पोताना देश उपर राज्य करतां केटलाक दिवसो व्यतिक्रम्या एकदा
सुदर्शनचार्ये कहेछा धर्मना श्रवणयी तेने वैराग्य उत्पन्न थयो. तेथी तेणे राज्यतरी
दइने चारित्र ग्रहण कर्युं. ते सामायिकयी मांडीने अगियार अंग भण्यो. अनुक्रमे चा-
रित्र पाळतां तेणे जिनकल्पविहार अंगीकार कर्यो. ते प्रमाणे विहार करतां एकदा ते
कालसेन राजाना नगरनी समीप भागमां कायोत्सर्गमुद्रायी रह्या. कालसेने तेने जोइने
ओळख्या; एटले 'आ पापीज मने जीवतो एकडीने कनकध्वज राजा पासे लइ गयो
हतो' एम. विचारी तेना पर खडमान थइने ते दुष्ट कालसेने सहस्रमल्ल साधुने लाक-
डीओ, इंदो अने पाषाणादिना प्रहारो करवा वडे अति कदर्थना करी; परंतु ते जरा पण
सोभ. पाम्या. नहि. क्षमा धारण करीने थुद्ध ध्यानमां तत्पर रह्या. अनुक्रमे ते कालसेने
करेछा उपसर्गोथी थयेल वेदनावडे मृत्यु पामी सर्वार्थसिद्ध विमानमां देवपणे उत्पन्न थया.
आ प्रमाणे वीजा मुनिओए पण क्षमा करवी एवो आ कथानो उपदेश छे.

दुःखानामुहकोदंडा, वथणसरा पुत्रकम्मनिम्माया ।

साहुण ते न लग्गा, खंतिफल्यं वहंताणं ॥ १३८ ॥

अर्थ—“क्षमांरूपी फळक जे ढाल अथवा वस्तर तेने वहन करता-धारण करता
एवा साधुओने ते दुर्जनना मुक्त रूप धनुष्यमांयी नीकलेछां अने पूर्वकर्मयी निर्माण
थयेछां एवां कट्ट वचन रूपी बाणो लागतां नथी. अर्थात् धर्मनो भेद करे तेवां दुर्ज-
नना वचनो मुनिओ समता-क्षमावडे सहन करेछे.” १३८

पथरेणाहओ कोवो, पथरं डकु मिच्छइ ।

मिगारिओ सरं पप्प; सरूप्यत्ति विमग्गइ ॥ १३९ ॥

गाथा १३८-फलियं । कोदंडं-धनु. ।

गाथा १३९-कोवो-कुर्कर-श्वान. । मुगारि-सिद्ध । शरोत्पत्ति ।

अर्थ—“ पथ्यरथी हणायेछो कुतरो पथ्यरने करडवाने इच्छेछे अने सिंह बाणने पामीने अर्थात् पोताने बाण लागवायी बाण तरफ न जोतां शरोत्पत्तिने एटछे आ बाण क्यांथी आब्युंछे ते स्थानने अथवा बाण झुकनारने जुएछे—शोवेछे, ” १३९.

शुनि पण दुर्वचन रूपी तीरने पामीने ते बोलनार तरफ द्वेष करता नथी पण आ वचन-प्रहार भारा पूर्वोपाजित कर्मजुं फळ छे एम विचार करीते कर्मोने हणवा प्रयत्न करेछे.

तह पुच्छिं किं नकयं, न बाहए जेण मे समथ्याबि ।

इण्हि किं कस्सव कुप्पि—मुत्ति धीरा अणुप्पिच्छा ॥ १४० ॥

अर्थ—“ धीर पुरुष एवी रीते विचार छे के—हे आत्मा ! तें पूर्वमवें शामाटे एहुं (मुकुत) न कयुं के जेयो मने समर्थ एवो पुरुष पण बाधा करी न शके ? (जो शुभ कयुं होत तो तने कोण बाधा करी शकत ?) हवे अत्यारे शामाटे कोइना उपर कोप करं ? (कारणके पूर्वना अशुभ कर्मनो उदय थये सते पर उपर क्रोध करवो ते व्यर्थ छे). आम विचारीने ते कोइना पर क्रोध करता नथी. ” १४०.

अणुराएण जइस्सवि, सियायपत्तं पिया धरावेइ ।

तहविय खंदकुमारो, न बंधुपासोहिं पडिबद्धो ॥ १४१ ॥

अर्थ—“ यति थयेला एवा पण पोताना पुत्रना अनुरागे करीने तेना पिता तेना पर श्वेत छत्र (सेवको पास) धरावेछे, ते छातां पण स्कंदकुमार नामना शुनि पितानो आवो स्नेह छातां बंधुवर्गना स्नेह रूप पास करीने बंधाणा नहि. ” १४१. अही स्कंदकुमारजुं दृष्टांत जाणवुं. ४१

स्कंदकुमारजुं दृष्टांत.

श्रावस्ती नामे एक मोटी नगरी हती. त्यां तमाभ शत्रुमंडलने घूमकेतु जेवो कनककेतु नामे राजा हतो. तेने देवांगना करतां पण अति सुंदर एवी मलयसुंदरी नामे राणी हती. तेमने स्कंदकुमार नामे प्राणप्रीय तनुज (कुमार) हतो अने मनुष्योने आनंद आपनारी सुनंदा नामे पुत्री हती. रूप ने यौवनथी गर्वित बनेछी तेने कांतिपुर नगरना राजा पुरुषसिंहने आपेछी हती. एकदा श्रावस्ती नगरीए श्रीविजयसेन सूरी पधायी. स्कंदकुमार परिवार सहित बांदवाने आव्यो. शुरुए धर्मदेशना आपी के हे मन्व जीवो ! आ संसार अनित्य छें, आ शरीर नाशवंत छे, संपत्तिओ जलतरंग जेवी चंचळ छे, यौवन पर्वतमांथी नीकळती नदीना प्रवाह जेहुं

गाथा १४०—इण्हि । कस्सवि । कुप्पमुत्ति ।

गाथा १४१—सियायवत्तं—सीतआतपत्रं—श्वेतछत्रं ।

छे; माटे आ काळकूट विष जेवा विषयसुखना आस्वादथी श्रुं ! आगममां पण कशुं छे के-

संपदो जलतरंगविलोला. यौवनं त्रिचतुराणि दिनानि ।

शारदात्रमिव चंचलमायुः, किं धनैः कुरुत धर्ममर्निद्यम् ॥

“ संपत्तिओ जलना तरंग जेवी चपळ छे, यौवन मात्र त्रण चार दिवस रहेनां छे अने आयुष्य शरदऋतुना मेघ जेवुं चंचळ छे, तो धनथी श्रुं विशेष छे ? अनिध एवो धर्मज करो. ” बळी-

सर्वं विलवियं गीयं, सर्वं नष्टं विडंबणा ।

सर्वे आजरणा भारा, सर्वे कामा दुहावहा ॥

“ सर्व गीतो विलाप रूप छे, सर्व वृत्त्यो विडंबना रूप छे, सर्व प्रकारना आभरणो भार रूप छे अने सर्व प्रकारना कामो (विषयो) परिणामे दुःखना आपनारा छे. ”

इत्यादि गुरूनी देशना सांभळीने स्कंदकुमार प्रतिबोध पाम्यो अने घणा आग्रहथी मातापित्तानी आज्ञा लइ तेणे श्री विजयसेन सूरि पासे चारित्र्य ग्रहण कर्तुं. ते दिवसथी आरंभीने राजाए पण स्नेहथी पोताना पुत्र उपर श्वेत छत्र धारण करान्युं, अने सेवा करवाने माटे तेनी पासे सेवको राख्या. तेनोको मार्गमां कांटा बिगेरे पड्या होय ते आघा फेंको देछे अने परम भक्तिथी सेवा करेछे. अनुक्रमे ते सकळ सिद्धांतो रूपी समुद्रना पारगामी थया. गुरूनी आज्ञा लइ जिनकल्पमार्गने ग्रहण करी एकला विहार करवा लाग्या. तेमने अति उग्र विहारी जाणीने सर्व सेवको पोतपोताने स्थानके गया.

एक दिवस विहार करतां कांतिपुरीए आव्या. त्यां महेलना झरुखामां पोताना पति साथे सोगठाबाजो रमती सुनंदा नामनी तेमनी बहेने तेमने जोया. भाइना दर्शनथी तेने अत्यंत हर्ष थयो, आंखमां हर्षनां आंसु आव्यां, अने दृष्टिथी हणायलां कदंब पुष्पोनी माफक तेनां रोमराय विकस्वर थयां. ते मनमां विचार करवा लागी के ‘ आ मारो सहोदर हशे के नहि ? ’ ए प्रमाणे बंधुमेमथी नेत्रमां हर्षअश्रु छावती सुनंदाने स्कंदमुनिए ओळखी, पण तेणे तेना उपर जरा पण स्नेह आप्यो नहि. राजाए ते बनेनुं स्वरूप जोइ भाइबहेननो संबंध नहि जाणतो होवाथी मनमां विचार करी के ‘ आ सुनंदाने आ साधु साथे अत्यंत राग होय एम जणाय छे. ’ ए प्रमाणे विचारी दुर्बुद्धिथी रात्रिए कायोत्सर्गमुद्गाथी बनमां रहेला स्कंदऋषिने राजाए मारी नंखाव्या.

प्रातःकालमां लोहीषी लाल यथेच्छी मूहपचीने कोइ पक्षीए चांचयां लइने राणीना महेछना आंगणामां नांखी. ते मूहपची जोइने राणीने मनमां शंका पडी.एटले तरतज दासीने बोलावीने ते संबधी पूछयुं.दासीए कहुं के 'आपे गइ काळे जे साधुने जोया हता तेज साधुने कोइ पापीए मारी नांख्या होय तेम जणायछे. आ तेनीज मूहपची देखायछे.' ते सांभळीने राणी मुँछित यइ अने वज्रथी इणाइ होय तेम भूमि उपर पडी गइ. शीतळ उपचारोथी तेने सावध करी एटले रुदन करती सती तं बोलवा लागी के "कदाच ते मारो भाइ हजे तो हुं शं करीस ? कारणके मारा भाइए दीक्षा लीषीछे एतुं संभळायछे,अने ते साधुना दर्शनथी मने पण वंधुने जोवाथी जेवो आनंद थाय तेवा आनंद यथे होतो." एतुं विचारी तेणे एक सेवकने पोताना पिताना घरे मोकळो खबर मंगवी. ते उपरथी 'पोते धारेल ते सघळ खरं छे' एम जाणी तेहुं हृदय अति दुःखथी भराइ आव्युं. तं मोकळे कठे रुदन करवा लागी के "हे वंधु ! हे भाइ ! हे सहोदर ! हे वीर ! तूं मने मारा प्राण करतां पण वधारे बहाछो छे. तें आ शं कर्युं ? तां स्वरूप मने पण जणाव्युं नहि ? तें तो आ पृथ्वी विहार करीने तीर्थ रूप बनावीछे, पण हुं तो महा पाप करनारी छुं. कारणके तारा उपर मारी दृष्टि पडवाथी ते निमित्ते तारो घात थयोछे. मां शं थशे ! हुं कयां जाउं ? शं कवं ? " ए प्रमाणे अनेक प्रकारे विलाप करती सुनदाने मनोओए अनेक प्रकारनां अपूर्व नाटक विगरे बत्तावीने लाबे बलते शोकरहित करो.

ए प्रमाणे बीजाओए पण स्कंदक मुनिनी पेठे निर्मोहपशुं धारण करवुं एवो आ कयानो उपदेश छे.

गुरु गुरुतरौ अइगुरु, पियमाइअवञ्चपियजणसिणेहो ।

चित्तिइज्जमाण गुविलो, चतो अइधम्मतिसिपेहिं ॥१४२॥

अर्थ—“ गुरु के० घणो, गुरुतर के० तेथो वधारे, अतिगुरु के० तेथो पण वधारे एवो पितामाता-पुत्रादि अने पियजन ते स्त्री तथा परिजनादि तेनो अनुक्रमे वधतो जे स्नेह ते विचार्यो सतो गुविलो के० महा गहन छे—अनंत भवना हेतुभूत छे एम जाणोने धर्मना अति तृपित के० धर्मना अत्यंत इच्छक एवा प्राणोओए तेने तजो दीषोछे. कारण के ते धर्मना शत्रुभूत छे. ” १४२ एम जाणोने बीजा पण धर्मना इच्छक जनोए वंधुवर्गना स्नेहमां न मुंसाता तेने तजो देवो.

अमुणियपरमथ्याणं, बंधुजनसिणेहवश्यरोहोइ ।

अत्रगयसंसारसहाव--निच्छयाणं समं हिययं ॥ १४३ ॥

गाथा १४२-गुरुनटोद । पियमाव । चित्तिज्जमाण । अतिधर्मतृपितैः ।
गाथा १४३-बंधजण । निच्छयाणं । अतिकट्ट-संबधः ।

अर्थ—“ नयीं जाण्यो परमार्थ जेणे एवा प्राकृत प्राणीशोने ज वंधुजनना स्नेहर्नो संबंध थायछे अने जेणे संसारना स्वभावर्नो निश्चय जाण्यो छे तेजुं हृदय तो समान होयछे. ” १४३.

जेणे संसारं स्वरूप जाण्युं नयी. एवा मंद बुद्धिशोने वंधुजनर्नो स्नेह प्रतिबंध करनार थाय छे, पण पंडित बुद्धिवाळा के जेओए संसारं स्वरूपजाणुं छे अने सगळो संसारर्नो संबंध तजी दीधोछे तेमना हृदयर्मां तो शत्रुमित्रपर समान भाव होय छे तेयी तमने वंधुजनर्नो स्नेह प्रतिबंधकारक थतो ज नयी.

माया पिया य भाया, जज्जा पुत्ता सुहृय नियगा य ।

इह चैव बहुविहाइं, करंति जयवेमणस्साइं ॥ १४४ ॥

अर्थ—“ माता, पिता, भ्राता (भाइ), भार्या (स्त्री), पुत्र, सुहृद (मित्र) अने निजकाः एटछे पोताना संबंधीओ ते सर्वे आ भवमांज बहु प्रकारना भय ते मरणादि अने वैमनस्य ते मन संबंधी दुःखो तेने उत्पन्न करेछे. ” १४४.

तेज अजुकमे कहेछे—

माया नियगमइ विगप्पियंमि, अत्थे अपूरमाणंमि ।

पुत्तस्स कुणइ वसणं, चुलणी जह वंभदत्तस्स ॥ १४५ ॥

अर्थ—“ पोतानी बुद्धिबडे विचारेळा पोताना अर्थर्मां (कार्यर्मां) अपूर्यमाण क्रहेतां नहि पूरायेली अर्थात् पोतांजुं धारेळुं कार्य परिपूर्ण जेने थयुं नथो एवी माता पोताना पुत्रने पण अनर्थ—कष्ट करेछे. जेम चुलणीए ब्रह्मदत्तने कथुं तेम. ” १४५.

अन्यराजा साथे विषयासक्त थयेली चुलणीए पोताना चक्रवती थनार पुत्रने पण वच्चेथी फांस काढी नाखवानी बुद्धियो प्राणांत कष्टर्मां नाखयो. अही चुलणीर्नो संबंध जाणवो.

चुलणी राणींजुं दृष्टांत.

कापिल्यपुर नगरर्मां ब्रह्म नामे राजा हतो. तेने चुलणी नामे राणी हती. तेनी कुक्षिथी चौद स्वप्नबडे सूचित पुत्र जन्म्यो. तेजुं ब्रह्मदत्त नाम पादवार्मां आव्युं. हवे ब्रह्मराजाने वीजां चार राजाओ मित्र हता. पहेलो कणोरदत्त नामे कुल्देक्षनो राजा, वीजो काशीदेशनो अधिपति कटकदत्त नामे राजा, वीजो काश्लपति दीर्घ नामे राजा अने चौथो अंगपति पुष्पचूल नामे राजा हतो. पांचवो पोते हतो, ए पतिने परस्पर अतिगाढ मित्रता हती. तेओ क्षणमात्र पण एक वीजानो वियोग सहन

माया १४४-सुहृय । बहुविहाय । वैमणस्साय । सुहृदो-मित्राणि । निजकाः-संबंधिनः ।
माया १४५-निजकमत्या विकल्पिते । व्यसनं-अनर्थ-कष्ट ।

करी-शकता नहोता. ते पांचे जणा प्रतिवर्ष अनुक्रमे एक एकना बहेरयां जइने एकठा रहेता हता.

ए प्रमाणे एक बखत पांचे राजाओ कांपिल्यपुरमां एकठा मळया हता. ते बर्षे ब्रह्म राजा मस्तकना व्याधिची परळोकवासी थया. ते बखते ब्रह्मदत्त कुमार बारवर्षनी कुडु-बयनो हवो तेथी चारे मित्रोए विचार्युं के 'आपणा प्रीतिपात्र परमभिन्न-ब्रह्मराजा पंचत्व पाम्या छे अने तेनो पुत्र नानो छे, माटे आपणामांथी एकेक जणे दरवर्षे आ राज्यनी रक्षा करवा माटे अर्धीं रहेवुं.' ए प्रमाणे विचार करी दीर्घ राजाने त्यां मूकी बीजा जण राजाओ पोतपोताने जगरे गया. दीर्घ राजाए त्यां रहेता सता ब्रह्मराजाना कोठार अने अंतःपुरमां जतां आवतां एक दिवसे जुलणी राणीने नवयौवना जोइ, तेथी ते कामरागची पराधीन थयो. जुलणी पण दीर्घ राजाने जोइने रागवती थइ. बंनेने परस्पर बातचीत थतां महान कामराग उत्पन्न थयो. तेथी ते बंनेने परस्पर शरीरसंबंध थयो. अनुक्रमे दीर्घ राजा पोतानी स्त्रीनी माफक जुलणी राणीनी साथे भोग भोगववा लाग्यो. तेणे कोइनो मय गण्यो नहि. लोकापवादनो डर पण तणी दीधो. धनु नामना ह्द मंत्रीए आ बधी हकीकत जाणी, तेथी ते मनमां बिचारवा लाग्यो के 'अरेरे ! आ दुष्ट दीर्घ राजाए बहुज अविचारी कार्य कर्तुं. अन्य जण मित्रोए पण श्रो विचार करीने आने राज्यनो अधिकार सोंप्यो ? एमणे पण विपरीत कार्य कर्तुं. आ दीर्घ राजा पोताना मित्रनी स्त्रीनी साथे व्यभिचार करतां लज्जा पण पामतो नथी.' ए प्रमाणे विचारी घेर आंबी पोताना पुत्र बरघजुने आ हकीकत जणावी. तेणे जइने ब्रह्मदत्तने आ खबर कही. ते सांभळी ब्रह्मदत्त अति क्रोधित थइ रुक्क नेत्रवाळो थयो. पछी दीर्घ राजा सभामां बेठो छे ते बखते सभामां जइने कोकिल्ला ने कागडानो संगम करावी ते कहेवा लाग्यो के 'अरे दुष्ट काग ! तूं कोकिलनी स्त्री साथे संगम करे छे ए अति अयुक्त छे. आ तारुं अयोग्य आचरण हुं सहन करीश नहि.' एम कही कागने हायमां पकटी मारी नांळ्यो अने कोक-समस कर्तुं के 'जे कोइ आतुं दुष्ट कार्यं तारा नगरमां करे छे अथवा करन्ने तेने हुं सहन करीश नहि.' ए सांभळीने दीर्घ राजाए जुलणी राणीने कुमारनी ते हकीकत जणावी. त्यारो जुलणीए कर्तुं के 'ए तो बालक्रीडा छे, तेनाथीशुं बीओ छो ? माटे स्व-स्थ थाओ.' ए प्रमाणे केटळाक दिवसे व्यतीत थतां फरीणी ब्रह्मदत्ते दीर्घ राजानी समस हंसी ने बगळानां समागम करावी पूर्ववत् जनसमूहनां आगळ कर्तुं. प्रययी आ-कुळ थयेला दीर्घ राजाए जुलणीराणीने कर्तुं के 'तारा पुत्र आपणा बेना संबधनी हकीकत जाणी छे, तेथी आपणो निःशंक समागम हवे केवी रीते थइ शक्रे ? माटे तूं तेने मारी नाख; जेथी आपणे निर्भयपणे विपयरसनो आस्ताद अनुभवीए.' जुलणीए

विचार्युं के 'हूं आंहुं अकार्य केवी रीते करूं ? पोताना हाये पोताना पुत्रने मारी नांखवो ए तहन अयोग्य छे.' कहूं छे के 'विषट्कोऽपि संबद्धयं स्वयं छेतुमसाम्प्रतम्' "शेरुं वृक्ष पण मोड़ुं करी पोते कापी नांखवुं ए अयुक्त छे." दीर्घ राजाए फरीशी राणीने कहूं के 'कुमारने मारी नांख, नहि तो तारी सायेना संबधयी सयुं.' ए सांभळीने राणीए विचार कर्यो के 'विषयसुखमां विघ्न करनार आ पुत्र झा कामनो ? माटे तेने अचक्षय मारी नांखवो जोइए,' अहो आ विषयविलासने धिकार छे ! कहूं छे के

दिवा पश्यति नो घूकः, काको नक्तं न पश्यति ।

अपूर्वः कोऽपि कामांधो, दिवा नक्तं न पश्यति ॥

"घुबह दिवसे जोइ शकतो नथी, काग रात्रिए जोइ शकतो नथी, पण कामांध पुरुष तो कोइ अपूर्व अंध छे के दिवसे तेमज रात्रिए—वने बखते जोइ शकतो नथी. पछी बुलणीए विचार कर्यो के 'आ पुत्रने पण मारवो अने यक्षनी पण रक्षा करवी, माटे पुत्रने मोटा महोत्सवथी परणावी एक लाक्षागृह करावी तेनी अंदर सुतेछा तेने बाळी नाखुं. जेथी लोकमां मारो अपयक्ष न थाय.' ए प्रमाणे विचार करी तेणे लाक्षागृह कराव्युं अने तेने चुनाथी धोळ्वाव्युं. पछी पुष्पचूल राजानी पुत्री साये मोटा महोत्सवथी तेने परणाव्यो. ते सघळं धनु मंत्रीए जाण्युं अने मनमां विचार कर्यो के 'आ पापिणीए पुत्रने मारवानो उपाय कर्यो छे, पण हूं तेनी रक्षा करवानो उपाय करूं.' ए प्रमाणे विचार करी तेणे दीर्घ राजानी पास जइने कहूं के 'हे राजन् ! हूं हवे ह्दययोळुं, तेथी जो आप आंझा आपो तो हूं तीर्थयात्राए जाउं अने मारो पुत्र बरषनु आपनी सेवा करशे.' ए सांभळीने दीर्घ राजाए विचार कर्यो के 'आ मंत्री दूर रह्यो सतो कइक पण विपरीत करशे, माटे तेने तो पासेज राखवो सारो.' ए प्रमाणे मनमां विचार करी दीर्घ राजाए कहूं के 'तीर्थगमन करवानुं थुं कारण छे ? अहींआंज तीर्थे रूप गंगा छे, तेथी गंगाने किनारे दानघाळांमां रही दानपुण्य करो, अन्यत्र जंवाथी थुं विशेष छे ?' धनु मंत्रीए ए बात कबुल करी. पछी गंगाने किनारे दानघाळांमां रहने तेणे लाक्षागृहथी बे गांउ सुधी सुरंग खोदावी, अने बरषनु मारफत पुष्पचूल राजानी जणाव्युं के 'आज शयनसुखनमां तमारी पुत्रीने बंदछे सर्व अलंकारथी अलंकृत करीने कोइ रूपवती दासीने मोकलजो.' तेथी पुष्पचूल राजाए दासीने मोकली. ब्रह्मदत्त पौताना प्राणप्रिय मित्र बरषनु साये शयनगृहमां आब्यो. दासी पण त्यां आवो. ब्रह्मदत्त तो जाणे छे के 'आ मारी प्राणबलभा छे.' दासीनुं स्वरूप ते जाणतो नथी. ते बखते बरषनुए श्रृंगार उपर कथा कहेवानुं श्रु कर्युं. ते सांभळवाना रसमां मश थवाथी ब्रह्मदत्तने पण निद्रा आवो नहि.

હવે મધ્ય રાત્રિએ સર્વ લોકો સુઈ જતાં સુલળી રાણીએ આવીને છાસાગૃહને આગ લગાડી, તે છાસાગૃહને ચોતરફથી વલ્લું જોડીને બ્રહ્મદત્તે કહ્યું કે 'હે મિત્ર ! હવે શું કરું ?' ત્યારે વરઘનુએ કહ્યું કે 'મિત્ર ! ચિંતા શામાટે કરો છો ? આ જગ્યા ઉપર પગનો પ્રહાર કરો.' પછી બ્રહ્મદત્તે પગના પ્રહારથી સુરંગનું વારણું ડગાડ્યું. વંને જળ પેહી છીને ત્યાંજ રહેવા દડને તે માર્ગે નાસી ગયા. સુરંગને છેઢે મંત્રીએ પવનવેગી વે ઘોડા તૈયાર રાખ્યા હતા. વંને જળ તે વે ઘોડા ઉપર સ્વારી કરીને મામ્યા. પચાસ યોજન ગયા ત્યાં વંને ઘોડા અત્યંત શ્રમિત થઈ જવાથી મરી ગયા. તેથી તે વંને જળા પને ચાલકોને કોટક નગરે ગયા. ત્યાં કોઈ બ્રાહ્મણને ઘેર મેજન લીધું અને તે બ્રાહ્મણની પુત્રી સાથે બ્રહ્મદત્ત પરણ્યો. પછી ઘણાં શહેરો અને ઘણાં ગામોમાં કોઈ ઠેકાણે શુભ રીતે અને કોઈ ઠેકાણે પ્રગટપણે ફરતાં ફરતાં તે બ્રહ્મદત્ત અનેક સ્ત્રીઓ પરણ્યો. એ પ્રમાણે એકસો વર્ષ મમ્યા. અનુક્રમે કાંપિલપુરમાં આવી દીર્ઘ રાજાને મારી નાંચીને પોતાનું રાજ્ય લીધું. પછી છ સંઢ સાધીને તે વારમો ચક્રી થયો.

એક દિવસે રાજ્યનું પાલન કરતાં પુષ્પનો શુચ્છ જોડીને બ્રહ્મદત્તને જાતિસ્પરણ-જ્ઞાન થયું. પૂર્વ મવનો માઈ ચિત્રનો જીવ પ્રતિવેષ પમાડવાને ત્યાં આવ્યો, પરંતુ તે પ્રતિવેષ પામ્યો નહિ. સેાહ વર્ષનું આયુષ્ય વાકી રહેતાં કોઈ ગોવાઝીઆએ તેના આંસના ઢોઢા કાઢી લીધા, અર્થાત્ આંસો ફોઢી નાચી. 'આ વધું એક બ્રાહ્મણનું ત્રિચ્છે' એમ જાણી બ્રાહ્મણોનાં નેત્રા કઢાવતો સતો રૌદ્ર ધ્યાનવઢે ઘણાં અશુભ કર્મોને મેઢકી, સાતસો વર્ષનું આયુષ્ય પૂરું કરી સાતમી નરકમાં અપ્રવિષ્ટાન નરકાવાસમાં ષ્ઠકુષ્ટ સ્થિતિએ ઉત્પન્ન થયો.

આ સઘઢો સંવંધ વધારે વિસ્તારથી ઉવણસ સહસ્રેહિં વીતિ એ ગાયાના ચિવરણથી જાણવો. અહીં તો આ પ્રમાણે માતાનો સ્નેહ કૃત્રિમ છે, પવો આ ગાયાનો ઉપદેશ છે.

સઢવંગોવંગવિગત્તણાશ્ચો, જગઢણ વિહેઢણાઓ અં ॥

કાસીયં રઢ્ઢાતિસિચ્ચો, પુત્તાણં પિયાં કણયકેઢ ॥ ૧૪૬ ॥

અર્થ - " રાજ્યનો તરશ્યો એવો કનકકેતુ નામનો પિતા પોતાના પુત્રને સર્વ અંગોપાગ છેઢવે કરીને કઢર્યના અને વિવિધ પ્રકારની યાતના જેમ્મીઢ્ય તેને કરતો હવો. માટે પિતાનો સંવંધ પણ કૃત્રિમ છે. " ૧૪૬

કનકકેતુ રાજા રાજ્યના લોમથી તેમાં અંધકૃત્રિમ જવાથી પોતાને જે પુત્ર થાય તેના

ગાથા ૧૪૬-વિકર્તના-છેઢનાનિ. જગઢણ-કઢર્યનાં, કાસી, વિહેઢણા-વિવિધા યાતના-પીઢાઃ આકાશિત.

અંગોપાંગ છેદવાબદે રાજ્યને અયોગ્ય કરતો હતો. તેનું વિશેષ ચરિત્ર તેની કથાથી જાણી છેવું. ૪૪.

કનકકેતુ રાજાની કથા.

તેતછીપુર નગરમાં કનકકેતુ નામે રાજા હતો. તેને પદ્માવતી નામે પટ્ટરાણી હતી અને તેતછીપુત્ર નામે મંત્રી હતો. તે કારભારીને પોટ્ટિલા નામે અતિ વહાલી સ્ત્રી હતી. રાજ્યમુક્ત મોગવર્તા કનકકેતુને ઘેર પુત્રનો જન્મ થયો. તે વસ્તે રાજા વિચાર કરવા ઠાગ્યો કે 'આ પુત્ર મોટો થતાં મારું રાજ્ય લઈ લેશે.' પણ ખયયી તેણે તેના હાથ કાપી નાંખ્યા. બીજો છોકરો થયો તેના પગ્નુકાપી નાંખ્યા. એ પ્રમાણે અનુક્રમે છોકરા ઉત્પન્ન થતાં કોઈનો અંગછેદ કર્યો, કોઈની આંગઠી કાપી નાંખી, કોઈનું નાક કાપી નાંખ્યું. કોઈના કાન કાપી નાંખ્યા અને કોઈની આંસ કાઢી નાંખી. આ પ્રમાણે સર્વ પુત્રોને લંઘિત અંગવાલા કર્યાં. એ પ્રમાણે ઘણો કાલ વ્યતીત થતાં ફરીથી પાછો પદ્માવતીએ મુસ્વમ્પથી સૂચિત ગર્ભ ધારણ કર્યો. તે વસ્તે મંત્રીની સ્ત્રી પોટ્ટિલાએ પણ ગર્ભ ધારણ કર્યો. તેથી મંત્રીને ચોલાવી રાણીએ કહ્યું કે 'મુસ્વમ્પથી સૂચિત મેં ગર્ભ ધારણ કર્યો છે, માટે તેના જન્મ વસ્તે આપે છઠ્ઠે જન્મે શુભ રીતે તેનું રક્ષણ કરવું કે જેથી તે રાજ્યાધિકારી થાય અને તમને પણ આધારભૂત થાય.' મંત્રીએ કબુલ કર્યું. યોગ્ય સમયે પુત્ર પ્રસવ્યો મંત્રીએ શુભ રીતે તે પુત્રને પોતાની સ્ત્રી પોટ્ટિલાને સોંપ્યો અને તે વસ્તે પોટ્ટિલાએ પ્રસવેલી પુત્રી રાણીને આપી. પછી ઢાસીએ રાજાને જણાવ્યું કે 'રાણીને પુત્રી જન્મી છે.'

અહીં મંત્રીને ઘેર રાજપુત્ર મોટો થતાં તેનું કનકધ્વજ નામ પાડ્યું. અનુક્રમે તે યૌવનવયને માત્ર થયો. એ અવસરે કનકકેતુ રાજા મૃત્યુ પામ્યો. તેથી સર્વ માંડલિક રાજા ચિંતા કરવા ઠાગ્યા કે 'હવે રાજ્ય કોને સોંપવું?' તે વસ્તે મંત્રીએ રાણીની બધી હર્ષાકત જણાવી. તેથી કનકધ્વજ રાજાનો પુત્ર છે એ જાણી સઘળા ઘણા સુશી થયા અને તેને મોટા આદંબરથી રાજ્યગાદીએ વેસાઢ્યો.

કનકધ્વજ રાજા 'આ મંત્રીએ મારા ઉપર મોટો ઉપકાર કર્યો છે' એ જાણી તેનું ઘણું સન્માન કરવા ઠાગ્યો. ઘણા આનંદથી રાજ્યનું પાલન કરતાં કેટલોક વસ્તે વ્યતીત થયો. અન્યદા મંત્રીની સ્ત્રી પોટ્ટિલા જે પહેલાં મંત્રીને પ્રાણ કરતાં પણ અધિક પ્રિય હતી તે કોઈ કર્મના દોષથી અપ્રિય થઈ પડી. તેથી મંત્રીએ તેની શર્યા જુદી કરાવી, જેથી પોટ્ટિલાના મનમાં ઘણું દુઃખ થવા લાગ્યું. કહ્યું છે કે—

आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां, गुरुणां मानमर्दनम् ।

प्रथक शय्या च नारायणमशस्त्रवध उच्यते ॥

“ राजाशोनी आज्ञानो भंग करवो, गुरुशोना मानहुं मर्दन करवुं अने स्त्रीशोनी जुदी शय्या करवी-ए शस्त्र चगरनो वध छे. ”

भर्तारना अपमानथी पीडित थयेछो पोष्टिछा विशेष प्रकारे दान विगेरे धर्मकृत्यो करवा लागी. ते समये तेने घेर एक सुव्रता नामना साध्वी आहारने माटे आव्या. तेनी सन्मुख जइ, शुद्ध आहार बहोराबीं, हाथ जोडोने पोष्टिछाए कहुं के ‘ हे भगवती ! तेहुं काइक करो के जेयी मारो भर्तार मारे वध थाय. परोपकार एज-भोइं पुण्य छे. कहुं छे के-

दोपुरिसे धरइ धरा, अहवा दोहिं वि धारिया धरणी ।

उवयारे जस्स मई, उवयारो जं न वीसरइ ॥

“ बे पुरुष उपर आ पृथ्वी धारण करायेकी छे अथवा बे पुरुषोए आ पृथ्वीने धारण करीछे. (ते बे पुरुष कोण ?) एरु तो जेनो उपकार करवामां बुद्धि वर्तैछे-उपकार करवायां जे तत्पर छे, अने बीजो जे उपकारने विसरतो नथी-कोइए उपकार कर्यो होय तो ते भूलो जतो नथी ”

ए प्रमाणे पोष्टिछातुं कहेवुं सांभळीने सुव्रता साध्वीए कहुं के-“ आ तुं शुं घोली ? उत्तम स्त्रीए आवी प्रवृत्ति करवी योग्य नथी. कारणके मंत्र विगेरेथी पतिने वध करवो ए मोटो दोष छे, अने अमें तो सर्वविरति ग्रहण करैछोछे, तेथी कामण विगेरे करवां ए अमने तो उचितज नथी. तुं जे भोगो भोगववाने माटे वशीकरण करवा इच्छेछे ते भोगो सांसारिक दुःखोना कारणभूत छे. विषयो, क्रिपाक फळनी पेठे मारंभमां रम्य छागेछे पण परिणामे अति दारुण छे. छांवा बखत तेहुं सेवन करीएतो पण तेनायो वृत्ति थती नथी. तेथी आ विषयनी अभिलाषाने तजी दइने जिनोदित शुद्ध धर्म आचार के जेयी तने सर्व प्रकारनो सिद्धि प्राप्त थये. ” पोष्टिछाए ते बात कबुछ करी अने पोताना भर्तारनी आज्ञा छइने तेणे चारित्रं ग्रहण कर्युं. भर्तार एण क्रोधरहित थइने कहुं के “ तने धन्य छे के ते आंवा उत्तम धर्म ग्रहण कर्यो, हवे तुं देवी रूप थये, माटे देवी थइने तारे मने प्रतिबोध पमाडवाने माटे जरूर आवबुं. ” तेणे ते कबुछ कर्युं. ते पोष्टिछा पृथ्वी उपर विहार करवा लागी, अने चिरकाल सुधी निर्दोष चारित्र पाळी देवकोक्यां उत्पन्न थइ.

पछी अविज्ञानथी पोतानो पूर्व भव जाणी पूर्व भवना भर्तारने प्रतिबोध करवा माटे ते पोष्टिछादेव मंत्रो पासे आव्यो. तेणे धनो उपदेश कर्यो, प्रण तेतकीपुत्र मंधान

प्रतिबोध पाभ्यो नहि. तेथी देवे विचार्युं के 'आ राज्यमोहयी.प्रतिबोध पामतो नयी. पळी ते देवे राजातुं चित्त प्रधान उपरयी फेरवी नांख्युं. एटछे मंत्री ज्यारे सभायां आभ्यो त्यारे राजा पराङ्मुख थइने वेठो, मंत्रीने दर्शन आप्युं नहि. तेथी तेतलीपुत्रे विचार्युं के "राजा मारा उपर रूढमान थया छे. कोइ दुष्टे मारुं छिद्र तेमने कहेळं जणाय छे. आमां खबर पडती नयी के राजा मने गुं करशे ? अथवा कया प्रकारना मरणथी मने मारशे ? तेथो आत्मघात करीने मरखुं एज वधारे सारुं छे." ए प्रमाणे विचार करी घरे आवीने तेणे गळामां फांसो नांख्यो. देवना माहात्म्यथी ते पाश जुटी गयो; एटछे विष खाधुं ते पण अमृत जेठुं थइ गयुं. त्यारे तरवारथी पोतातुं मस्तक कापवानो आरंभ कर्यो. देवे खड्गनी धार बांधी लीधी. वळी अग्निमां प्रवेश करवा तैयार थयो. ते अग्नि जळरूप थइ गयो. ए प्रमाणे तेणे लीधेळा मरणना सर्व उपायो ते देवे व्यर्थ कर्या. पळी प्रगट थइने पोट्टिलादेव बोल्यो के 'आ सघळ' में कयुंछे, तुं शामाटे आत्मघात करेछे ? चारित्र ग्रहण कर. ' ते सांभळीने तेतलोपुत्र प्रधाने चारित्र ग्रहण कयुं. राजा आवीने तेना पगमां पडयो. घणो काळ पृथ्वीपर विहार करी, चौद पूर्वनो अभ्यास करी, घातिकर्मनो क्षय थवाथी केवळज्ञान पामी, तेतलीपुत्र मुनिमोक्षे गया.

विसयसुहरागवसओ, घोरो भांयावि जायरं हणइ ।

आहाविओ वह्थ्यं, जह् वाहुवलिस्स भरह्वइ ॥ १४७ ॥

अर्थ—“ विषयसुखनो जे राग तेना वक्षपणाथी घोर के० (शस्त्रादि ग्रहण करेळा होवाथी) भयंकर एवो भाइ पण भाइने हणे छे. जेम भरतपति (भरत चक्रवर्ती) वाहुवळीना वधने माटे दोडया इता तेम.” १४७ आ दृष्टांत प्रथम आवी गयेळ छे.

जज्जावि इंदियविगार—दोसनमिया करेइ पइपावं ।

जह् सो पइसिराया, सूरियकंताइ तह् वहिओ ॥ १४८ ॥

अर्थ—“ इंदियोना विकार संबधी दोषथी विडंबित थयेळी भायां पण पतिहिंसारूप—पतिने मारी नाखवा रूप पापने करे छे. जेम ते प्रदेशी राजाने तेना सूरिकांता नामनी राणीए विष देवा विगेरे बडे मारी नांख्यो तेम समजवुं.” १४८ आ संबध पण पूर्वे आवी गयेळ छे.

गाथा—भातरं । आधावितो वधार्थ । वाहुवलिस्स ।

गाथा—पयपावं । पतिपापं—पतिहिंसारूप पापं.

सासंयंसुखंतंरसी, नियञ्जंगसमुञ्जवेण पियपुत्तो ।

जहूँ सौ सैणियराया, कोणियरन्ना खयं निञ्चो ॥ १४९ ॥

अर्थ—“ हूँने पुत्रना स्नेहनुं पण व्यर्थपणुं वतावे छे. जेम शाश्वत सुख मेळववाने उत्सुक एवो ते श्रेणिक राजा भगवंतनां वचनमां रक्त अने क्षायक समकितघारो तेने पोताना अंगथीज उत्पन्न थयेछा अने भिय-बहाला एवा पुत्रे कोणिक राजाए क्षय पमांडयो-बिनाश पमाडयो तेम.” १४७ अर्थात् पुत्रनो स्नेह पण एवो व्यर्थ समजवो. अही कोणिकराजानुं दृष्टांत जाणवुं.

कोणिक राजानुं दृष्टांत.

श्रीभायमान घोरोथी भरपूर अने नगरमां प्रसिद्ध एवा इभ्यजनोनी श्रेणीथी पूर्ण एवुं राजशुह नामे एक शहरे हतुं. त्या जिनभक्तिमां रक्तचित्तवाळो श्रेणिक नामे राजा राज्य करतो हतो. ते श्रेणिक राजाने उत्तमशील अने लावण्यथो भरपूर, सुंदर रूप-वाळी, अत्यंत प्रीतिवाळी अने निर्मळ गौर वर्णवाळी चिच्छणा नामे पट्टराणी हती. श्रेणिक राजा साथे पूर्व जन्ममां जेणे वैर वांध्युं छे अने जेणे पुष्कळ तप कर्तुं छे एवो कोइ जीव छीपनी अंदर जेम मोती उत्पन्न थाय तेम चिल्लणाना गर्भमां उत्पन्न थयो. पछी चिल्लणाने गर्भनाप्रभावथी श्रीजे महिने पोताना प्राणनाथना हृदयतुं मांस खात्रारूप अद्रुम दोहद उत्पन्न थयो, तेथी ते घगी दुर्बळ थती गइ. राजाए राणीने दुर्बळता संबंधी आग्रह-पूर्वक पूछथुं त्यारे तेणे पोतानो दुष्ट विचार जणाव्यो. ते सांबळी कामरागवडे राजाए तेने कहुं के ‘हे कमलाक्षी! तुं जरा स्वस्थ था.’ पछी राजाए ते बात अमय कुपारने करी. तेणे राजाना हृदय उपर अन्य प्राणीनुं मांस बांधी, छरीथी तेने कापीने राणीने दोहद प्रपंचथी पूर्ण कर्यो. ते कृशांगीए क्रमे करी पुत्रने जन्म आप्यो अने ते जीवता पुत्रने अशोकवाडीमां कोइ वृक्षना मूळमां मूकथो. ते बात दासीमुखथी सांबळीने राजाए स्नेहवशे ते पुत्रने लइ आबो पाळो राणीने सोंपवो. राजाए हर्षथो प्रथम ते पुत्रनुं नाम अशोकचन्द्र पाडथुं. परंतु कुकडाए तेनो आंगळोने दंश कर्यो हतो तेथी ते बाळक उक्त दंशने छीथे कोणिक नामथी ओळखावा लाग्यो. ते आंगळोनी वेदनाथी ते बाळक मोटेथी रडवा लाग्यो. तेथी राजाए ते आंगळो पोताना मुखमां राखोने तेने समाधिवाळो कर्यो. वाल्यावस्था व्यतीत थतां तेणे अन्य राजपुत्रोनी साथे पाणिप्र-हण कर्तुं अने तेनी साथे विषयसुख भोगववा लाग्यो.

कोणिकने देवसदृश हल्ले अने विहल्ले नामना बे नाना भाइओ थया हता. श्रेणिक राजाए कुंडल, हार अने हस्ती रूप दिव्य वस्तुओ पोताना नाना पुत्र हल्ले विहल्ले आपी. त्रेथी इषा उत्पन्न थाने लीधे कोणिके पोताना पिताने काष्ठना पिंजरायां नांख्यो अने पोते राजा धयो. पछी ते दररोज कोरडाना मारथी पिताने प्रहार करवा लाग्यो. अन्यदा कोणिक राजानी पत्नी पद्मावतीए एक सुंदर पुत्रने जन्म आप्यो. ते पुत्र बे वर्षनो थयो त्यारे कोणिक राजा तेने पोताना खोळामां बेसाडी पुत्रना मुत्रथी मिश्र अन्न खावा लाग्यो. पुत्रना मोहने लीधे तेने जरा पण जुगृप्सा उत्पन्न थइ नहि. पछी तेणे पोतानी मातानी पासे जइ ते बात कहीने पूअयुं के ' हे मांता ! मने आ पुत्र केवो मिय छे ? ' ते सांभळीने माताए कहुं के ' हे क्रूरमते ! आ तारो ते शो स्नेह छे ? तारा पितानो स्नेह प्रथम तारा उपर आ करतां पण अत्यंत विशेष हतो. ' आ भयाणे पोतानुं पूर्व वृत्तांत पोतानी माताना मुखथी सांभळीने पोताना पिताने कारा-गृहयां नांखवा रूप पोताना निश्च कर्मने निंदतो सतो ते कुडाडो लइने जलदी पांजराने भांगवा माटे चाल्यो. पोताना पुत्रने एषी रीते आवतो जोइ भयभ्रान्त बनेला श्रेणिक राजा तालपुंठ विषना प्रयोगथी पोताना आयुष्यने पूर्ण करी समकितनां छामथी अगाड बांधेली पहेली नरक पृथ्वीने प्राप्त थया,, अर्थात् पहेली नरके गया. कोणिक राजा पोताना पिताने मृत्यु पाभेला जोइ अर्थांत रुदन करवा लाग्यो. तेणे प्रेतविधि करी. त्यार पछी तेमा मुख्य सामंतोए अनेक प्रकारना प्रयोगथी कोणिक राजाने शोकथी निवृत्त कर्यो.

पछी पोतानी प्रियाथी प्रेरित थयेला कोणिक राजाए पेळी अणे दिव्य वस्तुनी हल्ले विहल्लनी पासे मागणी करी. एटले हल्ले ने विहल्ले ते वस्तुओ तथा अन्य सार-भूत पदार्थो लइने पोतानी माताना पिता चेडा राजा पासे गया. वलयी उद्धत थयेला अने अति अभिमानी कोणिक राजा घणां युद्धो करी पापथी कराता अनेक आरंभोयां रक्त थइ आयुष्य पूर्ण करीने छठी नरके गयो.

ए भयाणे पुत्रनो स्नेह पण कृत्रिम छे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

लुक्का सकजातुरिआ, सुहिणोवि विसंवयंति कयकजां ।

जह चंदगुत्तगुरुणा, पठवयओ घायओ रायां ॥ १५० ॥

अर्थ—“ लुक्क, पोतानुं कार्य करवामां स्वरित अने करी लीधुं छे पोतानुं कार्य जेणे एवा स्वजनो—मित्रो पण विपरीत बोळे छे—विपरीत करे पण छे. जेम चंद्रगुप्त राजाना

शुक्र-चाणाक्य नामना मंत्रीए (पोतानुं कार्यं यह गया पत्नी राज्येन्द्रधर्मणांश्री. पोताना मित्र प्रजा) पर्वत नामना राजानो यात कर्योः" १५०, अर्ही चाणाक्यतो संबन्ध जाणवो. ४५.

चाणाक्यतुं वृत्तान्त.

श्वणक नामना गायमां चणी नामे ब्राह्मण वसतो हतो. तेने चणेश्वरी नामे स्त्री हतो. वंजे जैन हता अने जिनभक्तिमां प्रीतिवाळा हता. एक दिवस तेमने दांत सांघे पुत्र जन्म्यो. तेतुं नाम चाणाक्य पाडयुं. ए समये तेमने घेर साधुओ आल्या. एदळे ते-वाळकने साधु महाराजना चरणमां मूकीने चणी मटे पूछयुं के 'हे भगवन्! घारे घेर आ पुत्र दांत सहित जन्म्यो छे तेतुं शुं कारण ? तेतुं महात्म्य शुं हचे ?' साधु ह्यनिराजे कहुं के ' ते राजा थरो.' तयारे यातापिताए विचार कर्यो के ' आ छोकरो कांवा वस्त मुधी राज्यमां आसकिवाळो थवाथी जरु नरके जरो.' एतुं जाणी.तेओए पुत्रना दांत घसी नाख्या.पत्नी फरीने मुनिने पूछतां ह्यनिराजे कहुं के 'दांत घसवाथी ते कोइ राजानो मंत्री थरो अने कोइने अंग्रेसर करीने पोते राज्यपालन कररो.'पत्नी चाणाक्य केदळेक काळे-मोटो थवाथी, सर्व विद्यामां कुशल थयो. यौवनावस्था प्राप्त यतां उत्तम द्विजपुत्रीनी-साथे पाणिग्रहण करी सांसारिक सुख भोगववा लाय्यो. एक दिवस चाणाक्यनो पत्नी प्रोताना भाइना लग्नसंगे. प्रिताने घेरगह.परंतु मामान्य-वेप्र-वाळीने धनरहित होवाथी पिताने घेर पण तेने योग्य सन्मान मळयुं नहि.तेनो बीजी वहेने तयां आवेळी हतो. तेओए-घणां घरेणां अने सुंदर फपडां धारण करेलां होवाथी आइए तेमने बहु सन्मान आयुं. 'अहो! आ जगततुं-मूल कारण घनज छे.'कहुं छे,के-

जातिर्यांतु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां

शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना ।

शौचै वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं

येनैकेने विना गुणास्तुण्यलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

" जाति रसातलमां जाओ अने गुणसमूह तेयी पण नीचे जाओ, शीक पर्वतजा शिखर उपरथी नीचे पडो, सर्गावहाळां अग्निथी वळी जाओ,शरवीरपणा उपर जळदी वज्र पडो, परंतु अमने मात्र धन मळो; केमके एक जन विना आ समस्त गुणो तुणकच जेवा छे. "

बीजी वेनोने तेनो भाइ सघळां कार्यो विगेरेमां पण पूछेछे, परंतु चाणाक्यनी पत्नी जे पोतानी वेन तेनी तो सांघे पण जातो नथी; तेनी ते खेद करती सवी

ધરને સુને બેસીને વિચારે છે કે 'મારા ધનગૃહિત જીવનને ધિકાર છે ! કારણ કે
 'સગા માઈએ પણ તે કારણથી પંક્તિબેદ કર્યો.' પછી વિવાહનુ કાર્ય સમાપ્ત થયે ત્તિષ
 મને તે પોતાને ઘેર આવી. ઘાણાક્યે પૂછ્યું કે 'તું હદેગ મનઘાઠી કેમ જાણ્ય છે ?'
 'પટ્ટે તેણે સઘઠું ખ્રાહરુવરૂપ નિવેદન કર્યું. તે સાંઘઠી ઘાણાક્યે મનમાં વિચાર કર્યો કે
 'નિર્ધન ઇશી મારીં છીને તેના સગા માઈએ પણ આટલ આચો નહિ; તેથી હુ ઘન યેઠ
 ષીને મારો છીનો મનોરથ પૂર્ણ કરીશ.' ઇમ ચિંતથી તે પરદેશ ચાલ્યો. ફરતાં ફરતાં
 પાટણીપુર નગરમાં નંદ રાજાને યાચવા માટે ગયો. ત્યાં રાજસભામાં રાજાનુ મુલ્લુ આસ
 હતું તેના ઉપર જડને બેઠો. દામીએ કહું કે 'હે બ્રાહ્મણ ! આ રાજાનુ મદ્રાસન છોડીં
 અન્ય આસન ઉપર બેસો.' ત્યારે ઘાણાક્યે કહું કે 'તે અન્ય આસન ઉપર મારું કમઠ
 રહેશે.' ઇ પ્રમાણે કહી તેણે તેના ઉપર પોતાનુ કમઠહલ રુવ્યુ ઇલીં દામીં ઇ મીલું આસન
 ઘતાઘ્યું. ત્યારે ઘાણાક્યે કહું કે 'તે આસન ઉપર મારો ટહ રહેશે.' ઇ ઇ કહી ત્યાં
 દંદ મૂક્યો. ત્યારે દાસીએ ઘોયું આસન ઘતાઘ્યુ. ત્યાં તેણે રાજા ઇકી ત્યારે દામી
 ઇ પાંચઠું આસન ઘતાઘ્યું. ત્યાં તેણે યજ્ઞોપવીત રૂવ્યુ ઇ પ્રમાણે તેણે ળને આમનો
 રોઘયાં; ત્યારે કોપિત થયેઠી દાસીએ કહું કે 'અને ! તુ કોઈ મોટો ઘુષ્ટ રેલાય છે.
 કારણ કે પ્રથમઠું મદ્રાસન તું છોડતો નથી ને નવાં નવાં આમનો રોઘે છે 'પછી
 દાસીએ તેને પાદમહાર કર્યો. તેથી પાદમહાર કરાયેઠા સર્પની માફક ઘોઘથી ઇમો
 ઘડને તે ઘોલ્યો કે 'દુષ્ટ ઘાકરડી ! તું અત્યારે મારી અઘગળના કરે છે. પરંતુ ઘ્યારે
 પરંપરાથી આવેઠા નંદના રાજ્યને ઇલેઠી નાંઘી આ સ્યાને નમીન રાજાને બેસાડું
 ત્યારેજ મારું નામ ઘાણાક્ય સ્વરું.' ઇ પ્રમાણે કહી નગરની ઘહાર નીકઠી મનમાં
 વિચાર કરવા લાગ્યો કે 'પ્રથમ સાઘુ મુનિરાજે મારી ઘાઘતમાં કહું છે કે 'આ ઘાઠક
 ઘિંઘાંતરિત રાજા ઘશે.' માટે હું રાજા ઘવા લાયક કોઈ પુરુષને ઘોધી કાડું.' ઇ
 પ્રમાણે ઘિચારી ઘળાં ગામો ને નગરો જોતો જોતો નંદ રાજાના મયુરપાલકના ગામમાં
 આવ્યો, અને સન્યાસીના ઘેઘે મિહા અર્થે ફરવા લાગ્યો. ત્યાં મયુરપાલકની છીને મર્મના
 માહાત્મ્યથી ઘીજે મહિને ઘંદ્રપાન કરવાનો ઘોહદ થયો છે. તે ઘોહદ કોઈ પણ ઉપાયથી
 પૂર્ણ ઘવાઠું અઘક્ય ઘારી તે પોતાના મર્તારને કહેતી નથી. અને ઘિઘસે ઘિઘસે ઘુઘલ
 ઘતી જાય છે. પછી તેના મર્તારે તેને આઘ્રહથી પૂછ્યું પટ્ટે તેણે ઘયાર્થ ઠકીકત
 જાણવી. મયુરપાલક પણ ઘાણાક્યને જોઈ ઘોહદને પૂર્ણ કરવાનો ઉપાય તેને પૂછવા
 લાગ્યો. ત્યારે ઘાણાક્યે તેને કહું કે 'જો ઇ મર્મમાં રહેઠો પુત્ર મને આપો તો આ
 ઘોહદ પૂર્ણ કરવાનો ઉપાય હું કરું, નહિતો ઘોહદ પૂર્ણ કર્યા ઘિચાય છીનો અને

गर्भेनो-वर्धनेनो विनाश यशे.' ए प्रमाणे सांभळी पंचनी समक्ष पुत्र आपवानुं कर्तुं कर्तुं. एदळे चाणाक्ये एक घासतुं घर बनाव्युं अने तेना उपर एक छिद्र राख्युं. एक माणसने क्रमेक्रमे छिद्र दांकवा माटे एक दांकणुं आपी ते घर उपर राख्यो अने घरनो अंदर गर्भवती स्त्रीने राखी. पछी ज्यारे पूर्णिमानो चंद्र अर्ध रात्रिए आकाशना यष्य भागमां आव्यो त्यारे दूषनी भरेली थाळी लह ते स्त्रीनी आगळ सूकी, अने ते थाळीमां चंद्रतुं प्रतिबिंब पड्युं त्यारे चाणाक्ये कहुं के ' हे भाग्यवती ! तारा भाग्ययी आ. चंद्र. अत्र आव्यो छे, तेथी हर्षित थइ तेतुं पान कर.' ए प्रमाणे कहेतां तेणे चंद्रतुं पान करवानी शक्यात करी. जेम जेम ते दुधतुं पान करती हती तेम तेम छापरा उपर रहेलो माणस पेळा दांकणवती छिद्रने दांकतो हतो. थाळीनी अंदर रहेळा प्रतिबिंबित चंद्रतुं संपूर्ण पान थयुं एदळे पेळुं छिद्र पण पूर्ण ढंकाइ गयुं. तेनो दोहद पूर्ण थयो. कारणके ते समजो के 'मे चंद्रतुं पान कर्तुं. ए प्रमाणे तेनो दोहद पूर्ण करी 'आ गर्भ राज्यनो अधिपांत थशे' एम निश्चय करी चाणाक्य घातुविद्या शिखवाने माटे देशांतर गयो.

देशाटन करतां क्रेटलेक काळे चाणाक्ये स्वर्णसिद्धि मेळवी. अहीं पेळो बाइए पुत्र मसव्यो. तेनु 'चंद्रगुप्त' नाम पाडयुं. अशुक्रमे ते आठ वर्षेनो थयो. ते गाममां सरलो वचना वाळको साथे क्रीडा करेछे; तेमां पोते राजा थायछे अने कोइने गाम आपेछे, कोइने दश आपेछे अने कोइने रिछातुं अधिपतिपणुं आपेछे. तेवा वखतमां चाणाक्ये पण त्यां आवीने ते जोयुं, अने तेमी पासे याचना करो के ' हे राजन् ! सघळाओने ज्यारे तुं मनवाञ्छित आपेछे त्यारे मने पण कांइक वाञ्छित आप.' त्यारे चंद्रगुप्त बोल्यो के ' आ सघळी गायो हुं तने आपुंछुं ते तुं ग्रहण कर.' ए प्रमाणे सांभळीने चाणाक्य बोल्यो के ' आ वधी पारकी गायो छे ते माराथी केम लइ शक्या ? ' त्यारे चंद्रगुप्त कहुं के ' जे समर्थ होय तेनीज आ पृथ्वी छे.' त्यारे चाणाक्ये छोकराओने पूछ्युं के ' आ वाळक कोनो छे ? ' वाळकोए कहुं के ' एक परिव्राजकने आपेळो अने चंद्र-पानना दोहदयी उपपन्न थयेळो चंद्रगुप्त नामनो आ वाळक छे.' ए सांभळीने चाणाक्ये चंद्रगुप्तने कहुं के ' हे वरस ! जो तारे राज्यनी इच्छा होय तो मारी साथे वाळ, हुं. तने राज्य मेळवी आपीश.' ए प्रमाणे कही चंद्रगुप्तने साथे लइ चाल्यो. अशुक्रमे वातु विद्यावडे घन उत्पन्न करी थोडूं सैन्य मेळवी पाटलीपुरने घेरो घाल्यो. -नंदराजाए पोताना मोटा सैन्यथी ते सैन्यने पराजित कर्तुं, तेथी चाणाक्य चंद्रगुप्तने लइने नासी गयो. नंदराजाए तेने पकडवाने पाळळ सैन्य भोकल्युं. तेमांनो एक स्वार नजीक आवी पहेंच्यो, त्यारे चंद्रगुप्तने सरोवरमां राखीने चाणाक्य पोते ध्यान घरी योगी थइने वेठो. ते वखते ते स्वारे आवीने पूछ्युं के ' हे योगीश्वर ! नंदराजाना त्रैरी चंद्रगुप्तने जतां तूमे

जोयो, छे ? ' चाणाक्ये आंगळीनी संज्ञाथी सरोवरमां रहेली चंद्रगुप्तने वर्ताव्यो. तेने पकडवाने माटे घोडा उपरथी उतरीने ते स्वार लुगडां ने झळो उतारी जळमां भवेच करे छे तेवामां चाणाक्ये उठीने ते स्वारतुं मस्तक तेनाज खड्गथी छेदी नांरुंधुं. पछी चंद्रगुप्तने बोळावी तेना घोडा उपर बेसाडीने तेओ आगळ चाल्या. मार्गमां चाणाक्ये चंद्रगुप्तने पूछ्युं के ' हे वत्स ! में ज्यारे तने अंगुलिसंज्ञाथी घताव्यो त्यारे तने जो विचार आव्यो ? ' चंद्रगुप्ते कहुं के ' हे तात ! में विचार्युं के आपे जे कर्तुं हशे ते व्याजवीज कर्तुं हशे. ' ए प्रमाणे सांभळीने चाणाक्ये चिंतव्युं के ' आ चंद्रगुप्त सु-चिंत्यनी पेठे आज्ञांकित यशे. '

चाणाक्य अने चंद्रगुप्त ए प्रमाणे वातचित करतां चाल्या जाता हता, तेवामां एक बीजे स्वार तेओनी पाळळ आव्यो. फरीथी पण चंद्रगुप्तने सरोवरमां राखीने लुगडां घोडा घोडीने भय देख्वाडी नसाडी मूकीने चाणाक्य पोते घोडी वनी लुगडां घोवा ला-ग्यो. ए वखते घोडेस्वारे आवीने पूछ्युं के ' चंद्रगुप्त कयांछे ? ' त्यारे चाणाक्ये पूर्ववत् अंगुलिसंज्ञाथी तेने तळावमां वर्ताव्यो अने प्रथम प्रमाणे तेतुं पण माथुं कापी नांरुंधुं. पछी बने जण बेघ घोडा उपर स्वार थड आगळ चाल्या. मध्याह्ने चंद्रगुप्तने भूख लागी. त्यारे चंद्रगुप्तने गामनी बहार राखी चाणाक्य गाममां आव्यो, ते वखते तेनी सामो दर्हीभात खांने आवतो ब्राह्मण मळयो. चाणाक्ये पूछ्युं के ' अरे भटनी ! आपे थुं भोजन कीथुं छे ? ' तेणे कहुं के ' में दर्हीभात खाधा छे. ' पछी चाणाक्ये विचार कयीं के ' गाममां भिक्षाने माटे करतां मने घणी वार लागशे, तेथी नंद राजाना पाळळ आवतां थोड्याओ वखते चंद्रगुप्तने पकडीने मारी नांखे; माटे आ ब्राह्मणतुं पेट चीरी दर्हीभात-नो पडीयो भरिने लइ जावं. ' एम विचारी ते प्रमाणे करी ते करंवावडे चंद्रगुप्तने जमाडीने संध्यासमये कोइक नामे पहांच्या. त्यां भिक्षा अर्थे भिक्षुकवेचे कोइ एक छद्म छीने वेर गंया. ते अवसरे ते वृद्धाए पोतानां वाळकोने उनी राव पीरसेली हती, तेमांथी एक वाळक थाळीना मध्य भागमां हाथ नांखवाथी बळयो ने रडवा लाय्यो. त्यारे वृद्धाए कर्तुं के ' तने धिक्कार छे ! तुं पण चाणाक्यनी पेठे शामाटे मूर्ख थाय छे ? ' ते वचनो सांभळीने चाणाक्ये ते वाडिने पूछ्युं के ' हे बीता ! चाणाक्य केवी रीते मूर्ख थयो ते वात कहों. ' तेणे कहुं के सांभळ-आगळनां पाळळनां ने पडखे आवेळा गायो ने नगरने साध्या शिवाय चाणाक्य पहेलोज पांढळीपुत्र गयो एटछे ते हायीं ने बीगी जवुं पड्युं. तेथी रीते आं भारो पुत्र पण वाळुमां रहेली ठंडी रावने छोडीने मर्दमां रहेली उनी रावमां हाथ नांखवाथी दाइयो, तेथी रुवे छे. ' पछी ते वृद्धाए आपेजो उपदेश मर्दमां थाद राखीने चाणाक्य हिंमालय तरफ गयो. त्यां तेणे 'पर्वत' नामना रा-

जानी साथे मैत्री करी. केटलाक दिवस गया पछी पर्वत राजाने अर्धु राज्य आपवुं कबुछ करी मोहुं सैन्य मेळवी आसपासना अनेक देशोने साथीने पछी चाणाक्य पाटलीपुत्र आब्यो. नंदराजानी साथे मोहुं युद्ध थयुं. तेमां नंदराजा हायेँ. तेथी तेणे धर्मद्वार मागी लीधुं, एटळे पोताने नीकळी जवानो रस्तो आपवानी याचना करी. चाणाक्ये ते बात स्वीकारी तेथी ते रथमां बेसी पोतानी स्त्री, पुत्री अने थोडुं सारभूत द्रव्य छइ नगर बहार नीकळी गयो.

ते बलते रथमां वेटेली नंदराजानी पुत्री नंगरमां प्रवेश करता चंद्रगुप्तजुं लावण्य जोइ मोह पायी. नंदराजाए ते जाण्युं, एटळे चंद्रगुप्त उपर पुत्रीनो स्नेह जोइ नंदराजाए तेने पोताना रथमांथी उतारी मूकी. ते तरतज चंद्रगुप्ताना रथ उपर बढो गइ. तै बलते रथना नव आरा मांगी गया. ते जोइ चंद्रगुप्ते चाणाक्यने कहुं के 'हे पिताजी ! नंगरप्रवेश बलते आ अपभुक्तन थायळे.' चाणाक्ये कहुं के 'हे वत्स ! आ शुभ शुक्न छे, कारणके रथना नव आरा भांग्याळे तेथी ताहं राज्य नव पुष सुधी (नव पेढी सुधी) स्थिर थजे.' पछी नगरमां आंवा चंद्रगुप्ते नंदराजानो पुत्री साथे पाणिग्रहण कर्युं.

नंदराजा राज्यमहेलनी अंदर एक रुपवती विषकन्या मूकी गयो हतो. तेने चाणाक्ये अनुमानथी दोषबडे दुषित जाणीने पर्वत राजानो साथे परणावी. तेना अंगना स्पेशीयी पर्वत राजाजुं शरीर विषव्याप्त यइ गयुं. ते बलते चंद्रगुप्ते कहुं के 'आ पर्वत राजानी सहायथी आपणे राज्य मेळव्युं छे अने आ मित्र मरी जायछे, माटे तेनी विक्रित्सा करवी जोइए.' चाणाक्ये कहुं के 'विक्रित्सा करवाथी सर्युं, औषध विना व्याधि जायछे.' आ प्रमाणे कार्य साथी मरता मित्र प्रत्ये तदन वेदरकारी बतावी. तेथी मित्रस्नेह पण कृत्रिम छे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

निययांवि निययंकज्जे, विसंबयंतंमि हुंति खरफरसां ।

जह राम सुलुमकओ, बज खत्तस्त आसि खश्चो ॥ १५१ ॥

अर्थ—“पोताना स्वजनो पण पोताजुं कार्य विघटमान थये संते अर्थात् धायी प्रमाणे सिद्ध नहि थये संते खर के० रौद्र कर्मना करनारा अने फरस के० कर्कश वचनो बोळनारा थायछे. जेम राम ते फरशुराम अने सुभूय चक्रवर्तीनो करेळो ब्राह्मणो अने क्षत्रियोनो क्षय थयो तेम.” १५१. परशुरामे सात बलत निःक्षत्रो पृथ्वी करी, ने सुभूये एकवीध बलत अत्राक्षणी पृथ्वी करी. पोताना कार्यनी सिद्धिने माटे आ प्रमाणे मोटो क्षय कयेँ, जेमां पोताना स्वजनो पण क्षय यइ गयो. माटे स्वजनस्नेह पण व्यर्थ छे. अही परशुराम ने सुभूमनो संबंध जाणवी. ४६

गाथा १५१-नियंकज्जे-निययंकज्जे. वरकरफरसां. सुलुम. राम-परशुराम.

परशुराम अने सुभ्रूयनी कथा.

सुधर्मा नामना देवलोकमां विश्वानर अने धन्वंतरि नामना वे मित्रदेवो होता. पहेलो जैन हतो अने बीजो तापसभक्त हतो. तेओ परस्पर धर्मवार्ता करता सता पोत-पोताना धर्मने बरखणता. तेनो निर्णय करवा माटे धर्मनी परीक्षा करवाना हेतुथी तेओ मृत्युलोकमां आख्या. ते समये मिथिला नगरीनो राजा पद्मरथ राज्य छोडोने श्रोवासु-पूज्य मुनिनी पासे चारित्र ग्रहण करवाने जतो हतो. नवीन भावचारित्रवाळा तेने जोइने जैनदेवे कहुं के 'प्रथम आपणे आनी परीक्षा करीए. पछी तमारा तापसनी परीक्षा करीशुं.' पछी भिक्षाने माटे अटन करता ते नवीन भावचारित्रिने अनेक प्रकारनी उत्तम रसवती बतावी, पण ते भावसाधु सत्त्वथी चछित थया नहि. पछी बीजी शेरीयां जतां तेना मार्गमां चारे तरफ देडकोओ विक्कुबीं अने बीजे रस्ते कांटा वेयां. पद्मरथ भावमुनि मंडुकीवाळो मार्ग तजी दइ कांटावाळा रस्ते चाल्या. ते वखते कांटा पगयां भोकावाथी छोहीनी धारा वहेवा लागी अने अत्यंत वेदना थवा लागो. परंतु तेओ जरा पण खिन्न थया नहि, तेमज ईयांसमितिथी चालतां लेशमात्र पण क्षोभ पाम्या नहि. पछी बीजी वार देवे निमित्तियो थइ हाथ जोडी विनय पूर्वक कहुं के " हे भगवन् ! तमे दीक्षा छेवाने जाओछे, पण हुं निमित्तना प्रभावथी जाणुंछुं के तमारं आयुष्य हजु लांबुं छे अने तमने युवावस्था प्राप्त थइछे तो हमणा राज्यमां रही विविध प्रकारना भोग भोगवो, पछो वृद्धावस्थामां चारित्र ग्रहण करजो; कारणके ते वधारे सारं छे. वळी आ सरस विषयोने स्वाद क्यां अने रतीना कोळीआ जेवो आ विरस योगमार्ग क्यां ?" तपारे भावसाधुए कहुं के ' हे भव्य ! जो मारं आयुष्य लांबुं होय तो वधारे सारं, हुं घणा दिवस सुधी चारित्र पाळीश, जेथी मने मोटो लाभ थयो. वळी धर्म संबंधी उद्यम तो युवावस्थामांज करवो जोइए. आगममां पण कहुंछे के-

जरा जावं न पीडेई, वाही जाव न वडई ।

जाविंदिआ न हायंति, ताव सेयं समायरे ॥

" ज्यांसुधी जरा पीडा करे नहि, ज्यांसुधी कोइ प्रकारनो व्याधि थाय नहि, अने ज्यांसुधी इंद्रियो हानि पाये नहि त्यांसुधीमां धर्म आचरवो." वृद्धावस्थामां प्रसंत थयेळो मनुष्य इंद्रियो निर्वळ थवाथी धर्मकरणीमां उद्यम केवी रीते करी शके ?" कहुं छे के-

दंतैरुच्चलितं धिया तरलितं पाण्यंघ्रिणा कंपितं

हृग्न्यां कृकृडलितं बलेन ह्युलितं रूपश्रिया प्रोषितम् ।

प्रासाथा यमञ्जुपतेरिहमहाधाटया जरायामिभ्यं
दृष्णा केवलमेकैकैव सुभ्रमटी हृत्पत्तने नृत्यति ॥

“ यम राजानी मोठी घाबरूप आ वृद्धावस्था प्राप्त थतां दांत हाळेळे, बुद्धि नष्ट थायळे, हायपग कंपेळे, नजर क्षीण थायळे, वळ जतुं रहेळे अने रूप तथा लावण्य चाल्युं जायळे, मात्र दृष्णा एकलीजं सुभ्रमंतुं आचरण करती सती हृदयरूपी नगरमां नृत्य करी रहेळे. ”

आ प्रमाणे ते भावमुनिनी दृढता जोड वने देव खुशी थया अने प्रशंसा करवा लाग्या.पळी जैनदेवे तापसदेवने कळुं के ' जैनोतुं स्वरूप जोयुं ? हवे आपणे तापसनी परीक्षा करीए.' ए प्रमाणे कधी तेओ वनमां गया.त्यां तेओए एक जटाधारी,दृढ,तीव्र तप करतो अने ध्यानमां आरूढ थयेळो यमदग्नि नामने तापस जोयो.तेनी परीक्षा करवा माटे ते दंबो चकळा चकलीतुं रूप धारण करी तेनी दाढीनी अंदर माळो बांधीने रक्षा. पळी चकळो मनुष्यवाणीथी बोल्यो के 'हे बाळा ! तुं अन्न सुखथी रहे.हुं हिमा-छय धर्वते जइने आवुळुं.' त्यारे चकलीए कळुं के 'हे माणनाथ ! हुं तमने जवा दइव नहि;कारण के तमे पुरुषो ज्यां जाओळे त्यां लुब्ध थइ जाओळो. जो तमे पाळा न आवो तो मारी शी गति थाय ? हुं अबळा एकली अहीं केम रही शकुं ? तमारी वियोग माराथी केवी रीते सहन थइ शके ?' ते सांभळी चकलाए कळुं के 'हे बाळा ! तुं शामाटे कदाग्रह करेळे ? हुं जळदी आवीश. जो हुं आवुं नहि तो मने ब्राह्मणनी,स्त्रीनी, बाळकनी ने गायनी हत्यातुं पाप लागे.' त्यारे चकलीए कळुं के 'हुं सोगने मानती नथी. पण जो तमे न आवो तो यमदग्नि तापसतुं पाप मस्तक उपर धारण करो तो हुं तमने जवा दंब ' त्यारे चकळो बोल्यो के 'तुं एम बोल नहि एतुं पाप कोण अंगीकार करे ? ए बचनो सांभळीने यमदग्नि ध्यानथी चळित थयो अने क्रोधवश थइ चकळा चकलीने पकडी कहेवा लाग्यो के 'मारं शुं एटळुं वधुं पाप छे ?' चकलीए कळुं के ' हे मुनि ! क्रोध करो नहि. आपनां धर्मशास्त्र जुओ. कारण के-

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गं नैव च नैव च ।

तस्मात् पुत्रमुखं दृष्ट्वा, स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ॥

“ पुत्र विनाना माणसनी सदगति थती नथी, अने स्वर्गमां तो तेनी गति छेज नहि. तेथी माणसो पुत्रतुं मुख जोहने स्वर्गमां जायळे. ”

तमे पुत्ररहित छे तो तयारी शुभ गति केवी रीते थाय ? तेथी तमारं पातक

मोडुं छे. ' ए प्रमाणे कही परीक्षण करीजे हेचो पोताने स्थाने गया, अने मिथ्यादृष्टि दव हतो ते पण परम जैन थयो.

तेमना गया पळी यमदक्षिण पण पक्षिना हुखनां वचनो सांभळी विचार करवा लाग्यो के ' एद्रणे कही ते बाबत खरी छे, तेथी फोड खीनी साये पाणिग्रहण करी पुत्र दरपन्न करुं तो मारी शुभ गति थाय. ' ए प्रमाणे विचार करी कोष्टक नगरना राजा जितशत्रु समीपे जइ एक कन्या मागी. त्यारे राजाए कहुं के ' मारे सो पुत्रीओ छे, तेओमांथी जे तपने पसंद करे ते कन्या तमे ग्रहण करो. ' ते सांभळीने यमदक्षि अंतःपुरमां आच्यो. त्यां रहेछी सर्व कन्याओए नटाधारी, दुर्वळ,प्रळयी मळीन गात्रा-वाळा अने विपरीत रूपवाळा यमदक्षिने जोडने शुशुकार कर्यो (शुंकी). तेथी तेणे क्रोधवन्न थइने ते सर्व कन्याओने कुब्जा करी नांवी. पाळा वळतां तेणे महेळना आंगणामां धूळमां रमती एक राजपुत्रीने जोइ, तेने तेणे वीजोरुं बताव्युं; एटळे ते छेवाने तेणे लांवो हाथ कर्यो, तेथी तापसे राजा पास जइने कहुं के ' आ कन्या मने इच्छेछे. ' एम कहीने तेने ग्रहण करी. भय पायेळा राजाए हजार गांमोने क्रेटळाक दासदासीओ सहित ते पुत्री तेने आपी; तेथी प्रसन्न थयेळा ऋषिए शेष रहेछी पोताना तपनी शक्तियी पेळी सर्व कुब्जा राजपुत्रीओने सारी करी. ए प्रमाणे सर्व तपने स्वपावी रेणुका बालाने लइने ते वनमां आच्यो. त्यां एक झुं पढा वनावीने तेओ रखा.

अनुक्रमे रेणुका यौवनवती थइ, एटळे तेनी साये तेणे पाणिग्रहण कर्युं. प्रथम ऋतुकाळे यमदक्षिण रेणुकाने कहुं के ' हे सुलोचना ! सांभळ, तारे माटे एक चरु मंत्रीने तने आपुंछुं, ते खावाथी तने एक सुंदर पुत्र थयो. ' त्यारे रेणुकाए कहुं के ' हे स्वाग्नि ! वे चरु मंत्री आपो के जेमांन एक चरुथी ब्राह्मणपुत्र थाय अने वीजाथी क्षत्रियपुत्र थाय. हुं क्षत्रियचरु हस्तिनापुरना राजा अनंतवीर्यनी स्त्री मारी वेन अनंगसेनाने आपीस अने ब्राह्मणचरु हुं खाइश. ' ए प्रमाणे रेणुकाना कुहेवाथी यमदक्षिण वे चरु मंत्री पोतानी स्त्रीने आप्या. पळी रेणुकाए विचार कर्यो के ' मारो पुत्र शूरवीर थाय तो साहं. ' एम विचारी तेणे क्षत्रियचरुं भक्षण कर्युं अने ब्राह्मणचरु तेनी वेन अनंगसेनाने मोकल्यो. तेणे ते खाधो. तेने एक पुत्र थयो तेचुं नाम कीर्तिवीर्य पाव्युं, रेणुकाने पुत्र थयो तेचुं ज्ञान, राम, प्राडवामां आच्युं.

राम युवान थयो एवामां अतिसारना रोगथी पीडित एक विद्याधर ते आश्रममां आच्यो. रामे तेनो सत्कार कर्यो अने औषधना भयोगथी तेने स्वस्थ कर्यो, तेथी ते विद्याधर प्रसन्न थइने रामने परशुविद्या आपी, तेणे परशुविद्या साधी, तेथी ते परशुरामना नाम-

માં પ્રસિદ્ધ થયો. પછી દેવતાથી અધિષ્ઠિત થયેલી પરશુ (કુહાવી) ને ઘડને અજય્ય
 एवो ते ज्यां त्यां फरवा लाग्यो.

અન્યદા પરશુરામની-માતા રેણુકા હસ્તીનાપુરમાં પોતાની વેનને મલ્લા અર્થે ગઈ.
 ત્યાં પોતાની વેનના પતિ અનંતવીર્યની સાથે સંવંધ થવાથી તેને ગર્ભ રહ્યો. અનુક્રમે તેને
 પુત્ર થયો. પછી પુત્ર સદિત રેણુકાને યમદગ્નિ પોતાના આશ્રમમાં આણી. પરશુરામે માતાનું
 દુઃખરિત જાણી પોતાની પુત્રવતી માતાને મારી નાંચી આ સ્વર અનંતવીર્યને પહવાથી
 તેણે ત્યાં આવી યમદગ્નિના આશ્રમને યાંગી નાંચ્યો. તેથી ક્રોધિત થયેલા પરશુરામે
 પરશુથી અનંતવીર્યનું મસ્તક છેદી નાંચ્યું. પછી તેનો પુત્ર કીર્તિવિર્ય રાજ્યાધિકારી થયો.
 તેણે પિતાનું વેર વાઢવા માટે પરશુરામના પિતા યમદગ્નિને મારી નાંચ્યો. તેથી પરશુ-
 રામે ત્યાં જઈ પરશુના પ્રભાવથી કીર્તિવિર્યને હણી હસ્તીનાપુરનું રાજ્ય છડી છોડું. તે
 વસતે ચૌદ સ્વમયી સૂચિત ગર્ભ જેણે ધારણ કર્યો છે એવી કીર્તિવિર્ય રાજાની તારા
 નામની સ્ત્રી પોતાના પતિના મરણ સમયે નાચી ગઈ. તે વનમાં તાપસોના આશ્રમે આવી પહોં-
 ચી. ત્યાં જઈ તેણે તાપસોને પોતાનું સર્વસ્વ (વૃષાંત) કહ્યું. દયાથી આર્દ્ર ચિત્તવાલા તાપસો
 તેને શુભ રીતે મોંચરામાં રાચી. અનુક્રમે તેને ત્યાં પુત્ર થયો. તેનું નામ સુભૂમ નામ પાડ્યું.
 અનુક્રમે તે મોટો થવા લાગ્યો. પરશુરામે સ્ત્રિયો ઉપર ક્રોધ કરીને સાત વાર નક્ષત્રી
 પૃથ્વી કરી અને મારેલા સ્ત્રિયોની ઢાહોને ઇકઠી કરીને ઇક યાલ મરી મૂક્યો.

एक दिवस फरतो फरतो परशुराम पेला तापसोनी छुंपढीए आब्यो, त्यारे परशुनी
 અંદરથી જ્વાલા નીકળવા લાગી. તેથી પરશુરામે તાપસોને પૂછ્યું કે 'સ્વં વોલો કોઈ
 पण क्षत्रिय अहीं छे? कारणके मारी परशुमांषी अंगारा बर्षे छे.' ત્યારે તાપસોએ કહ્યું
 કે 'અમે સ્ત્રિયો છીએ. પરશુરામે તપસ્વીઓ ધારીને તેમને છોડી દીધા. એ પ્રમાણે સર્વ
 સ્ત્રિયોને મારીને તે નિષ્કંટકપણે હસ્તીનાપુરનું રાજ્ય મોગવવા લાગ્યો. એક દિવસે
 પરશુરામે કોઈ નિમિત્તિયાને પૂછ્યું કે 'મારું મૃત્યુ કોનાથી થશે?' નિમિત્તિકે કહ્યું કે
 'જેની દૃષ્ટિથી આ સ્ત્રિયોની ઢાહો ક્ષીરરૂપ થઈ જશે અને તેનું મોજન જે કરશે તે
 તમને મારશે.' તે સાંભળીને પરશુરામે પોતાના મારનારને ઓલ્લસવા માટે ઇક
 दानवाला वंधावो અને ત્યાં સિંહાસન ઉપર ઢાહોનો યાલ મૂક્યો.

अहीं वैताड्यवासी मेघनाद नामना विद्याधरे निमित्तियाना कहेवायी पोतानी
 પુત્રીનો વર સુભૂમ થશે એમ જાણીને ત્યાં આવી સુભૂમને પોતાની પુત્રી અર્પણ કરી, અને
 પોતે તેનો સેવક થઈ ત્યાં રહ્યો. એક દિવસ સુભૂમે પોતાની માતાને પૂછ્યું કે 'हे माता !
 थुं भूमि आठळीज छे?' एवा पुत्रना शब्दो सांभळीने नेत्रमां अशु छावो गद्गद्

स्वरपूर्वक तारा राणीए पूर्वनी सघळी हकीकत जणावीने कहुं. के 'हे पुत्र ! तारा पिता अने पितामहने हणीने तथा सर्व क्षत्रियोना नाश करीने परशुराम आपणुं राज्य भोगचे छे, अने तेना भयथी नासीने आ तापसनी आश्रय करां भोग्यरामां रत्ना जीए.' ए प्रयाणे मातानां मुखर्था सांगळीने सुभूम क्रोधित थइ एकदम भोग्यरामांयी बहार नीकळ्यो, अने मेघनाद साथे हस्तीनापुर जइ दानशाळाए आब्यो. ते वखते दाढोनी थाळ सुभूमनी दृष्टिए पढतां ते दाढोनी क्षीर थइ गइ. एटछे ते क्षीर सुभूम खावा छाग्यो. परशुरामे ते वात जाणीं, बढछे सन्नद्ध थइने जाज्वल्यमान परशु लइ बहार नीकळ्यो, परंतु परशुरामनुं ते हथियार सुभूमनी दृष्टि पढतांज तेना पूर्वना पुण्ययी निस्तेज थइ गयुं. पछी सुभुमे भोजन कर्यां पछी छठोने ते थाळ परशुराम उपर फेंक्यो, एटछे त थाळनुं सहस्र देवताओए अधिष्ठित करेळुं चक्र बनी गयुं; अने ते चक्रे परशुरामनुं शिर कापी नांख्युं. ते वखते सुभुमने चक्रवर्तीपददो उदय थयो, जय जय शब्दो बोळावा छाग्या, अने देवाए पुण्यनी दृष्टि करां. पछी परशुरामे मारेका क्षत्रियोना वेरनुं क्षरण करीने तेणे एकवीस वखत ब्राह्मणरहित पृथ्वी करी.

चक्रना बळथी आ भरतक्षेत्रना छलंड जोतांने विशेष छेपी बनी धातकीलंडमां आवेळा भरतक्षेत्रने साववां चाल्यो. अढताळीश गाड विस्नारवाळा चर्मरत्न उपर पोताना सर्व सैन्यने स्थापीने जवणसमुद्रनी उपर थइने चाल्यां जतां समकाळे चर्मरत्नना अधिष्ठायक हजारे देवाए चर्मरत्न भूकी दीधुं. एटछे चर्मरत्न ने सैन्यसहित जळमां झुपीने ते मरण पाभ्यो अने अतिशय पापकर्मना योगमी सातमी नरके गयो. ए प्रयाणे संबंधीओनो स्नेह पण कृत्रिम छे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

कुल घर नियर्बं सुहेसुअ, सयणोय जणेश्र निच्चं मुणिवसंहा ।

विहंरंति अणिरसाए, जहं अज्जमहागिरि जयवं ॥ १५२ ॥

अर्थ—“मुनिवृषभो—श्रेष्ठ मुनिओ (धर्मघुरंधर होवाथी) कुळ ते कुटुंब, घर, पोताना संबंधीओ तथा ग्रामनगरादिजन्य सुख—तेने विषे तेमज स्वजनमां अने सामान्य लोकमां निरंतर अनिश्राए (कोइना पण आलंबन विना) विचरेछे. जेम आर्य महागिरि भगवंत निश्रा विना विचर्यां तेम.” १५२, अहीं आर्यमहागिरिनो संबंध जाणवो. ४७.

आर्यमहागिरि प्रबंध.

श्रीस्थूलिमद्रसूरिने आर्यमहागिरि ने आर्यसुहस्तो नामे बे शिष्यो हवा. ते

येमां मोटा श्रीआर्यमहागिरिसूरि आर्यसुहस्तीसूरिने गणशिक्षा (गच्छतुं शिक्षण अर्थात् गच्छ) सौपीने पोते विशेष वैराग्ययी जिनकल्पनी तुलना करवाने भाटे उद्युक्त यह एकला विचरवा छाग्या. ते विशेषपणे क्रियामां उग्रमवंत रहे छे. उपारे आर्य-सुहस्ती सूरि गामनी अंदर समयसरे छे त्यारे श्रीआर्यमहागिरि गामनी बहार रहेछे, एम गच्छनी निश्राए विहार करे छे.

एकदा श्रीसुहस्तीसूरि विहार करतां पाटलीपुर पधायीं. त्यां आर्यमहागिरि क्षेत्रना छ विभाग करीने पांच पांच दिवस सुधी एक एक विभागमां शिक्षार्थे जायछे अने नीरस आहार ग्रहण करे छे. एक वखत श्रीआर्यसुहस्तीसूरि वसुभूति नामना श्रावकना कुटुंबने प्रतिबोध करवाने भाटे तेने घेर गया हता अने धर्यदेशना आपता हता. ते समये श्रीआर्यमहागिरि अज्ञाणतां वसुभूतिने घेर भिक्षार्थे आब्या. तेमने जोइ आर्य-सुहस्तीसूरिए उभा यह विनयपूर्वक वंदन कर्युं. पढे आर्यमहागिरि भिक्षा ग्रहण कर्यां शिवाय पाछा बळी गया. वसुभूति श्रावके आर्यसुहस्ती महाराजने पूछ्युं के ' जेमनी आपे आटछे विनय कर्यो ए महासुनि कोण छे ? ' त्यारे आर्य सुहस्तीसूरिए कहुं के ' ए अमारा मोटा गुरुभाइ छे अने महा अनुभाववाळी जिनकल्पनी तुलना करेछे. ' ते सांभळीने वसुभूति श्रावके बीजे दिवसे आस्त्रा नगरमां वधे उचम आहार कराव्यो. आर्यमहागिरिए तेने अकल्प जाणीने ग्रहण कर्यो नहि. पछी उपाश्रये आवीने तेमणे सुहस्तीसूरिने ओळंभो आप्यो के ' तये बहु विरुद्ध आचरण कर्युं के वसुभूतिने घेर मारो अभ्युत्थानादि विनय कर्यो. तेम करवायी तये सर्वत्र अशुद्ध आहार करी दीघोछे. भाटे हंचे आजधी मारे तमारी साये एक क्षेत्रमां रहेतुं उचित नथो. ' ए प्रमाणे कही आर्यमहागिरिए जुदो विहार कर्यो अने गच्छनो आश्रय छोडी दइ एकाफी तपस्यम पाळी स्वर्गे गया. ए प्रमाणे बीजाए पण प्रतिवंब करवो नहि, एके आ कथानो उपदेशछे.

रुंवेण जुळवैण्येय र्यं, कर्मां सुहेहिं वरसिरीए र्यं ।

नैय हुंजंति सुविहिया, निर्देसणं जंबूनामेत्ति ॥ १५३ ॥

अर्थ—' रूपे करीने, यौवने करीने, गुणवती कन्याओयी, सांसारिक सुतोयी तेमन श्रेष्ठ एवी लक्ष्मीयी सुविहितो—साधु पुरुषो—उचम जनो लोभाता नथो. अही जंबू नामे महा मुनिहुं निर्देशन के० दृष्टांत जाणहुं. ' १५३. जंबूस्वामीहुं दृष्टांत पूर्वे आवेलुं छे तेयो अही लख्युं नथो.

उत्तमकूलपसूया, रायकुलवडिसंगावि मुणिवसहा ।

बहुजर्णजईसंघटं, मेहकुमौरुव विसंहंति ॥ १५४ ॥

गाथा १५३—रुंवेण । कर्माहि । वरसिरीपहि । निवरिसणं । जंबुनामुत्ति ।
गाथा १५४—मेहकुमारुव ।

अर्थ—“ उत्तम कुळ्यां उत्पन्न थयेला, राजकुळ्यां मृगट समान एवा मुनिवृषपा-
मुनिश्रेष्ठो अनेक कुळ्यां उत्पन्न थयेला घणा मुनिजनोनो संघट्टं मेघकुमारनी जेय विशेष
प्रकारे सहन करेछे. ” १५४. अहीं मेघकुमारतुं वृष्टांत जाणतुं. ४८

मेघकुमारतुं वृष्टांत.

भगवदेसमां राजगृह नगरमां श्रेणिक राजा राज्य करतो हतो. तेनी धारिणी
नामे राणी हती. तेनी कुक्षिने विषे कोइ जीव उत्पन्न थयो. तेना प्रभावथी तेने अकाळे
मेघनो दोहद थयो. अभयकुंगारे अट्टमभक्तथी कोइ देवने आराधोने तेनी सहायथो ते
दोहद पूर्ण कर्यो, उत्तम समये पुत्रनो प्रसव थयो. स्वप्नने अनुसारे तेतुं नाम मेघकुमार
पाड्युं. अनुक्रमे तेणे युवावस्था प्राप्त करी. श्रेणिक राजाए तेने स्वरूपवतीं आठ
कन्या एक छग्ने परणावी. ते स्त्रीओ साये विषयसुख भोगवतो मेघकुमार अन्यदा
वीरमश्रु त्यां समयसरवाथी वांदवाने गयो. प्रशुनी देशना सांभळी तेणे वैराग्य
प्राप्त थवाथी चारित्र ग्रहण कर्युं. भगवंते तेमने शिक्षा ग्रहण फरवा माटे स्थाविर (वृद्ध)
नि पासे भोकल्या. हचे रात्रिए पौरुषी भगान्या पळी संथारा करतां वृद्धलघुत्वना
(जाना मोटाना) व्यवहारथी मेघमुनिनो संथारो सर्व साधुनी पळी लपाभयनो बहार
आव्यो. त्यां रात्रिए जता आवता साधुना चरणना प्रहारथी अने तेमना अथडावा विने-
रेथी मेघमुनि बहु खिन्न थया. ते विचारवा लाग्या के “अरे! मारो सुखकारी आवास
क्यां ! मारी कोमळ पुष्पक्षय्या क्यां ! अंगनाना अंगसंगथी उत्पन्न थहुं सुख क्यां !
अने आ कठिन भूमिमां आळोटवुं क्यां ! आ साधुओ प्रथम तो मारा प्रति आदरवाळा
हता अने हचे तो तेज साधुओ मने पग विनेरेना संघट्ट करेछे, तेथी जो आजनी रात्रि
सुखे सुखे जाय तो प्रातःकाळ्यां वीरमश्रुने पूछी रजोहरण आदि वेच पाळो सोपीने हुं
मारो घेर चाख्यो जह्म.” ए प्रमाणे चिंतवी मेघमुनि प्रातःकाळेप्रभु पासे आग्या. भगवा-
ने मेघमुनिना वोल्यो पहेंळांज कळुं के ‘ हे मेघ ! ते आज रात्रिना चारे पहेर दुःख
अनुभव्युं छे अने घेर जवानो विचार करेछो छे आ हकीकत खरी छे ? ’ मेघमुनिए
कळुं के ‘ ए हकीकत खरी छे, ’ त्यारे भगवाने कळुं के “ हे मेघमुनि ! आ दुःख तो थं
छे ! पण जे दुःख तें आ भद्रथी त्रीजे, भवे अनुभवेछुं छे ते सांभळ-पूर्वे वेताढय पर्व-
तनी भूमिमां श्वतवर्णीं, घणो उंचो अने एक हजार हाथणीना टोळानो अधिपति छ
दांतवाळो सुमेरुभ नामनो हाथी हतो. एक दिवस बनमां दावानळ लाग्यो. तेनाथी
अथ पामी वृषाहुर थइ बनमां भटकतां थोडा पाणिवाळा ने घणा कीचढवाळा सरोवरमां
वेजो. त्यां तुं कीचढनी अंदर खुती गयो. तुं जळ मुधी पहेंच्यो. नहि पदछे तने जळ पर्ण

मळ्युं नहि, अने बहार पण नीकळी शक्यो नही. पळी घणा वैरी हाथीओए आवीने तने दंतसुशळना प्रहार कर्या. सात दिवस सुधी पीढा अनुभवो सो वर्षंतुं आयुष्य पूर्ण करी काळ करीने तुं विंध्यभूमिमां चार दांतवाळो, रक्तवर्णवाळोने सातसे हाथणीनो पति मेरुप्रभ नामे हाथी थयो. त्यां पण अग्नि लागेछो जोइ जातिस्मरयी तें तारो पूर्वभव दीडो. पळो दावानळयी भय पायीने तें एरू योजनप्रमाण भूमिनी अंदरयी तृण काष्ठ आदि सर्व दूर फेंकी दीयुं, अने नवा उगेळा तृण बळो अंकुरो विगेरेने शुंदवडे परिवारनी मददथी मूळमांथी उखेडी नांखवा लाग्यो. एक बरत फरीथी दावानळ प्रगटयो. ते वलते तुं परिवार सहित पेळा एक योजन प्रमाणवाळा मंडळमां आवी गयो. बीजां पण घणां वनचर प्राणीओ त्यां आळ्यां. ते पुखते तें शरीर खणवाने माटे एरू पग उंचो कर्यो, तेवामां एक ससळो कोइ जग्याए तेने स्थान नहि प्रळवाथो तारा पग नीचेनी जग्याए आवीने उभो रळो. पग नीचे मूकतां तें ससळाने जोयो; एटळे तेना उपरनी दयाने लीवे ताहं मन आर्द्र थवाथी तें तारो पग उंचो ने उंचो राख्यो. ए प्रमाणे अढी दिवस सुधो एक पग उंचो राखीने रळो. दावानळ ज्ञांत थतां सर्व प्राणीओ पोतपोताते स्थाने गया. एटळे पग नीचे मूकतां शरीर घणुं स्थूल होवाथी पर्वतंतुं शिखर तुटी पडे तेम तुं पडी गयो, अने घणी वेदना भोगवी, सो वर्षंतुं आयुष्य पूरं करीं दयाना परिणापयी शुभ कर्म बांधी श्रेणिक राजानो पुत्र थयो. हवे तुं विचार कर के सप्रकितनो पण छाम मळ्यो नहोतो ते बलतमां तिर्यचना भवमां थोडुं कष्ट सहन करवाथी तें मज्ज्युं आयुष्य बांध्युं, तो चारित्र ग्रहण कर्या पळी कष्ट सहन करवाथी तो मोडुं फळ मळेछे; अथवा आ जीवे घणी बार नरकादिनां घणां दुःखो भोगव्यां छे, तो तुं आ साधुओना पादसंभट्टयी उत्पन्न थयेळा दुःखथी ज्ञा माटे दुमांय छे ? साधुना चरणनी रज पण वंघ छे, तेथी आ चारित्र तजो देवानो तारो मनोरथ योग्य नयो. अग्निमां प्रवेश करवो. सारो, विषंतुं भक्षण करतुं सारं, पण ग्रहण करेळा व्रतनो भंग करवो ए सारं नहि." इत्यादि भगवंतनां कहेळां वचनेथी मेघमूनिने जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुं, एटळे सपळुं प्रश्नना कहेवा प्रमाणे जोयुं. पळी भगवानने बांदीने मेघमूनी बोल्या के "हे भगवन ! भवकूपमां पडतां तये मारो बचाव कर्योछे. आजयी मांडीने वे चक्षु शिवाय बीजा कोइ अंगनी मारो शुश्रुषा करवी नहि एवो तुं अभिग्रह करळुं. आ प्रमाणेनो अभिग्रह कइ, निर्दोष चारित्र पाळी, गुणरत्न संवत्सरादि करी, निर्मळ ध्यानवडे पोतातुं आयुष्य पूर्ण करी, समाधिथयी मून्धु पायीने विजय नामना अनुचर विमानने विषे. पणे उत्पन्न थया. ज्यवी महाबदेदक्षेत्रमां यइने मोक्षे जये.

अवरुप्परसंवाहं, सुखं तुच्छं सरीरपीनाय ।

सारण वारण चोयण, गुरुजणआर्यत्तया र्थं गेणे ॥ १५५ ॥

अर्थ—“ गच्छमां वसवायी परस्पर संवाध ते मलवापणुं थाय अने स्वेच्छाय मव-
र्तवा रूप सुख अथवा इन्द्रियजन्य जे सुख ते तुच्छ के० स्वल्प थाय-तेतुं ओछापणुं थाय,
परीसहादिकवडे शरीरने पीडा थाय,कोइ पण कार्य न कर्युं होय तो तेतुं सारण के०
संभारी देवुं थाय,कोइ पण कार्यमां प्रमाद करतां वारण के० वारवुं थाय, सारा का-
र्यमां चोयण के० मधुर के कर्कश वचनवडे पण प्रेरणा थाय अने गुरुजननी आवोनता
थाय. एटला गुणो थाय; माटे अवश्य गच्छमांज वसवुं, एकला न रहेवुं.” १५५.

इक्कस्स कथो धम्मो, सच्छंदगईमइपयारस्स ।

किं वा करेड इक्को, परिहरउ कह मकळां वा ॥ १५६ ॥

अर्थ—“स्वच्छंद जे गति तेमां छे मतिनो प्रचार जेने अर्थात् स्वच्छंदे वर्तवानी
छे बुद्धि जेनी एवा एकला मुनिने धर्मज्ञ क्यांथो होय ? अपितु न होय. वळी एकलो
तपक्रिया विगेरे भुं करे ? अथवा एकलो अकार्यने पण केम परिहरवा शक्तिमान
थाय ? अर्थात् न थाय. माटे गुरुकुलवासमांज रहेवुं.” १५६.

कत्तो सुत्तथागम, पणिपुच्छणा चोयणा च इक्कस्स ।

विणथो वेयावच्चं, आराहणया र्थं मरणांते ॥ १५७ ॥

अर्थ—“एकला मुनिने सूत्रार्थनी प्राप्ति पण क्यांथो थाय ? प्रतिपृच्छा के० संदि-
ग्धतुं पूछवुं ते कोनी पासे करे ? चोयणा के० प्रमादमां पडेछाने शिखादान कोण
भापे ? एकलो विनय कोनो करे ? वेयावच्च कोनो करे ? अने मरणांते नमस्कार स्मरण,
अणसणादि आराधना पण तेने कोण करावे ? अर्थात् एटलां वानां (एटला लाम)
एने क्यांथी प्राप्त थाय ? न थाय.” १५७.

पिह्विज्जेसण भिको, पइन्नपमयाजणाउ निच्चं जयं ।

काळं मणोवि अकळां, न तरइ काळण बहुमइसे ॥ १५८ ॥

अर्थ—“एकलो मुनि एवणा जे आहारनी शुद्धि तेतुं पण उद्यंघन करे छे, अर्थात्
कदाचित् अशुद्ध आहार पण ग्रहण करे छे. वळी प्रकीर्ण के० एकाकी एवो जे प्रमाद-

जन-स्त्रीजन तेनाथी तेने निरंतर भय रखा करे छै;अने बहु मृनिना मध्यमां तो अकार्य करवातुं मन पण करवाने शक्तिवान थवातुं नथी तो अकार्य करे तो शेनोज ? माटे स्थविरकल्पी मृनिओने एकाकी विहार युक्त नथी. " १५८.

उच्चार. पासवण वंत पित्त मुच्छाइ मोहिओ इक्को ।

सहव भायण विह्वथो, निखिलवइ कुणइ उड्डाहं ॥ १५९ ॥

अर्थ-“उच्चार ते पुरीष, पासवण ते प्रश्रवण (लघुनीति), वंत ते वमन अने पित्त मूर्छा विगेरे-आदिशब्दथी बाधुविकार विशुधिकादिस्तु ग्रहण करतुं. एवा व्याधिथी-कष्टथी व्याकुळ थयेलो एकलो साधु पाणी सहित जे भाजन तेनाथी व्यग्रदस्तवाळो होतो सतो जो ते भाजन हाथमांथी मूकी दे तो संयम विराधना-आत्म-विराधना थाय. अने जो ते भाजन हाथमां रहेवा दइने उच्चार (बडी नीति) विगेरे करे तो शासननी उड्डाह (लघुता) थाय.तेथी मृनिने एकला रहेतुं कोइ रीते पीग्य नथी. " १५९

एगदिवसेण बहुआ, सुहाय असुहाय जीवपरिणामा ।

इको असुहपरिणथी, चइज्ज आलंबणं लइं ॥ १६० ॥

अर्थ-“एक दिवसमां पण जीवना परिणाम शुभ अने अशुभ एवा बहु प्रकारना थायछे, तेथी एकलो मृनि अशुभ परिणामवाळो थयो सतो कांइक आलंबन-कारणने पामीने चारित्रने तजी देखे अथवा अनेक प्रकारना दोष लगाढेछे. " १६०.

सव्वजिणपडिकुट्टं, अणवथथा थेरकप्पजेओअ ।

इक्को अ सुहावत्तोवि हणइ तवसंजमं अइरा ॥ १६१ ॥

अर्थ-“एकाकोपणे विचरतुं सर्व जिनेश्वरोए करेछं छे. वळी तेथी अनवस्था के० मर्यादानो मंग थाय छे अने स्थविरोने कल्प जे आचार तेनो भेद थायछे,तेथी एकाकी रहेतुं अयुक्त छे. वळी एकलो शुभ आयुक्त के०गाढ आचारयुक्त होय तोपण योढा काळ्या तप अने संयमने हणी नांखेछे, अर्थात् तेमां दोष लगाढेछे. " १६१

वेसं जुन्नकुमारिं, पउथयवइअं च बालविह्ववं च ।

पासंडरोह मसइं नवतरुणिं थेरज्जं च ॥ १६२ ॥

गाथा १५९-निलखवइ । गाथा १६०-एकदिवसेण । चइज्ज ।

गाथा १६१-सुहावत्तोवि । सुहावत्तोवि । पडिकुट्ट-भिषिक्तं । अइरा-अचिरात्

सविडकुञ्जरुवां, दिष्टा मोहेश् जा मणं इथी ।

आयहियंचितंता, दुरयरेणं परिहरंति ॥ १६३ ॥

अर्थ-वेद्या, वृद्ध कुमारिका एटछे मोटी उम्परवाळी कुमारिका, परदेश गयेला पतिवाळी स्त्री, बाळ विधवा एटछे जेना पति वाल्यावस्थामांज मरण पायेछो छे एवी अति कामविह्वळ स्त्री, पाखंडव्रते करीने जेणे विषयना रोध करेछो छे एवी स्त्री-ताप-सणी प्रमुख, असती ते व्यभिचारिणी स्त्री, नवयौवना, वृद्ध भर्तारनी भार्या, शुभ अध्य-सायने दुर करी दे एवा उदभट रूपवाळी अथवा विकार सहित मनोहर रूपवाळी, अने देखवा मात्रयीज जे मनने मोहित करे एवी स्त्री-आटला प्रकारनी स्त्रीभोने आत्महितने चिंतवनार पुरुष अति दुरयीज त्यजी दे छे." १६२. १६३.

सम्मदिष्टीवि कयागमोधि, अइविसयरगसुहवसओ ।

जवसंकडंमि पविसइ, इथं तुह सच्चइनायं ॥ १६४ ॥

अर्थ-"सम्यग् दृष्टि छतां अने सिद्धांताने जाण छतां अतिशय विषयरग संबंधी जे मुख तेना परवक्षपणाथी भवसंकटने विषे प्रवेश करेछे, अर्थात् बहु भवभ्रमण करेछे. ते संबंधमां हे शिष्य ! तारे सत्यकींतु उदाहरण जाणतुं." १६४. अहीं सत्यकी विद्याधरने संबंध जाणवो. ४९

सत्यकी विद्याधरनी कथा.

विशाळ लक्ष्मीवाळी विशाळा नगरीमां चेटक नामे राजा राज्य करता इतो. तेने मुज्येष्टा अने चिळणा नामे बे पुत्रीओ हती. ते बनेने अरस्परस घणोज स्नेह इतो. अभयकुमारनी सखाहथी ते बन्ने कन्याओए श्रेणिक राजानी साथे पाणिग्रहण करवाने अभिग्रह कर्यो इतो. पछी अभयकुमारें एक सुरंग खोदावी, अने ते सुरंगद्वारा श्रेणिक राजाए विशाळा नगरीए आवी बन्ने कन्याओने लीधी. सुरंगना मुख आगळ आवतां चिळणाए विचार कर्यो के 'मुज्येष्टा रूपमां माराथी अति श्रेष्ठ छे, तेथी श्रेणिक राजा तेने बहु मान दइ पहराणी करे.' ए प्रमाणे विचारी चिळणाए मुज्येष्टाने कहुं के 'हे भगिनी ! तूं पाछी जइने मारो रही गयेछो घरेणांनो डाबळो जळदी छइ आव.' ए प्रमाणे कही मुज्येष्टाने पाछी भोकली. पछी चिळणाए श्रेणिक राजाने कहुं के 'हे स्वामिन् ! अहींथी जळदी चालो. जो कोइ जाणसे तां बहु विपरीत थसे.' ए प्रमाणे भय वतात्रीने तेओ सुरंगमांथी बहार नीकळी गया. त्यार पछी आवेळी मुज्येष्टाए चितव्युं के "प्राणथी पण बधारे प्रिय एवी मारी बेन चिळणाए मारा उपर आवुं कपट रच्युं,

माटे वेदक स्वार्थमां रचीपची रहेल इदुंधवर्गधी सस्युं, अने सर्पनी फणा जेवा विज्ञ-
योने पण विचार छे." ए प्रमाणे वैराग्य यवाथी सुज्येष्टाए पाणिग्रहण न करता
चंदनवाला साधवी पासे जइने चारित्र्य ग्रहण कर्युं.

छट्ट. अष्टम आदि अनेक प्रकारनां तप करती ते एक दिवस आतापना ग्रहण
करीने. रहेली छे. एवे समये प्रेहाळ नामना विद्याधरे त्यांची जतां तेने ज्ञान. एदळे
ते मनमां विचारवा छाग्यो के 'आ सती ध्यानमां स्थित ग्रहणे अने ते प्रहा रूपवती
छे, ऐयी जो हुं आ साधवीनी इक्षिणी अंदर पुत्रने उत्पन्न करं तो ते पुत्र मारी वि-
द्यातुं पात्र याय.' ए प्रमाणे विचार करीने विद्याना बळयी अंधकार विह्वलीं ते न
जाणे एवी रीसे भ्रमरनुं रूप करी तेने भोगवीने तेनी योनिमां वीर्य मुक्त्युं. एकां
तेनी इक्षिणे विषे उत्पन्न ययेछो जीव अनुक्रमे वषवा छाग्यो, तेयी सुज्येष्टा साधवीने
मनमां संदेह उत्पन्न थयो. तेणे ते संबधी ज्ञानीने पूछ्युं एदळे ज्ञानीने तेना संदेह
साधवीने कहुं के 'पर्यां तारो दोष नथी, तुं तो सती छे. अनुक्रमे ते साधवीने पुत्र
थयो तेतुं नाम सत्यकी पाहवामां आस्युं. ते साधवीना उपाश्रयमां थोटो थयो. त्यां
साधवीना इक्षयी आगमोनुं अवण करतां तेने सर्व आगमो मुखपाठ थइ गथा.

एक दिवस सुज्येष्टा वीरभगवानने नांदवाने माटे समवसरणमां गइ. सत्यकी पण
तेनी मानी साधे थयो. ते अवसरे कालसंदीपक नामना विद्याधरे भगवानने पूछ्युं के
'हे भगवन् ! मने कोनाथी भय छे ?' भगवाने कहुं के 'तने आ सत्यकी बालकरीं थये
छे.' ते साधवीने कालसंदीपके सत्यकीनी अवज्ञा करीने तेने पोताना पंगमां पाटी दीर्घी.
तेयी सत्यकी तेना उपर क्रोधित थयो. पछी सत्यकीना पिता पेहाळ विद्याधरे तेने
रोहिणी विद्या आपी. ते विद्याने साधतां सत्यकीने कालसंदीपक विज्ञ करवा छाग्यो.
ते वलते रोहिणी विद्याएण कालसंदीपकने तेम करतां अटकाव्यो; कारण के सत्य-
कीना जीवे प्रथम पांच भवने विषे रोहिणी विद्याने साधतां मरण प्राप्त कर्युं इतुं. छहे
भवे रोहिणी विद्याने साधतां तेना आयुष्यमां छ मासज अघुरा रहेला होमाती रोहि-
णी विद्याए प्रत्यक्ष थइने कहुं इतुं के 'हे सत्यकी ! तारा आयुष्यमां मात्र छ मासज
वाकी रवाछे, तेयी तुं जो कहते होय तो आ भवमां हुं सिद्ध थां, नहितो आवता
भवमां हुं सिद्ध थइ, त्यारे सत्यकीना जीवे कहुं इतुं के 'जो मारं आयुष्य बोहुंकज
ज्ञाकी होय तो आवता भवमां हुं सिद्ध थजे, आ प्रमाणे पूर्व क्रवमां कहुं इतुं तेथी रोहि-
णी विद्या ओ भवमां थोडा काळमांज सिद्ध थइ, अने प्रत्यक्ष थइ सत्यकीने कहुं के
'तारा शरीरना एक भाग मने वताव जेमां हुं प्रवेश करं, त्यारे सत्यकीए पोतानुं मास

(कपाळ) 'वताव्युं. रोरिणी विद्या ल्हाटमार्गधी अंगमां पेठी, अने ल्हाटमां भीडुं लोचन उत्पन्न थयुं. पछी तेणे प्रथम पोताना पिता पेढालनेज साध्वीना व्रतनी मंग करनार जाणी विद्यावळधी मार्यो. काळसंदीएक विद्याघर सत्यकीने विद्यावळधी दुर्जय जाणीने मायाथी त्रिपुरासुरतुं स्वरूप धारण करीने नासी गयो, अने छवणस-सुत्रमां जइने पाताळवळकमां पेठो. लोकीनी अंदर एवां सिद्धि थइ के 'आणे त्रिपुरा-सुरने पाताळमां पेसाडी दीघो, तेथी आ सत्यकी अग्यारमो रुद्र पेदा थयोळे.'

पछी सत्यकी विद्याघरे भगवाननीं पासे समकित अंगीकार कर्युं, अने देवगुरुनो अत्यंत भक्त थयो. प्रणे संध्याए ते भगवाननीं आगळ नृत्य करेळे. परंतु अत्यंत विषय-सुखमां लोलुप होवाथी राजानी, प्रघान्नी के कोइ व्यापारी विगेरेनी रूपवती स्त्रीने ते छुए के तरतज तेने माह आछिगन आर्याने ते भोगवे छे. तेने धारवाने माटे कोइ शक्ति मान थतुं नथी. एक दिवस महापुरी लज्जिर्निमां चंडप्रद्योत राजाना अंतःपुरमां प्रवेश करीने तेणे पद्मावती त्रिवाय वीजी तमाम राणीओने भोगवी. तेथी चंडप्रद्योत राजा क्रोधित थइ कहेवा छाग्यो के 'जे कोइ आ दहवर्धी सत्यकीने मारी नाखरो तेने हुं ममबांछित आपीच.' आ प्रमाणे पटह वगडावीने तेणे लोकोने जणाव्युं. ते वसते ते नगरमां रहेनारी एक उमा नामनी वेश्याए बीडु झहव्युं. पछी एक दिवसे उमा पोताना घरना गोखमां वेठी हती ते वसते तेणे सत्यकीने विमानमां वेसीने आकाशमार्गे जतो जोइ कहुं के 'हे चतुरशिरोमणि ! हे दृक्पद्ममां इष्ट रूप ! हे तेजथी सूर्यने जीत-नार ! हुं प्रतिदिवस गृध्वा (विषयरसनी अजाण) स्त्रीओने चाहेछे; परंतु अमारा जेथी कामकळामां कुळळ स्त्री तरफ दृष्टि पण करतो नथी. माटे आज तो मारुं आंगणुं कृतार्थ कर, अने एक वसत तुं अमारुं कामचातुर्य जा.' इत्यादि वचनोथो रंजित थयेळो अने कटाक्षविक्षेपथी जंतुं मन आकषायुं छे एरो सत्यकी विमानमांथी उतरनी ते नायिकाना घरमां गयो. ते वेश्याए पण अनेक प्रकारना कामक्रीडाना विनोदथी तेजुं मन आवीन करी लीधुं. तेथी ते तेने जोडीने अन्य कोइ स्थाने जतो नथी; इमेधां त्यांज आवेछे. तेमनी वसं परस्पर घणीज प्रीति थइ गइ छे. आ प्रमाणे अत्यंत विवास पमाडीने तेणे एकवार सत्यकीने पूछ्युं के ' हे स्वामिन् ! तमे स्वेच्छाए परस्त्रीओने भोगवो लो पण तमने मारवाने कोइ शक्तिमान थतुं नथी ते कोना वळथी ? ' त्यारे सत्यकीए कहुं के ' हे सुंदर लोचनवाळी स्त्री ! मारी पासे विद्यातुं वळ छे, तेना मभावथी मने कोइ मारतुं नथी. ' फरीथी वेश्याए पूछ्युं के ' तमे ते विवाने कोइ वसत दूर राखोळो के नहि ? ' सत्यकीए कहुं के ' ज्यारे हुं विषयसेवन करुं त्यारे विधाने दूर राखुंछुं. ' ते सांमळोने ते उमा वेश्याए जइ राजाने

कहूँ के 'सत्यकीने मारवानो एकज सपाय छे. परंतु जो तमे मारो बचाव करो तो तेने खुशोशी मारो.' ए प्रमाणे प्रस्तावना करीने तेणे सर्व हकीकत कही बतावी. पछी ते वैश्याना उदर उपर कमळपत्रो रखावी तेणे ते कमळपत्रोने छेदी नांख्या, परन्तु वैश्याना शरीर उपर जरा पण सह्युं नहि. एम करी 'आवी रीते तारो बचाव करयुं' एवो विश्वास उत्पन्न करावीने तेने घेर भोकळी.पछी रात्रिए पोताना सेबकोने बनेने मारी नाखवातुं समजावी तेने घेर भोकळ्या. ते सेबकोने वैश्याए शूद्र रीते राख्या. तेवामां सत्यकी आन्व्यो अने उमा साये विषयसेन करवा लाग्यो. एटले शूद्र रहेला राजसेवकोए आधीने बनेनां मस्तको छेदी नांख्यां.

सत्यकी विद्याधरना नंदीश्वर नामना गणे ते हकीकत सांगळी, एटले ते काचित् यइने त्यां आन्व्यो अने आकाश्यां शिळा विकुर्वीने कहेवा लाग्यो के 'तमे मारो विद्याधरने मार्या छे, तेथो जेवी स्थितिमां तेने मार्या छे तेवीज स्थितिमां तेनी मूर्ति बनावीने जो तमे सर्व नगरजनेो पूजशो वो सयने सघळाने छोटीक, नहि तो आ शिळायी सर्वने चूर्ण करी नाखीश.' एतुं सांगळीने मयथीत थयेका राजा आदि सर्व लोकोए तेवीज स्थितिवाळी गुग्मरुप मूर्ति करावीने एक मंकाननी अंदर स्थापी, अने सर्व पूजा करवा लाग्या. सत्यकी काळे कहीने नरकभूमिमां गयो. पछी केटलेकं कांळे तेवी लज्जा उत्पादक मूर्तिने जोइने ते काडी नांखी तेनी जग्याए छिंगनी स्थापना करी. माटे विषयमां अनुराग न करवो एवो आ कयानो उपदेश छे.

सुतवस्तिनाण पूर्या, पणाम सक्कार विणायकज्जपरो ।

वंळुपि कम्ममसुहं, सिद्धिंलई दसारनेयावा ॥ १६५ ॥

अर्थ—“सुतपत्नी—भळा चारित्रो—महाह्यनिओनी पूजा ते बलादि आपहुं, प्रणाम ते मस्तकवडे बंदन करहुं, सक्कार ते तेमना गुणहुं वर्णन करहुं, अने विनय ते तेओ आवे एटले उमा थुं—इत्यादि कार्यमां तपर एवो पुरुष, बांधेछे—आत्म प्रदेशनी साये श्लिष्ट करेछे एतुं पण अशुभ—मध्यम जे कर्म तेने शिथिल करे छे. कोनी जेम ? दशारनेता जे दशारनां स्वामी कुण्य तेनी जेम.” १६५ अही कुण्यने संक्षेपयी संबंध जाणवा. ५०

श्रीकृष्ण प्रबंध.

अंगण विहार करतां करतां श्रीनेमिबाय भगवान हारिकामां समवसयां. तेमने नाया १६५—पूजा । दशारनेबला । दशारनेता इच ।

વાંદવાને માટે શ્રીકૃષ્ણ પરિવાર સહિત આઠ્ઠા. તેને મનમાં એવી ઇચ્છા થઈ કે 'આજે હું આ અઠાર હજાર સાધુઓમાંના દરેકને દ્વાદશાવર્ત વંદનથી વાંદું.' એ પ્રમાણે વિચાર પોતાનાં ભક્ત વીરા સાલ્લવીની સાથે સર્વ સાધુઓને ઉપર પ્રમાણે વંદન કરવાથી શ્રમાતુ થયેલા કૃષ્ણ, મગવાન પાસે આવી વોલ્યા કે 'હે મગવન ! આજ હું અઠાર હજાર સાંધુઓને વાંદવાથી અતિ શ્રમિત થયો છું. મેં આજ સુધીમાં ઋણસે ને સાંઠ યુદ્ધો કર્યા તેમાં કોઈ વસ્તુત હું આટલો શ્રમિત થયો નહોતો.' તે વસ્તુતે મગવાને કહ્યું કે 'હે વાંદાનુભાવ ! જેમ વંદન કરવાથી તું ઘણો શ્રમિત થયો છે તેમ તે' લાભ પણ ઘણો મેલ્યો છે. કારણકે વંદનદાનથી તે' ક્ષાયક સમક્ષિત મેલ્યું છે અને તીર્થેકરનામકર્મ ઉપાર્જન કર્યું છે. વલ્લી સંગ્રામ કરીને સાતમી નરકભૂમિને યોગ્ય જે કર્મ વાંધું હતું તેને સ્વપાવીને ત્રીજી નરકભૂમિ યોગ્ય રહેવા દીધું છે. પટલો લાભ તને થયો છે.' તે માંભીને કૃષ્ણે કહ્યું કે 'ફરીથી અઠાર હજાર મુનિને વાંદીને ત્રીજી નરકભૂમિ યોગ્ય કર્મ પણ સ્વપાવી દઈ.' ત્યારે મગવાને કહ્યું કે 'હે કૃષ્ણ ! હવે તવો ભાવ આવે નહિ, કારણકે હવે તમે લોભમાં પ્રવેશ કરેલો છે.' કૃષ્ણે ફરીથી પૂછ્યું કે 'મને જ્યારે આટલી વધો લાભ થયો છે ?' ત્યારે મારા અનુયાયી વીરા સાલ્લવીને કેટલો લાભ થયો છે ?' મગવાને કહ્યું કે 'એને તો માત્ર કાયલેશ થયો છે, કારણકે તેને તો માત્ર તારી અનુદિતિથીજ વંદન કર્યું છે, તેથી ભાવ વિના કાંઈ ફલ મળતું નથી.' આ પ્રમાણે ત્રીજા-ઓણ સાધુઓની પૂજાભક્તિ વિગેરે ભાવપૂર્વક કરવી.

અજિગમણ વંદણ નમસણેણ, પહિપુચ્છણેણ સાહૂણં ।

ચિરસંચિયંપિ કમ્મં, સ્વણેણ વિરલત્તણ મુવેંહ ॥ ૧૬૬ ॥

અર્થ—“અજિગમણ તે સન્મુલ જનું, વંદન તે વંદના કરવી. નમસણ કે. સામાન્યે જમસ્કાર કરવો, અને પહિપુચ્છણ તે શરીરના નિરાશાધપણા વિગેરેની પૃચ્છા કરવી. સાધુને પ્રદર્શાવનાં કરવાથી ચિરસંચિત કે. ઘણા કાલનું વહુમવનું ઉપાર્જન કરેલું કર્મ પણ સમમાત્રમાં—પોઠા કાલમાં વિરલપણાને પામે છે અર્થાત્ પાપકર્મનો સ્થય થાય છે.” ૧૬૬.

કેંહ સુસીલો સુહમાંહ સજ્જણા, ગુરુજ્જણસ્સવિ સુસીસા ।

વિલલં જર્ણતિ સંઠં, જેંહ સીસો ચંરુહસેંસ ॥ ૧૬૭ ॥

અર્થ—“કોઈક સુશીલ કે. નિર્મલ સ્વભાવવાળા અને સુધર્મા કે. અતિશય ધર્મવાળા અને સજ્જન કે. સર્વની ઉપર મૈત્રીભાવવાળા એવા મુશિષ્યો, ગુરુજનની- પોતાના ગુરુની

पण अद्धाने विस्तीर्ण करेछे, अर्थात् आस्तिक्य क्लृप्तगवाळी अद्धाने हट करेछे. कोनी-जेम ? चंद्रकाव्य आचार्यना शिष्यनी जेम. चंद्रकाव्य आचार्यनी अद्धाने तेना शिष्ये हट करी तेम." १६७. अही चंद्रकाव्य आचार्य ने तेना शिष्यनो संवंध जाणवो. ५१

चंद्रकाव्य कथा.

महापुरी जेजयिनीमां अन्यदा चंद्रकाव्य समवसर्यां. ते अत्यंत ईर्ष्यां अने क्रोधी हता, तेथी ते पोतां आसन शिष्योथी दूर राखता हता. एक दिवस एक नवो परंजेलो वणिक्पुत्र पोताना मित्रोथी परिवृत थइने त्यां आच्यो अने तेणे सर्व साधु-ओने बांधा. पळी तेना बाळभिओए हांसी करी के 'हे स्वामिन् ! आने तमे शिष्य करो.' त्यारे मुनिओए कथुं के 'हे महादुभाव ! जो तेने दीक्षा ग्रहण करवानो मनोरथ द्योय तो पेला दूर बेटेला अमारा गुरुनी पासे जाओ.' तेथी ते बाळभिओ वणिक्पुत्र सहित गुरु पासे आख्या.त्यां पण गुरुने बांदिने तेओ हास्यथी बोल्या के 'महाराज ! आने दीक्षा आपो.' ते सांभळीने आचार्य मौन रखा. त्यारे बाळकोए फरीथी कथुं के 'हे स्वामिन् ! आं नवा परजेला अमारा मित्रने आप शिष्य करो.' छतां पण गुरु तो मौन रखा. त्यारे तेओए बीजीवारं पण तेज प्रमाणेकथुं, एटळे चंद्रकाव्यने क्रोध चळ्यो तेथी बलात्कारे ते नवा परजेला बाळकने पकडी,वे पगनी बच्चे राखो तेना केशनो छोव करी नांख्यो.ते जोइने बीजा सर्वे बाळको त्याथी नासी गया.तेओ विचार करवा लाग्या के 'अरे ! आं थुं थयुं ! ए प्रमाणे विलखा पढो तेओ जोवा पण उभा रखा नहि. पळी नवदीक्षित शिष्ये गुरुने कथुं के 'हे भगवन् ! इवे आपणे अहीथी अन्य स्याने चाल्या जइए. कारणके मारां मातपिता तथा श्वशुरपत्न विगेरें जो आ वात जाणसे तो तेओ अही आवी तमने मोटां उपद्रव करेसे.' त्यारे गुरुए. कथुं के 'हुं रात्रिए जवाने अशक्त-छुं.' त्यारे ते नवदीक्षित शिष्य. गुरुने पोतानी खांध उपर बेसादी ने त्यांथी बाल्यो. अघारी रात्रिए चाळतां तेना पग उंची नीची शुमिपर पहवाथी चंद्रकाव्य अक्षित.यइ तेना मस्तक उपर दंडनो प्रहार करवा लाग्या.तेथी तेना माया-मांथी रुधिर नीकळ्युं अने घणी वेदना थवा लागी; पण तेना मनमां लेख मात्र पण क्रोध उत्पन्न थयो नहि. ते तो तेमां पोतानोज बांक माने छे अने विचार करे छे के 'मने पापीने चिक्कार छे ! कारण के आ गुरु मारे छीवे कष्ट भोगवे छे. प्रथम तो गुरु-यहारांभं स्नाय्याथ अने ध्यानमां स्थित थयैलां हता. तेनें में हुंटे रात्रिए चळाल्या, आं अपराधथी हुं केवी नीते मुक्त थइं ? आं प्रमाणे शुभ भावनाते भावतां शुभ ध्यानथी धातिकर्मनो क्षय करीने ते केवलज्ञान पान्या. पळी तो सर्वत्र प्रकाश यवाथी

ते सारी रीते सरलतायी चालवा लाग्या. एटळे गुरुए पूछ्युं के ' हवे तुं कैम सारी रीते चालेछे ! संसारमां दंडप्रहार एज साररूप जणाए छे दंडप्रहारने लोभेजतुं मार्गमां सरलतायी चाळे छे. ' त्यारे शिष्ये कहुं के ' हुं सरल गतिए चाळुं छुं ते आपनोज मसाद छे. ' एटळे गुरुए पूछ्युं के ' तने कांइ ज्ञान थयुं छे ? ' त्यारे शिष्ये कहुं के ' हा, स्वामिन् ! मने केवलज्ञान थयुंछे. ' एतुं शिष्यतुं वाक्य सांभळी गुरुने अत्यंत पक्षात्ताप थयो के ' में अति विरुद्ध कर्म कर्युं. केवळीनी आशातना करनार एवा मने धिक्कार छे ! एना मस्तकमां में दंडप्रहार करेला छे, तो आ मारं पातक केबां रोते नष्ट थसे ? ' ए प्रमाणे पक्षात्ताप करतां गुरु, शिष्यना स्कंध उपरथो उतरीने तेना पगमां पळ्वा अने पोताने अपराध स्वभाववा लाग्या. ए प्रमाणे वारंवार पोताने अपराध स्वभावतां विशुद्ध ध्यानथी तेमने पण केवलज्ञान उत्पन्न थयुं. बने जणा केवळीपणे छांवा वखत सुधी विहार करीने मोक्षे गया. आ प्रमाणे सुशिष्य गुरुने पण विशेष धर्म पमाडे छे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

अंगारजीववहगो, कौइ कुगुरु सुसीसपरिवारो ।

सुमिणे जइहिं दिठौ, कोलो गयकलहपरिकिन्नो ॥ १६७ ॥

अर्थ—“अंगारा (कोयला) रूप जीवनेो बध करनारो (अजीवमां जीव संज्ञाने स्थापनारो) कौइ कुगुरु (कुवासनायुक्त गुरु) सुशिष्योधी परवरेलो तेने स्वप्नमां सुनिओए हाथीनां बधांओथी परवरेलो कोळ के० शूकर छे; एवा स्वरुपे दीठे. ” १६८.

सो उगगजवसमुद्दे, सयंवरमुवांगएहिं रापहिं ।

करहो वखखरजरिओ, दिठौ पोरणसीसेहिं ॥ १६९ ॥

अर्थ—“ ते कुगुरुने उग्र एवा भवसमुद्रमां (परिभ्रमण करतां) भारथी भरेला संतपणे पूर्वभवना शिष्यो अने भवांतरमां थयेला राजपुत्रो के जेओ स्वयंवरमां आव्या हता तेमणे दीठे; (एटळे तेओए सूकाव्यो). ” १६९. एनी विशेष हकीकत कथानकथी जाणवी.

अंगारमर्दकाचार्य कथा.

कौइ एक विजयसेन नामे सूरि हता. तेमना शिष्योए रात्रिए स्वप्नमां पांचसे हाथी-ओथी परिहृत थयेलो एक झुकर-जायो. प्रातःकालमां तेओए गुरुनी आगाळ स्वप्नस्वरुप

नाथा १६८-कुगुरु ।

नाथा १६९-वखखरभारिड-भारेण मत्तः ।

निवेदन कर्तुं स्वार्थे शुक्य विचारिने कर्तुं के ' हे शिष्यो ! आगे कोइ अभव्यं शुक्य पांचसे शिष्योधी परिहृत थइ अर्धी आबधो. ए प्रयागो तमार स्वप्न क्कित थयो. ' एटछामां तो रुद्रदेव नामे आचार्य पांचसे शिष्योधी परिहृत थयेछा त्वां आब्या. पूर्ववर्धन साधुओए तेमजुं आतिथ्य कर्तुं, पछो मीजे शिष्यसे अभव्यं शुक्यनी परीक्षा करवाने माटे माजु बरवा जवाना (शिक्षाव ऋषवाना) स्थानके (रस्तामां) विजयसे न सूरिए पोताना शिष्यो पासे ते रुद्रदेव सूरि न जाणे एवी इति कौयळा पथराब्या. रात्रिए ते अभव्यं शुक्यनी शिष्यो लघुशंका करवाने माटे बठया तो तेमने पगे कौयळा दवाया, तेथी रुद्र थतां तेओ 'आ कौयळा छे' एतुं नहि जाणवायी पश्चात्ताप करवा लाग्या के ' अरे ! अंधकारमां अमे अजाणतां कोइ जीवने चांपी नांख्या ' ए प्रमाणे कही पुनः पुनः शिष्या शुक्य देवा लाग्या; अने पछी संघारामां जइने सुदगया. एवामां रुद्रदेवाचार्य पोते लघुशंका करवाने बठया, तेना चरणयी पण कौयळा दवाया. एटछे तेनो रुद्र सांभळी बघारे बघारे चांपवा लाग्या अने सुखेथी बोल्या के 'आ अर्हंतना जीवो दवायायी पोकार करे छे.' एतुं बचन विजयसेन सूरिए सांभळ्युं. तेथी तेजे प्रातःकाले रुद्रदेवना शिष्योने कर्तुं के ' आ तमारा शुक्य अभव्यं छे, माटे तमारे सेने छोही देवा जोइए.' ते सांभळीने तेओए रुद्रदेवने गच्छनी बहार कर्तुं. पछी ते पांचसे शिष्यो निरतिचार संयम पाळी प्राते समाधिथी मृत्यु पामीने देवपणे उत्पन्न थया.

त्यांथो च्यवने तेओ वसंतपुर नगरमां दिछीप राजाने घेर पांचसे पुत्रो थया. अनुक्रमे तेओ युवावस्था पाब्या. एक वखत ते पांचसे राजपुत्रो गजपुर नगरमां कनकध्वज राजानी पुत्रीना स्वयंवरमां गया हता. ते वखते अंगारमर्दकाचार्यनो (रुद्रदेवनां) जीव संसारमां परिभ्रमण करतां छंटपणे उत्पन्न थयो हतो, ते पण त्यां आब्यो हतो. भारना आरोपण वखते अति तीव्र शब्द करता ते छंट अत्यंत भारयी आक्रांत थयेछो होवांथी मोटा बराडा पाडे छे. आणे पूर्व भवमां थुं अशुभ कर्म कर्तुं ह्यो ? आ प्रमाणे वारंवार चिंतवन करतां ते पांचसे राजपुत्रोने जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयुं. तेथी तेओए पोताना पूर्व भवजुं स्वरूप जोयुं, जेथी तेओ बोल्या के ' अरे ! आ अपारो पूर्व भवनेो अभव्यं शुक्य छंटपणे उत्पन्न थयोछे. कर्मनी गति विचित्र छे. कारणके आणे पूर्व भवमां ज्ञान मेळव्युं हतुं, पण अज्ञा विनाजुं ते निष्फल थयुं. तेथी ते आधी अवस्थाने प्राप्त थयेछो छे, अने हजु ते अनंता जन्ममरण करछे.' ए प्रमाणे कही ते छंटने तेना घणी पासेथी छोडाब्यो.

पछी ते पांचसे राजपुत्रो विचारवा लाग्या के 'आ संसार अनित्य छे. किपाकना

કાલ હેવા અને ચિરપરિચિત પ્રવા મોગથી સર્વું. હસ્તીના કર્ણ જેવી ચંપ્રલ આ રાષ્ટ્ર-
દર્શનને ત્રિકાર છે !' આ પ્રમાણે વૈરાગ્યપરાયણ શ્રદ્ધ તેઓએ ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું.
માત્રે સર્વે સદ્ગતિના માનન થયા.

આ પ્રમાણે મુશિષ્યો અન્ય ભવમાં પણ વપકારી થાયછે. એવા આ સ્થાને અપદેશ છે.

સંસારવંચના નદિ ગણંતિ, સંસારસૂચ્યરા જીવાં ।

સુમિળગણવિ કેઈ બુદ્ધિંતિ પુષ્પચૂલાવા ॥ ૧૭૦ ॥

અર્થ—“ સંસારને વિષે આસક્ત શૂકર-શુંદ જેવા જીવો સંસારની વંચનાને ગણતા
નથી (વિષયાસક્ત જીવો વિષયનેજ સારભૂત ગણે છે); અને કેટલાક (છપુકર્મી
જીવો) સ્વપ્ન મધ્યે દેહવા માત્રથી પણ પુષ્પચૂલાની જેમ પ્રતિબોધ પામે છે.” ૧૭૦.
જેમ પુષ્પચૂલા નામે રાણી સ્વપ્નમાં નરકાદિ સ્વરૂપને જોઈને પ્રતિબોધ પામી, એવા પણ
કેટલાક જીવો હોય છે. ૫૨

પુષ્પચૂલાની કથા.

પુષ્પમદ્ર નામના નગરમાં પુષ્પકેતુ નામે રાજા હતો. તેને પુષ્પવતી નામે
પટ્ટરાણી હતી. એક દિવસ તેણે એ વાઙ્કો (પુત્રપુત્રી રૂપ યુગ્મ) ને જન્મ આપ્યો.
તેમાં પુત્રનું નામ પુષ્પચૂલ પાઠયું અને પુત્રીનું નામ પુષ્પચૂલા પાઠયું. અનુક્રમે તે બંને
ઐશ્વનાવસ્થા પામ્યા અને સર્વે વહાલામાં કુશલ થયા. તેઓને પરસ્પર અતિ સ્નેહ વંધાયો,
તેથી એક વીજા વિના તેઓ એક ક્ષણ પણ રહી શકતા નહોતા. તે જોઈને એકદા તેના
પિતાએ વિચાર કર્યો કે ‘આ સાથે જન્મેલા પુત્રપુત્રી પરસ્પર અત્યંત સ્નેહવાળા છે; તેઓ
જો તેમાંથી પુત્રીને વીજે પરણાવીશ તો તેમના સ્નેહનો મંગ થયો; માટે એ બંનેનો જ પરસ્પર
લગ્નસંબંધ થાય તો તેમને વિચારા ન થાય.’ એ પ્રમાણે ચિંતવી નાગરિક છેોકોને ત્રોટા-
વીને રાજાએ પૂછ્યું કે ‘અંત:પુરમાં હત્પન્ન થયેલા રત્નને સ્વેચ્છાથી જોડવાને કોણ
સમર્થ છે તે કહે.’ તે સાંભળીને તેનો આશ્રય નહિ જાળનારા મધાન પુરુષોએ કહ્યું કે
‘હે રાજન્ ! સંસારમાં જેજે રત્ન હત્પન્ન થાય છે તેને અન્યની સાથે જોડવાને રાજા સમર્થ
થાય છે, તો અંત:પુરમાં હત્પન્ન થયેલાં રત્નને જોડવાને રાજા સમર્થ થાય. તેમાં તો શું
કહેવું !’ એ પ્રમાણે છેલ્લવડે તેઓની અનુજ્ઞા મેઢવીને અંત:પુરની સ્ત્રીઓએ અટકાવ્યા
છતાં પણ રાજાએ તેને માઈ બેનનો લગ્નસંબંધ કર્યો. એ કાર્ય ઘણું અસમંજસ (અગોચર)
થયેલું જોઈ તેની માતા પુષ્પવીએ વૈરાગ્યપરાયણ શ્રદ્ધને દ્રોષા ગ્રહણ કરી પછી તે તપ તપો

काळ करीजे देवपणे उत्पन्न थई. पुष्पवैतु राजा पण अनुक्रमे परलोकमां गयो पृथ्वी पुष्पचूळ कुमार राजा थयो. तेणे पोतानी परणेळी वेन पुष्पचूळाने पट्टरांगी करी अने तेनी साथे विषयसुख भोगवतो सतो घणो काळ व्यतीत कर्यो.

एक समय तेमनी मातानो जीव जे देव थयो छे तेणे अवधिज्ञानथी जोयुं, पृथ्वी तेने पूर्व भवनां पुत्रपुत्री उपर प्रीति उत्पन्न थवाथी ते मनमां विचार करवा लाग्यो के 'आ मारा पूर्व भवनां पुत्र अने पुत्री आवा प्रकारजुं पापकर्म करी नरकमां जवो, तेथो हुं तेमने प्रतिबोध पर्याहुं.' एम विचारी तेणे पोतानी पुत्री पुष्पचूळाने रात्रि ए स्वप्नानी अंदर नरकनां दुःखो देखाडयां. ते जोडने ते भयभीत थई गइ. सवारमां तेणे राजानी आगळ स्वप्नानी इकीकत कही. राजा ए पण नरकजुं स्वरूप पृथ्वाने माटे अन्यदर्शनी योगिओ विगेरेने बोलाव्या अने नरवजुं स्वरूप पृथ्वुं. त्यारे तेओ ए जणाव्युं के 'हे राजन ! शोक, विचोग, रोग अने भोगमां पराधीनता विगेरे नरकनां दुःखो जाणवां. त्यारे पुष्पचूला राणी ए कहुं के 'मं जे दुःखो राजे स्वप्नमां जोयां छे ते तो मिन्न छे. पछी अर्णिकापुत्र आचार्यने बोलावीने राजा ए पृथ्वुं के 'हे स्वामिन ! नरकनां दुःखो केवां होयछे ?' तेना उत्तरमां आचार्ये राणी ए जेवां नरकनां दुःखो स्वप्नमां जोयां हां तेवांज कही वताव्यां. ते सांभळीने आश्चर्य पावेली राणी ए पृथ्वुं के 'हे स्वामी ! आपे एण थुं वजुं स्वप्न जोयुं छे ? के जेथी मं स्वप्नमां जेवां नरकनां दुःखो जोयां हां तेवांज आपे कळां. आचार्ये कहुं के 'अमे स्वप्नमां तो जोयां नथी, पण आमनां वचनथी ते जाणी ए छी ए.' पछी राणी ए पृथ्वुं के 'कया कयथी एवां दुःखो प्राप्त थोयछे ?' शुरु ए कहुं के 'पांच आश्रवना सेवनथी अने काम क्रोध विगेरे पापाचरणथी प्राणीओने नरकनां दुःखो प्राप्त थायछे.' इत्यादि कहीने शुरु पोताने स्थानके गथा करीथी बीजे दिवसे पुष्पचूळानी मातानो जीव जे देव हतो तेणे राणीने स्वप्नमां देवताओनां मुख वताव्यां प्रातःकाळे राणी ए ते स्वप्नानी इकीकत राजाने कही. तेथो राजा ए अन्य दर्शनीओने बोलावीने पृथ्वुं के 'स्वर्गनां मुख केवां होयछे ?' तेओ ए कहुं के 'हे राजन ! उत्तम प्रकारनां भोजन, श्रेष्ठ वस्त्रपरिधान, मियजनसेवा, उत्तम अंगनांओ साथे विलास इत्यादि स्वर्गनां मुखो छे.' त्यारे राणी ए कहुं के 'जे स्वर्गनां मुखो मं स्वप्नमां जोयां छे तेमनी साथे सरखावतां तमे कहेलां मुखो असुखांतमे भागे पण आवा शकतां नथी.' पछी अर्णिकापुत्र आचार्यने बोलावीने स्वर्ग मुखजुं स्वरूप पृथ्वुं. तेणे राणी ए स्वप्नमां जोयेलां मुखो जेवांज स्वर्गनां मुखो कही वताव्यां. राणी ए पृथ्वुं के 'एवां मुखो केवीं रीते मेळवाय ?' शुरु ए कहुं के 'यतिधर्म पाळवाथी मेळवीं शक्यां.' पछी धर्मजुं सर्व स्वरूप जाणवाथी पुष्पचूळाने वैराग्य

उत्सुक थयो, तेथी तेणे चारित्र्य ग्रहण करवाने माटे पत्निनी आज्ञा मागी. त्यारे राजाए -
 कर्तुं के 'तुं मने अतिप्रिय छे. माराथी तारो वियोग सहन थइ सकथो नहि, तेथी
 हुं तने दीक्षा ग्रहण करवानी आज्ञा वेधी रीते आर्या कर्तुं ?' राणीए घणा उपदेश-
 वडे राजाने वाळ्यो, त्यारे राजाए कर्तुं के 'जो दीक्षा ग्रहण करी अर्हेज रहे अने
 माझा घरनी भिक्षा छे तो हुं तने दीक्षा ग्रहण करवानी आज्ञा आपुं.' राणीए ए
 वाक्य कबुल करी अने अर्णिकापुत्र आचार्य पासे दीक्षा लीधी. पछी ते त्यांज रक्षीने
 राजाने घेरथी दररोज शुद्ध भिक्षा छेछे अने शुद्ध चारित्र्यधर्म पाळेछे.

एक विचस अर्णिकापुत्र आचार्ये चार वर्षे दरकाळ पढवाहं ज्ञानवडे जाणी सर्व
 पत्निनीने हृदी हृदी विचारों गोषली हीछा अने तोने न्हि चाली सकवथी त्यांज
 रक्षा उपेक्षा सार्थी दररोज मने आहार सार्थी आपेछे अने तेमनी पितानी माफक
 सेवा करेछे. ए उदाणे इतिदिन इरुक्ति पराएच वरेतां उपेक्षाने शुभ ध्यानना योग्यी
 वेदहानं तरक इह तोएण ते श्रवणे आहार दिनेने छाराने आपेछे. एक वस्तत मेघ
 वस्ततो इतो, छानं एण उपेक्षा भिक्षा लहने आर्था. तेने श्रवण कर्तुं के 'हे वस्ते !
 तुं आ शुं वरेछे ? एष तो हुं एषवशानवासी इ. बाळ ह सार्थीने आपेछे आहार
 ग्रहण करेछे. रक्षी करकाळ करेछे कर्ता एण हुं आहार सार्थीने मने आपेछे, ते शुं उचित
 करेछे ?' त्यारे उपेक्षारण कर्तुं के 'हे सार्थी ! आ मेघ अचित छे.' श्रवण कर्तुं के 'ते
 तो वेदही होय तेज जाणे. त्यारे उपेक्षारण करुं के 'स्वामिन ! आपनी कृपायी ते ज्ञान
 मने पण छे.' ते सांभळीने आचार्य पञ्चाक्षर करवा लाग्या के 'अरे ! मने धिक्कार छे
 के म घेवलीनी आज्ञातना करी.' आ प्रमाणे शेट वराने तेणे मिथ्यादुष्टत दीधी. पछी
 सांभोए कर्तुं के 'हे स्वामिन ! तमे जामाटे स्विक्र थाओ छो ? तमे पण गंगा नदी
 उत्तरतां वेवळज्ञान पामो मोक्षे जसो.' ते सांभळीने गुरु गंगाने कांठे आधी नावनी अंदर
 वेठा, तेठळामां पूर्वभवना वरी कोइ देवे आर्वीने जे बाजुए गुरु वेठेला छे ते भागने जळ्यां
 हुवाववा मांडयो त्यारे गुरु नावना मध्य भागमां वेठा, एटछे आली नाव बुडवा लागी.
 ते जोइ अनार्य लोकोए जाण्युं के 'अरे ! आ यतिने लीधे मघळाओनुं मरण थसो.' ए
 प्रमाणे चिंतवी तेओए मळी आचार्यने उपाडीने जळनी अंदर नांखी दीधी. ते समये पेला
 देवे आर्वीने तेनी नांवे त्रिशूल धारण कर्युं अने ते वडे अर्णिकापुत्र आचार्यने
 ते वस्तते पोताना शरीरमांथी नांकळता ल्धिरने जोइ आचार्य
 छारया के 'अरेरे ! आ माग रुधिरयो जळना जीवोनी
 अनित्य भावना भावतां धातिकर्मनी क्षय थवाथी'

देवोप आवीने तेनो महिमा कयो. तेथी लोकोप जाण्युं के 'जे गंगामा. माणस
मोक्षे जायछे.' पछी ते स्थाने प्रयाग नामना तीर्थनी लोकोप स्थापना करी. पक्य

जो अतिकलं तवसंजमं च, साहू करिञ्जा पच्छावि ।

अन्नियसुयव्व सो नियगं-महम्मचिरेणं साहेइ ॥ १७१ ॥

अर्थ-“जे साधु अतिकल के० संपूर्ण एवं तप (वार प्रकारनो) अने संवध
(सर्व जीवरक्षा रूप सत्तर प्रकारनुं) पश्चात् एटछे हृद्दावस्थामां पण करेछे-साधेछे ते
(हृद्दावस्थामां धर्म करनार) अर्णिकापुत्र आचार्यनी जेम पोताना अर्थने एटछे पर-
छोकना साधनने अचिर के० थोडा कालमां पण साधेछे.” १७१. अर्थात् जे यौवना-
वस्थामां विषयासक्त होय छाता अंतकालमां पण धर्म करेछे ते आत्मानुं हित साधी
शकेछे. अहीं उपरनी कथामां कहेतां अविशिष्ट रहेछे अर्णिकापुत्रनो प्रथमनो संबंध
जाणी छेवो. ५४.

अर्णिकापुत्र संबंध.

उत्तरमथुरा नगरीमां कोइ व्यापारीना कामदेव अने देवदत्त नामना बे पुत्रो
रहेता हता. ते वनेने परस्पर अति माद मित्रता हती. तेओ एकदा पोतानां भोवा-
पितानी आज्ञा लइने व्यापारार्थे दक्षिणमथुराए गया.त्यां तेमने जयसिंह नामना एक
वणिकपुत्र साथे मैत्री थइ. जयसिंहने अर्णिका नामे वेन हती. ते घणी रूपवती हती.
एक दिवस जयसिंहे पोतानी वेन अर्णिकाने कहुं के 'आज सरस रसोइ बनाव,कार-
णके धारा बे मित्र कामदेव ने देवदत्त आपणे त्यां भोजन करवाना छे. तेथी अर्णि-
काए उत्तम रसोइ बनावी. पछी भोजनसमये त्रणे मित्रो एक पात्रमां भेळां जमवा
वेठा. अर्णिकाए भोजन पीरस्युं. पछो ते अर्णिका तेमनो पासं उभी रहीने पोताना
बल्लना छेढायी कायु नाखवा लागी. ते बसते तेना हाथना कंकणनो रणत्कार, तेनां
स्तन, उदर ने कटिप्रदेश तथा नेत्र ने बदननो बिलास जोइने देवदत्त अत्यंत कामा-
तुर थयो. तेमज घीना पात्रनी अंदर प्रतिबिंबित थयेछुं तेनुं रूप जोइने ते अति काम-
रागी परवश बनी गयो. तेने भोजन विषरूप थयुं, तेथी तेणे कंइ पण स्वाधुं नहि
अने बलंदो उठो गयो.

बीजे दिवसे तेणे पोतानो अभिप्राय कामदेवनी मारफत जयसिंहने जजाव्यो.
त्यारे जयसिंहे कहुं के "हे मित्र ! धारी आ वेन मने अतिप्रिय छे अने तये तो परदेशी
छे, तेथी तेनो वियोग मारावी केवी रीते सहन थइ शके ? माटे जे कोइ आ अर्णिकाहुं

गाथा १७१-तवसंजमं । अन्नियसुयव्व । नियममहु- निजकं अर्थे ।

વસ્તુ યથેહ્ય કરીને મારા ઘરમાં જ વાસ કરશે તેને હું મારી લેન. પરનાવવાનો હું તેમ કહું તો જો દેવદત્ત એક પુત્રની ઉત્પત્તિ થતાં સુધી પણ અન્ન નિવાસ કરે તો હું અર્ણિકાને હું તેની સાથે પરણાવું.” દેવદત્તે એ સઘળું કહ્યું અને અર્ણિકાને પરણ્યો. પછી તેની સાથે મનવાંછિત વિષયમુલ્ય ભોગવતા તેણે ત્યાં ઘણો કાલ વ્યતીત કર્યો. તેવામાં અર્ણિકા ગર્ભવતી થઈ.

અન્યદા ઉત્તરમથુરાથી દેવદત્તના પિતાનો પત્ર આવ્યો, તેમાં લખ્યું હતું કે ‘ હે પુત્ર ! તને દેશાંતરમાં ગયાને ઘણો કાલ થયો છે; તેથી હવે તારે અહીં સત્તર આવવું, વિલંબ કરવો નહિ? એ પ્રમાણે પિતાનો પત્ર વારંવાર વાંચીને મુલ્યથી ઘોલી-ન-અકાષ ધર્મા પિતાપરના પ્રેમભાવને પ્રાપ્ત થયેલો દેવદત્ત મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યો કે ‘ મને ધિકાર હો કે હું વિષયામિલાષને લીધે વચનથી વધાઈ ગયો અને દુઃખાવસ્થાજ્ઞાત્ય માતાપિતાને તજીને અહીં રહ્યો. એ પ્રમાણે શ્લેષ કરતા પોતાના પતિને જોઈને અર્ણિકાએ પતિ પાસેથી પત્ર લઈ લીધો, અને તે વાંચીને તેણે અંદરની ક્ષીના જાણી, પછી સસરાને મળવાને ઉત્કંઠિત થયેલી અર્ણિકાએ મહા આગ્રહ પૂર્વક ખાંડની આજ્ઞા મેલવી અને પોતાના ભત્તાર સાથે સાસરે જવા ચાલી; માર્ગમાં તેને પુત્રપ્રસવ થયો. પછી દેવદત્તે કહ્યું કે ‘ આ પુત્રનું નામ અર્ણિક (અર્ણિકાનો પુત્ર) પાડવું. પછી, માતાપિતા તેનું જે નામ પાડશે તે પ્રમાણ કરશું.’ અનુક્રમે તેઓ ઘેર આવ્યા અને માતાપિતાના ચરણમાં પડ્યા. પિતાને ઘણો આનંદ થયો. તેણે પૂછ્યું કે ‘ હે વત્સ ! આટલા સ્વલત સુધી ત્યાં રહીને તે શું મેલવ્યું ?’ ત્યારે દેવદત્તે અર્ણિકાથી જન્મેલો પોતાનો પુત્ર પિતાના સ્વલતામાં મૂક્યો, અને પોતાની વહુ ઘતાવીને કહ્યું કે ‘ આટલું મેલવીને હું આવ્યો છું.’ તે વચ્ચે પૌત્ર અને પુત્રવધૂને જોઈને માતાપિતા ઘણા સુખી થયા અને પિતાએ પોતાના પૌત્રનું ઉચિત નામ પાડ્યું, પરંતુ અર્ણિકાપુત્ર એવું નામ વિશેષપણે લોકમાં પ્રસિદ્ધ થયું.

અનુક્રમે અર્ણિકાપુત્ર યુવાન થયો, પરંતુ વિષયમાં વિરક્ત હોવાથી ત્રૈલોક્યપરાયણ બનીને તેણે ચારિત્ર્ય ગ્રહણ કર્યું. તેણે આગમનું રહસ્ય જાણી, ઘણા જીવોને પ્રતિવ્રોચ પમાઠી આચાર્યપદ મેલવ્યું પછી સાધુસમુદાયથી પરિવૃત્ત થઈ વિહારકરતા, પુણ્યમદ્ર નગરે પધાર્યા. ત્યારપછી જે હકીકત વની તે ઉપર કહેલી પુણ્યચૂલાની કથાથી જાણી. છેવી.

સુહિત્તો ન ચયઈ જોઈ ચયઈ જહાં દુસ્ત્રિઓ તિ અલિયમિણિં ।

ચિક્ષણકમ્મોલિત્તો, ન ઇમો ન ઇમો, પરિચ્ચયઈ ॥. ૧૭૨ ॥

अर्थ—“जेम दुःखी भाणस.विषयभोगादिकनो त्याग करे छे, तेम सुखी भाणस भोगादिकनो त्याग करी शकतो नयी, एम छोको जे.कहेछे ते असत्य छे, नियत वाक्य नयी. केमके चीकणां.कर्मथी उपलिस्र ययेछो सुखी के दुःखी कोड. पण भोगने तजतो नयी. १७२.” जो कर्मनी लघुता होय तोज भोगोने तजी शके छे, ते सिवाय कोइ तजी शकतो नयी, एम सिद्ध याय छे.

जह स्वयं चक्रवर्ती, पवित्रं तत्तियं मुहुत्तेण ।

न चयइ.तहा अहन्नो, दुबुद्धी खप्परं दमश्चो ॥ १७३ ॥

अर्थ—“जेम चक्रवर्ती. एक क्षणवारमां.तेवी विस्तारवाळी राज्यलक्ष्मीने तजी देछे, तेम अग्रन्य (अपुण्यवाळी) अने दुष्ट बुद्धिवाळो द्रमक (भीखारी) गाढ कर्मथी अवलिस्र होवाथी मात्र एक स्वर्पर जे.भिखा मागवाजुं पात्र तेने प्रण तजी शकतो नयी.” १७३

देहो पिपीलियाहिं, चित्वाइपुत्तस्स चालणी व्व.कश्चो ।

ताणुश्चो वि मणपजसो, न चालिश्चो तेण ताणुवरिं ॥१७४॥

अर्थ—“कीडीओए चित्वातिपुत्रना देहने चालणीनी जेवो छिद्रवाळो करी नांख्यो, तोपण तेण ते कीडीओपर थोडो पण मनमां द्वेष कर्यो (आण्यो) नहि.” १७४

पाणुच्चयं वि पावं, पिपीलियाए वि जे न श्हंति ।

ते.कहं जई अयावा, पावाइं करंति अघ्नस्स ॥ १७५ ॥

अर्थ—“जेओ भाणनेो नाश याय तोपण कीडीओ जेवा.जीवो पर.प्रण पाप कर्म करवा इच्छता नयी, ते (तेवा) पापरहित मुनिओ श्रीजा.जीवो पर.पापकर्म तो क्यांथी ज करे ? अर्थात् बीजावो पर तो प्रतिकूल आचरण सर्वथा नश करे.” १७५
करीरने चालणी प्राय करनार कीडीओनेो विनाश पण जे न इच्छे ते अन्यजुं अहित तो करेज केम. ए तात्पर्य समजबो.

जिणपहश्चापान्धियाणं, पाणहराणं पि.पहूरमाणाणं ।

न करंति थ पावाइं, पावस्स फलं वियाणंता. ॥ १७६ ॥

अर्थ—“वळी जे पापजुं फळ (नरकादिक छे एम) जाणछे एवा मुनिओ जैन भांगने नहीं जाणनारा (अधम) छोको के जेओ स्वप्नादिकवडे महार करीने भांगोनेो

गाथा १७३-पवित्रं-प्रविस्तरां विस्तरवर्ती राज्यलक्ष्मी ।

गाथा १७४-पिपीलियाहिं । चाङ्किणिव्व । गाथा-१७५-पावं । पिपीलियाए

નાશ કરે છે, તેઓનાં પર પળ પાપકર્મો કરતા નથી.” અર્થાત્ તેઓના મરણેનું વિત્તવન કરવા રૂપ પાપકર્મ આચરતા નથી, તેઓનો દ્રોહ કરતા નથી. ૧૭૬

વહમારણઅબ્જસ્ત્રાણદાણપરધણવિલોવણાર્ણણ ।

સવ્વજહન્નો ઉદ્દઓ, દસગુણિઓ ઇક્કસિકયાણં ॥ ૧૭૭ ॥

અર્થ—“ એકવાર કરેલા એવા વધ (લાકડી વિગેરેથી મારવું) મારણ (પ્રાણનો નાશ કરવો), અભ્યાસ્યાન દાન (અછતા દોષનો આરોપ કરવો) અને પરધનનો વિલોપ કરવો એટલે ચોરી કરવી, આદિ શબ્દથી કોઈના મર્મ વોલવા, ઘુસ વાત પ્રગટ કરવી વિગેરે. આ સર્વે પાપકર્મોનો જઘન્યપણે હૃદય (ઓછામાં ઓછો હૃદય થાયતો) દક્ષગણો થાય છે. એટલે કે એકવાર મારેલો જીવ પોતાના મારનારને દશવાર મારનાર થાય છે [હણે છે]. આ સામાન્ય ફલ જાણવું” ૧૭૭.

તિવ્વયેરે ઉવઓસે, સયગુણિઓ સયસહસ્સકોડિગુણો ।

કોડાકોડિગુણો વા, હુક્કા વિવાગો બહુતરો વા ॥ ૧૭૮ ॥

અર્થ—“ તીવ્રતર દ્વેષ છતે એટલે અતિ ક્રોધવડે વધાદિક કરવાથી સેગણો: વિપાક હૃદય આવે છે, તેથી પણ અધિક તીવ્રતર દ્વેષ છતે, સો હજાર એટલે લાસગણો વિપાક હૃદય આવે છે અથવા કરોડગણો હૃદય આવે છે; અને તેથી તીવ્રતમ અતિશય ક્રોધવડે વધાદિક કરનારને કોટાકોટિ ગણો વિપાક હૃદય આવે છે, અથવા તેથી પણ અધિક વિપાક હૃદય આવે છે. એટલે કે જેવા કષાયવડે કર્મ વાંધું હોય તેવો વિપાક હૃદય આવે છે.” ૧૭૮.

કે ઈથ કરંતાલંબણં, ઈમં તિહુયણસ્સ અચ્છેરં ।

જહ નિયમાસ્થવિયંગી, મરુદેવી જગવર્ષ સિદ્ધા ॥ ૧૭૯ ॥

અર્થ—“ ક્ષેટલાએક પુરુષો આ [વધાદિક વિપાકરૂપ] અર્થને વિષે જન જગતને આશ્ચર્યકારક એવું આ આલંબન પ્રદાન કરે છે કે જેમ તપ સયમાદિક નિયમોવડે જેનું અંગ ક્ષપિત થયું નથી, એટલે પૂર્વે જેને ધર્મ પ્રાપ્ત કર્યો નથી એવી મગવતી (પુણ્ય) મરુદેવી માતા મોક્ષ પામ્યા છે, તેથી રીતે અમે પણ વધાદિકના વિપાકને અનુભવ્યા વિના

માથા ૧૭૭-વિલોવણાર્ણણ । માથા ૧૭૭-ઉપઓસે । હુક્કા ।

માથા ૧૭૮-કરંતિ આલંબણં । નિયિમાદ્ધિરક્ષપિત અંગં યત્થા: સ્થા ।

तथा... तपस्यमादिक दमिदृष्टान कर्मा विना ज मोक्ष पायीतुं, एतुं अवलंबन ग्रहण करे छे, परंतु ते ग्रहण करवा लायक नथी." १७९.

मरुदेवी मातांनी कथा.

ज्यारें श्रीऋषभस्वामीए चारित्र्य ग्रहण कर्युं ज्यारें भरत राजा राज्यना अविकारी थया. भरतने दररोज शरदेवी माता लपालंब आपता हता के. "हे वत्स ! तूं राज्य-सुखमां मोह पाय्यो छे, तेथी मारा पुत्र ऋषभनी तूं काइ सारसंभाळ छेतो नथी; हुं छोंकोत्ता इत्थरी एतुं सांभळ्ळुं के ते मारी पुत्र एक वर्ष थयां अमृजळ विना भूल्यो तरय्यो अने वल्लविना एकाकी कर्य्यमां विचरे छे, तापादिक सहन करे छे अने बहु दुःख-ने अनुभवे छे; माटे एकवार तूं मारा पुत्रने अहीं लाव, तेने हुं भोजन आपुं अने एकवार पुत्रतुं सुख जोचं." ते सांभळीने भरते फलुं के "हे मांजी ! तमे शोक न करो, अये सोए तमाराजः पुत्रो छीए." माता बोल्या- "हे वत्स ! तूं कहे छे ते स्वतं, पण आम्रफळनी इच्छावाळा माणसने आंभळीना पळथी शी तंप्ति थाय ? माटे ते ऋषभ पुत्र विना आ सर्व संसाह मारे वन तो शून्यज छे." आ प्रमाणे दररोज लपालंब आपता तथा पुत्रना वि-योखी रुदन करता मरुदेवी माताना नेत्रमां पडळ आख्यां. एवी रीते एक हजार वर्ष व्यतीत थयां एटळे श्रीऋषभस्वामीने वेवळहान स्तपज थयुं. ते वखते चोसठ इन्द्रोए आधीने समयसरण रच्युं. वनपालके भरत राजाने तेनी वधामणी आपी. ते जाणीने भरत राजा मरुदेवी माता पासे आधी ते वृचांत बर्हीने बोल्या के- "हे माता ! तमे मने हमेशां लपालंब आपता हता, के मारो पुत्र टाढ तडका विगेरेनी पीढाने अनुभवे छे अने एकलोज वनमां विचरे छे, तो आजे मारी साथे तमे चालो एटळे तमारा पुत्रनेा वैभवं हुं तमने वतातुं." ते वचन सांभळीने पुत्रदर्शन माटे अति उत्सुक थयेछो मरुदेवी माताने हस्तीना श्कंधपर बेसाडोने भरतराजा समयसरण तरफ चाल्या. समयसरण नजीक पर्वोचंतां देवहुंदुभिना शब्द सांभळीने मरुदेवी माताने हर्ष थयो अने देव तथा देवीभो-ना जय जय शब्दो सांभळीने तेमने रोमोज्जय थयो, नेत्रोमां अश्रु आख्यां. तेथी तरत ज तेमनां नेत्रपडळ उघडी गयां, एटळे समयसरणना व्रण प्राकार, अशोक वृक्ष तथा छत्र चामरादिक सर्व तेमणे प्रत्यक्ष दीठुं. पछी उपमा रहित एवी प्रातिहार्यनी समृद्धि जोडने माता मनमां विचार करवा लाग्या के "अहो ! आ संसारने धिकार छे, अने मोहने पण धिहार छे. के. के हुं एम जाणती हती के मारो पुत्र एकलो वनमां भूल्यो तरय्यो भटकतो ह्यो, परतु आ तो आटली वधी समृद्धि पाय्यो छे ते छतां पण तेणे मने कोइ वखत संदेशी सरखो पण मोकल्यो नहीं अने हुं तो तेनापरना

મોહને કીધે હૈયેકો દુઃસ્ત્રી થઇ, તો કૃષ્ણિમ અને એકતરફી સ્નેહને ધિકાર છે! પુત્ર કોણ અને માતા પણ કોણ? આ સર્વ દુનિયા સ્વાર્થનીજ સગી છે. વાસ્તવિક કોઈ કોઈને વહાલું થયી.” આ રીતે અનિત્ય ભાવનાને ભાવતાં ઘાતિકર્મનો ફાયર યથાવી કેવલજ્ઞાન પામી અંતર્મુહૂર્તમાજ મોક્ષપદને પામ્યા. ‘આ મરુદેવી માતા પ્રથમ સિદ્ધ થયા’ એમ કહીને દેવોએ તેમનો દેહ સીરસાંગરયાં નાંખ્યો.

આ દૃષ્ટાંત લઈને કેટલાએક માંગસો એમ કહે છે કે—“તપ સંયમ વિગેરે અનુદાન” કર્યાં વિનાં જેમ મરુદેવી માતા સિદ્ધિપદ પામ્યાં, તેમ અમે પણ મોક્ષ પામીશું.” એવું આલંબન ગ્રહણ કરે છે, પણ વિવેકી પુરુષોએ તેવું આલંબન ગ્રહણ કરવા હાંચક નથી.

કિંપિ કાંઈપિ કયાઈ, એગે લડીહિ કેહિવિ નિજોહિ ।

પત્તેઅબુરુલાજા, હવંતિ અચ્ચેરયજ્ઞુયા ॥ ૧૭૦ ॥

અર્થ—“અર્થ કેટલાએક (પ્રત્યેકવુદ્ધ) પુરુષો, કોઈક વસ્તુ, કાંઈક વસ્તુ જોઈને કોઈક સ્થાનને વિષે, આવરણકારી કર્મના ક્ષયોપશ્ચય રૂપ લલ્લિવદે કરીને, કોઈક વુદ્ધ હુષમ (વલ્લદ) વિગેરે વસ્તુ જોવા રૂપ નિમિત્તવદે પ્રત્યેકવુદ્ધપણે સમ્યક્ દર્શન ચારિત્રાદિકનો લાભ પ્રાપ્ત કરે છે તે આશ્ચર્યમૂલક છે, એટલે તેવાં દૃષ્ટાંતો યોદાંકન હોયે છે. માટે તેવું આલંબન પણ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી.” ૧૮૦

નિહિં સંપત્ત મહજ્ઞો, પડિચ્છંતો જહ જગો નિરુત્તપ્પો ।

હહ નાસહ તહ પત્તેઅબુરુલડિ પડિહ્જંતો ॥ ૧૭૧ ॥

અર્થ—“જેમ આ જગતમાં (નિધિને) ઇચ્છતો પણ તેને છેવા માટે (લલ્લિવિધાન રૂપ) જ્ઞાનને નહીં કરતો એવો અધન્ય એટલે અપુણ્યશાલી માંગસ. તે માત્ર યયેલ (રત્નસુવર્ણાદિકયો ભરેલા) નિધિને પણ નાશ પમાડે છે, તેમ પ્રત્યેકવુદ્ધપણાની લક્ષ્મીને ધાંચતો એવો પુરુષ પણ તપ સંયમાદિક લલ્લિવિધાન નહીં કરવાથી મોક્ષ રૂપ નિધાનને નાશ પમાડે છે.” ૧૮૧

સોજ્ઞ ગઈ સુકુમાલિયાઈ, તહ સસગમસગજયણીઈ ।

તાવ ન વિસસોયવ્વં, સયટ્ટીધમ્મીઓ જાવ ॥ ૧૭૨ ॥

અર્થ—“તથા સસક અને ખસક નામનાં બે માઈઓની વહેન સુકુમાલિકાની

માયા ૧૮૦—કહપિ । કહવ । અચ્ચેરયજ્ઞુયા । કેહિવિનિમેહિ—કૈશ્વિદપિ નિમિસૈ ।

માયા ૧૮૧—પત્તિયતો—પડિચ્છંતો । નિરુત્તપ્પો નિરુષમઃ ।

માયા ૧૮૨—સુકુમાલિયાઈ । સયટ્ટિ ધમ્મિસો ।

મતિ-અવસ્થા સાંભળીને ડ્યાંમુઘી રુધિરમાંસયી રહિતવળાણ કરીને જૈના અસ્તિ (હા-
દકા) નેત દટલે હલ્લહ યયેલાં છે એવો ધાર્મિક (ધર્મસ્વભાવ) વાય ત્યાંમુઘી વળ
વિષયરાગાદિકનો વિશ્વાસ કરવો નહીં. અર્થાદ્ કરીરમાં રુધિર તથા માંસ મુજ્ક બદ
જાય અને હાડકાં શ્વેત થાય તેા વળ ધર્મવામ્ સામુણ વિષયાદિકનો વિશ્વાસ કરવો
નહીં.” ૧૮૨. અહીં મુકુમાલિકાની કથા જાળવી. ૫૬

મુકુમાલિકાની કથા.

વસંતપુર નગરમાં સિંહસેન રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તેને સિંહલા નામની રાણી
હતી. તે રાણીની કુશિથી હતપત્ર થયેલા સસક અને ખસક નામના તેને બે પુત્રો હતા.
તે બન્ને હજાર હજાર યોજ્ઞાઓનો પરાજય કરે તેવા બલવાન હતા. તે બન્નેને મુકુ-
માલિકા નામે અતિ રુપવાન એક વહેન હતી. એકદા કોઈ આચાર્ય પાસે અનુપમ
રસવાલી અમૃત સરસી ધર્મવેશના સાંભળીને સસક અને ખસકે ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું.
તેઓ અનુક્રમે ગીતાર્થ મુનિ થયા. દટલે તેમણે આવીને પોતાની વહેન મુકુમાલિકાને
મતિવોષ કર્યો, તેથી તેણે વળ ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું. પછી તે સાધ્વીઓની સમીપે રહીને
છદ અહમ વિનેરે આત્મપના સહિત તપ કરતી સતી પોતાના સૌંદર્યના દર્પને દુઃખ
કરવા છામી;તોવળ તેના અનુપમ રુપયી મોહ પાયેલા અનેક કામી પુરુષો ત્યાં આવીને
તેની સન્મુલ્લ વેસી રહેતા હતા, અને તેની સાથે વિષયની અમિલાષા કરતા હતા. એક
જળ વળ તેના સંગને તેઓ મૂકતા નહીં. તે જાણીને વીજી સાધ્વીઓએ તેને ઉપાશ્ર-
યમાં જ રાખવા માંટી. તોવળ તેના રુપયી મોહ પાયેલા કામી પુરુષો ઉપાશ્રયના
દ્વારે આવીને વેસી રહેવા છામ્યા, અને તેના મુલ્લને જોવાની ઠાલસાથી ઉન્મચનો
જેમ ખયવા છામ્યા. તેઓ કટાલોને સાધ્વીઓએ જડને આચાર્યને કહ્યું કે “હે સ્વામી !
આ મુકુમાલિકાના ચારિત્રજ્ઞું રક્ષણ અમારાયો વનતું અશ્વક્ય છે. કેમકે કામસેવાના
અર્થાં ઘળા યુવાનો ઉપાશ્રયે આવીને ઉપદ્રવો કરે છે. તેઓને બંધે શી રીતે નિવારી
કરીએ !” તે સાંભળીને સૂરિએ તે મુકુમાલિકાના માદ્ઓ સસક ખસકને બોલાવીને
કહ્યું કે-“ હે વત્સો ! તમે સાધ્વીને ઉપાશ્રયે જાઓ, અને તમારી વેનની રક્ષા કરો.
શીલપાંચનમાં તેને સહાય કરવાથી તમને મોટો લાભ છે.” આ પ્રમાણે શુરુતું વાક્ય
સાંભળીને તે બન્ને માદ્ઓ ત્યાં જડને વહેનની રક્ષા કરવા લાંગ્યા. તેમાંથી એક જળ
નિરંતર ઉપાશ્રયને વારણે વેસી રહે છે અને વીજો નોચરી માટે જાય છે. એક વલ્લત
તો યુવાન કામી પુરુષોની સાથે તેમને યુદ્ધ થયું.તે જોઈને મુકુમાલિકાએ વિચાર્યું કે
‘મારા રુપને ધિકાર છે ! ને લેથી મારા માદ્ઓ મારે માટે સ્વાધ્યાય. ધ્યાન. અધ્યયન

વિગેરે મૂકીને ક્લેશ સહન કરે છે; તો હવે હું અનશન ગ્રહણ કરીને જે શરીરને માટે આ કામી પુરુષો તાપ પામે છે તે શરીરનો ત્યાગ કરું.” ઈ રીતે વિચારીને તેણે અનશન ગ્રહણ કર્યું. તેથી માલતીના પુણ્યની જેમ તે થોડા દિવસમાં કરમાઈ (સૂકાઈ) ગઈ, તેનું શરીર ક્ષીણ થયું, અને એકવાર તો શ્વાસનું કંઠન થવાથી તે મૂર્છા પામી. તે જોઈને તેના ભાઈઓ તેને મરેલી જાળી ગામ વહાર જઈ વનની શૂંમિયાં પરઢવી આવ્યા. પછી તે વનને ગામમાં આવ્યા. અહીં થોડી વારે અરણ્યના ક્ષીતલ વાયુથી મુક્કમાલિકાને વેતના આવી. તેથી તે લખી યજ્ઞને ઘોતરફ જોવા છાગી. તેવામાં ત્યાં કોઈ સાર્યવાહ આવ્યો. તેના સેવકો જલ અને કાષ્ઠ છેવા માટે વનમાં ભ્રમતા હતા. તેમણે તેનું વનદેવતા સમાન સ્વરૂપ જોઈને તેને છડ્ જઈ સાર્યવાહને સોંપી. તે સાર્યવાહે પણ તેને તૈલમર્દનાદિ કરાવીને સજ્જ કરી. અને પથ્ય ભોજનાદિક કરાવીને પાછી નવા યૌવનવાલી કરી. પછી તેના રૂપથી મોહ પામેલા સાર્યવાહે તેને કહ્યું કે “હે સુંદરી ! આ તારું શરીર પુરુષના ભોગવ્યા દિના ક્ષોભતું નથી. જો વદાચ વિષયમુસલના સ્વાદમાં તને વિમુક્તપણું હોય, તો તારું આવું અનુપમ સ્વરૂપ વિધિષ્ણ જ્ઞા માટે કર્યું ? હે કમલ-સમાન નેત્રવાલો ! તને જોયા પછી મને વીજી સ્ત્રી રૂચતી નથી. જેમ કલ્પવૃક્ષીની ઘાંઠાવાળો ભ્રમર વીજી વહ્ણીનો મનોરથ કરતો નથી, તેમ તારા રૂપથી જેનું મન મોહ પામેછું છે એવા મને વીજી સ્ત્રી ગમતી નથી. માટે મારાપર કૃપા કર અને કામદેવ-રૂપી સમુદ્રમાં ડુબી ગયેલો જે હું તેનો લદ્દાર કર.” આ પ્રમાણેનાં સાર્યવાહનાં વચનો સાંભળીને મુક્કમાલિકાએ વિચાર્યું કે “આ સંસારમાં કર્મની ગતિ વિચિત્ર છે. વિષાતાનો વિકાસની સંભાવના થઈ શકતી નથી. કહુંછે કે-

અઘટિતઘટિતાનિ ઘટયતિ, સુઘટિતઘટિતાનિ જર્જરીક્રુરુતે ।

વિધિરેવ તાનિ ઘટયતિ, યાનિ પુમાન્નૈવ ચિન્તયતિ ॥ ૧ ॥

“ વિધિજ (વિષાતાજ) અયોગ્ય સંયોગવાળા પદાર્થોને એકત્ર કરે છે, અને સારી રીતે યોગ્યતાથી સંયોગ પામેલાને જર્જરિત (જૂદા) કરે છે. પુરુષ જેને મનમાં પણ કોઈ વસ્તુ ચિંતવતો નથી તેને તે વિધિજ સંયોગી કરી દે છે. ”

આ પ્રમાણે જો વિષાતાનોજ વિકાસ ન હોય તો મારા ભાઈઓજ મને મરેલી ધારી ને જ્ઞા માટે વનમાં મૂકી દે ? અને આ સાર્યવાહનો સંબંધ પણ શી રીતે થાય ? તેથી હું ઘાંઠું કે હજુ મારે કાંઈક પણ ભોગકર્મ ભોગવણું બાકો રહું છે. વળી આ સાર્યવાહ પણ મારો મોટો લપકારી છે, તેથી મારા સંગમ માટેનો તેનો અખિલાષ હું પૂર્ણ કરું.”

एम. विचारिने सुकुमालिका सार्थवाहना चरणमां पढीने हाथ जोडी बोली के " हे स्वामी आ मारी देहलता तमारे आधीन छे, माटे आ स्तनरूपी बे शुच्छने ग्रहण करो, अने तमारो मनोरथ पूर्ण करो." ते सांभळीने हर्षित थयेछो सार्थवाह तेने पोताना नगरमां छइ गयो, अने त्यां तेनी साथे निःशंकरूपणे विषयमुख अनुभवतां तेनो घणो काल व्यतीत थयो.

आ अवसरे विहार करता करता ससक अने भसक मुनि तेज नगरमां आच्यो. आहार लेवा माटे तेमणे नगरमां प्रवेश कर्यो; फरतां फरतां कर्मयोगे तेमणे सुकुमालिकानेज घेर जइने धर्मलाभ आप्यो. तेमने जोइने सुकुमालिकाए तो पोताना भाइओने ओळख्या, पण भाइओए तेने वरावर ओळखो नहीं. तेथी तेओ तेना सांभुं जोवा लाग्या. एटछे सुकुमालिकाए पूछथु के "हे मुनिराज ! तमे मारी सन्मुख जोइने केम लया छो ?" तेओ बोल्या के "तारा जेवी अमारे एक वेन पहेळां हती." ते सांभळीने नेत्रोमांथी अश्रुपात करती सुकुमालिकाए पूर्वजुं सर्व वृत्तांत भाइओने कसुं. पछी ते भाइओए सार्थवाहने प्रतिबोध पमाडीने तेने गृहवासणी छोडावी फरी दीसा आपी. ते शुद्ध [निरतिचार] चारिब्रह्मं आराधन करी अंते शुद्ध आलोचना पूर्वक मृत्यु पामिने स्वर्गें गइ.

आ सुकुमालिकानी कथा सांभळीने धर्मवान पुरुषे विषयोनेा विश्वास करवो नहीं; अने 'हुं जरावस्थाथी जीर्ण थयो छुं, माटे हवे मने विषयो शृं करवाना छे ?' एम कदी पण विचारखुं नहीं.

खरकरेह्तरयवसहा, सत्तगैयंदा विं नामें दैम्मंति ।

ईक्यो नवैरि नं दर्मैइ, निरंकुसो रुप्पणो अप्पा ॥ १८३ ॥

अर्थ—"गवेडा, लंठ, अन्ध, वृषभ (वद्व) अने मदोन्मत्त गलेन्द्रो पण दमी शकाय छे-वश कराय छे, परंतु एक निरंकुश एवो पोतानो आत्मा वश करातो नथी" १८३

वैरं मे अप्पा दैता, संजमेण तैवेण थं ।

मो 'हं परेहिं' दम्मंतो, 'बंधणेहिं' वहेहिं " अ ॥ १८४ ॥

अर्थ—"मारो (पोतानो) आत्मा संयमवडे अने तपवडे दमन करायेलो थोय तो ते श्रेष्ठ छे, परंतु कुगतिमां गयेलो हुं धीजा पुरुषोयां शृंखळां रज्जुं विगेरेना बंधनवडे अने लाकडी वीगिरेनो प्रहारवडे दमन करायेलो-ताप पमाडाएलो (वश करायेलो) थं तें श्रेष्ठ नथी, अर्थात् तेम न थोय तो ठीक. " १८४.

‘અપ્પા’ ‘ચેવ’ ‘દમૈયવ્વો’ ‘અપ્પા’ ‘હુ’ ‘શ્વલુ’ ‘દુહમો’ ।

‘અપ્પા’ ‘દંતો’ ‘સુહી’ ‘હોદ્દ’, ‘અસ્સિ’ ‘લોષ’ ‘પરત્થયે’ ॥૧૮૫॥

અર્થ—“નિત્યે કરીને આત્મા દમન કરવા યોગ્ય છે—વન્ન કરવા યોગ્ય છે. કેમકે (૧) આત્મા જ દુર્દમ [દુઃખે કરીને દમન થાય તેવો] છે. તે આત્માનું દમન કર્યું હોય તો તે આલોકમાં તથા પરલોકમાં મુક્તિ થાય છે.” ૧૮૫.

નિચ્છં દોસસહગચ્છો, જીવો અવિરહિય મસુહપરિણામો ।

નવરં દિન્ને પસરં, તો દેહ પમાય મયરેસુ ॥ ૧૮૬ ॥

અર્થ—“ નિત્યે દ્વેષની સાથે રહેલો ૧૮૬ પટલે રાગદ્વેષનો સહચારી થયેલો ૧૮૬ ઈવો આ જીવ નિરંતર અશુભ પરિણામવાલો રહેલો. તે આત્માને જો પ્રસાર આપ્યો હોય ૧૮૬ જો તેને મોકલો [છુટો] મૂક્યો હોય તો તે આ સંસારસાગર મધ્યે છેલકવિદ્ધ અને આગમવિદ્ધ ૧૮૬ ઈવાં કાર્યોમાં વિષય કષાયોદિક પ્રમાદને આપે છે.” ૧૮૬.

અચ્ચિય વંદિય પૂઠ્ઠ, સક્કારિય પણમિઓ મહ્ગ્ગવિચ્છો ।

તં તહ કરેહ્ જીવો, પાદેહ્ જહ્ અપ્પણો ઠાણં ॥ ૧૮૭ ॥

અર્થ—“ગંધાદિકવદે અર્ચન (પૂજન) કરેલો, અનેક લોકોએ ગુણસ્તુતિવદે વંદના કરેલો—સ્તુતિ કરેલો, વસ્ત્રાદિકવદે પૂજેલો, ઉભા થવું વિગેરે વિનયવદે સત્કાર કરેલો, મસ્તકવદે પ્રણામ કરેલો અને આચાર્યાદિક પદ આપીને મહત્વ પમાડેલો ૧૮૭ ઈવો જીવ ગર્વિષ્ઠ થવને તે પ્રમાદાદિક અકાર્યોને ૧૮૭ ઈવી રીતે કરે છે કે જેથી તે જીવ પોતાના મહત્વવાળા સ્થાનને પાઠી દે છે, ૧૮૭ પટલે આચાર્યાદિક મહત્વવાળા સ્થાનથી તે અદ્ધ થાય છે.” ૧૮૭

સીલવ્વયાહં જો વહ્પલાહં, હંતૂણય સુલ્લ મહિલસહ ।

ધીહ્પુલ્લો તવસ્સી, કોનીય કાગિણિં કિણ્ણં ॥ ૧૮૮ ॥

અર્થ—“ સંતોષવદે દુર્બલ—અસમર્થ (સંતોષ વિનાનો—અતૃપ્ત) ૧૮૮ ઈવો જે તપસ્વી જેનાથી સ્વર્ગયોજાદિક ઘર્ણાં ફળો-પ્રાપ્ત થાય છે ૧૮૮ ઈવા શીલ તે સદાચાર અને વ્રત તે પંચ-મહાવ્રત તેને હળીને—તેનો નાશ કરીને વિષયસેવનરૂપ મુલનો અભિલાષ કરે છે તે મૂર્ત્ત કોટ્ટી દ્રવ્ય આપીને રૂપીઆના પંક્ષીમા માગરૂપ કાકિણીને સ્વરોદ કરે છે.” ૧૮૮.

જીવો જહ્મણસિયં, હિયહ્મણપત્થિપ્પિહિં સુલ્લેહિં ।

તોસેલ્લણ ન તીરહ્, જાવહ્મણેણ સવ્વેણ ॥ ૧૮૯ ॥

अर्थ—“आ संसारी जीव मननी अभिछापाने अनुकूल अथवा जे प्रमाणे मनयां वितव्युं होय ते प्रमाणेनां हितकारक, इच्छेलां अने प्रार्थना करेलां एषां स्त्री विगेरेनां मुखोए करीने सर्व जीवन पर्यंत अनुभव कर्यां छतां अर्थात् ते मुखो भोगळां छतां पण संतोष पामवाने समर्थ थतो नयी; एटळे जावळीव निरंतर अनुभवकेळा विषय-मुखयी पण आ जीव संतोषने पामतो नयी.” १८९.

सुमिणंतराणुचूयं, सुखं समश्चिथयं जहा नस्थि ।

एवमिमं पि अर्श्यं सुखं, सुमिणोवमं होई ॥ १९० ॥

अर्थ—“जेम स्वप्न मध्ये अनुभवेळुं मुख जागृत थया पछी होतुं नयी, तेम आ (मत्स्य अनुभवेळुं विषयमुख) पण वर्तमानकालनुं उल्लंघन थया पछी एटळे भोगवी रत्ना पछी स्वप्ननी उपमावाळुं एटळे स्वप्न तुल्यज थाय छे, माटे ते विषयमुखमां आदर करवो नहो.” १९०.

पुरनिरुमणे जक्खो, मङ्गुरा मंगू तहेव सुयनिहसो ।

बाहेई सुविहियजणं, विसूरइ बहुं च हियएण ॥ १९१ ॥

अर्थ—“तेमज श्रुतनी एटळे सिद्धान्तनी परीक्षाना निकष एटळे कसोटीना पा-
षाण तुल्य अर्थात् बहुश्रुत एवा मंगू नामना आचार्य मथुरा नगरीमां नगरनी खाळ
पासे (यज्ञप्रासादायां) यज्ञपणे उत्पन्न थया; अने पछी ते सुविहित जन एटळे साधु
जनने (पोताना शिष्योने) बोध पमाडवा लाग्या अने हृदयमां घणो शोक करवा
लाग्या. एटळे शिष्योने बोध करतां पोताना हृदयमां अत्यंत शोक करता हवा. (ते बात
हचे पछानी गाथामां कहैवामां आवणे).” १९१ अही मंगू आचार्यनो संबंघ जाणवो. ५७

मंगूसूरिनी कथा.

एकदा श्रुतरूपी जळना सागररूप युगप्रधान श्रीमंगू नामना; आचार्य मथुरा नग-
रीमां पचार्यां. ते नगरीमां घणा घनाढय श्रावको रहेता हता. तेओ साधुओनी अत्यंत
भक्ति करनारा हता. तेथी तेओए ते आचार्यनी घणी सेवा करी. आचार्य पण त्यांज
रहीने पठन, पाठन तथा व्याख्यान करवा लाग्या. तेथी तेमणे श्रावकोनां चित्त अत्यंत
आवर्जित कर्यां, एटळे तेओ मंगूसूरिपर अधिक भक्तिवाळा थया. आचार्यनी सर्व रीत-

गाथा १९०-समश्चिथयं-समतीत जांगरणामंतरे ।

गाथा १९१-पुरनिरुमणे-नगरजळमिनेमसां ।

ભાવ ઉંચા પ્રકારનો જોઈને તેઓ એમ વિચારવા લાગ્યા કે “ આ સૂરિને આહાર-
 દિકતું દાન કરવાથી આપણે ભવસાગરનો પાર પામીશુંજ.” એમ જાણીને ત્યાંના શ્રાવકો
 તેમને મિષ્ટ અને સરસ આહાર આપવા લાગ્યા. તેઓ આહાર ભોગવતાં આચાર્યને રસ-
 છોહપતા થઈ. પદછે તેમણે વિચાર કર્યો કે “ જુદે જુદે સ્થાને વિહાર કરતાં આવો
 આહાર કોઈ પણ સ્થાને હું પામ્યો નથી. વહી અહીંના શ્રાવકો પણ વિશેષ પ્રકારે ભક્તિ
 કરેછે; માટે આપણે તો અહીંજ સ્થિરતા કરવી યોગ્ય છે.” એમ વિચારીને તે આચાર્ય
 સ્થાનવાસીપણાઈ કરીને [એક સ્થાનેજ રહેવાપણાઈ કરીને] ત્યાંજ રહ્યા. ધીરે ધીરે
 ગૃથસ્થીઓની સાથે પરિચય વધતો ગયો. તેથી મિષ્ટ આહારના ભોજનવહે, અતિ કોમલ
 શ્વેત્યામાં શયન કરવાવહે અને સુંદર ઉપાશ્રયમાં રહેવાવહે તે આચાર્ય રસગૃથ થઈ ગયા,
 આવશ્યકાદિક નિત્યક્રિયા પણ છોટી ધીધી, અને મનમાં અહંકાર કરવા લાગ્યા કે
 ‘મને શ્રાવકો કેવો રસવાળો આહાર આપેછે ? એ પ્રમાણે તે રસગૌરવ કરવા લાગ્યા.
 અનુક્રમે ઋણે ગૌરવમાં નિમગ્ન થઈને સર્વ જગતને તૃણ સમાન માનવા લાગ્યા. મૂલ્ય ગુણમાં
 પણ કોઈ કોઈ વસ્તુ અતિચારાદિક લગાડવાવહે શિથિલ થયા. એ પ્રમાણે ચિરકાલ
 મુખી અતિચારાદિકથી દૂષિત થયેલા ચારિત્રતું પાલન કરીને છેવટે તેની આલોચના
 કર્યાવિના મૃત્યુ પામી તેજ નગરના જાળને નીકળવાની સ્વાલ પાસેના યક્ષાલયમાં યક્ષપણે
 ઉત્પન્ન થયા. ત્યાં તેણે વિભંગજ્ઞાનવહે પૂર્વમવ જોઈને પશ્ચાત્તાપ કર્યો કે “ હા, હા ! મં
 મૂર્ખાઈ જિહાના સ્વાદમાં લંપટ થઈને આવી કુદેવની ગતિ પ્રાપ્ત કરી.” પછી પોતાના
 શિષ્યો બહિર્ભૂમિષ્ટ (સ્થંદિલ) જઈને પાછા આવતાં તે યક્ષની નજીક આવ્યા ત્યારે તેમને
 લદેશીને તે યક્ષે પોતાની જીહા મુલથી બહાર કાઢીને દેખાડી. તે જોઈને તે સર્વે શિષ્યોએ
 મન દૃઢ રાખીને તેને પૂછ્યું કે—‘હે યક્ષ ! તું કોણ છે ? અને શા માટે જીવ્યાને બહાર
 કાઢે છે ?’ યક્ષ બોલ્યો કે હું તમરો શુભ મંગૂ નામનો આચાર્ય જીહાના સ્વાદમાં
 પરાધીન થઈને આવો અપવિત્ર દેવ થયો છું. મેં ગૃહનો ત્યાગ કરી ચારિત્ર લઈને પણ
 જીને ‘ધરે કહેલા ધર્મની આરાધના ન કરી અને ઋણ ગૌરવવહે આ આત્માને મહીન કર્યો,
 ચારિત્રની શિથિલતામાં સમગ્ર આગુચ્ય શુભાન્તું. હવે અધન્ય, પુણ્યરહિત અને વિરતિ
 વિનાનો ઈવો હું શું કરું ? આ ભવમાં તો હું વિરતિ પાલવાને સમર્થ નથી; તેથી મારા
 આત્માનો હું શોક કરું છું. આ પાપી જીવ ધીતરાંગના ધર્મને પામ્યા છતાં પણ તે ધર્મતું
 સમર્થક પ્રકારે પાલન નહીં કરવાથી ઘણો કાલ સંસારમાં મટકશે. માટે હે સાધુઓ !
 તમે શ્રીજીનિર્ધર્મને પામીને રસલંપટ થશો નહિ. જો કંદાબ જીહાના સ્વાદમાં લુબ્ધ
 વશો તો મારી જેમ પશ્ચાત્તાપ કરવાનો વસ્તુ આવશે.” આ પ્રમાણે પોતાના પૂર્વમવના
 શિષ્યોને ઉપદેશ આપીને તે યક્ષ અદૃશ્ય થયો. પછી તે સાધુઓ શુદ્ધ ચારિત્રતું પાલન

करीने सशत्रिने पाम्या. आ दृष्टांतसांमळीने सर्व कोईए जिबहाना स्वादनो त्याग करवो. हवे ते दक्षे जे प्रमाणे शोक कर्यो ते नीचेनी गाथायां वतात्रे छे.

निगंतूण धराओ, न कओ घम्मो मए जिणवखाओ ।

इद्धिरससायगुरुयत्तणेण, न य चेइओ अप्पा ॥ १९२ ॥

अर्थ—“ में गृह्णी बहार नीवळीने पण निवासस्थान, वस्त्र विगेरेनी ऋद्धियी ऋद्धिगारव, मिष्ट आहारादिकना रसथी रसगारव अने कोमळ क्षय्यादिकना सुखथी सातागारव—एम ए त्रणेने विषे आदरपणाए करीने एटछे तेमनो आदर करीने श्रीजिनेबरे कहेछो घर्म कर्यो नहीं (पाळयो नहिं), अने मारा आत्माने में चेतित-सावधान कर्यो नहिं. ” १९२.

ओसन्नविहारेणं, हां जहं झीणंमि आउए सव्वे ।

किं काहामि अहन्नो, संपइ सायामि अप्पाणं ॥ १९३ ॥

अर्थ—“ अरे ! जे प्रकारे चारित्रविषयमां शिथिल व्यवहार करवावडे माहं सर्व आयुष्य जीर्ण-क्षीण यद्युं, तो हवे अघन्य-निर्माण्य एवोहुं शुं कं ? हवे तो मात्र मारा आत्मायां शोकज करूं. ” १९३

हां जीव पाप भमिहिसि, जाईजोणीसयाइं वहुयाइं ।

भवसयसहस्सडुल्लहं पि, जिणमयं एरिसं लघ्धुं ॥ १९४ ॥

अर्थ—“ हे पापी (दुरात्मा) जीव ! सो हजार (छास्र) भवोवडे पण दुर्लभ (दुष्पाप्य) अने आवो अचित्य विताप्रणी सदृश श्रीजिनमत (जिनकथित धर्म) पापीने पण (तेनी आराधना नहिं करवाथी तुं) एकेद्रियादिक जाति अने क्षीतोष्णादिक योन-ओना घणा सेंकहाओमां भटकीस. ” १९४.

पावो पमायवसओ, जीवो संसारकज्जमुज्जुत्तो ।

दुक्खेहिं न निविज्जो, सुक्खेहिं न चेव परित्तुट्ठो ॥ १९५ ॥

अर्थ—“ पापी अने प्रमादने वस्र थयेछो तथा संसारना कार्यमां उद्यमवान एवो (आ) जीव दुःखोवडे एटछे अनेक प्रकारनां दुःखो भोगवतां छतां पण निर्वेद (खेद)

गाथा १९२-गुरुयत्तणेण-गुरुकत्वेन-आदरवत्वेन ।

गाथा १९३-ओसन्नविहारेणं=उत्सन्नविहारेण चारित्रविषये शिथिलत्वेन व्यवहारणं तेन । झीणंमि=क्षीणे क्षयं गते ॥ गाथा १९५-संसारकज्जमुज्जुत्तं ।

पाम्यो नहीं (जेम जेम दुःख पाये छे तेम तेम पापकर्म धारै करेछे), अने मुखोबदे एठ्ठे मुखो भोगवतां पण परितुष्ट (संतुष्ट) ययो नहीं (केमके जेम जेम मुख मळे छे तेम तेण नवां मुखनी बांछा करे छे.) ” १९५.

परितप्पिष्ण ताणुओ, साहारो जइ धणं न उज्जमइ ।

सेणियराया तं तह, परितप्यतो गओ नरयं ॥ १९६ ॥

अर्थ—“ जो (तप-संयमादिकने विषे) धणो लघम न करे, तो (यात्र) परि-
तापबडे एठ्ठे पापकर्मनी निंदा, गंहां अने पक्षात्तापादिकबडे थोडोअ आचार धायछे,
अर्थात् तेथी लघुकर्मोना क्षय यह शक्ये छे, पण महाकर्मोना क्षय यतो नथी. तेथी
करोनेज श्रेणिक राजा तेवा मकारनो (हा इति खेदे ! में विरति न करी एवो) परिताप
कर्यां छतां पण नरके गयो. (अथवा आ श्लोकना पूर्वाधेना अर्थ करवो के ‘ जो तप
संयमादिकने विषे धणो लघम न करे तो मात्र परितापबडे कर्म लघु यतां नथी, एठ्ठेके
गर्हादिक करवाथी शिथिल कर्मनोज नाश थाय छे, पण हह बांधेलां कर्मनो नाश-क्षय
यतो नथी.) ” १९६

जीवेण जाणि विसइजयाणि, जाईसएसु देहाणि ।

थौवेहिं तओ सयलं पि, तिहुयणं हुज पडिहत्थं ॥ १९७ ॥

अर्थ—“ जीवे (प्राण धारण करनारे) एकेन्द्रियादि संकडो जातिओने विषे
पूर्वे ग्रहण करी करीने जेट्ठां शरीरो त्याग कर्यां छे तेमांथी थोडा पण शरीरोए करीने
(सर्व शरीरबडे नहीं) सकल त्रिभुवन (त्रण जगत) पण संपूर्ण थाय एठ्ठे के त्रण
भुवन भराइ जाय तेठ्ठां शरीरो जीवे पूर्वे ग्रहण करीने भूक्यां छे, तो पण तेजीव संतोष
पामतो नयो. ” १९७.

नहदंतमंसकेसट्टिएसु, जीवेण विप्पमुक्केसु ।

तेसु वि हविज्जा कइलासमेरुगिरिसन्निभा कूडा ॥ १९८ ॥

अर्थ—“ जीवेपूर्वभवोमां ग्रहण करी करीने भूकेला (तजेला) जे नख, दांत घांस,
केश अने अस्थिओ, ते सर्वने विषे पण एठ्ठे ते सर्व नखादिकने एकत्र करीए तो कैलास
(हिमवान), मेरु अने बोजा सामान्य पर्वतो जेवडा पुंज-दगला थाय. माटे तेने विषे
पण प्रतिबंध करवो नहीं. ” १९८.

हिमवंतमलयमंदरदीवोदहिधरणिसरिसरासीओ ।

अहिअयरो आहारो, तुंहिष्णाहौरिथ्यो होज्जा ॥ १९९ ॥

अर्थ—“ क्षुधित यथेछा (भूख्या) एवा आ जीवे हिमवान पर्वत, दक्षिण दिशामां रहेछो मलयचळ पर्वत, मंदर (मेरु) पर्वत, जंबूद्वीप विगेरे असंख्याता द्वीपी, छवणसमुद्रादिक असंख्य समुद्रो अने रत्नप्रभादिक सात पृथ्वीओ—तेमनी जेवढा मोटा दगळाओथी पण (टेटळा मोटा दगळा करीए तो तेथो पण) अति अधिक आहार (अशन विगेरे) भक्षण करेछो छे: अर्थात् एक जीवे अनंता पुद्गल द्रव्यो भक्षण करीए छे, तोपण तेनी क्षुधा शंत थइ नथी. ” १९९

जंजेनें जंजं पीथं, धम्मयावज्जगकिष्णं तं पिं ईहं ।

सँवेसु विं अँगडतलायनईसमुद्देसु नं विं हुज्जा ॥ २०० ॥

अर्थ—“ धर्म शीघ्र ऋतुना आतपथी पीढा पायेछा आ जीवे जे जळ पीधुं छे ते पूर्वे पीधेछं जळ आ संसारमां एकत्र करीए तो तेटछं जळ सर्वे कूवा, तळाबो, गंगादिक नदीओ अने छवणादिक समुद्रोमां पण न होय: अर्थात् एक जीवे पूर्वे जे जळ पीधुं छे ते सर्वे जळाशयेना जळथी पण अनंतगणुं छे. ” २००.

पीथं थैणयच्छोरं, सागरसँखिलाओ होज्ज बहुअयरं ।

सँसारंमि अँणंते, माळणं अन्नमज्ञाणं ॥ २०१ ॥

अर्थ—“ आ जीवे जेनो अंत नथो एवा अनंता संसारमां भिन्न भिन्न माताओनुं पीधेछं स्तननुं दूध समुद्रना जळथी पण बहुतर (अनंतगणुं) होय: अर्थात् समुद्रना जळथी पण अनंतगणुं दूध आ जीवे पूर्व भवोमां जूदी जूदी माताओनुं पीधुं छे. ” २०१.

पत्तां थं कामभोगा, कॉलमैणंतं ईहं सँउवभोगा ।

अँपुवंपि वं मँनई, तहँविय जीवो मँणै सुँक्खं ॥ २०२ ॥

अर्थ—“ बळी आ संसारमां अनंत काल सुधी जीवे उपभोग (वारंवार भोगवी सकाय तेवां घर, स्त्री, वस्त्र, अलंकारादिक) पदार्थो सहित कामभोगो प्राप्त करेछा छे;तोपण आ जीव पोतानां मनमां ते विषयादिक सुखने जाणे अपूर्व—नवीन ज होय तेथ मानेछे:

गाथा १९९-हरिओ-आहारितो भक्षितो । हुज्ज-हुज्जा ।

गाथा २००-जंजेन=यदनेन जीवेन । जगडिष्ण-पीहितेन । अगढा:=कूपा । धंमाइव) होजा ।

गाथा २०१-धणय छोर । माळणं=मातणां । बहुअर ।

અર્થાત્ જાણે પોતે પૂર્વે કોઈ વસ્તુ તે સુખ ભોગવ્યું નથી-નહું ભોગવે છે એ માને છે." ૨૦૨.

‘જાણજ્ઞ જહાં જોગિહિસંપયા સંવમેવૈ ધમ્મફલેં ।

તહૈવિ દ્વિદમૂઢહિયથો, પંવે કમ્મે જ્ઞાં રમંઈ ॥ ૨૦૩ ॥

અર્થ—“ આ જીવ જાણે છે કે ‘ ભોગ-ઈન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થતાં સુખો, ઋદ્ધિ-રાજ્યલક્ષ્મી અને સંપદા-વન ધાન્ય વિગેરે-તે સર્વ ધર્મનુ જ ફલ (કાચ) છે, અર્થાત્ ધર્મરૂપ કારણથીજ ધોગાદિક કાર્ય પ્રાપ્ત થાય છે. ’ તોપણ દ્વિદમૂઢ કે ૦ અત્યંત મૂઢ-અજ્ઞા-નથી ધ્યાપ્ત છે હૃદય હેતુ એવો આ જીવ પાપકર્મમાં રમે છે-ક્રીડા કરે છે (પાપ કર્મ કરવા હમ્મક થાય છે: અર્થાત્ જાણતા છતાં પણ અજાણ્યાની જેમ પાપકર્મમાં પ્રવર્તે છે). ” ૨૦૩

જાણિજ્ઞજ્ઞ ચિંતિજ્ઞજ્ઞ, જમ્મંજરામરણસંજવં દુક્કલં ।

નં ય વિસંપ્પસુ વિરક્કંઈ ચ્ચંહો સુંવડ્ઠો કર્વંકગંઠી ॥ ૨૦૪ ॥

અર્થ—“ જન્મ, જરા અને મરણથી ઉત્પન્ન થયેલા દુ:ખને આ જીવ શુદ્ધને ઉપદેશ સંપ્રદાયથી જાણે છે તથા મનમાં ચિંતવે છે (વિચારે છે), તોપણ આ જીવ વિષયોને વિષે વિરક્ત થતો નથી. અહો ! કપટગ્રંથિ (મોહગ્રંથિ) કેવી સુવદ્ધ (કોરથી પણ ક્ષિયિલ કરવાને અશક્ય) છે ? તે મોહગ્રંથિના વશવર્તિપણાથીજ આ જીવ વિષયોમાં આસક્ત થાય છે. ” ૨૦૪.

જાણંઈ ચં જેહ મરિજ્ઞજ્ઞ, ચ્ચંમરંતં પિં જંરા વિષ્ણાસેઈં ।

નં ય ઉંઠ્ઠિવગ્ગો લોચ્ચો, ચ્ચંહો રેહ્સસં સુંનિમ્માયં ॥ ૨૦૫ ॥

અર્થ—“ ઘડી છોકો જાણે છે કે ‘ સર્વ પ્રાણી પોતપોતાના આગુચ્ચના ક્ષયે મરવાના જ છે, અને જરા (દુઃખાવસ્થા) નહીં મરેલા (જીવતા) પ્રાણીને પણ નાશ પમાડે છે. ’ તોપણ છોકો ઉદ્દેગ પટ્ટે સંસારથી વૈરાગ્ય પામતા નથી. અહો ! મોહં આશ્ચર્ય ! આ રહસ્ય કેવું શુભપણે નિર્માણ કરાયું છે ? ” ૨૦૫

દુપ્પયં ચ્ચંઉપ્પયં વહુપયં, ચ્ચં અપયં સંમિહ્મંહણં વીં ।

અપાવકપ્પ વિ કંયંતો, હેરંઈ હેયાસો અપેરિતંતો ॥ ૨૦૬ ॥

અર્થ—“ હળી ! આશાઓ જેણે એવો કૃતાંત (શત્રુ) મનુષ્યાદિક વે પગલાંને,

માયા ૨૦૪-કવહગંઠી=કપટગ્રંથિમોહગ્રંથિ: ।

માયા ૨૦૫-ઉઠ્ઠિવગ્ગો=ઉદ્દિગ્ગ-સંસારાત્ સિન્ન: ।

માયા ૨૦૬-અણવકપ્પ=અનપકૃતેપિ-અપરાધમંતરેણપિ । અપરિતંતો-અપરિહિન્નોડિન્ન: દુપવચ્ચઉપયં ।

શાય મેંશ વિગેરે ચાર પગવાલાને, અમર વિગેરે ઘણા પગવાલાને અને પગ વિનાનાં સર્પાદિકને તથા ઘનાલ્યને અને અઘન તે ઘનરહિતને તેમજ વા શબ્દે પંડિત, મૂર્તિ વિગેરે સર્વેને અપરાધ વિના પણ અશ્રાંતપણે-યાક્યા વિના-સ્વેદરહિત થઈને હણે છે-મારે છે; અર્થાત્ સર્વ જીવોને હણવામાં તે મૃત્યુને કિંચિત્ પણ સ્વેદ પટલે શ્રમ લાગતો નથી." ૨૦૬

ન ય નજ્ઞાશ્ સો દિયદ્દો, મરિયઠ્ઠવં વાવસેણ સઠ્ઠેણ ।

આસાપાસપરહ્નો, ન કરેશ્ ય જં હિયં વજ્જો ॥ ૨૦૭ ॥

અર્થ-“ વહી જીવ તે (મરણને) દિવસ જાણતો નથી, અર્થાત્ કયે દિવસે મરીશ્ તે જાણતો નથી; પણ સર્વ જીવોએ અવશ્યે કરીને મરવું તો છેજ (એમ જાણે છે.) તોપણ આજ્ઞા રૂપી પાશથી વંધાયેલો (પરાધોન થયેલો) અને વધ્ય પટલે મૃત્યુના મુક્તમાં રહેલો ઇવો આ જીવ જે હિતકારક ધર્માનુષ્ઠાન છે તે કરતો નયો." ૨૦૭.

સંસારાગજલબુબ્બુશ્ચોવમે, જીવિણ્ અ જલભિંદુચંચલે ।

જુલ્લવણે ય નશ્વેગસંનિમે, પાવજીવ કિમયં ન બુહ્ણસિ ॥૨૦૮॥

અર્થ-“ વહી જીવિત સંધ્યાકાલના રાતાં પીલા રંગની તથા જલના યુદ્ધુદ્ધ (પરપોટા) ની ઉપમાવાલ્ [ક્ષણિક] છે, તેમજ (ધર્મના અપ્રમાણ પર રહેલા) જલના બિંદુની જેવું વંચલ છે; તથા યુવાવસ્થા નદીના વેગ જેવી [યોદ્ધો કાલ રહેવાવાલો] છે; તોપણ હે પાપી જીવ ! તે સર્વ જાણતાં છતાં પણ તું કેમ પ્રતિવોધ પામતો નયો ?" ૨૦૮

જં જં નજ્ઞાશ્ અસુશ્, લજ્ઞાજ્ઞાશ્, કુચ્છણિજ્ઞ મેયંતિ ।

તં તં મગ્ગશ્ અંગં, નવરમણંગુથ્થ પઠિક્કુલો ॥ ૨૦૯ ॥

અર્થ-“ જે જે અંગ અશુચિ જણાય છે, જે અંગ જોવાયી લજ્ઞા આવે છે, અને જે અંગ જુગપ્સા કરવા કાયક છે-એવા સ્ત્રીઓના જઘન વિગેરે-તે તે અંગોની મૂઠ પુરુષ અભિકાષા કરે છે, તે માત્ર પ્રતિકૂલ [શત્રુરૂપ] એવા કામદેવના કારણને લોધેજ છે; અર્થાત્ કામદેવના વશાયી જીવ નિષ્ઠ એવા સ્ત્રીના અંગને પણ અતિ રમણાય માને છે." ૨૦૯.

સઠ્ઠવગ્ગદ્દાણં પજ્જવો, મહાગ્ગહો સઠ્ઠવદોસપાયઠ્ઠી ।

કામગ્ગહો દુરપ્પા, જૈણ જિજ્ઞૂયં જ્ઞગં સઠ્ઠવં ॥ ૨૧૦ ॥

ગાથા ૨૦૭-નજ્ઞાશ્-જ્ઞાયતે । પરહ્નો=વ્યાસઃ પરવશઃ । ઘજ્ઞો=વહ્યો-મરણમુલ્કે તિષ્ઠન્ । ધિલ્ અવસ્થા । ગાથા ૨૦૮-બુબ્બુલવમે-અ મે ય નહીં-તયવેગ । ગાથા ૨૦૯-કુચ્છણિયઃ । મગ્ગશ્-માર્ગયતિ-અભિકલ્પતિ । અંગંગુથ્થમણંગોપ્પય=અત્તગોડપ્રસન્નંગઃ કામદેવઃ । ગાથા ૨૧૦-પાયઠ્ઠી-પ્રવર્ષકઃ । જેણમિમૂવં=યેનામિમૂતં-પટ્ટામૂતં । કામગ્ગહો ।

अर्थ—“ सर्वं ब्रह्मोक्तं (उन्मादोक्तं) उत्पत्तिस्थान, महाग्रह (मोटा उन्मादरूप) अने परस्त्रीगमनादिक सर्व दोषोने प्रवर्तान्नार कामदेवरूपी ग्रह एतच्छे कामयी उत्पन्न थयेको चित्तभ्रम महादुष्ट छे के जेणे आ आखुं जमत पराभव पमादयुं छे—पोताने वन्न कथ्युं छे. माटे कामग्रह ज दुस्त्याज्य (महाकष्टे तजी शकाय तेवा) छे. ” २१०.

जो सेवेइ किं लहइ, थामं हारैइ दुब्बलो हीइ ।

पेविइ वेमणस्सं, डुरकांणि अं अत्तदोसेण ॥ २११ ॥

अर्थ—“ जे पुरुष कामने [विषयने] सेवे छे ते थुं पामे छे ? ते कहे छे— ते पुरुष पोताना ज दोषयी वीर्यने हारे छे—गुमावे छे, दुर्बल थाय छे, अने वैमनस्य (चित्तनी उद्वेगता) तथा स्यरोगादिक दुःखोने पामे छे. ” २११

जह् कच्छुदलो कच्छुं, कंमुयमाणो दुहं मुणइ सुक्खं ।

मोहाउरा मणुस्सा, तह् कामदुहं सुहं बिंति ॥ २१२ ॥

अर्थ—“ जेम खसवाळो माणस खसने नखात्रे करीने खणतो छतो दुःखने सुख रूप माने छे, तेम मोहवडे आतुर-विह्वल थयेछा मनुष्यो, जेनुं श्वर विकृत थइ गयुं छे—विकार पायुं छे तेवा अंगवाळानी जेम विषयसेवनना दुःखने सुखरूप माने छे. ” २१२.

विसयविसं हालाहलं, विसयविसं उक्कडं पियंताणं ।

विसयविसाश्चं पिव, विसयविसविसूइया हारैइ ॥ २१३ ॥

अर्थ—“ शब्दादिक विषयो रूपी विष [संयम रूप जीवितनो नाश करनार होवायी] हालाहल तरतज मारी नाखनार विष समान छे, अने उज्वल एवुं कामसेवन रूपी विष उत्कट के० कालकूट विष समान छे. ते विषनुं पान करनारा एतच्छे सेवन करनारा प्राणीओने अति सेवन करेछां ते विषयरूपी विषयी, घणो आहार करवायी जेम अजीर्ण थाय तेम विषयरूपी विषनी पण विसूचिका [अजीर्ण] थाय छे; जेयी ते अनंता मरणने पामे छे. ” २१३

एवं तु पंचहिं आसवेहिं रयं मायणित्तु अणुसमयं ।

चउगइदुहपेरंतं अणुपरियट्ठंतं संसारे ॥ २१४ ॥

गाथा २११—थामं=बल, वीर्यं - १. गाथा २१२—कच्छु ॥ बिंति=झुघन्ते-मन्यन्ते । कंमुमाणो-
होवक गाथा २१३—अश्चं=पिब-षड् वाहारादजीर्णमिष । गाथा २१४ परंतं=पर्यंत ।

અર્થ—“ વઝી ઇ દ્રમાણે પાંચે ઇંદ્રિયોવઢે અથવા પ્રાણાતિપાતાદિક પાંચ આશ્રવ વઢે કરીને પ્રતિસમયે (સ્ણને સ્ણને) પાપકર્મ રૂપ રજને ગ્રહણ કરીને (આ જીવં) નર-કાદિક ચારે ગતિનાં દુઃખોના પર્યંત સુધી (હેઢા સુધી) આ સંસારમાં મટકે છે.” ૨૧૪.

સર્વવૈગર્ષપવત્સંદે, કૌઠંતિ ઐર્ણંતણ ઐર્કૈયપુત્રા ।

જે યં નૈ સુર્ણંતિ ધૈમ્મં, સોર્ડણ યં જે પર્માયંતિ ॥ ૨૧૫ ॥

અર્થ—“ વઝી જેઓ ઇ પુણ્ય કર્યું નથી ઇવા જે મજુણ્યો, દુર્ગતિમાં પઢતા પ્રાણીને ધારણ કરનાર શ્રીજિનમરૂપિત ધર્મતું અવળ કરતા નથી, અને સાંમઝીને પણ જેઓ મઘાદિક (મઘ, વિષય, કષાય, નિદ્રા ને વિકારારૂપ) પ્રમાદતું આચરણ કરે છે તેઓ આ અનન્ત સંસારમાં સર્વ ગતિઓને વિષે ભ્રમણ કરે છે; અર્થાત્ અન્તીવાર ચતુર્ગતિમા પરિભ્રમણ કરે છે.” ૨૧૫.

અર્ણસિઠ ય વહુવિહં, મિચ્છેદિઢી યં જે નરં અહંમાં ।

વઠ્ઠનિકાર્ણ્યકમ્મા, સુર્ણંતિ ધૈમ્મં નૈ યં કરંતિ ॥ ૨૧૬ ॥

અર્થ—“ મિથ્યાદૃષ્ટિ ઇટલે સમ્યક્જ્ઞાન રહિત અને અધમ તથા જેઓ ઇ નિકાચિત ઇટલે હઢર્તનાદિક કરણોમાંથી કોઈ પણ કરણવઢે સ્ત્રીણ ન યાય ઇવાં જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મો વાંઢેલાં છે ઇવા જે મજુણ્યો છે તેઓ કદાચ ઘણે પ્રકારે ઘર્મોપદેશાદિકવઢે સ્વજનો ઇ પ્રેર્યાં હોય તો ધર્મતું અવળ કરે છે, પરંતુ સમ્યક્ રીતે તે ધર્મતું આચરણ કરતા નથી. માટે હણુકર્મીઓનેજ આ ધર્મ સુપ્રાપ્ય છે, સહેજે પ્રાપ્ત યઈ શકે છે.” ૨૧૬.

પંચેવં ડક્કિત્તણં, પંચેવં ય રંચિત્તણ જાવેણં ।

કમ્મરંયવિપ્પમુક્કા, સિદ્ધિગ્ઠ્ઠમાણુત્તરં પત્તાં ॥ ૨૧૭ ॥

અર્થ—“ હિંસાદિક પાંચ પદનો (પાંચ આશ્રવોનો) ત્યાગ કરીને તથા અહિંસા દિક પાંચ મહાવ્રતોતું ભાવવઢે ઇટલે આત્માના શુદ્ધ પરિણામવઢે રક્ષણ કરીને (પાઝીને) જ્ઞાનાવરણાદિક કર્મરૂપી રજ-મલયી મુક્ત થયેલા ઇટલે આઠ કર્મ રૂપી રજોમલના નાશથી લેખને નિર્મલ આત્મભાવ પ્રાપ્ત થયો છે ઇવા અનેક પ્રાણીઓ સર્વોત્કૃષ્ટ સિદ્ધિ-ગતિને પામ્યા છે. માટે હિંસાદિકનો ત્યાગ અને અહિંસાદિકતું પાલન ઇજ સિદ્ધિગતિનું કારણ છે.” ૨૧૭.

ગાથા ૨૧૫-વત્સંદે-વ્રતપદા:પરાવર્તેરુષા: અર્ણંતપ=અંતરહિતેડ્યાત્ સંસાર

ગાથા ૨૧૬-કરંતિ

નાળે દસંજનચરણે, તવસંયમસમિશ્ચુત્તિપચ્છિન્તે ।

દમ્ઉસ્સગ્ગવવાણ, દવ્વોઙ્ગઅભિગ્ગહે ષ્વેવ ॥ ૨૧૮ ॥

સહ્દદનાયરણાણ, નિશ્ચં ઉઙ્ગુત્ત ઇસંજાઙ્ગઠિઓ ।

તસંસં ભેવોઞ્જાતરણં, પઠ્ઠવ્જ્જાણ યં જન્મં તુ ॥૨૧૯॥યુગ્મમ્ ॥

અર્થ—સમ્યક્ અવવોધ રૂપ જ્ઞાનને વિષે, તત્ત્વ શ્રદ્ધાનરૂપ દર્શનને વિષે, આશ્રવનો નિરોધ કરવા રૂપ ચારિત્રને વિષે, વાર પ્રકારના તપને વિષે, સત્ત્વ પ્રકારના સંયમને વિષે, સમ્યક્ પ્રવૃત્તિ રૂપ ઇર્યાસમિતિ વિગેરે પાંચ સમિતિને વિષે, નિવૃત્તિ રૂપ ધનોશુષ્ણિ વિગેરે ત્રણ શુભને વિષે, પાપક્રિયાની નિવૃત્તિ કરનાર દશ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તને વિષે, પાંચ ઈન્દ્રિઓના દમનને વિષે, શુદ્ધમાર્ગના આચરણ રૂપ ઉત્સર્ગને વિષે, રોગાદિક કારણે નિષિદ્ધ વસ્તુનું ગ્રહણ કરવારૂપ અપવાદને વિષે, દ્રવ્યાદિક પટલે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાઠ અને ધાતુરૂપ ચાર પ્રકારના અભિગ્રહને વિષે તથા શ્રદ્ધા પૂર્વક આચરણને વિષે અર્થાત્ પૂર્વોક્ત પદાર્થોમાં શ્રદ્ધાપૂર્વક આચરણ કરવાથી—કેમકે શ્રદ્ધારહિત ધર્માચરણ મોક્ષને સાધનાહં યતું નથી. ” કહ્યું છે કે—

ક્રિયાશૂન્યસ્ય યો ભાવો, ભાવશૂન્યસ્ય યા ક્રિયા ।

અનયોરન્તરં દૃષ્ટં, માનુસ્વયોતયોરિવ ॥

“ ક્રિયારહિત પુરુષનો ભાવ અને ભાવરહિત પુરુષની ક્રિયા, એ બન્નેમાં સૂર્ય અને સ્વયોત (પતંગ) ના જેટલું અન્તર જોયેલું છે, અર્થાત્ તેટલું અંતર છે. ક્રિયાશૂન્ય ભાવ સૂર્ય જેવો છે અને ભાવશૂન્ય ક્રિયા સ્વયોત જેવી છે. ”

“માટે તે સર્વને વિષે (સંયમને વિષે) શ્રદ્ધાપૂર્વક આચરણ કરવામાં નિરંતર ઉપમવાઠા અને ઇષળા પટલે વેંતાલીશ દોષ રહિત ઇવા આહારની શુદ્ધિમાં રહેલા ઇવા સાધુને પ્રવ્રજ્યા ભવસાગરનું તારણ યાચ છે (અર્થાત્ તે સાધુ ભવસાગર તરે છે), અને તેનીજ દીક્ષા અને મનુષ્યજન્મ સફળ છે. ઇવા શુભોથી રહિત મનુષ્યની દીક્ષા તથા જન્મ બન્ને નિરર્થક છે. ” ૨૧૮-૨૧૯.

જે ધરંસરણપસત્તા, છક્રાયરિઠ્ઠ સંકિંચળા ઐજયા ।

નૈવરં મુત્તૂળ ધરં, ધરંસંકમણં કંચં તેહિં ॥ ૨૨૦ ॥

અર્થ--“ જે યતિઓ શુદ્ધ (ઉપાશ્રયાદિક) ને સજ્જ કરવામાં આસક્ત છે, છક્રાય જીવના શુદ્ધ છે, પટલે પૃથિવ્યાદિક છ ક્રાયના વિરાધક છે; દ્રવ્યાદિકના પરિગ્રહરહિત

ગાથા ૨૧૮-દમઉસ્સગ્ગુવવાહ । ગાથા ૨૧૯ ઉઙ્ગુત્ત ।

ગાથા ૨૨૦-સંકિંચળા ઐજયા । ઐજયા=અસંયતા-અસંયુતમનોવાકાચબોગા ।

છે, તથા મન વધન અને કાયાના યોગત્તું સંયમ કરતા નથી તેઓએ કેવળ પૂર્વતું યર મૂકીને સાધુવેષના મિથથી ગૃહમક્રમણ પદછે નવા ધરને વિષે પ્રવેશજ કર્યો છે એમ જાણવું, વીરું કાંઈ કર્યું નથી. ” ૨૨૦

उत्सुत्तमार्यरतो, वंधश् कम्मं सुचिक्रणं जीवो ।

સંસારં વં પંવહ્લુશ્, માયામોસં વં કૂંવશ્ ચ ॥ ૨૨૧ ॥

અર્થ—“ આ જીવ ઉત્સુત્ત (સૂત્રવિરુદ્ધ) આચરણ કરતો સતો અત્યંત ચિક્રણા કર્મ વાંધે છે, પદછે અતિ ગાઠ નિકાચિત્ત એવાં જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મને આત્માના પ્રદેશો સાથે સંશ્લિષ્ટ કરે છે, તેમજ સંસારને વૃદ્ધિ પમાટે છે, અને માયામૃષા પદછે માયા સહિત અસત્ય ભાષણ (સત્તરમું પાપસ્થાન) કરે છે; અર્થાત્ તેમ કરવાથી તે અનત સંસાર-ની વૃદ્ધિ કરે છે. ” ૨૨૧

जश् गिह्लश् वयलोवो, श्रहव न गिह्लश् सरीरवुच्छेथो ।

પાસત્યસંગમો વિય, વયલોવો તો ઘરમસંગો ॥ ૨૨૨ ॥

અર્થ—“ જો પાસત્યાપ આળેલા આહારાદિકને [મુનિ] ગ્રહણ કરે તો વ્રતનો (પંચ મહાવ્રતનો) છોપ થાય છે, અથવા જો તે ગ્રહણ ન કરે તો શરીરનો વ્યુચ્છેદ-નાશ થાય છે (બન્ને રીતે કહ્યું છે;) પરંતુ જ્યારે પાસત્યાનો સંગ માત્ર કરવાથી જ વ્રતનો છોપ થાય છે, ત્યારે તો તે પાસત્યાનો અસંગ કરવો (સંગ ન કરવો) તેજ શ્રેષ્ઠ છે. ” ૨૨૨. અર્થાત્ શરીરનો વ્યુચ્છેદ ધણે યાઓ પણ પાસત્યાનો સંગ ન કરવો એ તાત્પર્ય છે.

आलावो संवासो, वीसंजो संथवो पसंगो श्र ।

હીણાયારોહિં સમં, સવ્વજિણિંદેહિં પડિક્કુઠો ॥ ૨૨૩ ॥

અર્થ—“ હીન આચારવાલા પાસત્યાદિકની સાથે આલાપ-વાતચીત, સંવાસ-તેની ખેલા રહેવું, વિસંમ-વિશ્વાસ રાખવો, સંસ્તવ-પરિચય કરવો, અને પ્રસંગ પદછે વક્ષાદિક છેવાં દેવાનો વ્યવહાર કરવો-તે સર્વનો સર્વ જિનેદ્રોષ-ઋપમાદિ તીર્થકરોપ વિષે કર્યો છે; અર્થાત્ પાસત્યાદિકની સાથે મુનિઓપ આલાપાદિક કાંઈ પણ કરવું નહીં. ” ૨૨૩

अशुद्धजंपिण्हिं, हंसिउरुसिण्हिं खिप्पमाणोश्च ।

પાસત્યમજ્જયારે, વલાવિ જશ્ વાડલી હોશ્ ॥ ૨૨૪ ॥

માયા ૨૨૩-જિણંદેહિ । પડિક્કુઠો-નિષિદ્ધઃ ।
 માયા ૨૨૪-અન્નોન્ન । ક્ષિપ્પમાણોઝ-ત્રેર્યમાણઃ । હસિઉરુસિણ્હિ ।

અર્થ—“ અન્યોન્ય ભાષણ કરવા વઢે ઇટણે વિકથાદિક કરવા વઢે અને હસિતો-
દ્વર્ષિત ઇટણે હાસ્યથી રોમોદ્ગમ કરવા વઢે પાસત્યાદિકની મધ્યે રહેલો સાધુ તે પાસ-
ત્યાદિકે જ બલાત્કારે પ્રેરણા કરાયેલો સતો વ્યાકુલ થાય છેઃ ઇટણે સ્વપ્નથી બ્રહ્
થાય છે, માટે તે (પાસત્યાદિક) નો સંગ તજવા યોગ્ય છે.” ૨૨૪

લોષ વિ^૧ કુસંસંગીપિયં જાણં દુનિયત્થ મઝ્વસણં ।

નિંદ્ઙ નિરુદ્ધામં પિયંકુસીલજણમેવ સાહુજણો ॥ ૨૨૫ ॥

અર્થ—“ લોકમાં પણ જેને કુસંગતિ પ્રિય છે, જે દુષ્ટ-વિપરીત વેષધારી છે અને
જે અતિવ્યસની ઇટણે અત્યંત ધૂતાદિક વ્યસન સહિત છે તેવા જનને છોકો-નિંદે છે.
તેમ સાધુજન પણ નિરુદ્ધામી ઇટણે ચારિત્રને વિષે શિથિલ આદરવાલા અને કુશીલિયા
જન જેને પ્રિય છે એવા કુવેષધારી સાધુને નિંદે છેજ.” ૨૨૫

નિચ્ચં સંકિય જીચ્ચો, ગમ્મો સવ્વસ્સ સ્વલિયચારિત્તો ।

સાહુજણસ્સ અવ્વમઓ, મઓ વિ પુણ ડુગ્ગઈં જાઈ ॥ ૨૨૬॥

અર્થ—“ કોઈ માંસં દુષ્ટ આચરણ ન દેલો ઇમ નિરંતર શંકા પામેલો, અને કોઈ
મારી આ માઠી પ્રવૃત્તિ રલે જાહેર કરી દેશે ઇમ મય પામેલો, સર્વ બાલકાદિકને પણ
ગમ્ય ઇટણે પરામથ કરવાને યોગ્ય અને જેણે ચારિત્રની સ્વલના-વિરાષના કરી છે
એવા, કુશીલિયો સાધુ [આ લોકમાં] સાધુ જનોને અનિષ્ટ થાય છે, અને મરીને
પણ પરલોકમાં ડુર્ગતિ પામે છે; માટે પ્રાણનો નાશ થાય તોપણ ચારિત્રની વિરાષના
કરવી નહીં ઇ તાત્પર્ય છે.” ૨૨૬.

ગિરિસુઅપુપ્ફસુઅ્યાણં, સુવિહિય આહરણં કારણ વિહન્નુ ।

વલ્લેલ્લા સીલવિગલે, ઉજ્જુય સીલે હવિલ્લા જઈ ॥ ૨૨૭ ॥

અર્થ—“ હે સુવિહિત-સારા શિષ્ય ! ગિરિશુક [પર્વતમાં-પર્વત સમીપમાં રહે-
નારા મિલ્લોનો પોપટ] અને પુષ્પશુક (બાઠીનો પોપટ) નું ઉદાહરણ ગુણદોષનું કારણ
છે, ઇટણે ઉત્તમ અને અધમનો સંગ અનુક્રમે ગુણ અને દોષનું કારણ છે તે વતાવનારં
છે ઇમજાણીને યતિ ઇ શીલવિકલ ઇટણે આચારરહિત સાધુઓને વર્જવા અને શીલ-ચારિ-
ત્રના આચરણમાં ઉચુક્ત-ઉદ્યમવાન થવું.” ૨૨૭. અહીં તે વે શુકનું દ્રષ્ટાંત જાણવું ૫૮.

માથા ૨૨૫-દુનિયત્થ-દુષ્ટવિપરીતં-લેષણચારિત્તં ।

માથા ૨૨૬-અવ્વમઓ । ડોગ્ગઈં । અવ્વમઓ-અવમનતો-અનિષ્ઠો ।

માથા ૨૨૭-વિહિન્નુ-શીલવા । (વલ્લિજ્જા) । ઉજ્જુઅ ।

गिरिशुक अने पुष्पशुकनी कथा.

वसंतपुर नगरमां कनककेतु नामे राजा हतो. ते एकदा बनक्रीडा करवा माटे नगर बहार नीकळ्यो. अश्वपर स्वार यद्दने राजाए अश्व दोढाळ्यो. एटळे ते विपरीत धिखा पायेळो अश्व अति स्वराथी दोढीने एक मोटा जंगळमां राजाने छड गयो. छेबट थाकीने अश्व एक स्थाने जपो रहो. एटळे राजा पण थाकी गयेळो होवाथी तेना परथी छतरीने ते अरण्यमां एकछो आम तेम फरया लास्यो. तेचामां घोडे दूर घणा माणसो-नी कोळाहळ सांभळीने विभाग छेवा माटे राजां ते तरफ चाख्यो. तेठळामां एक ह्मनी साखापर बांधळा पांजरामां रहेछो एक पोपट बोळ्यो के "अरे भिछो ! दोढो, दोढो, कोइ मोटो राजा आबे छे, तेने पकडी ल्यो, जेथी तमने लक्ष जपीआ आपसो." ते पोपटुं वाक्य सांभळीने घणा भिछो राजा तरफ दौड्या. तेमने आबता जोइने राजा पण पवन सरखा वेगवाळा पेळा अश्वपर स्वार यद्दने एकदम भास्यो. एक ह्मन बारमां ते एक बोजन दुर जसो रहो. त्यां तेणे एक तापसनी आश्रम जोयो. ते आश्रमनी फरती एक हुंदर बाढी हती. तेमां एक उंच ह्मन पर पांजरे कटकावेळुं हई. तेमां एक पोपट हतो. ते नासता राजाने ते तरफ आबतो जोइने बोळ्यो के "हे तापसो ! आबो, आबो, तमारा आश्रम तरफ कोइ महाम् अतिथि आबे छे; तेनी तमो सेवाभक्ति करो." आ प्रमाणे पोपटनां वाक्य सांभळवाथी हर्वित थयेळा सर्वे तापसो सन्मुख जद्दने ते राजाने पोताना आश्रममां लाव्या, अने स्नान भोजनादिबडे तेनी सेवा करी. तेथी राजा अत्यंत संतुष्ट थयो. पछी राजाए ते पोपटने पूछ्युं के "हे शुकराज ! ताराज जेवो एक पोपट में भिछोनी पछीमां जोयो. तेणे मने बांध-वानो उपाय कयो, अने ते मारी मोटी भक्ति करावी तेजु शुं कारण ते तुं कहे." शुक बोळ्यो के, "हे राजा ! कादंबरी नामनी मोटी अटवीमां ते (पोपट) अने हुं बबो भाइओ रहेता हता. अमारां वन्नेना मातपिता एकज छे. परंतु एटळो तफावत थयो के तेने पछीना भिछोए पकळ्यो, अने ते पर्वतनी समीपे रहो, तेथी तेजुं नाम पर्वत (गिरि) शुक प्रसिद्ध थयुं; अने मने तापसोए पकडीने आ वाढीमां राख्यो, तेथी मारुं नाम पुष्पशुक पड्युं. ते त्यां रहेवाथी भिछोना मुसथी मारण, वंवन, कुटन, ग्रहण विगेरे बचनो सांभळीने तेजुं शीळ्यो, अने मने तापसना संगथी शुभ बचनो सांभळतां शुभ गुण प्राप्त थया, माटे हे राजां ! तमे शुभ अने अशुभ संगतिनुं मत्स्य फळ जोयुं छे. कसुं छे के-

महानुभावसंसर्गः, कस्य नोन्नतिकारणम् ।

गंगाप्रविष्टरथ्यांनु, त्रिदशैरपि वंद्यते ॥

“ મોટા માહાત્મ્યશાઢ્વાનો સંગ કોની ઉત્કૃષ્ટિનું કારણ થતો નથી ? સર્વેની ઉત્કૃષ્ટિનું કારણ યાચ છે. જુઓ કે ગંગાનદીમાં મલેલા શેરીના જલને દેવો પળ વંદન કરેછે. વઢી કહું છે તે—

વરં પર્વતદુર્ગેષુ, ત્રાન્તં વનચરૈઃ સહ ।

ન મૂર્લ્લજનસંપર્કઃ, સુરેન્દ્રભવનેષ્વપિ ॥

“ પર્વતના દુર્ગોમાં વનચરો (મિહલ્લ વિગેરે)ની સાથે ભમવું ં કાઈક ટીક છે પરંતુ દેવેન્દ્રના ભવનમાં [સ્વર્ગમાં] પળ મૂર્લ્લજનનો સંગ સારો નથી.”

તે સાંભઢીને રાજા પ્રસન્ન થયો. તેટલામાં રાજાનું સર્વ સૈન્ય કે જે પોછક આશરું હતું તે આથી પહોંચ્યું. તેની સાથે રાજા પોતાના નગરમાં ગયો.

આ પ્રમાણે સંગતિનું ફલ જાણીને યતિઓ ં ંષ્ટાચારીનો સંગ તજી તપસ્યામાં યત્ન કરવો. સિદ્ધાંતમાં વહું છે કે—

વરમર્ગિમિ પવેસો, વરં વિસુદ્ધેણ કમ્મુણા મરણં ।

મા ગહિયવ્વયજ્ઞંગો, મા જીયં સ્વલિયસીલસ્સ ॥

“અગ્નિમાં પ્રવેશ કરવો શ્રેષ્ઠ છે, અને વિશુદ્ધ કર્મ જે અળસળ તેવઢે ંટલે અળસળ અંગીકાર કરીને મરણ પામવું તે શ્રેષ્ઠ છે. પરંતુ ગ્રહણ કરેલા વ્રતને અંગ કરવો શ્રેષ્ઠ નથી, અને જેનું શીલ સ્વલિત-અષ્ટ થયું છે ંવા સાધુનું જીવઢું તે શ્રેષ્ઠ નથી.”

શ્લોસન્નચરણકરણં, જઙ્ઘો વંદંતિ કારણં પપ્પ ।

જે સુવિહ્યપરમત્થા, તે વંદંતે નિવારંતિ ॥ ૨૨૭ ॥

અર્થ—“ યતિઓ કારણ પામીને ંટલ નિર્વાહાદિક કારણની અપેક્ષા રાઢીને જેમનું મહાવ્રતાદિક મૂલ્લ ગુણરૂપ ચરણ અને પંચ સપિત્યાદિક ઉચ્ચ ગુણરૂપ કરણ અવસન્ન-શિથિલ-અષ્ટ થયું હોય તેવા શિથિલાચારીને પળ વંદના કરે છે. પરંતુ જેઓ સારી રીતે પરમાર્થને જાણ્યો છે, ંટલે કે ‘ આપગને સુવિહિત [ઉત્તમ] સાધુઓને વંદાવવા તે ંગ્ય નથી.’ ંમ પોતાના દોષને જેઓ જાણે છે તેવા પાસ-ત્યાઓ પોતાને વંદના કરનાર સાધુઓને નિવારે છેઃ અર્થાત્ ‘તમે અમને વંદના કરશો નહીં’ ંમ કહી તેમને અટકાવે છે.” ૨૨૮

સુવિહિય વંદાવંતો, નાસેઙ્ઘ અપ્પયં તુ સુપહ્વાશ્ચો ।

દુવિહ્વપહ્વિપ્પમુક્કો, કહ્મપ્પ ન યાળઙ્ઘ મૂઢો ॥ ૨૨૯ ॥

અર્થ—“ સુવિધિત સાધુઓને વંદાવનાર (પાસત્યાદિક) દટલે વાંદનારને વિષે નહીં કરનાર પાસપ્થાદિ સુપથથી (મોક્ષમાર્ગથી) પોતાના આત્માનો જ નાશ કરે છે; અને વંને પ્રકારના (સાધુ શ્રાવક નામના) માર્ગથી ંદ્ર થયેલો તે મૂર્લ કેમ પોતાના આત્માને પળ જાળતો નથી કે હું વલે માર્ગથી ંદ્ર યાવં હું, તેથી મારી શી ગતિ થશે ? ” ૨૨૯.

દ્વે શ્રાવકના ગુણ વર્ણવે છે.

વંદેઽ ંર્મશ્ચો કાલિં પિ, ચેઽયાઽ ંદ્યુર્દપરમો ।

જિઁગવરપહિમાઘરધુવપુપ્ફગંધન્વણ્જ્જુત્તો ॥ ૨૩૦ ॥

અર્થ—“ જે ચૈત્યોને (જિનવિવોને) વન્ને કાલ પળ વદના કરે છે; મૂલ્યાં ‘ અપિ ’ શબ્દ લખ્યો છે, માટે મધ્યાન્હ કાલ પળ છેવો દટલે ત્રણે કાલ વંદના કરે છે. સ્તવ દટલે મક્કામર વિગેરે સ્તવન અને યુર્દ દટલે સંસારદાવાદિક સ્તુતિ, તેમને વિષે પ્રધાન દટલે સ્તવ અને સ્તુતિ કરનારો તથા જિનવરની પ્રતિમાઓ અને તેમના ચૈત્યોને વિષે અગલ પ્રમુલ ધૂપ, માલતી વિગેરે પુષ્પો અને મુગન્ધ દ્રવ્યોપ કરીને અર્ચન (પૂજા) કરવામાં લઘવવાન હોય છે, તે શ્રાવક કહેવાય છે.” ૨૩૦.

સુવિણિહ્વિયણમહ, ઘેમ્મંમિ અનંન્નદેવશ્ચો ં પુણો ।

નં ં કુસંમણ્ણુ રંજ્જાઽ, પુવાવરવાહ્યત્થેસુ ॥ ૨૩૧ ॥

અર્થ—“ જિનધર્મને વિષે સુવિનિશ્ચિત દટલે નિશ્ચલ ંકામ મતિવાલો અને જેને જિનેશ્વર સિવાય વીજો દેવ નથી તેવો શ્રાવક પૂર્વાપર વ્યાહત કેં પૂર્વાપર વિરુદ્ધ અર્થવાલો અર્થાત્ લઘસ્યે કહેલા હોવાથી અસંવદ્ધ અર્થવાલો કુસમય-કુશાન્નોને વિષે રક્તઆસક્ત થતો નથી.” ૨૩૧.

દ્દુઁણ કુંલિંગીણં, તસંચાવરજૂયમદ્દણં વિવિહં ।

ધર્મમાથો નં ચૌલ્લિજ્જાઽ, દેવેહિં, સઽદેણ્ણિં પિ ॥ ૨૩૨ ॥

અર્થ—“ કુલિત લીંગધારી વૌદ્ધાદિકના સ્વયંપાકાદિકમાં વિવિધ પ્રકારે પ્રસ [દ્વીત્રિય વિગેરે] અને સ્થાવર (પૃથિવ્યાદિક) પ્રાણીઓહં મર્દન [વિનાશ] થતું હોવાને શ્રાવક ંદ્ર સહિત દેવતાઓથી પળ જિનમાપિત ધર્મયકી લલાપમાન થતો નથી.” ૨૩૨

ગાથા ૨૩૦-શરુદ્ધ । ગાથા ૨૩૧-દેવઓ પુણી । શાહિયચ્ચેસુ । કુસમણ્ણુ-કુશાલેપુ ।

વંદેઈ પન્નિપુહ્ણઃ, પજ્જુવાસેઃ સાહુગો સયંયમેવં ।

પહેઈ સુનેઃ ઘુનેઃ ઐ, જર્ણસ્સ ધેમ્મં પરિકંહેઃ ॥ ૨૩૩ ॥

અર્થ—“ શ્રાવક નિરંતર શુક્તિમાર્ગના સાધક પવા સાધુઓને વંદના કરે છે, તેમને પોતાનો સંદેહ પૂછે છે, અને તેમની પર્યુપાસના [સેવા] કરે છે. વ્હી તે સુશ્રાવક ધર્મશાસ્ત્રમળે છે, તે જિનભાષિત ધર્મને અર્થથી શ્રવણ કરે છે, અને મળેલાનો અર્થથી વિચાર કરે છે, તથા અજ્ઞાન જનોને તે ધર્મનું કથન કરે છે: અર્થાત્ પોતાની બુદ્ધિ પ્રમાણે બીજાઓને બોધ પમાડે છે. ” ૨૩૩.

દહેસીલઞ્ચનિયમો, પોસહઆવસ્સણ્ણુ ઐવ્વલ્લિચ્ચો ।

મહુમહ્જ્ઞમંસંપચ્ચિહ્વહુબીયફલેસુ પેન્નિકંતો ॥ ૨૩૪ ॥

અર્થ—“ શીલ તે સદાચાર અને વ્રત તે અણુવ્રતો તેનો નિયમ જેને દૃઢ હોય, વ્હી જે પૌષ્ઠ (ધર્મનું પોષણ કરનાર હોવાથી પૌષ્ઠ), અને અવશ્ય કરવા હાયક સામાયિક વિગેરે છ આવશ્યક (પ્રતિક્રમણ) ને વિષ અસ્ત્વલિત—અતિચાર રહિત હોય, તથા જે મધ, મદ્ય (મદિરા), માંસ અને વઢલા, ઁવરા વિગેરે પાંચ પ્રકારના દુષ્ટોનાં વહુ જીવવાલા ફલો તથા વહુ વીજવાલા વૃત્તાંક [રીંગણા] વિગેરેથી નિવૃત્તિ પાયેલો હોય, ઇટલે અમ્ક્યાદિકના ત્યાગવાલો હોય, તે શ્રાવક કહેવાય છે. ” ૨૩૪. અમ્ક્યાદિ પર્વણીને વિષે સાવધત્યાગરૂપ નિયમ વિશેષ તે પૌષ્ઠ કહેવાય છે; અને દરરોજ વે ટંક અવશ્ય કરવાના હોવાથી પ્રતિક્રમણ તે આવશ્યક કહેવાય છે.

નાહેમ્મકમ્મજીવી, પન્નેવ્વણે ઐન્નિવ્વલ્લિમુજ્જુત્તો ।

સેવં પેરિમાણકમ્, અવરજ્જહંતં પિ સંકંતો ॥ ૨૩૫ ॥

અર્થ—“ વ્હી શ્રાવક પન્નર પ્રકારના કર્માદાન પૈકી કોઈ પળ પ્રકારના અર્થ્ય કર્મથી આજીવિકા કરતો ન હોય, ઇટલે શુદ્ધ—નિર્દોષ વ્યાપાર કરતો હોય, તથા દશ પ્રકારના પ્રત્યાહ્યાનમાં નિરંતર લ્હમવાન હોય, વ્હી જેને સર્વ ધન ધાન્ય વિગેરેનું પરિમાણ કરેલું હોય, ઇટલે જે પરિગ્રહના પ્રમાણવાલો હોય, અને જે આરંભાદિક જે કાઈ અપરાધવાલું—દોષવાલું કાર્ય કરે તે પળ શંકિત થઈને કરે: અર્થાત્ નિઃશંકપણે કરે નહીં અને કર્યા પછી પળ આહોયણ લઈને તે દોષથી શુદ્ધ—મુક્ત થાય. (શ્રાવક ઇવો હોય.) ” ૨૩૫

નિવ્વલ્લમણનાણનિવાણજમ્મઝૂમીચ્ચો વંદેઈ જિણાણં ।

ને યં વંસેઃ સાહુજણવિરહિયંમિ દેસેં વહુેયુને વિ ॥ ૨૩૬ ॥

માથા ૨૩૩—સાહુગો । ઘુનેઃ જળસ્સ । માથા ૨૩૪—વહુવિહ । માથા ૨૩૫—મુજ્જતો ।
અવરજ્જહ—અપરાધયતિ । માથા ૨૩૬—સાહુજણ ।

अर्थ—“बळी श्रावक जिनेश्वरोना निष्क्रमण (दीक्षा) केवळज्ञान, निर्वाण (मोक्ष) अने जन्मश्रुति रूप कल्याणक स्थानोने वंदना करेछे, अर्थात् तीर्थयात्रानो करनारो होयछे; अने बीजा घणा गुण होय—घणी जातनां द्रव्यादिकनी प्राप्तिनां साधन होय, छां पण साधुजन रहित पटछे साधुजनना विहाररहित देशमां वसतो नयी.” २३६

परैत्तिथियाण पणमणं, उब्जावणं धुणणं जत्तिरांगं च ।

सकूरं सम्माणं, दाणं वि'णैयं चं वंज्जेइ ॥ २३७ ॥

अर्थ—“बळी श्रावक बौद्ध तापस विगेरे परतीर्थिकोत्तुं प्रणमन (वंदना करवी), उद्भावण (बीजानी पासे तेओना गुणनी प्रशंसा करवी), स्तवन (ते बौद्धादिकनी पासे तेपना देवनी स्तुति करवी); भक्तिराग (तेपने बहुमान आपवुं), सत्कार (तेपने बह्मादिक आपवुं) सन्मान (तेओ आवे त्यारे ज्या थइ मान आपवुं) दान (तेपने सुपात्रनी बुद्धिथी भोजनादिक आपवुं), तथा पादप्रक्षालन विगेरे करीने विनय करवो; ते सर्वनो त्याग करे छे: अर्थात् पटछां वानां करतो नयी.” २३७.

इये श्रावक सुपात्रनी बुद्धिथी भोजनादिक कोने आपे छे ते कहे छे—

पढेमं जईण दाउण, अप्पणो पणमिउणं पारेइ ।

असईअ सुविहिआणं, 'जुंजेइ कर्येदिसालोओ ॥ २३७ ॥

अर्थ—“श्रावक प्रथम यतिओने (इंद्रियोत्तुं दमन करवाना प्रयत्नवाळा साधुओने) प्रणाम पूर्वक आपीने पळी पोते भोजन करे छे. कदाच साधुओ न होय तो ते सुविहित साधुओनी दिक्षानो आछोक करतो छतो भोजन करे छे. पटछे साधुओ जे दिशा तरफ बिचरता होय ते दिशा तरफ जोइने 'जो साधुओ आवे तो सारुं' एम विचारतो भोजन करवा बेसे छे (भोजन करे छे).” २३८.

साहूण कप्पणिल्लं, जं नवि दिअं कैहिंपि किंचि तहिं ।

धीरीं जहुत्तकैरी, सुसावंगां तं नै 'जुंजंति ॥ २३९ ॥

अर्थ—“साधुओने कल्पनीय—एषणीय (शुद्ध) एवं जे काइ अन्नादिक योहुं पण कोइ पण देशकालने विषे ते साधुओने नयीज आप्युं: अर्थात् मुनिए नयी लीधुं एवा ते अन्नादिकने धीर (सत्त्ववानं) अने ययोक्तकारी पटछे जैवे श्रावकनो मार्ग

गाथा २३७—पणमन । उब्भावण=उद्भवने=परत्प्यामे तन्नप्रमर्शसनं ।

गाथा २३८—पारेइ=पारयंति-भोजनं करोतीति यावत् । अउइ अ=असति च ।

गाथा २३९—कहिंचि किंपि तहिं ।

छे तेज प्रमाणे वर्तनारा सुश्रावको वापरता नथी; अर्थात् साधुओने आप्या विनानी कोइ पण चीज पोते वापरता नथी; जे वस्तु मुनिमहाराज ग्रहण करे ते वस्तुज पोते वापरने छे. ” २३९.

वसह्यैसयणासणभक्तपाणजेसज्जावत्थपत्ताइ ।

जइ वि नपज्जंतधणो, थोवा वि हु थोर्वयं देई ॥ २४० ॥

अर्थ—“यद्यपि (जोके) नथी पर्याप्त-संपूर्ण धन जेने एवो एटछे संपूर्ण धनवान नहीं होवाथी संपूर्ण आपवाने असमर्थ एवो कोइ श्रावक होय, तो ते पोतानी पासेना थोडाभांथी पण थोडुं एवुं वासस्थान, शयन (सुवानी पाट), आसन (पादपीठादिक) भक्त-अन्न, पान-जळ, भैषज्य-औषध, वस्त्र अने पात्र विगेरे आपे छे, पण अतिथि संविभाग कर्या विना वापरतो नथी ” २४०.

संवच्छरंचाउम्मासिएसु, अछाहियासुं अ तिहीसु ।

सव्वायैरेण लग्गाई, जिणवरपूयातवशुणेसु ॥ २४१ ॥

अर्थ—“वळी सुश्रावक संवत्सरी पर्वमां, त्रणे चातुर्मासमां, चैत्र आसो विगेरेनी अट्टाइमां अने अष्टमी विगेरे तिथिओमां (ए सर्व शुभ दिवसोमां) विशेषे करीने सर्व आदरवडे (सर्व लघमवडे) जिनेश्वरनी पूजा, छेठ अहमगादिक तप अने दानादिक गुणोने विषे लागे छे एटछे आसक्त श्राय छे. ” २४१.

वळी श्रावक श्रुं करे छे ते कहे छे—

साहुण चेईयाण थै, पडिणीयं तेह अवन्नवायं च ।

जिणपवयणस्स अहिअं, सव्वत्थोमेण वारेई ॥ २४२ ॥

अर्थ—“ साधुओना अने चैत्र एटछे जिनमासाद तथा जिनप्रतिमाओना प्रत्य-नीकने-उपद्रव करनारने तथा अवर्णवाद एटछे कुत्सित वचन बोळनारने (वाङ्गुं बोळनारने) अने जिनज्ञासनना अहित करनारने (क्षत्रुने) सुश्रावक पोताना सर्व प्रकारना बळे करीने निवारण करे छे. पण ‘ बीजा घणा जण छे ते संभाळ करणे’ एस धारीने तेनी उपेक्षा करता नथी. ” २४२.

विरयां पाणिवहाओ, विरयां निच्चं च अलियवयेणाओ ।

विरयां चोरिक्काओ, विरयां परदारगमणाओ ॥ २४३ ॥

माथा २४१-चाउमासिएसु । तिहीसु ।

माथा २४२-चेईयाण । पडिणीयं ।

અર્થ—“ વઙ્કી સુશ્રાવકો હંમેશાં પ્રાણીવધ થકી વિરતિ પામેલા હોય છે, બઙ્કીક વચન-ગિધ્યા ભાષણ થકી વિરતિ (નિવૃત્તિ) પામેલા હોય છે, ચોરીથી વિરતિ પામેલા હોય છે, અને પરસ્ત્રીગમનથી નિવૃત્તિ પામેલા હોય છે.” ૨૪૨.

ત્રિરંચા પરિમૈહાઓ, અર્પરિમિશ્રાઓ ઐગંતતહાઓ ।

બહુદોસસંકુલાઓ, નરયંગ્ગમણપંથાઓ ॥ ૨૪૪ ॥

અર્થ—“ વઙ્કો તે સુશ્રાવકો જેનું પરિમાણ કર્યું નથી, જેનાથી અનંત તૃષ્ણાઓખ ઉત્પન્ન થાય છે, જે ઘણા વધ વંચનાદિક દોષોથી સંકુલ-ખરેલો છે, તથા જે નરક ગતિમાં જવાના માર્ગરૂપ છે, એવા ધનધાન્યાદિક નવ પ્રકારના પરિગ્રહ થકી વિરતિ પામેલા હોય છે.” ૨૪૪.

મુઙ્કા ડુંઙ્કાળમિત્તી, ગઢિયોં ગુરૂંવયણસાહુપહિવત્તી ।

મુઙ્કો પરપરિવાઓ, ગૈહિઓ જિર્ણદેસિઓ ધમ્મો ॥ ૨૪૫ ॥

અર્થ—“ જે શ્રાવકોએ દુર્જન (સ્વલ) ની મૈત્રી-દોસ્તી મૂકી છે, જેઓએ તીર્થ-કરાદિક ગુરુના વચનની સારી (સૌભાવાઙ્કી) પ્રતિપત્તિ [પ્રતિજ્ઞા] ગ્રહણ કરી છે, જેઓએ પર પરિવાદ-પરના અપવાદનું (પરનિદાનું) કથન મૂકી દીધું છે, અને જેઓએ બિનદક્ષિત દટલે બિનેશ્વરે કહેલો ધર્મ ગ્રહણ કર્યો છે.” ૨૪૫.

તર્વેનિયમસીલકલિયા, સુસૌવગા જે હૈવંતિ ર્હ સુગુણોં ।

તેસિં નં દુલ્લહાઈ, નિર્વાણવિમાણસુક્લાઈ ॥ ૨૪૬ ॥

અર્થ—“ આ ઢોકયાં જે સુશ્રાવકો વાર પ્રકારનાં તપ, નિયમ તે અનંતકાયાદિકનું પ્રત્યાહ્યાન અને શીલ તે સદાચાર તેથી યુક્ત તથા સારા ગુણોવાઙ્કા હોય છે, તેઓને નિર્વાણ (મુક્તિ) અને વિમાન [સ્વર્ગ] નાં મુલ્કો દુર્લભ-દુષ્પ્રાપ્ય નથી; અર્થાત્ તેઓ સ્વર્ગનાં મુલ્કો યોગર્થીને અનુક્રમે મુક્તિ પળ પામે છે.” ૨૪૬.

સીઈઙ્કા કેયાવિ ગુરુ, તં પિ-સુસૌસા સુનિઙ્કણમહુરોઈં ।

મગ્ગી ઈવંતિ પુણરવિ, જૈહ સેલ્લેગપંથગો નૌયં ॥ ૨૪૭ ॥

અર્થ—“ કદાચિત્ત દટલે કર્મની વિચિત્રતાને ઢીધે કોઈ વલત ગુરુ પળ સીદોય દટલે માર્ગથી શિથિલ [અણ] યામ; તેા તેવે વલતે તેવા અણાચારી ગુરુને પળ સારા (ઉચ્ચ) શિષ્યો અત્યંત નિપુણ અને મધુર [કોમલ] વાક્યોએ કરીને ફરીથી પળ

ગાથા ૨૪૨-પહિવત્તી । મુઙ્કા । ગાથા ૨૪૬-દુલ્લહાઈ । સોક્લાઈ ।

ગાથા ૨૪૭-સિપ્પઙ્કા । સીઈઙ્કા=સીદત્-માર્ગાત્ શિથિલો ભવેત્ । નાયં=જ્ઞાતં-ઉદાહરણં.

સંયમમાર્ગમાં સ્થાપન કરે છે, ઇટલે ઉત્પયમાં ગયેલાને સન્માર્ગે લાવે છે. જેમ 'સેલક' આચાર્ય અને 'પંચક' શિષ્ય એ વેદું જ્ઞાત (દુઘાંત) અહીં જાણવું." ૨૪૭.

સેલકાચાર્ય અને પંચક શિષ્યની કથા.

કુવેરે બનાવેલી શ્રોત્વારિકાપુરીમાં 'શ્રીકૃષ્ણ' વાસુદેવ રાજ્ય કરતા હતા. તે વલ્લભે તે પુરીમાં એક 'યાવચ્ચા' નામની સાર્યવાહની સ્ત્રી રહેતી હતી. તેનો 'યાવચ્ચાકુમાર' નામનો અતિ રૂપવાન પુત્ર વચ્ચે સ્ત્રીઓનો પતિ હતો. તે પોતાના ઘરમાં દોહુંદક દેવની જેમ પોતાની સ્ત્રીઓ સાથે વિષયમુલ્ક ભોગવતો હતો. એકદા શ્રીનેમિનાય જિનેશ્વર તે નગરીનો ઘઠારના ઉપવનમાં સમવસ્યાં. તે સ્વર જાણીને યાવચ્ચાકુમાર શ્રીનેશ્વરને ઘાંદવા ગયો. ત્યાં તેણે ભગવાનના મુલ્કથી સંસારનો નાશ કરનારી દેવના સાંભલી; તેથી સંસારની અનિસ્તયતા જાણી માતાની આજ્ઞા લઈ શ્રીનેશ્વર પાસે એક હજાર પુલ્કો સહિત તેણે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. અનુક્રમે તેણે ઘાંદ પૂર્વનો અભ્યાસ કર્યો. પછી એક વલ્લભ શ્રીનેમિનાયની આજ્ઞા લઈને પોતાના હજાર શિષ્યો સહિત વિહાર કરતા યાવચ્ચાપુત્ર મુનિ સેલક નામના પુરમાં આવ્યા. તે પુરનો રાજા 'સેલક' મુનિને ઘાંદવા આવ્યો. મુનિના મુલ્કથી દેશના સાંભલીને પ્રતિવેધ પામેલો સેલક રાજા તે યાવચ્ચાપુત્ર આચાર્ય પાસે ઘર વ્રતધારી શ્રાવક થયો. ત્યાંથી વિહાર કરીને આચાર્ય સૌગંધિકા નગરીના નીલાકોક વનમાં પધાર્યાં. તે નગરીમાં 'સુદર્શન' નામનો શ્રેષ્ઠી શુક નામના પરિવ્રાજકનો પરમ ભક્ત રહેતો હતો. તે શ્રેષ્ઠી યાવચ્ચાપુત્ર આચાર્ય પાસે ગયો, ત્યાં તેણે પ્રતિવેધ પામીને વિંધ્યાલ્કનો તથા શૌચમૂલ્ક ધર્મનો ત્યાગ કરીને શ્રીજિનમાલિત વિનયમૂલ્ક ધર્મ અંગીકાર કર્યો. તે વાતની શુક પરિવ્રાજકને સ્વર થતાં તે પોતાના હજાર શિષ્યો સહિત ત્યાં આવ્યો. સુદર્શન શ્રેષ્ઠી પાસે આવોને તેણે પૂછ્યું કે "હે સુદર્શન ! અમારા શૌચ-મૂલ્ક ધર્મનો ત્યાગ કરીને તે આ વિનયમૂલ્ક ધર્મ કોની પાસે ગ્રહણ કર્યો ?" સુદર્શને જવાબ આપ્યો કે "મેં વિનયમૂલ્ક ધર્મ શ્રીયાવચ્ચાપુત્ર આચાર્ય પાસે ગ્રહણ કર્યો છે અને તે આચાર્ય મહારાજ પણ અહીંજ છે." તે સાંભલીને શુક પરિવ્રાજક આચાર્યની સ્પર્ધાથી સુદર્શનને સાથે લઈને આંચાર્ય પાસે આવ્યો. ત્યાં ઘાંદમાં આચાર્યે તેને નિરુત્તર કર્યો. ઇટલે વિનયમૂલ્ક ધર્મને સત્ય માનીને હજાર શિષ્યો સહિત શુક પરિવ્રાજકે તે આચાર્ય પાસે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. અનુક્રમે દ્વાદશાંગીનો અભ્યાસ કર્યો. તેને યોગ્ય જાણીને યાવચ્ચાપુત્રે આચાર્યપદ આપ્યું. અને ઘોતે શ્રીશત્રુંજય પર જઈને હજાર સાધુઓની સાથે એક માસની સંલેસના કરી માંતે કેવલ્લજ્ઞાન પામીને મોક્ષે ગયા.

એકદા શ્રીશુકાચાર્ય હજાર શિષ્યો સહિત સેલકપુર ગયા. સેલક રાજા તેમને ઘાંદવા આવ્યો. તેમના મુલ્કથી ધર્મદેશના સાંભલીને પ્રતિવેધ પામેલા રાજાએ પોતાના

मंडुककुमार पुत्रने राज्य सेंपी पंथक विनेरे पांचसेा मंत्रीओ सहित चारित्र ग्रहण कर्युं. अजुक्रमे सेलक मुनि द्वादशांगोने धारण करनार थया. तेमने योग्य जाणी आचार्यपदे स्थापन करीने श्रीशुकाचार्य हजार साधुओ सहित श्रीसिद्धाचल पथार्या. त्यां सर्व मुनिओ सहित अनशन ग्रहण करी मासने अन्ते केबळज्ञान पापीने मोक्षे गया.

त्यार पछी श्रीसेलकाचार्यना शरीरमां नीरस अने लूता आहारने कीवे महा व्याधिओ उत्पन्न थया. ते व्याधिओ असह्य होता, तोपण सेलकाचार्य दुस्तप तपमांज उद्युत रहेता होता. एकदा विहारना क्रमे तेओ सेलकपुर आल्या. तेमने आल्या जाणीने मंडुक राजा वंदना करवा आण्यो. त्यां गुरुना मुखयी धर्मदेशना श्रवण करी मंडुक राजा जीवार्जीवादिक नव तत्त्वोनेा जाणनार थयो. पछी पोताना पिता सेलक राजर्षिंतुं शरीर कषिरयांस रहित शुष्क थडे गंयेछे जोइने मंडुक राजाए विवसि करी के “ हे स्वामी ! आपतुं शरीर रोगयी अजरित देस्त्राय छे. तो अहौं मारी, यान-शाळांमां आप रहो; जेयी हुं शुद्ध औषधवडे तथा पथ्य भोजनवडे आपतुं शरीर नीरोगी करूं.” ते सांभळीने आचार्य तेतुं वचन अंगीकार करी तेनी यानशाळांमां निवास कर्यो. राजाए औषधादिकयी तेमनी चिकित्सा करावी, तेयो आचार्यनां शरीरमांयी रोगो नष्ट थया. परंतु राजानो रसवाळो आहार छेवायी आचार्य रसलुब्ध थइ गया. तेयी तेओए त्यांयो कयांइ पण विहार कर्यो नही. पटले एक पंथक शिष्यने तेमनी सेवा करवा राखीने बीजा सर्व शिष्योए त्यांयी विहार कर्यो. पछी तो सेलकाचार्य धीमे धीमे अत्यंत रसलुब्ध थया; पण पंथक मुनि तेमनी सारी रीते सेवा करवा लाग्या, अशुद्ध आहार पण छावीने गुरुने आपवा लाग्या अने पोते शुद्ध आहार करवा लाग्या.

एकदा कार्तिक चोमासीने दिवसे रसवाळो आहार करीने आचार्य संध्या समयेज घुलनिद्रामां सुइ गया. ते वखते पंथक साधु चोमासी प्रतिक्रमण करतां गुरुना चरणमां मस्तक मूकीने चोमासी प्रायश्चित्ती खामणा करवा लाग्या. तेना स्पर्शयी गुरु निद्रामांयी जाग्रत थया, तेयी ते क्रोधातुर थइने मोल्या के “ अरे कया पापीए मारी निद्रानो भंग कर्यो ? ” ते सांभळी पंथक मुनि बोल्या के—“ हे पूज्य ! आजे चोमासी खामणा करतां माहं मस्तक आपना चरणने अडक्युं, तेयी आपनी निद्रामां अंतराय थयो छे, ए भारो अपराध आप क्षमा करो, हवेयी आवो अपराध हुं नहौं करूं.” आ ममाणे वारंवार पोताना न अपराधने कहता शिष्यने जोइने गुरुतुं चिंच सावधान थयुं. तेयी ते मनमां विचारवा लाग्या के “ अहो ! आ शिष्य केवो क्षमावान छे ! आ शिष्य न क्षम्य छे, अने हुं न अधन्य छुं, केमके हुं आज चोमासीने दिवसे पण रसवाळो आहार करीने सुतो छुं.” ए ममाणे आत्मनिंदा करतां तेमनां मनमां बेराग्य उत्पन्न थयो. तेयी तेमणे पंथकने कर्तुं के “ हे वरस !

भवसागरमां पडतां एवां यने आजे तें उद्धर्यो (खेचीकाढ्यो) छे. ” एम कहीने प्रमाद दूर करी शुद्ध चारित्र्य ग्रहण कर्युं. ते वात सांभळी सर्व शिष्यो पण तेमनी पासे आळ्या. पछी चिरकाळ सुधी विहार करी घणा भव्य जीवने प्रतिबोध पमादीने पांचसो शिष्यो सहित सिद्धाचळपर अनशन ग्रहण करी सेळकाचार्य सिद्धिपदने पाम्या. आवी रीते सारा शिष्यो पोताना प्रमादी शुक्ने पण सन्मार्गे लावे छे.

दस दस दिवसे दिवसे, घर्मं बोहेश्च अह्व अहिश्चरौ ।

इअ नंदिसेणसत्ती, तहविय स् संजमविवत्ती ॥ २४७ ॥

अर्थ—“ दिवसे दिवसे (हंमेशां) दश दश पुरुषोने घर्मनो बोध करे, अथवा तेथी पण अधिकतर माणसोने बोध पमाडे, एवी नंदिषेण मुनिनी शक्ति-वचनलब्धि (देशना लब्धि) हती, तोपण ते नंदिषेणना चारित्र्यनी विपत्ति थइ (विनाश थयो); ए उपरथो निकाचित कर्मनो भोग अति बलवान छे एम समजुं ” २४७ अही नंदिषेणनो संबंध जाणवो. ६०

श्रीनंदिषेणनो कथा.

प्रथम नंदिषेणनो पूर्वभव सारी रीते कहे छे—कोइ एक गांममां मुखिय नांमनो ब्राह्मण रहैतो हतो. तेणे एकदा छुटक छुटक मळोने लक्ष ब्राह्मणोने भोजन करावचानो संकल्प कर्यो. ते वखते तेणे विचार्युं के “जो मारे घेर कामकाज करवा माटे एक नोकर होय तो बहु सारं” एम विचारिने पोतानी पडोक्षमां रहैता एक भीम नामना दासनने तेणे पूछ्युं. त्यारे तेणे कर्णुंके “जो ए ब्राह्मणोतुं भोजन थइ रखा पछी वघेळुं अन्नदिक हुं यने आपे तो हुं तारा घरतुं कामकाज करं” ते सांभळीने ते ब्राह्मणे तेनी मागणी कबूल करी, एटछे ते भीम तेना घरतुं कामकाज करवा लाग्यो; अने ब्राह्मणोतुं भोजन थइ रखा पछी बाकी रहेळुं अन्न नगरमां रहेला साधु साध्वीओने बोलावीने वहोराववा लाग्यो. आ प्रमाणे पुण्य कर्वाथी तेणे भोगकर्म उपार्जन कर्युं. छेवट आयुष्य क्षये मरण पायीने ते दासनो जीव देवलोकां देवपणे उत्पन्न थयो. त्पांथी आयुष्य क्षये चवीने राजशु नगरमां श्रेणिक राजानो नंदिषेण नामे पुत्र थयो; अने पेळे लक्ष ब्राह्मणने भोजन करावनार ब्राह्मणनो जीव घणा भवोमां भ्रमण करीने कोइ अदवीमां हाथिणीनी कुक्षिमां उत्पन्न थयो. ते हाथिणीनो स्वामी हाथीने जे बाळको थाय तेने मारी नाखतो हतो, तेथी ते हाथिणीए विचार्युं के “मारी कुक्षिमां गर्भ उत्पन्न थयो छे, तेने

कोई पण उपायभी श्रुत रीते प्रसजुं तो ते जीवतो रहे, अने यूथनेो [हाथिणीना टोळानो] अधिपति थाय." एम विचारीने ते हाथिणी खोटीरीते एक पणे लंगडी थइने चालवा लागी. तेथी कोइ वखत एक पहारे ते पोताना यूथने भेगी यती. कोइ वखत वे पहारे यती, कोइ वखत एक दिवसे यती अने कोइ वखत वे दिवसे यूथ भेगी यती. ए प्रमाणे करतां प्रसवकाळ समोप आवेछेो जाणोने ते तृणनो पूळेो छइने कोइ तापसोना आश्रममां गइ. त्यां तेणे पुत्र (हाथी)ने जन्म आप्यो. पछो आवीने पोताना यूथ भेगी थइ गइ. पछो दररोज यूथनी पाळळ रहीने तापसोना आश्रममां जइ पोताना बाळकने स्तनपान करावी पाछो यूथ भेगी यती. एवी रीते ते बाळकजुं तेणे पोषण कर्युं. ते आश्रममां रहेछा हस्तिबाळकजुं तापसोए पुत्रनी जेम पाळन कर्युं, तेथी ते तेओनेो अत्यंत प्रीतिपात्र थयो. पछो ते तापसोनी संगतिथी तेहाथी पण पोतानी सुंदमां पाणी भरी छावीने आश्रमनां वृक्षेने पाणी पावा लाग्यो. तेथी तापसोए तेजुं सेचनक एवुं यथार्थ नाम पाड्युं. ते सेचनक अनुक्रमे वृद्धि पायी महा बळवान थयो. एकदा सेचनक वनमां फरतो हतो, तेवामां तेणे पेछेो यूथस्वामी के जे पोतानो पिता हतो तेने जेयो, अने ते यूथपतिए पण तेने जेयो. तेथो ते बन्नेने परस्पर युद्ध थयुं. वेमां महा बळवान सेचनके पोताना पिताने यमद्वारे भोकल्यो [मारी नांख्यो]. अने पोते यूथपति थयो. पछो सेचनके वनमां विचार्युं के "जेम मारी माताए मजे श्रुत रीते प्रसज्यो, त्यारे हुं पिताने मारी युथपति थयो, तेवी रीते बीजो कोइ हाथिणी श्रुत रीते आ आश्रममां प्रसवचेो तो ते मने मारीने यूथपति थचे." एम विचारीने तेणे ते तापसोना सुंदमां भांगी नांख्या. ते वखते तापसोए विचार कर्यो के "अहो ! आ हाथी महा कुतघी थयो. आपणे तो पुत्रनोजेम तेजुं छाछनपाळन कर्युं, अने तेणे तो महा विरुद्ध आचरण कर्युं; माटे आने आपणे कोइ प्रकारना कष्टमां नांखीए." एम विचारीने ते तापसोए श्रेणिक राजा पासे जइने कहुं के "हे राजा ! अमो जे वनमां रहीए छीए, ते वनमां राज्यने योग्य एक हस्तिरत्न छे, माटे ते आपने ग्रहण करवा योग्य छे." ते सांभळीने श्रेणिक राजाए परिवार सहित वनमां जइ हेड विगेरे घणा उपायोवडे तेने पकडवा मांड्यो पण ते पकडायो नहीं. एवामां नंदिषेण कुमार त्यां आव्यो. तेना शब्द सांभळीने तेना साधुं जेवां ते हस्तीराजने अवधिज्ञान उत्पन्न थयुं, पटछे तेणे पोतानो पूर्वभव जेयो, तेथी ते शांत थइ गयो. नंदिषेण कुमारे ते हस्तीनो सुंद पकडी तेना उपर चढो तेने नगरमां छावीने राजद्वारे बांध्यो, अनुक्रमे नंदिषेण पण युवावस्था पाम्यो. पिताए

तेने पांचसो स्त्रीओ साथे पाणिग्रहण कराव्युं, ते स्त्रीओ साथे ते त्रिषयसुख भोग-
ववा लाग्यो.

एकदा श्रीवर्षमान स्वामीने नगर बहार उद्यानमां समवसरेला जाणीने नंदिवेण
कुमार भगवानने वांदवा गयो. प्रभुने वांदीने नंदिवेणे पूछ्युं के "हे भगवान ! मने जोइने
सेचनक हाथीने मारापर स्नेह केम उत्पन्न थयो ?" त्यारे भगवाने ते बन्नेना पूर्वभवतुं
सर्व वृत्तांत तेने कथुं. ते सांभळीने नंदिवेणे विचार्युं के " ज्यारे साधुओने अनादिक
आपवाथी आटळुं बंधुं पुण्य थयुं त्यारे दीक्षा लहने जो तपस्या करी होय तो तो घणुं
योडुं फळ मळे." ए प्रमाणे विचारीने तेणे भगवानने विज्ञप्ति करी के " हे प्रभु ! दीक्षा
आपीने मारो उद्धार करो. " प्रभु बोल्या के " हे बत्स ! तारे निकाचित भोगकर्म ह्यु
बाकी रहेळुं छे, तेथी तुं दीक्षा न छे. " ते वखते तेज प्रमाणे आकाशवाणी पण थइ. तोपण
नंदिवेण हट चिचवाळो थइने पांचसो स्त्रीओना उपभोगनो त्याग करी चारित्र्य ग्रहण
करवा उद्युक्त थयो. एटळे भगवाने पण तेवो भावीभाव जाणीने तेने दीक्षा आपी अने
स्थविर साधुओने सोप्यो. त्यां तेणे सामायिकथी आरंभीने दश पूर्वनो अभ्यास कर्यो.
ते नंदिवेण मुनि जेम जेम छड, अहम, आतापना विगेरे तपस्या पूर्वक महाकष्ट करवा
लाग्या अने उपसर्गो सहन करवा लाग्या. तेम तेम तेने घणी लब्धिओ प्राप्त थइ. ते
साथे दिनप्रतिदिन कामनो उदय पण वृद्धि पामवा लाग्यो. नंदिवेण मुनि मनमां जाणता
हता के " देवताओए तथा भगवाने निषेध कर्यां छतां पणें मे दीक्षा ग्रहण करी छे, माटे
कंदर्प [कामदेव]ना परतंत्रपणाथी मारां व्रतनो भंग न थाओ. " एम विचारीने काम-
देवथी भय पामतां तेमणे आत्मघात करवाना हेतुथी शस्त्रघात, कंटपाश (गळाफांसो)
विगेरे अनेक उपायो कर्यां; परन्तु ते सर्वे शासनदेवीए निष्फळ कर्यां. एकदा तेने
अति उग्र काम व्याप्त थयो. ते वखते ते शंकापात करवा माटे पर्वत पर चडीने
पडवा गया. तेवामां शासनदेवताए तेने झीळी लइ कथुं के " हे महाभुभाव ! आ प्रमाणे
आत्मघात करवाथी शुं निकाचित कर्मनो क्षय थशे ? नहों थाय. माटे आ तारो विचार
ह्या छे. तीर्थकरोने पण भोगकर्म भोगव्या विना सर्व कर्मनो क्षय थतो नथी, तो
तारा जेवाने माटे शुं कहेतुं ! " आ प्रमाणे शासनदेवीतुं वचन सांभळीने नंदिवेणमुनि
एकळा विहार करतां करतां एकदा छठने पारणे राजगृही नगरीमां गया. आहार
माटे उंचा नीचा कुळोमां भमतां अजाणतां वेइयाने घेर जइने घर्मलाभ आप्यो. ते
सांभळीने वेइया बोळी के " हे साधु ! अमारें घेर तो अथेलाभनी जरूर छे, अने
तमे तो रांक अने धनरहित छो. " ते वचन सांभळतांज मुनिने अभिमान आव्युं,
तेथी तेणे तेना घरतुं एक दण खेंचीने पोताना तपनी लब्धिथी सादावार

करोड़ सोनैयानी वृष्टि करी;अने कहुं के 'जो तारे धर्मकाभजुं प्रयोजन न होय तो आ घननो दगछो ग्रहण कर.' एम बोलीने ते मुनि पाछा बळी नीकळवा जायछे,तेदकायां ते गणिका तेनी आगळ आवीने मुनिना बखनो छेहो पकडी उभी रही,अने कहेसा छागी के "हे प्राणेश ! आ घन छेहुं अपने घटुं नथी. कैप्रके अमे पण्यांगना कहे- वाइए छीए;एदछे के अमे अमारा देहबडे पुरुषोने मुख उत्पन्न करीने तेहुं चिच प्रसन्न करी पछी तेओए पोतेज उपाजन करीने आपेहुं घन अमे ग्रहण करीए छीए. माटे आ घन तमे छइ जाओ,अथवा तो अहीं रहीने आ घनबडे मारी साये विषयमुख भोगवो.हे नाथ ! आ तमारी युवावस्था क्या ! अने आ तपहुं कष्ट क्या ! आ घन, आ युवावस्था अने आ मारी सुंदर आवास-ते सर्व सहेजे प्राप्त थयेहुं अने भोगववा योग्य छे.तेने पामीने कयो मुग्धजन तपस्यादिकनां कष्टो सहन करी देहने शोषण करे!" आ प्रमाणेनां अत्यंत कोमळ ते वैश्यानां वचनो सांभळीने भोगकर्मना उदयने लोधि ते नंदिवेष तेनाज धरमां रक्षा.पछी हमेशां दश दश पुरुषोने प्रतिबोध पमाइवानो अभिग्रह छइ रजोगहरण विगेरे साधुनां वेषने उंचो खीटीए मूकी ते वैश्या साथे विषयमुख भोग- ववा छाग्या.दररोज प्रातःकाळे दश पुरुषोने प्रतिबोध पमाख्या विना ते पोताना मुखमां जळ पण नांखता नहीं, अने जेओने ते प्रतिबोध पमाइता तेओ भंगवंत प्रासे आवीने दीक्षाग्रहण करता.ए प्रमाणे वैश्याने घेर रहेंतां तेमने बार वर्ष व्यतीत थयां.बार वर्षने अंते एक दिवस नव पुरुषो प्रतिबोध पाम्या.दशमो सोनी मळयो ते कोइ रीते प्रतिबोध पाम्यो नहीं;पण लळटो नंदिवेषने कहेवा लाग्यो के "तमे बीजाने प्रतिबोध करो छो,पण तमेज चारित्रनो त्याग करीने अहीं वैश्याने घेर केम रक्षा छो!" एम ते प्रतिकुळ वचनो कहेवा छाग्यो पण प्रतिबोध पाम्यो नहीं.ते वखते वैश्या उचय रसवाळी रसवती (भोजन) तैयार करीने तेने बोळाववा आवी अने कहुं के " हे प्राणनाथ ! रसवती ठंडी थइ जायछे,माटे जमवा उठो." नंदिवेषेणे कहुं के "आ एक दशमा पुरुषने प्रतिबोध पमाइने हमणां आहुं छुं." एम कहीने तेने पाछी बाळी. बोडी वारे फरीयी नवी रसोइ वनाबीने तेज प्रमाणे बोळाववा आवी.ते वखत पण जमवा न उठ्या. एवी रीते बीजी बार पण बोळाववा आवी, अने बोळी के " हे प्राणनाथ ! संघ्यासमय थवा आधो छे,आप जमेळा न होवायी हुं पण सूखील रही छुं." त्यारे नंदिवेषेणे बोल्या के "हे सुंदर नेत्रवाळी ! दशमाने प्रतिबोध पमाख्या विना भोजन करवायी मारा नियमनो भंग थाय छे,तथी हुं बी रीते आवीं शकुं?" त सांभळीने ते हास्ययी बोळी के "जो आपे दशमो कोइ बोध पामतो न होय तो तेने स्याजे तमे थायो." ए प्रमाणे वैश्याहुं वाक्य सांभळीने पोताना भोगकर्मनो क्षय थयेछो जाणी तरतज उभा थइ तेणे राखी

मूकेछो पोतानो यतिवेष धारण करी ते वेश्याने धर्मलाभ आप्पे.ते बखते वेश्यां बोली के “ हे स्वामी ! में तो हास्यथी कहुं हतुं; माटे मने एकछी मूकौने तमे केम जाओछे ?” नंदिषेणे कहुं के “तारे ने मारे एटछोज संवंध हतो.” एम कहीने श्री-महावीरस्वामीनी समीपे आबी तेमणे फरीथी चारित्र ग्रहण कर्युं.पछी शुद्ध निरतिचार चारित्रहुं प्रतिपालन करी,छेवट अनशन ग्रहण करी मृत्यु पापीने देवछोके गया.

आ प्रमाणे ते नंदिषेण मुनि दशपूर्वधारी हता, तेमज देशनानी अपूर्व लब्धि-वाळा हता;तोपण ते निकाचित कर्मना भोग थकी मूकाया नहीं, तो बीजानी शी वात करवी ? माटे कर्मनो विश्वास करवो नहीं.

कलुसैकअओ अ किट्टीकअओ अ, खयरौकअओ मंलिणिअओ अ ।

कम्मोहिं एँस जैत्रो, नाउएँ १० वि मुँज्जाई जेण ॥ २४ए ॥

अर्थ—“जे कारण माटे आ जीव ज्ञानावरणादिक आठ कर्मोए (कर्मरूपी धूळबडे) करीने जेम धूळयो व्यास थयेछं जळ पंकिळ (कादववाळं डोळं) थाय छे तेम कलुषित करायेछो छे,छोढाने जेम काट बळे तेम किट्टीकृत—काटवाळो करायो छे, जेम जेनो रस (स्वाद) नाश पाम्यो छे एवा मोदक जुदा स्वभावने पापे (गंघाइ जाय) तेम आ जीव पण जुदा (ज्ञानादिक रहित) स्वभावने पाम्यो छे; बळी आ जीव कर्मोबडे मलिन करायो छे; एटछे जेम बल्ल मेळवाळ (मलिन) थाय छे तेम आ जीव पण मेळो करायो छे. ए प्रमाणे होवाथी आ जीव जाणतां छतां पण मोह पापेछे—मूढ बने छे. (ते सर्व निकाचित कर्मनोज दोष छे.)” २४ए

कम्मोहिं वज्जसारोवमोहिं, जउनंदणो १ वि पंकिबुद्धो ।

सुंबहुं १ पि विसूरंतो, ने उरैइ अप्पखमं कांडं ॥ २५० ॥

अर्थ—“यदुनंदन (श्रीकृष्ण) प्रतिबुद्ध एटछे क्षायिक सम्यक्त्वे करीने जाशुत छतां पण तथा घणो पश्चात्ताप करतां छतां पण वज्जसारनी उपमावाळां [वज्जसार जेवा अति कठण—निकाचित] कर्मोए करीने [कर्मोनि छीवे] आत्मसम एटछे आत्माने हितना कारण एवा क्रियानुष्ठानादिक करवाने शक्तिमान थया नहीं. ” २५०.

गाथा. २४ए-खडरीकअओ ।

गाथा २५०-विसुरंतो=पश्चात्ताप कुरषन्-तरइ शशाक

વાસંસહસ્સં ૫પિ જંઢ કાર્કણં સંયંમં સુવિઢેલં ૧પિ ।

અંતે કિલિંઈજાવો, ને વિસુંજ્ઞહ કંઢરીઢઢવ ॥ ૨૫૧ ॥

અર્થ—“ કંઢરીકનો જેમ (તેણે ઘણાં વર્ષ તપસ્યા કરો તોપણ અંતે કિલ્લ પરિ-
ણામળી નરકે ગયો) કોઈ પળ યતિ હજાર વર્ષ સુધી પળ અતિ વિપુલ સંયમ
(ચારિત્ર) કરીને (પાઢીને) પળ જો કદાચ અંતે કિલ્લભાવ (અશુભ પરિણામ)
થાય તો તે વિશુદ્ધ થતો નથી. અર્થાત્ તે કર્મસય કરો શકતો નથી, અને ઢુર્ગતિને
પામે છે. ” ૨૫૧.

અપ્પેણ ૦વિ કાંણેળં કેંઢ જંહાગહિયસીલસામઢ્ઢા ।

સાંઢંતિ નિયર્થકજ્ઞં, પુંઢરીયમહારિસિ ઢેવ જંહા ॥ ૨૫૨ ॥

અર્થ—“ જેવા ઢાવે ગ્રહણ કરેછું હોય તેવાજ ઢાવવાલું જેમતું શોલ-સદાચાર અને
શ્રામણ્ય-ચારિત્ર છે, ઇવા કેટલાક સાધુઓ પુંઢરીક મહાકૃપિનો જેમ (પુંઢરીક મહા-
કૃષિ ઘોઢા કાઢ્યાંજ સદ્ગતિ પામ્યા તેમ) અલ્પ કાલે કરીને જ પોતાના (મોક્ષાપન
રૂપ) કાર્યને સાધે છે. ” ૨૫૨. વિસ્તારથી તેનો સંવંધ કથાનકગરૂપ હોવાથી અહીં
કંઢરીક અને પુંઢરીકનો સંવંધ જાણવો. ૬૧

કંઢરીક અને પુંઢરીકની કથા.

બંદુદ્વીપના મહાવિદેહક્ષેત્રમાં આવેલા પુલકલાવતી વિજયમાં પુંઢરીકિળી નામે મહા
નગરી છે. તે નગરીમાં મહાપદ્મ નામે રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તેને પદ્માવતી નામે રાણી
હતી. તે રાણીની કુસિથી ઇસ્પન્ન થયેલા પુંઢરીક અને કંઢરીક નામે તેને ઘે પુત્રો
હતા. તેમાંથી ઘોઢા પુત્ર પુંઢરીકને રાજ્યપર સ્થાપન કરીને અને કંઢરીકને યુવરાજપદે
સ્થાપીને મહાપદ્મ રાજાપ સ્થવિરમુનિ પાસે ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું. તે મહાપદ્મ મુનિ ચારિત્રતું
આરાધન કરીને અતુક્રમે કેવલજ્ઞાન પામી મોક્ષે ગયા. પુંઢરીક રાજા રાજ્યતું પાલન
કરતો હતો, તેવામાં ઇકદા વજે ઢાઈઓ કોઈ સ્થવિર મુનિ પાસે ધર્મોપદેશ સાંભળીને
પ્રતિવોધ પામ્યા. ઘરે આવીને ઘોઢા ઢાઈ પુંઢરીકે નાના કંઢરીકને કહ્યું કે “હે ઢાઈ !
આ રાજ્યને તું ગ્રહણ કર, અને યજાતું પુત્રની જેમ પાલન કરજે. હું સ્થવિરમુનિ પાસે
ચારિત્ર ગ્રહણ કરીશઃ ” તે સાંભળીને કંઢરીક બોલ્યો કે “ હે ઢાઈ ! મારે રાજ્યતું શું
કામ છે ? પિતાપ તમને રાજ્ય આપ્યું છે, માટે તેને તમેજ મોગવો. હું તો સ્થવિરમુનિની
પાસે જઈ ઢીક્ષા છેવાનો છે. ” ઇમ કહીને જ્યેષ્ઠ ઘંધુની રજા છઈ કંઢરીકે ચારિત્ર ગ્રહણ

ગાથા ૨૫૧=જઈ । વિસુજ્ઞહ । કંઢરીકઢવ ।

ગાથા ૨૫૨=અપ્પેળં પુઢરિય ।

कर्युं. अनुक्रमे ते अगिस्तारे अगने धारण करनेतर बयोः स्वविरमुनिओनी साथे विहार करता अने नीरस तथा लूखो आधार करता कंदरीक मुनिना शरीरयां मोटा रानो उत्पन्न थया. एकदा कंदरीक मुनि स्वविर साधुओनी साथे विहार करता पुंदरीकिणीनगराए आव्या. ते बात सांभळीने पुंदरीक राजा तेमने वंदना करवा गयो. मथम स्वविरोने वंदना करी, तेमनी पासे धर्म श्रवण करीने पंछी तेणे पोताना भाइकंदरीकने वंदना करी. ते बखते तेना शरीरयां रोगोत्पत्ति जाणीने राजाए तेमने पोतानी यानशाळायां राख्या. त्यां कंदरीकनी शुद्ध औषधथी चिकित्सा करावी, तेथी ते अनुक्रमे नीरोगी थया. एटळे स्वविरोए विहार करवा माटे राजानी रजा मागी. परंतु मिष्ट खानपानयां मुळी पायेळा कंदरीके राजा पासे विहार करवानी रजा मागी नही. त्यारे पुंदरीक राजा स्वविरने वंदना करी पोताना भाइनी प्रशंसा करवा लाग्यो के " हे भाइ ! तमने धन्य छे, तमे पुण्यवान छो अने तमे कृतार्थ छो, तमे उत्तम मनुष्यजन्तु अने जीवितनुं फळ पाभ्या छो. केमके तमे चारित्रग्रहण करी तप अने संयमनुं आराधन करो छो, अने हुं तो अधन्य छुं अने अपुण्यवान छुं; केमके राज्ययां मुळी पायीने रहेलो छुं. " आ प्रमाणे राजाए ते कंदरीक मुनिनी घणी स्तुति करी, परंतु ते मनयां जरा पण आनंद पाभ्या नही, तो पण तेणे लज्जित थइने राजानी आज्ञा लइ स्वविर साथे विहार कर्यो. ए प्रमाणे एक हजार वर्ष मुघी कंदरीक मुनि चारित्रनुं पाळन करी छेवट भ्रष्ट परिणामवाळो थयो. तेथी ते एकलोज शुकनी आज्ञा लीधा विना पुंदरीकिणी नगरीयां आव्यो, अने राजाना महेलनी पासेना अशोक वनयां अशोक वृक्षनी शाखापर पोतानां उपकरणो मुकीने ते वृक्षनी नीचे दुभायेळा मनवाळे ते जिहातुरपणे वेठो. ते बखते तेने राजानी धाव्यमाताए ज्ञायो, एटळे तेणे आवीने पुंदरीक राजाने ते वृक्षांत कळुं. ते सांभळीने राजा तेनी पासे गयो. तेने जोइनेज तेणे तेनो अभिप्राय जाणी लीधो एटळे एकांतयां राजाए तेने पूछयुं के " हे भाइ ! तने भोग भोगववानो अभिलाषा थइ छे ? " ते बोल्यो के " हा, मने राज्य भोगववानी इच्छा थइ छे. " ते सांभळीने पुंदरीक राजाए पोताना कडुंबीओने बोळावीने कंदरीकने राज्याभिषेक कर्यो, एटळे कंदरीक राजा थयो. तेज दिवसे कृश शरीरवाळा ते कंदरीके अति रसवाळो आहार कर्यो; तेथी तेना देहयां महा वेदना उत्पन्न थइ, पण तेनुं कोइए कांइ पण औषध कर्युं नही. सर्वेए जाण्युं के " आ पापिष्टे चारित्र मुकीने राज्य ग्रहण कर्युं छे, ते अमने शुं सुख आपवानो हतो ? " आ प्रमाणे थवावी कंदरीकने प्रधान विगेरेनी उपर अत्यंत क्रोध चढयो. तेथी तेणे विचार कर्यो के " ठीक छे, हयणां कोइ पण मारी सेवा करतुं नथी, परंतु ज्यारे हुं सारो थइइ त्यारे आ सर्वेनो निग्रह करीश. " ए प्रमाणे अत्यंत रौद्र ध्यान करतो तेज रात्रिए मृत्यु पायीने ते सातमी नरके तेश्रोस सागरोपमना जापुष्यवाळो नारकी थयो.

“आ प्रमाणे जे कोइ चारित्रनो त्याग करीने विषयनी अविच्छाया करे ते कंदरीकनी जेय दुर्गतिने पांमे छे.

कंदरीकने राज्य आपीने तरतज्ञ पुंडरीक पोतानी मेले चार महाव्रततो उच्चार करी, ते कंदरीकनांन उपकरणो लइ, स्थविरने वंदना कर्या पछी ज आहार छेवानो अभिग्रह करी, घरमाथी प्रहार नीकळ्यो. भार्यामां कांटा तथा कौकराना उपसर्गोने सहन करतो ते पुंडरीक मनमां विचारेछे के “हुं स्थविर महाराजाने क्यारे वंदना-कसिष ?” एवा-परिमाणवडे चालतां बीजे दिवसे ते पुंडरीक स्थविर मुनि पासे आनी पदोच्योः गुरुने वंदना करीने फरीथी तेमनी पासे चार महाव्रतो उच्चर्या पछी छटने पारणे लखो अने नीरस-जेवो तेवो आहार-कर्योः तेथी मध्यरात्रिने समये-तेना क्षीरमां महा व्यथा उत्पन्न यह. तेने दृढ परिणामथी सहन करी, विशुद्ध ध्यानमां रही. तेज बखते काळ करीने सर्वार्थसिद्ध नामना महा विमानमां तेथीच सागरोपमना आयुष्यवाळा देव थया. त्यांथी चवीने महाविदेह क्षेत्रमां उत्पन्न यह सिद्धिपदने पायरो.

“आ प्रमाणे अल्प समय पण जे शुद्ध रीते चारित्रनुं प्रतिपाळन करे छे ते पुंडरीक ऋषिनी जेय अल्प सुखने पांमे छे.”

इति कंदरीकपुंडरीकयोः संबन्धः ॥ ६१ ॥

काऊंगं संकिलिष्टं, सामंजं दुर्लभं त्रिसोहिर्षयं ।

सुंजिज्ञाया एंगयरो, करिज्ज जइ उर्जमं पर्च्छा ॥ २५३ ॥

अर्थ—“पहेळां भ्रामण्य (चारित्र) ने संकिलिष्ट (मलिन) करीने पछी ते चारित्र-विराषकने विशोषिपद दुर्लभ छेः एटछे के जेणे प्रथम चारित्रने मलिन कर्युं होय तेने पछीथी चारित्रने निर्मळ करवुं ते घणुं दुर्लभ छे. जो कदाच पाळळथी एटछे प्रथम चारित्रनी विराषना कर्या पछी प्रमादनो त्याग करीने चारित्र पाळन करवानो उद्यम करे, तो क्रोहक भाग्यवान शुद्ध (निर्मळ) यह पण शके छे.” २५३.

ःऊंजिज्ञाया अंतरच्चिय, खंडियं सवैलादउच्च हुज्ज ख्वणं ।

ओसन्नो सुहलेहद, नं तरिजेव पर्च्छ उज्जमिउं ॥ २५४ ॥

अर्थ—“मध्यमां (चारित्र छीषा पछी वच्चे) चारित्रनो त्याग करे, व्रतभंग

१ महाविदेहमां चार महाव्रत होय छे. अर्धी वाचीश प्रसुने वारे होय छे तेम.

गाथा २५३-काऊंग । सुज्जज्ञ । सुजिज्ञा=शुध्येन

गाथा २५४-अंतरिच्चिय । सवैलादउच्च नामाविधातिचाराचरणेन मलिनम् । सुहलेहद=

सुखलपद तरिज्जव-शक्तनुयात् । उज्जमिउं ।

करवायी चारित्र्यने खंडित करे, तथा क्षणे क्षणे नाना प्रकारना अतिचारे करीने चारित्र्यने यत्न करे एवो अबसथ (त्रिषिक) अने सुखलंपट साधु पाछळयी पण चारित्र्यने विषे उद्यम करवा शक्तिमान यतो नथी-उद्यम करी शकतो नथी." २५४

अवि नाम चक्रवर्ती, चङ्गैज्ज सैव्वं पि चक्रैवदिसुहं ।

नं थं ओसन्नविहारी, हुंहिओ ओसंन्नयं चैयई ॥ २५५ ॥

अर्थ—“बळी छ खंडनो अविपति एवो चक्रवर्ती सर्व एवा पण चक्रवर्तीना सुखनो त्याग करे छे; परंतु त्रिषिक विहारी शुद्ध दुःखी यथा छातां पण त्रिषिकपणानो त्याग करतो नथी. एदळे विक्रमा कर्मबडे छेपायेळो होवायी तजी शकतो नथी." २५५

नरैयस्थो सैसिराया, वैहु भण्णइ देहल्लाणासुहिओ ।

एहिओमि भैए भौओअ, 'सो' मे जौएअ' तं' देहं ॥ २५६ ॥

अर्थ—नरकमां रहेको क्षत्रि (क्षत्रिय) राजा पोताना भाइने घणुं करे छे के 'हे भाइ ! हुं देहलुं लालनपालन करवायी सुख पाव्यो (सुखलंपट थयो), तेथी आ भवमां नरकमां पढ्यो छुं. माटे मारा ते (पूर्वभवना) देहने तुं पीडा कर. [पीडा पमाद-कदर्शना कर]. " २५६. अहीं क्षत्रिय राजानी कथा छे ते नीचे प्रमाणे—

क्षत्रिय राजानी कथा.

कुसुमपुर नगरमां 'जितारी' नामे राजा हतो. तेने ' क्षत्रिय ' अने ' सुरमभ ' नामना बे पुत्रो हता. तेमां मोटा क्षत्रियमने राज्यपर बेसाडी नाना सुरमभने युवराजपद आपी जितारी राजा चर्यकर्ममां उद्यमी थयो. एकदा त्यां चार ज्ञानने धारण करनार श्रीविजयवोष सूरि समयसयां. तेमने वंदना करवा माटे क्षत्रिय अने सुरमभ गया. शुचना मुखयी धर्मदेशना सांभळीने सुरमभ प्रतिबोध पाव्यो. पळी घेर आवीने सुरमभे क्षत्रियमने कणुं के " हे बंधु ! आ संसार असार छे, तेथी विषयसुखनो त्याग करी चारित्र्य छइ तपसंयमने विषे उद्यम करीए; जेथो स्वर्ग तथा मोक्षनी पण प्राप्ति थाय." तेसांभळीने क्षत्रियमभे कणुं के " हे भाइ ! आजे तुं कोइ धूर्तथी वंचना करायो (डगायो) देखाय छे. केमके प्राप्त थयेळां विषयसुखनो त्याग करीने आगळपरनां (भविष्यनां) सुखनी वांछा करे छे, माटे तुं महा मूर्ख छे; भविष्यनां सुख कोणे जोयां छे ? धर्मतुं फळ थजे (मळजे) के नहीं ते कोण जाणे छे ? " त्यारे सुरमभ बोल्या के " हे भाइ ! आ तमे शुं कणुं ! धर्मतुं फळ निश्चित मळेज छे. केमके पुण्य अने पापनां फळो प्रत्यक्ष

गाथा २५५-उसन्न विहारी । उस्तन्नय । चयइ ।

गाथा २५६-वहु । भाउज । आपइ । आपअ=वातय, पोडयेत्यर्थः ।

ज देखाव छे. जुओ, एक जीव रोमो, एक नीरोमो, एक रूपवान, एक कुरूपी, एक धनवान, एक निर्धन, अने एक सोमाग्यवान, बीनो दुर्भाग्यवान, इत्यादि सर्व पुण्य-पापतुं फळज छे." ए रीते अनेक प्रकारे बोध कर्या छतां पण शक्तिमय बहुलकर्मी होबाथी बोध पास्यो नहीं. त्यारे सुरमये एकछाप दीक्षा ग्रहण करी, अने तपसंयमनी आराधना करीने अनुक्रमे मृत्यु पामो ब्रह्मदेवळोकमां गया. राज्यतुं पाळन करतो अने विषयसुखमां मग रहेळो शक्तिमय व्रत प्रत्याख्यान विनाज मृत्यु पामोने त्रीनी नरकमां नारकी थयो. पछो सुरमय देवे अवधिज्ञानवडे पोताना पूर्वभवना भाइने नरकमां रहेळो जाणी पूर्वना स्नेहने छोवे नरकभूमिमां आवी तेनी पांसे तेना पूर्वभवतुं स्वरूप कसुं, तथा ते देव बोळ्यो के "हे भाइ ! पूर्व भवे तें मांर कर्णुं कर्णुं नहीं, माटे आ नरकमां तुं उत्पन्न थयो." ते सांभळोने शक्तिमये पण ज्ञानथी पोताना पूर्व भवतुं स्वरूप जाण्युं. पछी ते नरकमां रहेळा शक्तिमये सुरमय देवने कसुं के "हे भाइ ! पूर्व विषय-सुखमां छंठ थयेळा में धर्मतुं आराधन कर्णुं नहीं, तेथी हुं नरकमां पडयो छुं. हवे तुं र्यां जइने थारा शरीरने पीडा उत्पन्न कर. भूमिपर पडेळा मांरा पूर्व भवना शरीरनी कर्ष्यना कर के जेथी हुं नरकमांयां नीकळुं." ते सांभळोने सुरमय देवे कसुं के—

को तेणै जीवरहिषण, संपथं जाइएण हुँज्ज गुणो ।

जइ सिं पुंरा जांथतो, तो नरए नेवें निवेडंतो ॥ २५७ ॥

अर्थ—“ हे भाइ ! हवे यातना पमाडेळा (पीडा पमाडेळा) ते (पूर्व भवना) जीवरहित शरीरवडे करीने तने शो गुण थाय ? जो तें पूर्व ते देवने तपसंयमादिक वडे कर्ष्यना पमाडी होत तो तुं नरकमां नज पडयो होत. ” २५७.

“ हवे तो करेळां कर्मोतुं फळ भोगव. तारा दुःखतुं निवारण करवामां हवे कोइ पण सपर्य नथी. ” ए प्रमाणे नरकमां रहेळा पोताना भाइ शक्तिमयना जीवने प्रतिबोध पमाडीने ते सुरमय देव स्वस्थाने [स्वर्गे] गयो. आ प्रमाणे शक्तिमयतुं दृष्टांत जाणीने हे मध्य माणीमो !

जावाडे सावसेसं, जांव थं थोवो' वि अतिथ धर्षसाओ ।

तांव कंरिज्ज अेण्हियं, मो सेंसिराया थं 'सोइहिसि ॥३५८॥

अर्थ—“ ज्यां सुधी आयुष्य अवशेष सहित (बाकी) होय अने ज्यां सुधी थोवो पण शरीर अने मननेो व्यवसाय-वस्तुंसाइ होय, त्यां सुधी आत्माने रितकारक पदुं

माया २५७-जाइएण-वातिसेन पीडितेनेति यावत् । जावतो-प्रतिपत्ति-पीडित इति यावत्

तपसंयमादिक अनुष्ठान करवुं; पाछळ्यी. शशिमभ राजानी जेम शोक करवो नहीं. अर्थात् पछीयो शोक करवानो वसंत आवे तेम करवुं नहीं." २५८.

॥ इति शशिमभनृपसंबन्धः ॥ ६२.

धिञ्छूण वि सामन्नं, संजमजोगेसु होइ जौ सिंढिलो ।

पंडइ जइ वैयणिज्जे, सोअंइ अं मंओ कुंदेवत्तं ॥ २५९ ॥

अर्थ—“ जे (मनुष्य) श्रामण्य (चारित्र) ने ग्रहण करीने पण संयमयोगने विषे [चारित्रनी क्रियाना समूहने विषे] शिथिल [प्रमादी] थाय छे, ते यति आ लोक्यां वचनीयता (निंदा) पामे छे, अने परभक्त्यां कुदेवपणाने (किल्बिषपणाने) पाम्यो छतो ते जीव शोक करे छे. तेने शोक करवानो वसंत आवे छे.” २५९

सुच्चा ते जिअलोए, जिणवयणं जे नैरा न याणांति ।

सुच्चाण वि ते सुच्चां, जे नाऊणं न वि करंति ॥ २६० ॥

अर्थ—“ जे मनुष्यो अविवेकीपणाथो जिनवचनने जाणता नथी तेओ आ जीवलोकने विषे (अरे ! तेओनीं शो गति यशे ? एवी रीते) शोक करवा लायक छे, अने जे पुरुषो ते जिनवचनने जाणने (जाणतां छतां) पण प्रमादने लोके करता नथी (ते प्रमाणे आचरण करता नथी), तेओ शोक करवा लायक मनुष्योना मध्ये पण विशेषे करीने शोक करवा लायक छे. जाणतां छतां प्रमादपणाथे ए प्रमाणे न वर्तवुं ए महा अनर्थनो हेतु छे, ए अर्ही तात्पर्य छे, ” २६०

दावेऊण धणनिहिं, तेसि उप्पींडियाणि अंछीणि ।

नाऊण वि जिणवयणं, जे इह विहंलंति धम्मयणं ॥ २६१ ॥

अर्थ—“ आ संसारमां जेओ तीर्थकरे भाखेला वचनने जाणीने पण ते धर्म स्वी धनने जे विफल (निष्फल) करे छे तेओए रंजनने रंजनसुवणीदिकथी भरेओ धननो निविं देखादीने पछी ते रंजननो जेओ उपावी (कादी) नाखवां छे-करो नाखवां प्रारंभ करे छे एम समजवुं.” २६१

भाषा २६९-जोयहुं । अहं । सोयहं च । भाषा २६०-सुच्चा=शोच्यो, सोचनींही ।

भाषा २६१-दावेऊण=वैयणिक ।

ठाणं उच्चुच्चयैरं, मज्झं हीणं च हीणतरं वा ।

जेणं जेहिं गंतं वं, चिट्ठे वि से तीरिसी होई ॥ २६२ ॥

अर्थ—“ देवलोकरूपी उच्च, मोक्षगतिरूप उच्चतर [अति उच्च], मनुष्यगतिरूप मध्यम अने तिर्यचगतिरूप हीन अथवा नरकगतिरूप हीनतर स्थान मध्ये (ते स्थान मांथी] जे स्थाने जे जीवे (जीवने) जवानुं छे ते जीवनी (पुरुषनी) वेष्टा पण तेवीज [तेवान प्रकारनी] थाय छे. जल्लेसे मरइ तल्लेसे उच्चउच्च—जे छेइयाए प्राणी मरे छे ते छेइयाए उत्पन्न थाय छे—एउं सिध्दान्तनुं वचन छे. २६२.

जस्स सुंमि पैरिभवो, साहुसु अणायरो खमा लुच्छा ।

धम्मो थ अणहिलासो, अहिलासो दुंगइ एओ ॥ २६३ ॥

अर्थ—“ जे पुरुषने श्रुते विषे परिभव—अवज्ञा करवापणुं होय, मोक्षमार्गना साधक साधुओने विषे अनादर होय, जेने लुच्छ (थोडी) क्षमा होय अने जेने क्षांति विगेरे दक्ष प्रकारना यतिधर्मने विषे अनभिज्ञाप (इच्छारहितपणुं—अनिच्छा) होय. ते पुरुषने आ दुर्गतियेना अभिज्ञाप जाणवो(ते दुर्गतिमां जवाने इच्छेछे, एम जाणवुं)” २६३.

क्षारीरमाणसाणं, दुस्सकसहस्साण वसैणपरिभीया ।

नाणं कुसेण सुणिणो, रागं गइदं निरुंभंति ॥ २६४ ॥

अर्थ—“ क्षारीर संवधी अने मन संवधी हजारो दुःखना व्यसन [कष्ट-पीडा] थो भय पायेछा: (पराभव पायेछा) सुनीथो त्रिकाळज्ञानरूपी अंकुशे करोने रागरूपी गजेन्द्रने निरोध करे छे. (राग गजेन्द्रने प्रसरवा देता नथी-आववा देता नथी). २६४

सुंगइमगपईवं, नाणं दिंतेस्स हुंज्ज किंमेदं ये ।

जह तं पुंलिंदएणं, दिंते सिवंगस्स निर्यंगच्छिं ॥ २६५ ॥

अर्थ—“ मोक्षरूपी सदगतियेना मार्गने (प्रकाश करवावडे) प्रदीप समान ज्ञान (जेनाथी वस्तुस्वरूप जणाय ते श्रुतज्ञान) ने आपनार पदछे ज्ञाननुं दान करनार श्रुते थुं अदेय—न आपवा लायक वस्तु होय ! काइज नहीं, अर्थात् ज्ञानेदाता श्रुत जीवित मांने तो ते पण सुशिष्ये आपवुं जोइए, तथा—जेम ते पुंलिंदे [भिछे] शिव (महादेव) ने पोतानुं नेत्र आपुं हुं. ” ते स्वरूप कथाथी जाणवुं. २६५.

गाथा: २६३-परिभव=पराभवोऽवज्ञाकरणमिति । धम्मो अ अणहीलासो । दोगइ पदं ।

प्रसो=अथवा गाथा २६४-पराभया । गाथा २६५-सुंगइ । निर्यंगच्छिं=निजफाशि-निकनेत्रं ।

પુલ્હિદ (મિહ) ની કથા.

વિધ્યવનમાં પર્વતની એક શુફામાં કોહ વ્યંતરથી અધિષ્ઠિત થયેલો શિવ (મરા-
 દેવ) ની એક મૂર્તિ હતી. તેની પૂજા કરવા માટે નજીકના ગામમાં રહેનારો એક
 મુગ્ધ નામે માણસ હંમેશાં ત્યાં આવતો હતો. તે આવીને પ્રથમ તે સ્થાન ઘાઙ્ગીને સાફ
 કરતો. પછી પવિત્ર જલઘડે તે શિવની મૂર્તિને પલાઙ્ગી કેસરામિશ્રિત ચંદન વિગેરે મુ-
 ગંધી ઢ્રુવોઘડે પૂજા કરતો. પછી પુષ્પમાલા ચઢાવી, ધૂપ દીપ વિગેરે યથાવિધ કરી,
 એક પગે શ્રુમિપર ઝમો રહી તે શિવની સ્તુતિ ઘ્યાન વિગેરે કરી, મધ્યાહ્ન સમયે ઘેર
 જઈ ઢોજન કરતો. એ રીતે તે પ્રતિદિન પૂજા કરવા આવતો હતો. એકદા તે મુગ્ધ પૂજા
 કરવા આવ્યો, ત્યારે પોતે ગદ્ કાઢે કરેલો પૂજાને (પૂજાસામગ્રીને) કાઢી નાંસીને
 કોહ એ ઘતૂરા અને કળેર વિગેરેનાં પુષ્પોઘડે પૂજેલો શિવની મૂર્તિને જોઈ તેણે વિચાર
 કર્યો કે “ અહો ! આ અરણ્યમાં એવો કયો પુરુષ છે કે જે મારી કરેલો પૂજાને
 ઢૂર કરીને હંમેશાં શિવની પૂજા કરે છે ? તો આજે તેને હું જોઈ તો સરો.” એમ વિ-
 ચારીને તે શૂન રીતે ત્યાં રહ્યો. તેઘામાં ત્રીજા મઢેરે એક મિહ્લ ત્યાં આવ્યો. તેના ઘરીર-
 નો ઘર્ણ ક્યામ હતો, તેણે ઢાઘા હાયમાં ઘનુષ ઘારણ કરેલું હતું, જમણા હાયમાં આક-
 ઢાનાં, ઘતૂરાનાં અને કળેર વિગેરેનાં પુષ્પો વિગેરે પૂજાની સામગ્રી ઘારણ કરી હતી અને
 મુલ્તમાં જલ ઢરેલું હતું. એવી રીતે ઢયંકર મૂર્તિઘાઙ્ગો તે મિહ્લ પગમાં ઘરેરેલો જોઢા
 સહિત મૂર્તિ પાસે આવ્યો. પછી ઢુરતજ તેણે મુલ્તના જલથી તે મૂર્તિને એક પગઘડે પલાઙ્ગી
 આકઢાનાં અને ઘતૂરાનાં પુષ્પો ચઢાઘ્યાં, અને તે મૂર્તિના મુલ્ત પાસે એક માંસની પેઢી
 મૂકી. આઘા મકારની ઢક્તિ કરીને માત્ર ‘ મહાદેઘ પરમેશ્ઘરને નમસ્કાર હો ’ એઢલાજ
 ઘલ્લો ઘોઙ્ગી તેણે નમસ્કાર કર્યો. પછો તરતજ તે ઘઢાર નોકઙ્ગ્યો. તેજ ઘસતે મહાદેઘે
 મકઢ ઘડને તેને ઘોઙ્ગાઘ્યો અને કહ્યું કે “ હે સેઘક ! આજે કેમ આઢલો ઘધો વિલંઘ ઘયો ?
 તને ઢોજન તો મુલ્તેઘો મલ્લે છે કે ? અને તું વિઘ્નરહિત ઘતેં છે કે ? ” આ મમાણે મુલ્તઘા-
 તાના મક્ષ પૂર્ઘક મહાદેઘે તેની સંઘાઙ્ગ ઘાંઘાં : ત્યારે મિહ્લ ઘોલ્યો કે હે સ્ઘામી જ્યારે
 આપ મારા પર મસઘ છો, ત્યારે મારે ઘી ઘિંતા હોય. એમ કહીને તે મીહ્લ ઘાલ્યો “ ગયો.
 ત્યાર પછી શૂન રહેઘા પેઘા મુગ્ધે મગઢ ઘડ મહાદેઘ પાસે આવીને કહ્યું કે “ હે શિવ ! મેં
 સારું ઢૈશ્ય આજે જાણ્યું. જેઘો આ મિહ્લ સેઘક છે તેઘોજ તું દેઘ જનાય છે; કેમકે હું
 હંમેશાં કેસરામિશ્રિત ચંદન તઘા મુગંધો પુષ્પધૂપાઢિકઘડે પવિત્રતાથી તારી પૂજા કરું
 છું, તોપણ તું મારાપર મસઘ ઘયો તઢી અને મારી સાઘે કોહ ઢિઘસ ઘાતઘીત કરી
 નહીં, અને આ અપવિઘ તઘા આઘાતના કરનાર મિહ્લની સાઘે મશ્પસ ઘડને ઘાત-
 ઘીત કરી.” તે સીમઙ્ગીને મહાદેઘ ઘોલ્યો કે “ હે મસઘ ! તે મિહ્લની અને તારી ઢક્તિમાં

केवल अंतर छे ते हुं तने देखाहीन." ते सांभळीने ते मुग्ध पोताने घेर गयो. बीजे दिवसे तेज प्रमाणे मुग्ध शिवपूजा करवा आव्यो. ते वखते शिवे पोतातुं एक (बीजुं) भाळमां (कपाळमां) रहेलुं नेत्र अदृश्य कर्युं. ते जोडने ते मुग्धपण मनमां खेद पाळ्यो अने 'अरेरे ! आ थुं थुं ? कोइ पापीए आ परमेश्वरना भाळमां रहेलुं नेत्र काडी नाखेलुं जणाय छे.' एए कहीने ते मोटे स्वरे रुदन करवा लाग्यो. ए रीते घणी वार घुघी रुदन करीने पळी तेणे पूजादिक नित्य कृत्य कर्युं. थोडी वारे मिथु पण त्यां आन्यो. तेणे पण शिवतुं भाळनेत्र जोयुं नहीं, एटछे तेणेक्षणवार शोक करीने तरतज पोताना वाणवटे पोतातुं एक नेत्र काडीने शिवना भाळमां चोटाड्युं. त्यारे जणे क्लोचन पूरां थयां. पळी तेणे नित्यना नियम प्रमाणे पूता करी. ते वखते शिव मस्यस्य यइने बोल्यां के "हे वरत ! तारी भक्तियी हुं मसन्न थयो लुं, माटे आनयो तने घणी संपत्ति प्राप्त थयो." ए प्रमाणे तेने वरदान आपीने शिवे पेळा मुग्धराणने कथुं के "तारी अने मिथुनी भक्तिमां केवल अंतर छे ते ते जोयुं ! अये आंतर भक्तियी मसन्न थइए छोए, मात्र वाह्य भक्तियी मसन्न थता नथी." एए कहीने शिव अदृश्य थया.

जेवी रीते ते मिथु शिवनी आंतर भक्ति करी. ते प्रमाणे बीजा शिष्योए पण ज्ञानदाता गुरूनी भक्ति करवी, ए आ कयातुं तात्पर्य छे.

॥ इति मिथुसंबन्धः ॥ ६३.

सिंहासणे निसंन्नं, सोवैगं सेण्णो नरवरिंदो ।

विड्डंजं मर्गाइ पर्यओ, इअ साहुंजणस्स सुअविणओ ॥२६६॥

अर्थ—“ सिंहासनपर पोतेज (राजाए) वेसाडेळा श्वाक (चांडाळ) पासै नर-वरेन्द्र श्रेणिक राजाए प्रणाम करीने एटछे वे हाथ जोडीने विद्या मागी [याचना करी]; तेवी रीते एटछे जेम श्रेणिक राजाए विद्याने माटे श्वाकनो विनय कर्यो, तेवी रीते साधुजननो श्रुतविनय शिष्योए पण करवो.” २६६. ते कथा आ प्रमाणे—
चंडाळनी कथा.

मगधदेशमां राजगृह नामे नगर छे. तेमां 'श्रेणिक' नामे राजा राज्य करता हवा. तेने 'बिष्णुणा' नामे राणी हती तेने एकदा गर्भना प्रभावथी चोतरफ वाडी सहित एक स्तंभवाळो प्रासादादां वसवानो मनोरथ (दोहद) थयो. ते वात राजाए अभयकुमारने जणावी. अभयकुमारि देवतानी आराधना करीने सर्व ऋतुनां फळफूलवाळां हसो सहित तथा फरता किष्ठा सहित एक स्तंभवाळो महेळ निष्पन्न कर्यो. ते जोडने

माथा २६६-सोवैगं=रश्वाक-चांडाळिकं । पर्यओ=प्रणतो हस्तप्रययोजनपूर्वकं । इय ।
इअ=अनेन प्रथा-तेन ।

चिह्णणा हर्ष पायी. ते वाढी सर्व (छप) ऋतुबोनां फळ अने पुष्पो सहित रीते होती. ते वाढी फरता राजाना सुभटे तेनी रक्षा करवा माटे रात्रिदिवस रहेवा हता. तेथी ते वाढीमांथी एक पांढरुं पण छेवा कोइ शक्तिवान थतुं नहोतुं.

हवे ते नगरमां कोइ एक विद्यावान चंडाळ रीतेो हतो. तेनी स्त्रीने गर्भना प्रभावयी कौतिक मासमां आम्रफळतुं भक्षण करवानो दोहद थयो. तेणे ते दोहद पोताना घणीने जणावयो. ते सांभळीने चंडाळे विचार्युं के "आज अकाळे आम्रफळ मात्र राजाना देवनिर्मित उद्यानमां वरुं छे; वीजे कोइ पण स्थाने वर्तता नथी." एम विचारिने रात्रिने वखते ते चंडाळ ते उद्यान तरफ गयो. किल्लानी अंदर वोकां होवायी ते किल्लानो बहारज लभो रहो. पछो तेणे अवनामिनी विद्याना वळयी आम्रवृक्षनी शाखा नीचे नमावी फळे तोडी लीषां, अने पछी उन्नामिनी विद्यावडे पाछो हती तेम शाखा उंची करी दीधी. एरीते ते फळे लइने तेवडे पोतानी स्त्रीने दोहद तेणे पूर्ण कर्यो. मातःकाळे आम्रफळ विनानी शाखा तथा तेनी नीचे किल्लानी बहार माणसनां पगळां जोइने रक्षकोए ते वृत्तांत राजाने निवेदन कर्युं. राजाए सर्वत्र तेनी (चोरनी) शोध करावी, पण चोर हाथ लाग्यो नहीं; एटछे राजाए अभयकुमारने बोलावीने कथुं के "आम्रफळना चोरने पकडी लाव." अभये कथुं के 'बहु सारुं, लावुं छुं.' एम कहीने अभयकुमार चौटायां गयो. त्यां घणा लोको नटनी रमत जोवा माटे एकठा थयेळा हता. तेमनी पासे जइने अभये कथुं के "हे लोको! आ नट ज्यां सुधीयां नाटक शरु करे नहीं तेटळामां हुं एक कथा कहुं ते सांभळो." लोको सर्वे सांभळवा लाग्या. एटछे अभयकुमारने नीचे प्रमाणे कथा कही.

पुण्यपुर नगरमां गोवर्धन नामे श्रेष्ठी रहेतो हतो. तेने युवावस्थाए पहोंनेली सुंदरी नामनी कुमारिका पुत्री हती. ते सुंदरी स्वरूप अने युवावस्था थी अत्यंत सुंदर लागती हती. ते हमेशां योग्य वरनी प्राप्तिने माटे कोइ एक वाढीमांथी छानी रीते पुष्पो लइने तेवडे कामदेव नामना यक्षनीपूजा करती हती. एकदा ते वाढीना माळीए तेने पुष्पो चुंटती जोइ. तेनो हाथ पकडो, तेने माथे चोरीतुं कळंक मूकी माळो बोलयो के "हे स्त्री! जो तुं मारुं कहेतुं कबूल करे तो तने मूकी दंत, नहींतो राजा पासे लइ जइश." त्यारे ते वोळी के "हे मित्र! कहे." माळो बोलयो के "तारे मारी काम-क्रीडा संबंधी वांच्छा पूर्ण करवी." कन्या वोळी के "सांभळ, हजु सुधी हुं कुमारिका छुं, आजयी पांचमे दिवसे मारा लय थवाना छे, ते दिवसे हुं परण्या पछो तरत प्रथम तारी पासे आत्रो पछी मारा स्वामी पासे जइश." माळीए ते वाव कबूल करी, एटछे ते सुंदरी प्रतिज्ञा पूर्वक वचन आपोने पोताने घेर आवी. पछी पांचमे दिवसे पाणिग्रहण

यया पछी ते सुंदरी पति पासे गइ. त्यारे प्रथम तेणे माळी पासे करंळी प्रतिज्ञा पोताना स्वामीने निवेदन करी. ते सांभळीने तेना पतिएं तेने सत्यवादी जाणीने जवाानी रजा आपी, एटछे ते भोगनी सर्व सामग्री लइ सुंदर वेष धारण करीने मध्य रात्रिने समये घर बहार नीकळी गामनी बहार जतां रस्तायां तेने प्रथम चोर मळ्या. ते चोरो तेने सर्व आभूषणोथी भूषित जोइ लुंढवा लाग्या त्यारे ते सुंदरीए तेमनी आगळ माळीपासे जवा संबंधी सर्व वृत्तांत जणावीने कष्टं के ' हुं पाछी आवीस, त्यारे तमने सर्व अळंकारादिक उतारी आपीस. ' ते सांभळीने चोरोए तेने सत्यवादी जाणीने जवा दीधी. आगळ जतां तेने एक राक्षस मळ्यो. ते तेने खाइ जवा तैयार ययो एटछे तेने पण सर्व वृत्तांत कही तेणे पाछा आववाजुं कवूळ कर्तुं. तेथी राक्षसे पण तेने मूकी दीधी. पछी ते सुंदरी अनुक्रमे ते वाडीमां माळी पासे गइ, एटछे नवीपरजेळी, नवा यौवनवाळी अने अत्यंत अद्भुत रूपवाळी तेने जोइने ते माळी हर्षित ययो. तेणे तेने पूळ्युं के " हे सुंदर नेत्रवाळी स्त्री ! तूं अत्यारे रात्रिने समये एकली अहीं क्रेम आवी ? " त्यारे तेणे पोते आपेळुं वचन जणावीने पोताना पति संबंधी तथा मार्ग संबंधी सर्व वृत्तांत कष्टुं ते सांभळीने माळीए विचार्युं के " अहो ! धन्य छे आ स्त्रीने ! के जे वचनथी वंघायेळी आवी अंधारी रात्रे बुडिना वळथी चोरने तथा राक्षसने पण वचन आपीने अहीं मारी पासे आवी. त्यारे तेने तेना पतिए, चोरोए अने राक्षसे मूकी दीधी त्यारे मारे पण आ सत्यवादी स्त्रीने मूकी देवीज जोइए. " एम विचारिने माळीए तेने कष्टुं के— " हुं तारो भाइ छुं, अने तूं मारी वेन छे. मारो अपराध क्षमा कर. " एम कही तेना पगयां पढी (नमस्कार करी) ने तेने पाछी मोकळी. पाछा आवतां मार्गमां राक्षस मळ्यो. तेनी पासे तेणे माळीतुं सर्व वृत्तांत कष्टुं. ते सांभळीने राक्षसे विचार्युं के ' आवी नव यौवनवाळी सुंदरीने ते माळीए न भोगवनां मूकी दीधी, तो हुं आवी सत्यवादी सतीने ज्ञामाटे भक्षण करुं ? ' एम विचारिने तेणे पण ' तूं मारी वेन छे ' एम कही मूकी दीधी. फरी आगळ जतां चोरो मळ्या, तेमनी पासे पण माळीतुं तथा राक्षसतुं वृत्तांत कष्टुं; एटछे तेओ लुंढवा आल्या हता तोपण तेमणे तेने वेन कहीने मुक्त करी. पछी अनुक्रमे ते पति पासे आवी. तेने सर्व वृत्तांत निवेदन कर्तुं. ते सांभळीने ते अत्यंत खुशी ययो अने तेणे घरनो सर्व अधिकार तेने सोंप्यो. "

आ प्रमाणे कथा कहीने अभयकुमारें सर्व लोकोने पूछ्युं के " हे लोको ! कहो, आ चारे (पति, चोर, राक्षस अने माळी) मां दुष्कर काम कोणे कर्तुं कहेवाय ? " ते सांभळीने जेओ स्त्री उपर अविश्वास हता तेओ बोल्या के " तेनो पति दुष्कर काम करनार कहेवाय. क्रेमके तेणे नवी परजेळी अने नवा यौवनवाळी पोतानीज पत्नीने

प्रथम संगम वस्त्रतेज परंपुरुष पासे मोकली. पछी परस्त्रीछंपट कामा पुरुषो बोल्यो के “माळी दुष्कर काम करनार कहेवाय. केमके तेणे रात्रिने वस्त्रते निर्जन प्रदे-
 क्षमा जातेज सामी आवेली सुंदर स्त्रीने त्याग करी पोताना मनने. कवजे राख्युं.
 माटे घन्य छे ते माळीने !” पछी जेथो मांस खावामां लुब्ध हता तेओए राक्ष-
 सनी प्रवृत्ता करी अने तेने दुष्करकारी कृहो. छेवट पेलो आम्रफळनो छेनार चोर
 बोल्यो के “ ते ऋणे करतां चोरोज दुष्कर कार्य करनारा कहेवाय. केमके तेओए
 आभरणोथी भूषित थयेली अने समीपे आवेली ते स्त्रीने मूकी दीधी, अने छंटी
 नहीं. तेथी तेओनेज घन्य छे !” ते सांभळीने अभयकुमारे ते चंडाळने पकडी
 लीथो. पछी तेने एकांतमां लइ जइ अभये कळुं के “ तुंज आम्र फळनो चोर छे,
 माटे सत्य वात कही दे; नहीं तो तारो निग्रह करीश. ” त्यारे चंडाळ बोल्यो के
 “ हा, में फळो लीघां छे. ” अभये पूछ्युं के “ शाषाटे अने केवी रीते लीघां ? ”
 त्यारे तेणे पोतानी स्त्रीना दोहदतुं अने विद्याना सामर्थ्यतुं स्वरूप यथार्थ निवेदन
 कर्तुं. एटछे तेने लइने अभयकुमार श्रेणिक राजा पासे आव्यो. राजाए ते चोरने
 मारवानी आज्ञा करी. त्यारे दयाळु अभये कळुं के “ हे स्वामी ! एक वार एनी
 पासेथी विद्या तो ग्रहण करो; पछी जेम करतुं होय तेम करजो. ” ते सांभळीने
 राजाए सिंहासन पर बेटबेटाज हाथ बांधीने आगळ उभा राखेळा चोर पासे
 विद्या शीखवा मांडी ते चंडाळ विद्या शीखववा लाग्यो; पण राजाना मुखे एक
 अक्षर पण चळ्यो नहीं. त्यारे अभयकुमारे कळुं के “ हे राजा ! ए प्रमाणे विद्या
 आवडे नहीं. विनयथी विद्या प्राप्त थाय छे. माटे तेने सिंहासनपर बेसाढो, अने
 तमे हाथ जोडीने सन्मुख बेसो. ” ते सांभळीने राजाए तेम कर्तुं, एटछे तरतज
 विद्या आवडी. पछी फरीथी राजाए तेनो वध करवानी आज्ञा करी, त्यारे अभ-
 यकुमारे कळुं, के “ हे राजा ! ए आपनी आज्ञा अयोग्य छे. केमके एक अक्षरनो
 पण जे आपनार होय तेने जे गुरु तरीके झाने नहीं, ते सो वार कूतरानी यो-
 निमां जन्म लइ छेवट चंडाळमां उत्पन्न थाय छे, एम नीतिज्ञानमां कळुं छे; तेथी
 आ चंडाळ आपनो विद्यागुरु थयो छे माटे तेने केम मराय ? हवे तो ते आपने
 पूछ्य थयो छे. ” ते सांभळीने राजाए ते चंडाळनी घणी भक्ति करी, अने धन वस्त्र
 विभेरे आपवावडे तेनो सत्कार करीने तेने घेर मोकल्यो. तेज प्रमाणे शिष्ये पण
 विनयपूर्वक गुरु पासे विद्यानो अभ्यास करवो ए आ कथातुं तात्पर्य छे. वळी बीजे
 प्रकारे विनयनीज प्ररूपणा करे छे:-

॥ इति चंडाळ दृष्टान्तः ॥ ६४.

विद्वैजाए कासवसंतिआए, दगसूअरो सिंरिं पंतो ।

पंडिओ मुंसं वयंतो, सुअनिह्वण्णा इय अपिथ्या ॥ २६७ ॥

अर्थ—“दकशूकर के० कोइ त्रिकाळ स्नान करनार त्रिदंडी काश्यप के० हजामे आपेली विद्याथी लक्ष्मीने पाम्यो हतो; परंतु पत्नीथी मृषा (असत्य) बोलवाथी एट्ठे पोताना विद्यागुरुनो अपलाप करवाथी ते पळ्यो—नष्ट विद्यावाळो थयो. एवी रीते एट्ठे आ दृष्टांत जाणीने श्रुतनिह्वण्णा करवी अर्थात् श्रुतज्ञान आपनारनो अपलाप करवो ए अपथ्य एट्ठे कर्मरूपो रोगने वृद्धि करनार छे एम जाणवुं. ” २६७.

त्रिदंडिनी कथा.

स्वंपुर नगरमां एक चंडिलि नामे अति कुचळ हजाम रहेनो हतो. ते विद्याना बळथी हजामत करीने ते अज्ञाने आकाशमां अघर राखतो हतो. एकदा कोईएक त्रिदंडीए ते हजामनो प्रभाव जोयो. तेथी त्रिदंडीए ते हजामनी आराधना (सेवा) करीने तेनी पासेथी ते विद्या ग्रहण करी. पछी ते त्रिदंडी फरवो फरतो गजपुर (हस्तिनापुर) मां आळ्यो. ते बलते त्यां पद्मरथ राजा राज्य करतो हतो, ते पुरमां जइने ते त्रिदंडी पोताना त्रिदंडने आकाशमां अघर राखवा लाग्यो. ते जोइने घणा लोको आश्चर्य पाथी तेनी अत्यंत पूजा (सेवा) करवा लाग्या. ते वृत्तांत राजाए पण लोकोना मुखथी सांभळ्युं त्यारे तेणे तेना पगमां पडी (प्रणाम करी) विनय पूर्वक पूछ्युं. के “हे स्वामी ! तमे आ त्रिदंडने आकाशमां राखो छो, ते कोइ तपनो प्रभावं छे के विद्यानो प्रभाव छे ? त्रिदंडीए जवाव आप्यो के ‘हे राजा ! आ विद्यानुं सामर्थ्य छे. फरीथी राजाए पूछ्युं के “कहो, कोनी पासेथी आ चित्तने चमत्कार करनारी विद्या तमे शीलथा ?” त्यारे ते त्रिदंडीए लज्जाने लीचे ते हजामनुं नाम दीथुं नहीं, अने कल्पित जवाव आप्यो के “हे राजा ! पूर्वे में हिमवान पर्वतपर तपकष्टादिक अनुष्ठानवडे सरस्वतीनी आराधना करी हती. ते बलते ते देवीए प्रत्यक्ष थइने मने आ अंबराळबनो विद्या आपी हती. तेथी सरस्वती मारी विद्याशुरु छे. ” ए प्रमाणे ते त्रिदंडी बोल्यो के तरतज तेनो आकाशमां रहेछो त्रिदंड खडखड शब्द करतो पृथ्वीपर पळ्यो. तेथी ते अत्यंत लज्जा पांम्यो अने लोकोए तेने अत्यंत घिकार्यो. प्रतिते अति दुःखी थयो.

जेम त्रिदंडी गुरुनो अपलाप करवाथी दुःख पांम्यो, तेवी रीते बीजा कोइ पण जो गुरुनो अपलाप करशे तो तेओ दुःखी थये.

॥ इति त्रिदंडिकोपदेशः ॥ ६५ ॥

गाथा—२६७ कासवसंतिआए=काश्यपेन नापितेन समपितया । दगसूअरो=त्रिका-
लस्नानकर्ता कश्चित्त्रिदंडिकः । सिंरिं=श्रियम् । इय=अनेन प्रकारेण । अपिपच्छा=अगथ्या ।

संयलंमि विं जियँलोए, तेण इहं घोसिँओ अँभाघाओ ।

इँकं पिं जो दुहँत्तं, सँत्तं बोहँइँ जिणवयणे ॥ २६८ ॥

अर्थ—“जे मनुष्य एक पण दुखार्त (दुःखथी प.डित) सत्त (प्राणी) ने जिन-वचनने विषे (जिनवचनोवडे) बोध-पमाडे छे, ते पुरुषे अहीं (आछोकमां) रह्या थकाज सकल जीवलोकेने विषे (चौद राजलोकने विषे) पण अमारी पटह, बगडान्यो एम जाणवुं.”

सम्मत्तदायगाणं, दुप्पँडियारं भँवेसु बँहुएसु ।

सव्वंगुणमेलियाहि विं, उवयारंसहस्सकोडीहिं ॥ २६९ ॥

अर्थ—“ घणा भवनेने विषे पण सर्वगुणभिलित एटछे (गुरुए करैला उपकार थी) वे गणा,त्रण गणा, चारगणा, एम करतां करतां सर्वगणा (अनंतगुणा) एवा पण हजारो करोडो उपकारोए करीने पण समकित आपनार गुरुनो प्रतिकार (प्रत्युपकार) करवोअक्षक्य छे; अर्थात् जे गुरुए समकित आपीने उपकार कयौं छे तेनाथी अनंतगणा करोडो उपकारोए करीने पण तेनो प्रत्युपकार करी शकताओ नथी, (थइ शकताओ नथी) माटे समकितदाता गुरुनी मोटी भक्ति करवी.” २६९.

हवे समकितनुं फळ कहे छे—

सम्मत्तंमि उँ लँडे, ठँइँयाइँ नरँयतिरियदाराइँ ।

दिव्वाँणि माणुँसाणि र्यं, मोरकसुहाइँ संहीणाइँ ॥ २७० ॥

अर्थ—“तुं पुनः (बळी) समकित पाये छते (प्यारे समकित प्राप्त थाय त्यारे) नरकगति अने तिर्यँचगतिलां द्वारो बंध थइ जाय छे (ते गतिओमां 'जन्म यंतो नथी) . केमके समकित पायेला मनुष्यो देवायुज बांधे छे, अने देवो मनुष्यायुज बांधे छे, तेथी ते द्वारो बंध थाय छे. ए अहीं तात्पर्य छे, तथा देव संबंधी, मनुष्य संबंधी अने मोक्ष संबंधी सुखो पोताने स्वाधीन थाय छे.” २७०. अहीं नरकगति अने तिर्यँचगतिना भेदो घणा होवाथी तेनां द्वारो एम बहुवचन बापर्युं छे.

बळी बीजे प्रकारे समकितनुंज फळ बतावे छे.—

कुँसमयसुईण मँहणं, सम्मत्तं जँस्स सुँडियं हियँए ।

तँस्स जँगुज्जोयकरं, नाँणं चेरणं चँ भवंमहणं ॥ २७१ ॥

अर्थ—“जे पुरुषना हृदयमा कुसमय श्रुति के० अन्य दक्षत्रीओना सिद्धान्तनां

गाथा २६८-हमाघाओ=अमारिपटहः । दुहँत्तं=दुःखार्तम् । बोहँइँ । गाथा २६९-दुःप्रतिकारं । गाथा २७०-ठँइँयाइँ=स्थापितानि-सुत्रितानीति यावत् । - मुरक सुहाइँसहीणाइँ=स्वाधीनानि ।

श्रवणाने मथन करनारं (नाश करनारं) एतुं समकित सुस्थित (अति स्थिर) होय छे ते पुरुषने जगतने विषे उचोत करनारं जगत्प्रकाशक केवळज्ञान. अने भव (संसार) ने मथन (नाश) करनारं चरण (यथाख्यात चारित्र) प्राप्त थाय छे. (तेना ज्ञान ने चारित्राने उदय थाय छे). अर्थात् समकित न होय, तो ज्ञान न होय अने ज्ञान न होवाथी मोक्ष मळी शक्ये नहीं. माटे मोक्षतुं मुख्य कारण समकितज छे. ” २७१.

सुपरिच्छिद्यसम्मत्तो, नाणैणालौइयत्यसम्भावो ।

निर्व्वणचरणाउत्तो, इच्छियमर्थं पसांहेइ ॥ २७२ ॥

अर्थ—“सुपरीक्षित छे समकित जेतुं एवो (दृढ समकितवाळो) अने (दृढ समकिते करीने उत्पन्न थयेला) सम्यक् ज्ञानवडे जीवादिक पदार्थोतुं सद्भाव स्वरूप जेणे जाणेळुं छे, अने तेथी करीनेज जे व्रण (अतिचार) रहित (निर्दोष) चारित्रने विषे आयुक्त एटछे निरतिचार चारित्रमां उपयोगवाळो छे, ते पुरुष इप्सित एटछे मनने इष्ट एवा मोक्षमुख रूपी अर्थने साधे छे—सिद्ध करे छे—प्राप्त करे छे.” २७२.

हवे प्रमादथो समकित मलिन थाय छे, ते दृष्टति करीने वतावे छे.

जंह मूलैताणए पंडुरंमि, दुर्व्वन्नरागवन्नेहिं ।

बीर्मच्छा पडंसोहा, इंह सम्मत्तं पर्माएहिं ॥ २७३ ॥

अर्थ—“ जेम श्वेत मूळ तांतणामां (सुतरना तंतुमां) काळा, राता विगेरे खराव वर्णवाळा तंतुओए करीने वल्लनी शोभा वीभत्स के० खराव थाय छे, तेम प्रमादे करीने समकित पण वीभत्स—मलिन थाय छे. माटे समकितना शत्रु रूप प्रमादोनो त्याग करवो योग्य छे ए तात्पर्य छे. ” २७३.

नरैसु सुरवैरेसु यं, जां बंधंइ सांगरोवमं ईकं ।

पंलिओवमाण बंधंइ, कोडिसंहस्साणि दिवसेण ॥ २७४ ॥

अर्थ—“सो वर्षना आयुष्यवाळो जे पुरुष पापकर्म करवाथी नरकगतिमां (नरकगति संबंधी) अने पुण्यकर्म करवाथी देवगतिमां (देवगति संबंधी) एक सागरोपमंतुं आयुष्य बांधे छे ते पुरुष एक दिवसे (सो वर्षमांना दरेक दिवसे) दुःख मुख (नरक—स्वर्ग) संबंधी पल्योपमना करोडो हजारो जेटळु आयुष्य बांधे छे; अर्थात् सो वर्षना दिवसोनो एक सागरोपमना दस कोडाकोडी पल्योपम साधे भांगाकार करतां तेटळा आयुष्यने बांधवावाळुं पाप, अने (अथवा) पुण्य एक दिवसमां जीव उपार्जन

गाथा२७२—सुपरीक्षितसम्यक्त्वः=सुपरिक्षातं सम्यक्त्वं यस्या निर्गणचरणायुक्तः ।

गाथा२७३—दुर्वर्णरागवर्णैः—दुष्टो वर्णो यस्य स चासौ रागश्च तद्वर्णैः । इयं ॥

गाथा २७४—दिवसेण

करे छे. माटे प्रमादना आचरणनो त्याग करीने निरंतर पुण्य उपार्जन, करवावां उद्यम करवो, ए आ गाथानुं तात्पर्य छे. ” २७४.

पलिंओवमसंखिज्जं, भांग जो बंधेइ सुरंगणेषु ।

दिंवसे दिंवसे बंधेइ, सँ वासँकोडी अंसंखिज्जा ॥ २७५ ॥

अर्थ—“जे सो वर्षना आयुष्यवाळो, नरभवमां रहेलो पुरुष पुण्याचरणवटे देवजातिना समूहमां पल्योपमना संख्यातमा भागने (तेटला अल्प आयुष्यने) वांधे छे, (ते पुरुषने प्रतिदिन केटळा करोड वर्ष आवे ? ते उत्तरार्थ गाथामां कहे छे). ते (देवगतिमां पल्योपमना संख्यातमा भागपरिमाण आयुष्यने वांधनारसो वर्षना आयुष्यवाळो) पुरुष दिंवसे दिंवसे (प्रत्येक दिंवसे) असंख्याता करोडो वर्ष (तुं आयुष्य) वांधे छे. एटळे के जो पल्योपमना संख्यातमा भागना वर्षीना विभाग करीने सो वर्षना दरेक दिंवसमां वहेचीए तोते दरेक दिंवसे असंख्याता करोड वर्ष आवे.” २७५

एसं कंमो नरएसु विं, बुहेण नाऊण नाम एयं पिं ।

धर्ममिं केह पमोओ, निमेसमित्तं पिं^१ कोयव्वो ॥ २७६ ॥

अर्थ—“आज क्रम .नरकने विषे पण छे (जाणवो). एटळे के पापकर्म करनार सो वर्षना आयुष्यवाळो पुरुष प्रत्येक दिंवसे असंख्याता करोड वर्षतुं नरकायुष्य वांधे छे. ते-पूर्वे कहेछें पुण्यपापने उपार्जन करवानुं स्वरूप (नाम प्रसिद्धार्थक छे) जाणीने पंडित पुरुषे क्षांत्यादिक दश प्रकारना धर्मना आराधनमां एक निमेषमात्र पण प्रमाद (शिथिलता)शामाटे करवी जोइए ? सर्वथा प्रमादन ज करवो जोइए.” २७६

दिव्वालंकारविभूसणाइं, रयणुज्जलाणि य धरांइं ।

रूवं भोगंसमुदओ, सुरलोगसमो कओ इंहयं ॥ २७७ ॥

अर्थ—आ (मनुष्य) लोकने विषे सुगलोकनी जेवां दिव्य अलंकारो (सिंहासन, छत्र विगेरे) अने मुकुटादिक आभूषणो, रत्नोए करीने उच्चळ (निर्मळ) शुद्धो, रूप (शरीरनुं सौभाग्य) अने भोगसमृदाय एटळे भोगनो संयोग (ए सर्व) क्याथी होय ? ” अर्थात् सर्वथा नज होय. माटे धर्मकार्यने विषे उद्यम करवो, जेथी तेवां सुख प्राप्त थाय, ए आ गाथानो उपदेश छे. ” २७७.

देवांण देवलोए, जं सुरकं तं नरो सुंभणिओ वि ।

नँ मँणइ वाससँएण वि, जस्सँ वि जीहाँसयं हुँज्जा ॥ २७८ ॥

अर्थ—जे (कोई पण) पुरुषने सो जिहा होय तेवोसुभणित (वाचाळ) माणस पण सो वर्ष करीने (पण) देवळोकमां देवताओने जे सुख छे ते सुखने कही शकतो नथी; अर्थात् सो जिहावाळो वाचाळ पुरुष सो वर्ष सुधी देवताओना सुखनुंज वर्णन कर्या करे, तोपण ते सुखना वर्णननो पार आवे नहीं, तेदळां वधां सुख देवळोकमां छे; तो बीत्रो साधारण माणस तो ते सुखनुं वर्णन शीरीतेन करी शके ?” २७८

नरएसु जाँई अइंकरखवडाइं, दुखँवाइं परैम तिरकाँई ।

कौ वैत्रेही ताँई, जीवँतो वासँकोडी विँ ॥ २७९ ॥

अर्थ—“नरकोने विषे अति कर्कश (दुस्सह) अने विपाकनी वेदनाए करीने परम तीक्ष्ण-अति तीक्ष्ण एवां क्षुधा तथा पारवश्यादि दुःखो छे, ते दुःखो ने करोड वर्ष सुधी पण जीवतो एवो कयो मनुष्य वर्णन करवा शक्तिमान छे ? कोइज शक्तिमान नथी; अर्थात् ते दुःखो सतत करोड वर्षो सुधी कहेतां पण कही शक्याय तेदळां नथी.” २७९,

करकहँदाहँ सामलि असिवण वेयरणि पहरणसएहिँ ।

जा जायणॉउ पाँवँति, नारँया तँ अहँमफलँ ॥ २८० ॥

अर्थ—“नारकीओ कर्कश दाह (अग्निमां पकाववुं), शास्मलि (शास्मलि वृक्षनां पत्रोवडे अंगनुं छेदन), असिवन (खड्ग जेवां पांढां होय छे तैवा वृक्षवाळा वनमां भग्नुं), वैतरणी (वैतरणी नामनी नदीना तपावेल्या सीसा जेवा जळनुं पान करवुं) अने कुठारादिक सेंकडो जातिनां प्रहरण (शस्त्रो) वडे अंगछेदन—तेणे करीने जे यातनाओ (पीडाओ) पामे छे. ते सर्व अधर्मनुं (धर्म विरुद्ध करेलां कृत्योनुं-पापोनुं) फळ जाणवुं. ” २८०. हवे निर्येचगतिनां दुःखोनुं वर्णन करे छे—

तिरियाँ कँसंकुसारानिवायवहबँधनमारणसयाँई ।

नँ वि इहँयँ पाँवँता, परैत्य जँइ निर्यँमिया हुँताँ ॥ २८१ ॥

अर्थ—“जो तिर्येचो (हाथी, घोडा, बळद विगेरे) परभवे (पूर्वभवे) नियमवाळा यथा होत, तो आ भवे तैओ कक्षा (कोरडानो मार), अंकुश, आर (परोणा), निपात (पृथ्वीपर पाडी नांखवुं), वध (दंडादिकथी मारवुं), बंधन (दोरडा, सांकळ विगेरेथी बांधवुं) अने मारण (जीवितनो नाश) ते सर्व दुःखोना सेंकडाओ पाम्या न होत, अर्थात् न पामत, ” २८१. हवे मनुष्यगतिनां दुःखोनुं वर्णन करे छे—

माथा—२८० जायणाय । जायणा—यातनाः पीडाः कदर्थना इत्यर्थः ।

माथा२८१कशांकुशारनिपातवधबंधनमारणशतानि । निवाह।इहई पाँवँता । निअमिया

आजीवसंकिलेसो, सुंरकं तुंच्छं उवहुंवा बहुयां ।

नीर्यजणसिद्धणा विर्यं, अंणिह्वत्तासो अं मां गुस्से ॥ २८२ ॥

अर्थ—“अपि च (वळी) मनुष्यभवमां जावजीव (जीवन पर्यंत) सल्लेश (मननी चिंता), तुच्छ—असार—अरुप काळ रहेनारुं एवं विषयादिकनुं सुख, अपि चोर विगेरेथी उत्पन्न यता घणा उपद्रवो, नीच (अधम) लोकोना आक्रोशादिक दुर्बचनो सहन करवांअने अनिष्ट स्थाने परतंत्रताथी वसवुं. ए सर्वे दुःखना हेतुओ छे.”

चारंगरोहवहबंधरोगधणहरणमरणवसणाइं ।

मर्णसंतावो अजंसो, विगंगोत्रणया र्यं मां गुस्से ॥ २८३ ॥

अर्थ—“वळी मनुष्यभवमां कोइ पण अपराधने लीचे कारागृहमां रंधन, दंडादि-कना मार, रज्जु शृंखला विगेरेथी बंधन, वात पित्त अने कफथी उत्पन्न यता रोगो, धननुं हरण, मरण अने व्यसन (कष्ट), तथा मननो संताप (चिंतनो उद्वेग). अषयज्ञ (अप-कीर्ति), अने बीजां पण घणा प्रकारनां विगोपनो (वगोंणां) ए सर्वे ज्यां (मनुष्य-भवमां) दुःखनां कारणो छे; त्यां (ते मनुष्यभवमां) थुं सुख छे ? कांइज नथी.” २८३.

चिंतासंतावेहिय, दारिद्रुआहिं दुर्पुंउत्ताहिं ।

लध्वूण विं माणुंस्सं, मरंति केविं सुनिव्विण्णा ॥ २८४ ॥

अर्थ—“मनुष्यभव पापीने पण केटलाएफ माणीओ कुहुंवना भरणपोषणादि-कनी चिंताए करीने अने चौरादिकथी उत्पन्न यता संतापे करीने तथा पूर्वभवमां करेळां दुष्कर्मोए प्रेरेळां एवां दारिद्र्य (निर्धनपणुं) अने क्षयादिक रोगोये करीने सुनि-विण्ण एटछे अत्यंत निवेंद—खेद पाप्म्या सता (खेद पापीने) मरण पामे छे. माटे एवी रीते चिंतादिके करीने मनुष्यभव निष्फल जवा देवो योग्य नथी; किंतु अमूल्य मनु-ष्य जन्म पापीने धर्म कार्यने विषे उद्यम करवो योग्य छे ए तात्पर्यार्थ छे.” २८४.

हवे देवताओने पण सुंख नथी. ते वात कहे छे—

देवां विं देवल्लोए, दिव्वा भरणाणुरंजियसरीरा ।

जं परिवंडंति तत्तो, तं दुरं क दारुणं तेसिं ॥ २८५ ॥

अर्थ—“देवल्लोकने विषे दिव्य अलंकारोथी अनुरंजित (अलंकृत—शोभायमान) छे शरीर जेमनां एवां देवो पण जे ते (देवल्लोक) थी पाजा पडे छे—चवे छे, एटछे

म'था २८२—बहुया । नीचजनाक्रोशनम् ।

गाथा २८३—चारके कारागृहे रोधः निरोधः । अयसो ।

गाथा २८४—रुवाइं । दारिद्र्यरुग्भिः—दारिद्र्यरोगैश्च—दुःप्रयुक्ताभिः—दुष्कर्मप्रयुक्ताभिः रुग्भिः ।

देवलोकायी चवीने अशुचियी भरेला एवा गर्भावासर्मा आवे छे, ते तेओने अति दारुण (दुःसह) दुःख छे; तेयी देवलोकायां पण सुख नयी." २८५.

तं सुरविमाणविभवं, चित्तिय चर्वणं च देवलोगाओ ।

अईवलियं चिये जं नं वि 'फुट्टेइ सयसकरं हिरियं ॥ २८६ ॥

अर्थ—“ ते (प्रसिद्ध एटले अत्यंत अद्भुत) देवलोकाया विभवने (ऐश्वर्यने) अने ते देवलोकायाकी चवनने मनमां विचारीने (चित्तिय—चित्तियित्वा—विचारीने ए पदना घंटाळाला एटले टोकरीनी वचवे रहेली छाला—ना न्याये करीने वन्ने ठेकाणे संबंध करवो) एटले के सुरविमाननो वैभव क्यां ? अने हवे नीच स्थानमां (मृत्युलोकाया गर्भा-वासर्मा) उपजहुं ए क्यां ? एवो विचार करीने तेओहुं हृदय जेयी करीने सो प्रकारे (सेंकडो ककडा यइने) फाटी थतुं नयीज, तेयी करीने अति वळवान—अति कठणज तेपतुं हृदय छे, पण कोमळ नयी; अथात् हृदय शतखंड थइ जहुं जोइए. एटले वधुं तेओने दुःख छे." २८६.

फरीयी देवगनिना प्रकृष्ट दुःखतुंज वर्णन करेछे—

ईसाविसायमयकोहमाणमायालोमेहिं एवमाईहिं ।

देवा विं समंभिभूया, तीसिं कतो सुंहं नाम ॥ २८७ ॥

अर्थ—“ देवो पण ईश्वर्या (परस्पर मत्सर), बीजा देवोए करेला पराभवयी उत्पन्न थयेलो विषाद, मद (अहंकार), अप्रीतिरूप क्रोध, मान (परना गुणतुं असहनपणुं), माया (कापळ्यदृष्टि) अने लोभ (शुद्धि—आसक्ति) ए विगेरे चिचिना विकारोयी अत्यंत पराभव पामेला होयछे, तो तेओने पण सुख क्यांयी होय ? सुखतुं नाम पण क्यांयी होय ? न ज होय." २८७.

धर्मं पिं नाम नाऊंज, कीस पुंरिसा संहंति पुंरिसाणं ।

सांमिचे सांहीणे, को" नाम केंरिज्ज दांसत्तं ॥ २८८ ॥

अर्थ—“ नाम ए अव्यय प्रसिद्ध अर्थमां छे. एटले के दुःखतुं निवारण करवायी अने मोक्षसुखने आपवायी प्रसिद्धिने पामेला एवा धर्मने जाणीने पुरुषो शामाटे बीजा पुरुषोनी आझाने—हुकमने सहन करता हरो ? (हुकम उठावता हरो ?) केमके मनुष्य

गाथा २८६ चित्तिय । स्फुटति । सयसकरं=शतखंडं यथास्थान्नाय ।

गाथा २८७ मांयलोमेहिं । कतो=कुतः।

गाथा २८८ कीस=किमर्थम् । पुंरिसाणं पुरुषाणां ।

सर्वे समान अवयवोने धारण करनारा छे. (आज्ञा करनारमां ने आज्ञा उठावनारमां अवयवो कांइ फेरफार नथी). स्वामीपणुं पोताने स्वाधीन छातां कयो माणस दासपणुं (अंगीकार) करे ? कोइ न करे. एटछे वीजानी आज्ञा उठाववानी जेम जो श्रीजिनेश्वरनी आज्ञा उठावे, तो तेओ सर्वतुं स्वामीपणुं पामे तेम छे, माटे जिनप्ररूपित धर्मनी आज्ञा मानवी जोइए. ” २८८.

संसारचारए चारए व्वं, आँवीलियस्स वंधेहिं ।

उँव्विग्गो जस्स मणो, सो किरं आँसन्नसिद्धिपहो ॥२८९॥

अर्थ—“ कारागृहनी जेवाःआ चार गतिवाणा संसारना भ्रमणमां कर्मरूप बंधनोए करीने पीडा पामेछा (बंधायछा) एवा जे पुरुषनु मन उद्वेग पामेछुं होय, ते पुरुष निश्चे आसन्नसिद्धिपथ (जेने सिद्धिमार्ग नजीकपारं रहेलो छे तेवो) जाणवो, आ परिमित संसारीतुं (जेना संसारनुं प्रमाण थयुं छे तेनुं) लक्षण छे. ” २८९.

आँसन्नकालभवसिद्धियस्स, जौवस्स लक्खणं ईणमो ।

विसंयसुहेसु नं रँज्जइ, सब्वत्थामेसु उँज्जमइ ॥ २९० ॥

अर्थ—“ जेनी अल्पकालमांज भवथकी-संसारथकी सिद्धि (मुक्ति) थवानी छे एवा जीवतुं ए लक्षण छे के-तेवो जीव पांच इंद्रियोना शब्दादिक विषयोमां रंजित-आलस्यक थतो नथी, अने सब्व के० सर्वत्र (तप संयमादिकना अनुष्ठानमां) पोतानी सर्व शक्तिवडे उद्यम करे छे. ” २९०. अहीं गाथामां प्राकृत भाषा होवाथी तृतीयना अर्थमां सप्तमी विभक्ति छे.

हुँज्ज वं नं वं देहंवलं, धिँमइसत्तेण जँइ नं उँज्जमसि ।

अँत्थिहिसि चिरं काँलं, बँलं चँ काँलं चँ सोअंतो ॥२९१॥

अर्थ—“ हे शिष्य ! देहनुं वळ-शरीरनुं सामर्थ्य होय के न होय, तोपण जो तुं धृति (मननी धीरज), मति (पोतानी बुद्धि) अने सत्त्व-साहसवडे करीने (धर्ममां) उद्यम करीश नहीं, तो पाछणथी वळने (एटछे शरीरनुं सामर्थ्य हाल नथी एम) तथा कालने (एटछे आज धर्म करवानो काल नथी एम) श्लोच करतो (विचार करतो चिरकाल मुधी संसारमां रहीश-भ्रमण करीश-तारे भ्रमण करतुं पडसे; अर्थात् धर्म नहीं करवाथी तुं

गाथा २८९ चारयंबव। आचिलीयस्साचारके इव=कारागारे इवा आँवीलियस्स=आपीडित्तया किर=किल। गाथा २९०-इणमो=इदम्। सब्वत्थामेसु=सर्वस्थान्ना प्राकृतत्वात्तृतीयाथे सप्तमी। गाथा २९१ धिँमयसत्तेण। अत्थिहिसि=आस्थायस्यसि। सोयंतो।

पाल्छवी घणा काळ सुधी शोक करीश के हवे शुं करं ! शरीरमां सामर्थ्य नथी. एम तारे शोक करवानो वखत आवशे. ” २९१.

लद्धिलियं च बोह, अकरितो नांगयं च पंथितो ।
अर्नादाइं वोहिं, लर्पमसि कर्यरेण मुंलेणं ॥ २९२ ॥

अर्थ—“ हे मूर्ख ! आ भवे प्राप्त करेछी बोधीने (जैन धर्मनी प्राप्तिने) नहीं करतो (नहीं आचरतो) अने अनागत एउछे आवता भव संबधी धर्मनी प्राप्तिनी प्रार्थना करतो (इच्छतो) एवो तुं वीजा भवमां ते बोधीने क्या मूर्ये करीने पामीश ? अर्यात् आ भवमां तुं धर्मने पाभ्या लतां तेनुं आराधन करतो नथी, तो आवता भवमां तुं शी रीते तेने पामीश ? ” २९३.

फरीयी धर्मना उद्यमरहित पुरुषोने उपदेश आपे छे—

संघेयण कालवलदूसमारुयालंबणाइं धित्तूणं ।
संवं चियं नियमधुरं, निरुज्जमाओ पमुच्चंति ॥ २९३ ॥

अर्थ—“ निरुचमी (आलस्यवाळा) मनुष्यो संहनन (आजे प्रथमना जेवुं वळवान संघेयण नथी), काळ (हाळ दुष्काळ वतें छे), वळ (प्रथमना जेवुं आज वळ नथी), दुषमाकाळ (हाळ पांचमो आरो वतें छे), अने अरुज (आज नीरोगपणुं नथी माटे शी रीते धर्म थइ शके ?) एवी रीतना आलंबनोने ग्रहण करीने (जवाव दइने) प्राप्त थयेछी चारित्र, क्रिया, तप विगेरे सर्व नियमनी धूसरी (भार)ने ‘चिय’ के० नकी मूर्की दे छे. पण तेवुं आलंबन छेवुं योग्य नथी. केसके समय प्रमाणे आळस तजीने यथा शक्ति धर्ममां उद्यम करवो जोइए. ” २९३.

कालस्स यं परिह्हाणी, संयमजोगाइ नंत्थि खित्ताइं ।

जयणाइं वट्टियव्वं, नें हं जयणा भंजैए अंगं ॥ २९४ ॥

अर्थ—“ वळी ‘ दिवसे दिवसे काळनी हानि थती जाय छे, अने संयमने योग्य एवां क्षेत्रो पण ह. लमां रहां नथी; तेथी शुं करवुं ? ’ प. रीतना शिष्यना प्रश्नपर शुभ उत्तर आपे छे के—यतनावडे एउछे यतना पूर्वक वतेंवुं देसके ‘हुं’ के० निश्चे यतना राखवाथी चारित्ररूपी अंग मांगतुं नथी—चारित्ररूपि अंगनो भंग थतो नथी विनाश थतो नथी; तेथी करीने यतना पूर्वक यथाशक्ति चारित्रने विषे उद्यम करवो ए तात्पर्यार्थ छे. ” २९४

गाथा २९२ लद्धिलियं=लब्धयाम् । लज्जिसि । मोल्लेण मुल्लेण ।

गाथा २९३ रुयालंबणाइं ।

सैमिईकसायगास्वइंदियमयवंभचेसुत्तीसु ।

सज्झायविणयतवसत्तिओ अं. जय्यणा सुंविहियाणं ॥ २९५ ॥

अर्थ—“साहं (शोभन) छे विहित (आचरण)जेमनुं एवा सुविहित साधुओने(साधु-ओए) इर्यादिक पांच समितिनुं पालन करवुं, क्रोधादिक कषायनो निग्रह करवो, ऋद्धि, रस अने साता ए त्रण गारवनुं निवारणः करवुं, इन्द्रियोने वश करवी, जाति विगेरे आठ प्रकारना मदनो त्याग करवो, नव प्रकारनी ब्रह्मचर्यगुप्तिनुं पालन करवुं तथा वाचना-दिक पांच प्रकारनो स्वाध्याय करवो, दश प्रकारनो विनय करवो, वाह्य अने अभ्यंतर भेदे करीने चार प्रकारनुं तप करवुं, तथा पोतानी शक्तिनुं गोपन करवुं नहीं. इत्यादिक यतना करवी जोइए. ” २९५.

हवे यत्तनानुंज निरूपण करे छे.

जुंगमित्तरदिट्ठी, पयं पयं चख्खुणा विसोहिंतो ।

अंज्वस्खित्ताउत्तो, इरियासमिओ मुंणी होई ॥ २९६ ॥

अर्थ—“युगमात्र (चार हाथ प्रमाण) क्षेत्रनी अंदर दृष्टि राखनार, पगले पगले चक्षुः वहे पृथ्वीनुं विशोधन करतो एटले सारी रीते अवलोकन करतो, तथा शब्दादिक विषयोमां व्याक्षेपरहित (स्थिर-मनवाळो) होनाथी धर्मध्यानमांज रहेछो एवो मुनि (त्रिकाळने जानार) ईर्यां (गमन) ने विषे समित एटले सारी रीते उपयोगवाळी (ईर्यासमितिनुं पालन करनार) कहेवाय छे. ” २९६.

कंज्जे भौसइ भौसं, अणवज्जमकारणे नं भौसइ यं ।

विग्गहविसुत्तियपरिवज्जिओ अं जंइ भासंणासमिओ ॥ २९७ ॥

अर्थ—“ ज्ञानादिक कार्यं सते (उपदेशादि-पठनपाठनादि निमित्ते) अनवध (निर्दोष) भाषा (वचन) बोले, अने कारण बिना बोलेज नहीं, तथा चार विकया अने विरुद्ध वचन बोलवा (चिंतववा) ए करीने वर्जित (रहीत) एवो यति भाषा-समित एटले बोलवामां सावधान कहेवाय छे. ” २९७.

बांयालमेसंणाओ, भोर्यणदोसे चं पंचं सोहेइ ।

सौ एंसणई संमिओ, औंजीवी अंनंहा होई ॥ २९८ ॥

गाथा २९५-इदिअ । गाथा २९६-चित्तोहंती ।

गाथा २९७-भासई।चित्तोत्तियाविगहाविकया च विरुद्धवचनजल्पनं च ताभ्यां परिवर्जितः।

गाथा २९८-भोर्यणदोसेई । भोर्यणादोसेय । एसणासमिओ । एसणासमिओ ।

अर्थ—“जे वेंताळीश प्रकारनी एषणा (आहारना दोष) ने तथा संयोजना विगेरे पांच प्रकारना भोजनना दोषोने शुद्ध करे छे, एटछे तेवा दोषरहित आहार करे छे ते (साधु) एषणा (आहार) ने विषे समित (उपयोगवान) कहेवाय छे, (एषणासमित कहेवाय छे). अन्यथा एटछे अशुद्ध अने दोषयी दुष्ट थयेळो आहार ग्रहण करे, तो ते आजीवी-आजीविकाकारी कहेवाय छे, एटछे साधुनो वेष धारण करीने तेनावडें आ जीविका (उदरनिर्वाह) करनार कहेवाय छे.” २९८.

पुंनि चरैखू परिलखिय, पमंज्जिउं जो ठंवेइ गिह्इ वा ।

आयाणमंडनिरुखेवणाइ, संमिओ मुंणी होई ॥ २९९ ॥

अर्थ—“जे (मुनि) प्रथम वस्तु ग्रहण कर्या पहेलां) चक्षुवडे परीभा करीने (सारी रीते जोडने) पछी रजोहरणादिकवडे प्रमार्जना करीने (पुंजीने) कोइ पण वस्तु भूमिपर स्थापन करे (मूके) छे, अथवा भूमिपरथी ग्रहण करे छे, ते मुनि आदान (भूमिपरथी वस्तुतुं ग्रहण) अने भांडना (उपकरणना) निक्षेप (पृथ्वीपर स्थापन) ने विषे समित (सावधान) होय छे. अर्थात् यतना (जयणा) पूर्वक कोइ पण वस्तुने ग्रहण करतो अथवा मूकतो साधु आदान निक्षेपणासमित कहेवाय छे.” २९९.

उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाण ए थै पाणविही ।

सुविवेएइ पणसे, निसिंरंतो होई तसंसिंओ ॥ ३०० ॥

अर्थ—“उच्चार (वडीनीत), पसवण (लघुनीत), खेल (मुखनो मळ-कफ विगेरे) जल्ल (शरीरनो मेल); अने सिंघाण (नासिकानो मेल) तथा च शब्दे वीजा पण परिष्ठापन करवा योग्य (परठववा योग्य) अशुद्ध भक्षणपान विगेरे-ते सर्वने सुविविक एटछे असस्थावर जंतुरहित एवा सारी रीते शोधेळा प्रदेशने विषे परिष्ठापन करतो (परठवतो) मुनि ते समितिवाळो एटछे पारिष्ठापनिका समितिवाळो होय छे-कहेवाय छे.” ३००.

कोहो माणो माया लोभो हांसो रई थं अरई थं ।

सोगो भयं दुंगंछा, पचैखलकली इमे सेंवे ॥ ३०१ ॥

अर्थ—“क्रोध (अभीति), मान (वीजाना गुणतुं असहन), माया (कपट), लोभ (श्रधता), हास (हास्य), रति (मीति), अरति (अभीति), शोक, भय अने

गाथा २९९-चक्षु । गिह्इ । निकलेवणाय ।

गाथा ३००-सुविवेइप=सुविवेचिते-सम्यग् शोधिते ।

ब्रह्मसाक्षात् ए सर्वे साक्षात् कलि-क्लेशरूपं छे. ए दशने-क्लेशरूपं जाणवा. ” ३०१.

प्रथम क्रोधना भेद (पर्यायो कहे छे.

कोहो कलहो सारो, अर्वरुपरमच्छरो अंगुसओ अ ।

चंडत्तणमणुंवसमो, तार्मसभावो अ संतावो ॥ ३०२ ॥

निच्छोडणं निप्लंणं, निरांगुवत्तित्तणं असंवासो ।

कयनासो अ असम्मं, बंधंइ घणं चिकणं कम्मं ॥ ३०३ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—“ क्रोध (अप्रीति मात्र), कलह (वचननी मारामारी) सार (बीजापर दुष्ट आशय राखवो), परस्पर मत्सर (मांहोमाहे मत्सर—अदेखाइ धारण करवी), अनुशय (पश्चात्ताप एटछे क्रोध करवायी पाछळयी पश्चात्ताप थाय छे, माटे अनुशय पण क्रोधतुं नाम कहेवाय), चंडल (भृकुटि चडाववी—वांकी करवी), अनुपशम (उपशमनो अभाव—शांतपणुं न राखवुं ते), तामस भाव (तमोगुण राखवो ते), अने सन्ताप (ए सर्वे क्रोधना पर्यायो—बीजां नाम छे), ३०२. वळी निच्छोटन (क्रोधथी आत्मानुं मळीन थवुं) निर्भर्त्सन (क्रोधथी बीजानी तर्जना करवी), निरांगुवर्तित्त (क्रोधथी बीजानी मरजी प्रमाणे न चाळवुं—न वर्तवुं), असंवास (परिवार साथे न रहेवुं—क्रोधथी भाणस एकलो विचरे छे, माटे असंवास पण क्रोधनो पर्याय कहेवाय), कृतनाश (कोइए करेछा उपकारनो नाश करवो) तथा अज्ञाय (समपणानो अभाव) ए सर्वे क्रोधना फळरूप होवाथी क्रोधना पर्यायो छे. तेपने विषे वर्ततो जीव गाह चिकणां (अत्यंत कटुरसवाळां निकाचित) कर्म बांधे छे. माटे क्रोधनो त्याग करवो, ए अर्ही तत्पर्याय छे. ” ३०३.

इवे मानना पर्यायो कहे छे.—

माणो मयं हंकारो, परंपरिवाओ अ अर्त्तउकरिसो ।

परंपरिभवो विर्यं तहां, परस्सं निंदा असूआ यं ॥ ३०४ ॥

हील्लो निरावयारित्तणं, निरवणामया अविणओ अ ।

परंगुणपच्छायणया, जीवं पौवंति संसारे ॥ ३०५ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—“ मान एटछे साधान्य रीते अधिमानं, मद (जाति विगेरेनो उत्कर्ष) अहंकार (अहंता—हंकार) परनो (अन्यनो) परिवाद (अवर्णवाद—ते पण माननुं नाम छे), (अ—च) अने आत्मोत्कर्ष (पोतानो उत्कर्ष—आपवडाई, अपिचनो अर्थ समुच्चय—समुदाय रूप छे); तथा परंपरिभव (बीजानो पराभव करवो),

परनिंदा (वाजानी निंदा करवी) अक्षया (वीजाना गुणोने विषे दोषो प्रगट करवा-
दोषनो आरोप करवो) ३०४. हीछा (वीजानी हीन जाति वगैरे प्रगट करीने तेनी
हीछना करवी), निरुपकारित्व (कोइनो पण उपकार करवो नहीं ते) निरवनामता
(स्तब्ध-अकडपणुं-अनम्रता), अविनय (गुरुने देखी उभा न थनुं, आसन विगैरे न
आपनुं ते), अने परगुणप्रच्छादना (वीजाना ज्ञानादिक गुणोनुं आच्छादन करवुं-
हांकी देवा ते), आ सर्वे मानरूप अथवा मानना फलरूप होवाथी मानना पर्यायो छे.
तेमनुं सेवन करवाथी तेओ प्राणीओने चतुर्गति रूप संसारमां पाडे छे-नांखे छे. माटे
तेओ शत्रुनुं काम करनार होवाथी (शत्रुरूप होवाथी) तजवा योग्य छे." ३०५.

हवे मायाना पर्यायो कहे छे-

माया कुंडंगि पच्छन्नपावया, कुंडकवडवंचणया ।

सर्व्वैरथअसम्भावो, परनिख्वेवावहारो अँ ॥३०६॥

छल्ल छोमं संवईयरो, गूढांयारत्तणं मैई कुंडिला ।

वीसंभैघायणं पियँ, भवँकोडिसएसु विँ नँडंति ॥ ३०७ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ-"माया-सन्मान्य माया, कुंडंगि ते महागहन (गाढ-निविड माया),
प्रच्छन्नपाया ते छानी रीते पापकर्मनुं करवुं, कूड (छद्म). कपट, वंचनता (मा-
यावडे वीजाने छेतरवुं ते), सर्वे पदार्थोनों असद्भाव (असत्प्ररूपणा) पटले होय
वीनुं अने कहेनुं वीनुं, परना निक्षेप (न्यत्स-घापण) नो अपहार (ओळववुं)
ते परन्यासापहार, च के० अने मायावडे परने छळे माटे छळ पण मायानो पर्याय छे,
छोमं ते छद्म, संन्यतिकर (पोतानुं कायं साधवा माटे मायावडे गांडुं वनवुं), गूढाचा-
रित्व (मायावडे गुप्त विचरवुं), कुंडिल (वक्र) मति, अने विश्वासघातः ए सर्वे
मायाना पर्यायो छे. ते माया सो कोटी संसारने (भवने) विषे पण नडे छे-दुःखदायी
थाय छे, अर्थात् मायावडे वाघेलां कर्मों क्रोडोगमे भव यइ गया छतां पण भोगव्यां
विना क्षय पामतां नथी. मन्टे ते तजवी-" ३०६-३०७.

हवे लोभना भेदो कहे छे-

लोभो अइसंचयसीलया यँ, किँलिहृत्तणं अँइममत्तं ।

कर्पन्नमपरिभोगो, नईविनट्टे यँ आंगलं ॥ ३०८ ॥

मुँच्छ अइवहुँधणलोभया यँ, तर्पमावभावणाय यँ संया ।

वोळतिँ मँहाघोरे, जँसरणमहसमुहँमि ॥ ३०९ ॥ युग्मम् ॥

माया ३०७-संवइरे । गुदायास्तिर्णं । कुंडिला . माया ३०८-किलहृत्तणं ।

अर्थ—“ लोभ—सामान्य लोभ, अतिसंचयशीलता (लोभवहे एक जातनी अथवा घणी जातनी वस्तुओनो अति संचय करवाना स्वभावपणुं); क्लिष्टत्व (लोभवहे मननी क्लिष्टता—कलुषता), अति ममत्व (वस्तुपर अत्यंत ममता—मारापणुं), कल्याणनो अपरिभोग (भोगववा योग्य अन्नादिक वस्तुनो अपरिभोग एटछे ते न भोगववुं अने कृपणताने छीधे खराब अन्नने पण नांखी न देतां खावुं ते), अन्नादिक वस्तुओं नाश पाये छते अने धान्यादिक वस्तुओनो विनाश थये छते आगल्ल एटछे रोगादिक उत्पन्न थवा, ते नष्ट विनष्टाकल्प्य नामनो लोभमकार कहैवाय छे. ३०८. तथा मूर्छा (मूढता—घन उपर तीव्रराग), अतिबहुधनलोभता (घणा घन उपर अत्यंत लोभपणुं), तथा सदा—सर्वदा तद्भावभावना (लोभपणाए करीने मनयां तेज भावतुं वारंवार चिंतवन—करवुं)—ए सर्वे लोभना सामान्य अने विशेष भेदो छे. तेओ संसारी (पाणी)ने महा घोर (अति भयंकर) जरामरणना प्रवाहरूप महासमुद्रमां वोळे छे—हुवाडे छे—माटे तेवा दारुण लोभनो त्याग करवा योग्य छे. ” ३०९.

एणसु जो न वट्टिज्जा, तेणं अप्पा जहंङ्गिओ नाओ ।

मणुंआण माणंणिज्जो, देवांण वि देवयं हुज्जा ॥ ३१० ॥

अर्थ—“ ए क्रोधादिक कषायोने विषे जे (तत्त्वज्ञ) पुरुष नथी वर्ततो—कषायोने नथी करतो, ते पुरुषे पोताना आत्माने यथास्थित (सत्य—कर्मथी भिन्न—भुद्ध स्वरूप—वाळो) जाणेछो छे एम समजवुं, अने ते पुरुष मनुष्योने माननीय तथा इंद्रादिक देवो—ना पण दैवत रूप (इंद्रोने पण पूज्य) थाय छे. ” ३१०

हवे ते कषायोने सर्पादिकनी उपमा आपे छे—

जो भासुरं भुजंगं, पयंडदादाविसं विधेद्वेइ ।

तत्तो चियं तस्संतो, रोसंभुअंगोवमाणमिणं ॥ ३११ ॥

अर्थ—“ जे पुरुष भासुर (रौद्र—भयंकर) अने जेनी दाढमां प्रचंड विष रहेछे छे एवा भुजंग (सर्प)नो (लाकडी विगेरेथी) स्पर्श करेछे, तो निधे ते सर्पथकीज ते (पुरुष)नो अंत (मरण) थाय छे. आ रौद्र रोष (क्रोध) रूपी भुजंगतुं अहीं उप—मान जाणवुं: एटछे के रोष भुजंगनो पण स्पर्श करीं होय तो ते संयम (चारित्र) रूपी जीवितनो नाश करे छे. माटे रौद्र सर्पनी जेम तेनो त्याग करवो. ” ३११.

जो आंगलेइ मैत्तं, कयंतकालोवमं वर्णंगइदं ।

सो तेणं चियं चुज्जइ, माणंगइदेण इत्थुवमां ॥ ३१२ ॥

गाथा ३११—भुजंगं । भासुरं—रौद्रं । रोसभुयंगो ।

गाथा ३१२—आंगलेइ=आकर्षयति—गृह्णाति । षणगायंदं । कुज्जइ । चुज्जइ=चूर्णयति—चूर्णीकियते । माणंगयदेण । इत्थुपुपमा ।

अर्थ—“जे (अहानी) पुरुष मदोन्मत्त अने कुर्नातकाळ (परणकाळ)नी जेने उपमा छे तेवा अति भयंकर वनना गजेन्द्रनुं आकर्षण करे छे—ग्रहण करे छे. ते मूर्ख पुरुष निश्चे ते वनगजेन्द्रवटे चूर्ण कराय छे, अर्थात् हणाइ जाय छे ए प्रमाणे अहीं मानने गजेन्द्रनी साथे उपमा जाणवी. एटछे कं मान रूपी गजेन्द्र पण श्वमरूपी आळान (बंधन) स्तंभना भंगादिक मोटा अनर्थने करे छे; माटे तेनो त्याग करवो” ३१२.

विसर्वल्लीमहागहणं, जो पविसंइ साणुंवायफरिसविसं ।

सो अचिरेण विणंस्सइ, मार्या विसंवल्लिगहणसमा ॥ ३१३ ॥

अर्थ—“जे पुरुष अनुकूल वायुना स्पर्शयीज विषवाळा (जेना वायुना स्पर्शयी ज विष चढतुं होय तेवा) विषवल्लीना मोटा वनमा प्रवेश करे छे, ते थोडाज काळमा विनाशने पावे छे. एवी रीते माया पण विषवल्लीना वज्र जेवी जाणवी; अर्थात् तेना स्पृह—संबंधमात्रयीज समकित चारित्रादि गुण विनाश पावे छे.” ३१३.

घोरे भयागरे सौगरंमि, तिमिमंगरगाहपूरंमि ।

जो पविसइ सो पविसंइ, लोभंमहासागरे भीमे ॥ ३१४ ॥

अर्थ—“जे मनुष्य घोर (सौद्र), भयना स्थानरूप अने मत्स्य, मगर तथा ग्राह विनोरे जळजंतुओधी पूर्ण एवा सागरने विषे प्रवेश करे छे ते मनुष्य भयंकर एवा लोभ रूपी महासागरने विषे प्रवेश करे छे. अर्थात् जेम समुद्रमां पेटेलो मनुष्य अनर्थने पावे छे, तैम लोभरूपी समुद्रमां पडेलो माणस पण मोटा अनर्थने पावे छे.” ३१४.

गुणदोसवहुविसेसं, पयं पयं जाणिंऊण नीसेसं ।

दोसेसु जणो न विरंजइ ”त्ति, कम्मोण अहिंणारो ॥ ३१५ ॥

अर्थ—“(मोक्षना हेतु रूप ज्ञानादिक) गुणोमां अने (संसारना हेतु रूप क्रोधादिक) दोषोमां मोटा विशेष (घणुं अंतर) छे एम श्रीसर्वज्ञकथित सिद्धान्तमांयो पदे पदे निःशेष (समग्र रीते) जाणीने पण मनुष्य (लोभ) क्रोधादिक दोषोमां (दोषो उपरयी) विरक्त यतो नथी, ए कर्मनोज अधिकार (दोष) छे, अर्थात् जाणता छतां पण कर्मना वशयोज दोषोने तजी सकतो नथी.” ३१५.

माया-३१३ विसवल्लि । साणुंकूळवातरुपर्शविषं । विषवल्लीगहनं विषवल्लीघनं तेन समा ।
माया-३१४ महापठरंमि ।

१ अहीं एम समजतुं के जे लोभरूपी महासागरमां प्रवेश करे छे ते महाभयंकर जळजंतु-वाळा समुद्रमां प्रवेश करे छे. कारणके तेना थोडाज अनर्थने-बळके तेथी पण विशेष अनर्थने ते पावे छे.

माया ३१५-निश्चलं । कर्मणाधिकारो-दोषः ।

अद्वैतहास केलीकिलत्तणं हासस्त्रिद्वै जमगरुई ।

कंदप्यं उर्वहसणं, परस्स न करंति अणगारा ॥ ३१६ ॥

अर्थ—“अनगार (घर विनाना-गृहस्थाश्रमरहित-साधुओ) बीजा माणसने (बीजा साये) अद्वैतहास्य (खडखड हसवु), बीजानी क्रीडामां असवद्ध वचननुं भाषण (बोलवुं), हास्यवडे बीजाना अंगनो वारंवार स्पर्श करवो (खसकोलीयां-गदगदीयां करवां), एक बीजा साये समकाले हाथतळीओ देवी, कौतुक करवुं अने उपहास-सामान्य हास्य करवुं, एटलां वानां करता नथी.” ३१६. इति हास्यद्वारं.

हवे रतिद्वार कहे छे-

साहुणं अप्परुई, ससरिरीरपलोअणा तवे अरुई ।

सुंतिअवन्नो अह्वपहरिसो यं नंति सुसाहुणं ॥ ३१७ ॥

अर्थ—“साधुओने आत्मानी रुचि एटले मने शीत, आतप विगेरे न लागो एवी शरीरपर ममतावाळी आत्मरुचि, पोताना शरीरने (रुपने) आदर्शादिकमां जोवुं, शरीर दुर्बल थइ जने एम धारी तपस्यामां अरति करवी, हुं बहु सुंदर छुं-सारा वर्णवाळो छुं ए प्रमाणे पोतानी प्रशंसा करवी अने लाभ प्राप्त थये अत्यंत हर्षित थवुं-आटला रतिना प्रकारां उच्चम साधुओने होता नथी; अर्थात् साधुओए तेवी रति करवी नही.” ३१७.

हवे अरविद्वार कहे छे-

उठवेवओ अ अरणामओ अं, अरंमंतिया यं अरुई यं ।

कलंमलो अं अणेगंगया य, कंतो सुंविहियाणं ॥ ३१८ ॥

अर्थ—“सुविहित साधुओने उद्वेग (धर्मसमाधिची चञ्चित थवुं), पंनेन्द्रियोना विषयोमां मननुं अतिशे जवुं, धर्मेना विषयमां (धर्मेने विषे) मननुं अरण्यपणुं (विष-त्वपणुं), अरति (अत्यंत चित्तने उद्वेग), कलमल एटले विषयोमां मननी व्याकुलता (व्यग्रता), तथा अनेकाग्रतां एटले मनमां संबंध विनानो विचार करवो के हुं-अमुक स्वाइश, अमुक पीश, अमुक पहेरीश विगेरे ए सर्वे मनना संकल्पो अरतिना हेतु होवायी सुविहित साधुओने क्यांथी होय ?” अर्थात् न होय. ३१८.

हवे शोकद्वार कहे छे.

गाथा ३१६-जमगरुड १ हासस्त्रिद्वै-हास्येन परांगस्य पुनः पुनः स्पर्शनं । कंदप्यं ।
गाथा ३१७-साहुणं अरुई । अह्वपहरिसं च । अतिप्रहर्षः । नस्त्रिद्वै ।
गाथा ३१८-उठवेवओ अ । कलमलओ ।

सौमं सतावं अंधिहं चं, मन्नुं च वेमणुंस्सं च ।

कारुणं रुग्णंमावं, नं साहुं धम्मंमि ईच्छंति ॥ ३१९ ॥

अर्थ—“पोताना संबंधीना मरणथी शोक करवो, संताप (अत्यंत उचाट करवो), अहृति (अरे! हुं शी रीते आवा गामने अथवा आवा उपाश्रयने छोटी शकीश ? एम विचारवुं), मन्नु (इंद्रियानो रोष अथवा विकलता), वैमनस्य (चिचनी विकलता एटछे के शोकवडे आत्मघातनो विचार करवो), कारुण्य (थोड़ रदन करवुं), तथा रुग्णभाव ते मोटेथी रदन करवुं आ सर्वे शोकना भेदोमांथी एक पण प्रकारे साधुओ इच्छता नथी—करता नथी.” ३१९.

इधे भयद्वार कहे छे—

मंय संसोह विसाओ, मग्गंविभेओ विभीसियाओ अं ।

परमंग्गदंसणाणि र्यं, दढधंम्माणं कंओ हुंति ॥ ३२० ॥

अर्थ—“कातरपणा (बीकणपणा)ए करीने अकस्मात् भय पाववो, संसोह एटछे चौर दिकने जोड़ने नासी जहुं, विषाद ते दीनता, मार्गविभेद ते मार्गमां तिहादिकने जोड़ने त्रास पाववो, विभीषिका ते वेतान्—भूत विगेरेथी त्राम पाववो (आ वे प्रकार जिनकल्पीने माटेज आणवा), तथा भयथी अथवा स्वार्थथी परतीथिकना मार्गनी प्ररुपणा करवी अथवा बीजाओने भये करी मार्ग देखाठवो. आ सर्वे भयना प्रकारो हई धर्मवाळा साधुओने क्यांथी होय ?” नज होय. ३२०.

इधे जुगुप्सा द्वार कहे छे—

कुंच्छा चिलीणमलसंकडेसु, उव्वेवओ अणिट्ठेसु ।

चख्खुनियत्तणमसुंमेसु, नत्थि दव्वेसु दंताणं ॥ ३२१ ॥

अर्थ—“अपवित्र मळे करीने भरेला एवा (मृत कळेवरो)ने विषे कुत्सा (जुगुप्सा), अनिष्ट एवा मलिन देह अने वहादिकने विषे (तेनी उपर) उद्वेग तथा अशुभ एटछे जेनुं कीडाओए भक्षण कर्धुं होय एवा कूतरा विगेरे पदार्थोने जोड़ने नेत्रोने (हृष्टिने) पाळां वाळवां. ए सर्वे जुगुप्साना प्रकार दांत (साधुओ)ने होला नथी.” ३२१.

गाथा ३१९—अधियं । साहुधम्मंमि । गाथा ३२०—विभीसियाओअं । परमंग्गदरिसणाणि ।

गाथा ३२१—मलसंकलेसु । चिलीण शब्देन अपवित्रः । दंताणं=दांतानां-शुनिवां ।

एयंपि नाम नौऊण, मुञ्जियव्वंति नूण जीवँस्स ।

फेडेऊण न तीरंइ, अइवँलिओ कंम्मसंघाओ ॥ ३२२ ॥

अर्थ—“ नाम (प्रसिद्ध) एटछे जिनभाषित एवा ते पूर्वे कहेला कथायादिकने जाणीने पण निश्चे थुं जीवने मूढ थवुं योग्य छे ? अर्थात् योग्य नथी (त्यारे ज्ञानाटे जीव मूढ थतो ह्ये ? तेनो जवाव आपे छे के—) तोपण जीव ते कथायाने दूर करवा शक्तिमान थतो नथी. केमके कर्मसंघात—आठ कर्मनो समुदाय अतिवच्चवान छे; जेवी ते कर्मने पराधीन थयेको आ जीव अकार्यनी सन्मुख थाय छे, अकार्य करवा तत्पर थाय छे.” ३२२.

जंह जंह बहुँस्सुओ सभँओ अ, सीसंगणसंपरिखुडो अँ ।

अँविणिच्छिओ अँ सभए, तँहँ तँहँ सिद्धंतँपडिणीओ ॥३२३॥

अर्थ—“ जेम जेम बहु त (घणुं श्रुत जेणे सांभळ्युं छे एवो अथवा जेणे घणा श्रुतनो अभ्यास कर्यो छे एवो) थयो, तथा घणा (अज्ञानी) लोकोने समत (इष्ट) थयो; वळी शिष्यना समूहवडे (घणा परिवारवडे) परिवृत थयो, तोपण जो ते समय (सिद्धान्त)मां अनिश्चित (रहस्यना ज्ञानरहित) एटछे अनुभवग्रहित होय, तो तेम तेम तेने सिद्धान्तनो प्रत्यनीक (शत्रु) जाणवो; अर्थात् तत्त्वने जाणनार थोडा श्रुतवाळो होय तोपण ते मोक्षमार्गनो आराधक छे; पण बहुश्रुत.छतां तत्त्वजाण न होय तो ते मोक्ष मार्गनो आराधक नथी पण विराधक छे, एम जाणवुं.” ३२३.

हवे ऋद्धिगारव विषे कहे छ—

पंवराइं वच्छपायासणोवगरणाइं एस विभँवो मे ।

अँविय मर्हाजणनेया, अँहँ तिं अँहँ इद्धिगारविओ ॥ ३२४ ॥

अर्थ—“ आ प्रवर (प्रधान) एवां वळो, पात्रो, आसनो अने उपकरणो विगेरे मारो विभव (वैभव) छे. (अपिच—फरीना अथवा समुच्चयना अर्थमां छे.) वळी हुं महाजन एटछे प्रधानजनोने विषे नेता (नायक) छुं. महाजननो आगेवान छुं एम विचारनार ऋद्धिगारववाळो कहेवाय छे, अथवा अपास (नहीं प्राप्त थयेली) ऋद्धिनी वांछा करनार पण ऋद्धिगारववाळो कहेवाय छे ” ३२४.

हवे रसगारव कहे छे—

अरंसं विरंसं लूहं, जहोववन्नं च निच्छिण् भुञ्जुं ।

निद्धाणि पेसंलाणि यं, मंग्गइ रंसगारवे गिद्धो ॥ ३२५ ॥

अर्थ—“रसगारवने विषे गृह्य (लोह्य) थयेलो मनुष्य (साधु) भिसाने माटे फरतां जेवो प्राप्त थयो तेवो अरस (रस रहित), विरस (जीर्ण थयेलो) अने बाळ विगेरे रुक्ष (छत्रो) आहार खावाने इच्छतो नथी; अने स्निग्ध (स्नेहवाळा) पटळे पणा पीवाळा तथा पेक्षल (पुष्टि करनारा) आहारने पागे छे—इच्छे छे तेवां साधुने रसगारव पटळे जिह्वाना रसना गारवमां गृह्य जाणवो. आ रसगारवन्तुं स्वरूप जाणवुं.” ३२५.

हवे सातागारव कहे छे—

सुस्तंसई संरीरं, सयंगासणवाहणापसंगपरो ।

सायागारवगुरुओ, दुख्वस्स नं देई-अप्पाणं ॥ ३२६ ॥

अर्थ—“पोताना देहनी भुक्षूपा (स्नानादिकवडे शोभा) करनार तथा कोमळ क्षयन (क्षय्या) अने आसन (पादपीठ) विगेरेनी कारण विना वाहना (सेवा) नी भोगववानी आसक्तिमां तत्पर एवो सातागारववडे गुरु (भारे) थयेलो मनुष्य (साधु) पोतानो आत्मा दुःखने आपतो नथी, पटळे पोताना आत्माने दुःख देतो नथी.” ते सातागारव जाणवो. ३२६.

हवे इंद्रिय द्वार कहे छे—

तवकुलच्छायामंसो, पंडिचैफंसणा अणिह्वं पहो ।

वसेणाणि रणमुहाणि यं, इंद्रियवसगा अणुह्वंति ॥ ३२७ ॥

अर्थ—“बार प्रकारन्तुं तप, कुळ ते पितृपत्न अने छाया ते पोताना शरीरनी शोभा ए व्रजेनो अन्न (नाश), पांडित्य (चातुर्य) नी फंसणां ते मलीनता, अनिष्ट पथ (महा संसारमार्ग) नी वृद्धि, अनेक प्रकारनी आपत्ति, मरण विगेरे व्यसनो (कष्टो) तथा रणवृत्त पटळे संग्रामना मोखरामां पडवुं. पटळा पदार्थाने इंद्रियने वश थयेळा पुरुषो अनुभव छे.” ३२७-

संहेसु नं रंजिज्जा, र्वं दंहुं पुंणो नं इक्खिज्जा ।

ग्धे रसे अं फांसे, अमुच्छिओ उज्जेमिज्ज मुंणी ॥ ३२८ ॥

गाथा ३ ५-निरुच्छय । भुञ्जुं । लूहं-लूह-रक्ष ।

गाथा ३२६-सुस्तंसई । दुख्वस्सदेव ।

गाथा ३२७-पंडिचैफंसणा । पांडित्यमलीनता । वसग्गा ।

गाथा ३२८-रंजिज्जा । इक्खिज्जा । इक्खिज्जा-ईक्षेत ।

अर्थ—“ गंधने विषे (कर्पूरादिक सुगंधी द्रव्यने विषे), रसने विषे (शर्करा विगेरे मिष्ट पदार्थोना आस्वादने विषे) अने सुकोमल श्रमणादिकना स्पर्शने विषे मूर्खी नहीं पायेलां मुनीए वीणाना तथा स्त्रीना संगीतना शब्दोपां रंजित (रक्त) शब्दुं नहीं; तथा रूप एटले स्त्री विगेरेना उवाचनी सुंदरता लोःने रागबुद्धिधी चारंवार तेनी सन्मुख जोहुं नहीं, परंतु (धर्मने विषे) उद्यम करवो ” ३२८.

निहंयाणि ह्योणि यं. इंदिआणि घ्राएंह षं पर्यत्तेण ।

अहिर्यथे निहंयाइं, हिर्यकज्जे पूर्यणिज्जाइं ॥ ३२९ ॥

अर्थ—“ साधुअंने इंद्रियोना विषयभूत पदार्थोंगं रागद्वेष करवानो अभाव होवायी तेमनां इंद्रियो निहत (हणायेलां) छे, अने ते इंद्रियोना आकाश कायम होवायी अने पोतपोताना विषयोने ग्रहण करी होवायी अहा ६.० नहीं हणायेलां छे एटले कांडक हणायेलां अने कांडक नहीं हणायेलां होय छे. एदां इंद्रियंनो (षं-वाक्यनी शोभा माटे छे) हे साधुओ ! तभ घात करो एटले प्रयत्न ते वश करो. ते इंद्रियो पो-पोताना विषयमां रागद्वेष करवा रूप अहित अर्थमां हणाया योग्य छे, अने सिद्धांतादिक हित-कार्यमां पूजवा योग्य एटले रक्षण करवा योग्य छे ” ३२९.

हवे मदद्वार कहे छे.—

जाइकुलरुबलसुअतवलाभसरिय अहमयमत्तो ।

एयांइं चियं बंधंइ, असुहाइं बंधं च संसारे ॥ ३३० ॥

अर्थ—“ जे (मनुष्य)जाति ते ब्राह्मणादिक, दुळ ते पोतानो बंध, रूप ते शरीर-रजुं, सौभाग्य, वळ ते शरीरजुं सामर्थ्य, श्रुत ते शास्त्रजुं ज्ञान, तप ते छह अहमादिक, लाभ ते द्रव्यादिकनी प्राप्ति अने श्री ते ऐश्वर्य—प्रशुता ए आठ प्रकारना मद (अहंकार) थी मत्त थयेलो होय—तेनो गर्व करतो होय ते निश्चे आ संसारमां घणीवार ए जाति विगेरेज अशुभ बांधे छे एटले के आ आठमांथी जे जे वस्तुनो गर्व करे ते ते वस्तुज आवता भवमां हीनतर पाये छे.” ३३०.

जाईए उत्तमाए, कुंले पहांणंमि रुंमिस्सरियं ।

बलंविज्जायतवेण र्यं, लामंमएणं चं जो खिंसे ॥ ३३१ ॥

गाथा ३२ -निहियाणि हियाणियापर्यत्तेण।घापह=घातयत वशीकुरुता।अहिर्यथे।निहियाह

गाथा ३२०-सुथ।एयां चियं बंधंइ।

गाथा ३३१-जाई। विज्जाइ। खिंसेत्=निदत्ति ।

संसारमर्णवयम्गं, नीयंङ्गाणाई पावैशाणो य ।

भमई अणंतं कैलं. तम्होओ मेए विजेजिज्जा ॥३३२॥ युगमम् ॥

अर्थ—“जे माणस पोतानी उत्तम जातिवडे (मारी जाति उंची छे अने तारी जाति नीच छे एवी रीते), प्रधानकुत्रमां रहो छतो एटले प्रधान (उंच) कुळवडे, रूपवडे, ऐश्वर्यवडे, बळ (सामर्थ्य)वडे, विद्या (ज्ञान)वडे, तपवडे अने लामना मदे करीने वीजानी त्वसा के० निहा करे छे. (३३१). ते माणस आ चार गतिरूप अनंत संसारमां नीच स्थानादिक (हीन जात्यादिक)ने पामोने अनंत काल सुधी भ्रमण करे छे, एटले अनंत संसारनी वृद्धि करे छे. माटे (डाह्या पुरुषे) ते मदो (अहंकारो)ने बर्बाव—तेनो त्याग करवो.” ३३२.

सुहु वि जई जयंतो, जाईमयाईसु मुज्जई जोउं ।

सो मेअज्जंरिसी जंहा, हरिणैसवल्लुअं परिहाई ॥ ३३३ ॥

अर्थ—“जे कोइ यति (साधु) सुट्टु के० गाढ—अत्यंत यतना करतो छतो पण जाति मदादिकने विचे भोढ पामे छे (गर्व करे छे), ते मेतार्य ऋषि (साधु)नी जेम अने हरिकेशीवल्ल साधुनी जेम जात्यादिकने हीन थार छे—हीन जातिवाळो थाय छे. आ वज्जे मुनिनी कथा पूर्वे कहेला छे.” ३३३.

हवे नव प्रकारनी ब्रह्मचर्यनी गुप्तिउं द्वार कहे छे—

इत्थिपसुसंकिलिहं, वंसहिं इत्थीकहं चं वंजंतो ।

इत्थजं गसंसिसिज्जं, निरुवणं अंगुवंगाणं ॥ ३३४ ॥

पुर्वस्याणुस्सरणं, इत्थीजंगविरहरुवविलवं चं ।

अइवहुअं अइवहुसो, विज्जंतो अं आहारं ॥ ३३५ ॥

वंजंतो अं विभूसं, जइज्ज इहं वंभवेरुत्तीसु ।

साहु तिगुत्तिगुत्तो, निहुओ दंतो पसंतो अं ॥३३६॥ त्रिभिर्विशेषम् ॥

अर्थ—“अण (मन, वचन, कायानी) गुप्तिप करीने गुप्त एटले मन, वचन

गाथा ३३२-अणयदग्गे-अहंते। तम्हाउ। गाथा ३३३-जायमयाइसु। मुज्जई-मुक्ति। मज्जई-मज्जति। जोउं-यस्तु। मेअज्जरिति। हरिणसुवल्लुअं परिहाइ। गाथा ३३४-संकिलिहं। छीपगुत्तिहंतं। गाथा ३३५-विषज्जेणो। कुवचिहव। विलवं-विलापवचनं। रतं कामनीहा। अणयदुवं। अणयदुवं। विषज्जेणंतो सं गाथा ३३६-त्रिभिर्विशेषम्।

अने कायाना योगनो निरोध करनार, निभृतः (शांतताथी व्यापाररहित), दांत (इन्द्रियोनुं दमन कवामां तत्पर) तथा प्रशांत (कषायना वळने जीनानार) एवा साधुषु स्त्री (मानुषी अथवा देवी) अने पशु (तिर्यंचो) ए करीने सहित एवी वसति (उपाश्रय) ने वर्जवी (१), स्त्रीओना वेष अने रूप विगेरेनी कथा वर्जवी (२), स्त्रीजननुं आसन (जे स्थाने ते बेठी होय ते स्थान) वर्जवुं (स्त्रीना उठया पळी पण अष्टक वलत सुधी ते स्थाने वेसवुं नहीं) (३), स्त्रीओना अंगनुं निरूपण ते निरिक्षण न करवुं (स्त्रीओना चक्षु, मुख, हृदयादिक अंगोपांगने रागबुद्धिची जोवां नहीं) (४), ३३४. पर्वरताजु-स्मरण के० चारित्र प्रहण. कर्मां पहेलां गृहस्थाश्रममां करेळी कामक्रीडानुं स्मरण वर्जवुं (५), स्त्रीजनना विरहरूप विलापना वचननुं श्रवण रागनो हेतु होवायी वर्जवुं (६), अति बहु (कंठ सुधी भरीने) आहार वर्जवो (७), अतिबहु प्रकारनो (स्निग्ध, मधुर विगेरे) आहार वर्जवो (८), ३३५. तथा विभूषा (अंगनी शोभा) ने वर्जवी (९), आ नव ब्रह्मचर्यनी गृह्तिने विषे ब्रह्मचर्यना रक्षण माटे यत्न करवो. ” ३३६.

गुंज्जोरुवयणकस्वोरुअंतरे तंह श्रंणंतर दंडु ।

सांहरइ तंओ दिं डिं, नं बंधई दिडिं दिडिं ॥ ३३७ ॥

अर्थ—“ साधु पुरुष स्त्रीनुं गुह्यस्थान (स्त्रीचिन्ह), उरु (वे जंघा), वदन (मुख), कक्षा (काख) तथा उरस (हृदय) ना अंतर (मध्यभाग) ने तथा स्तनना अंतरने जोडने ते स्थानोथकी दृष्टिने संदरे छे—दृष्टिने खेची छेछे, तेमज स्त्रीनी दृष्टि साये पोतानी दृष्टिने वांधता नथी—भेळवता नथी. अर्थात् कार्यप्रसंगे पण नीजुं मुख राखीनेज स्त्रीनी साये बात करे छे. ” ३३७.

हवे सातधुं स्वाध्याय द्वार कहे छे—

संज्ञाएण पसत्यं क्षाणं जाणंइ यं संव्वपरमत्थं ।

संख्याए वटंती, खण्णे खण्णे जांइ वेरंगं ॥ ३३८ ॥

अर्थ—“ वाचनादिक पांच प्रकारना स्वाध्याये करीने प्रकृत (भव्य) ध्यान (धर्मध्यानादिक) थाय छे, अने सर्व परमार्थ (वस्तुस्वरूप) ने जाणेछे. तेमज स्वाध्यायपां वर्तता गृह्तिने क्षणे क्षणे वैराग्य प्राप्त थाय छे; अर्थात् रागद्वेष रूप विष हूर यवायी निर्विष थाय छे. ” ३३८.

उद्धमहतिरियलोए, जोईसवेमाणिया यँ सिद्धी यँ ।

सँवो लोर्गालोगो, संज्ञायविउस्स पंचख्लो ॥ ३३९ ॥

अर्थ—“स्वाध्याय (सिद्धान्त)ने जाणनार एवा मुनिने ऊर्ध्वलोक, अधोलोक ने तिर्यग्लोक—ए त्रणे लोकतुं स्वरूप, चंद्र सूर्यादि ज्योतिष्क, वैमानिकना निवाम अने सिद्धिस्थान (मोक्ष), ए सर्व लोकांलोकतुं स्वरूप प्रत्यक्ष छे. चौद्द रज्जु मम.ण लोक अने तेयो भिन्न अपरिमित अलोक. तेतुं स्वरूप स्वाध्यायने वळे मुनि जाणे छे.” ३३९.

जो निचैकाल तवसंजमुज्जओ, नं विँ करेइ संज्ञायं ।

अलंसं सुहंसोलजणं, नं विँ तँ ठवेइ सांडुपए ॥ ३४० ॥

अर्थ—“जे साधु निरंतर तप तथा पांच आश्रवना निर्गेष रूप संगमने विषे उद्यमवान लतां पण अध्ययन अध्यापन रूप स्वाध्याय न करे—स्वाध्यायने विषे उद्यम न करे, तो ते आलस्य अने सुहशील (सुखमां लंपट) मुनिने लोो साधु मार्गपां स्थापन करता नथी—साधु तरीके गणता नथी. कारण के ज्ञान अने क्रिया ए वझे वडेज मोक्ष छे तेथी ते बनेनुं आराधन करहुं जोइए.” ३४० सातहुं. स्वाध्यायद्वार कहुं, हवे आठहुं विनयद्वार कहे छे—

विणओ सांसणे मूलं, विणीओ संजओ भवे ।

विणैयाओ विर्पमुक्कस्स, कैओ धम्मो कैओ तँवो ॥ ३४१ ॥

अर्थ—“विनय ए शासन एटले जिनभाषित द्वादशांगीने विषे (द्वादशांगीतुं) मूल छे. विनयवालो साधु ज साधु थाय छे (कहेवाय छे) विनयथी विममुक्क—रहित (भ्रष्ट थयेला) ने धर्म क्यांथी अने तप (पण) क्यांथी होय ? अर्थात् विनय विना धर्म अने तप बने होतां नथी.” ३४१.

विणओ आँवहइ सिंरिं, लहंइ विणीओ जंसं चँ किंत्ति चँ ।

नँ कैयाइ दुँव्विणीओ, सकंज्जसिद्धिं संमाणेइ ॥ ३४२ ॥

अर्थ—“विनय वाह्य अने आभ्यंतर लक्ष्मीने प्राप्त करे छे: विनयवान पुरुष यश (सर्व दिशामां व्याप्त थनारुं) अने कीर्ति (एक दिशामां प्रसरनारी)ने पाये छे.

गाथा ३३९—लोयाळोओ ।

गाथा ३४०—संजमज्जुओ=संजमयुतः । संजमुज्जओ=संजमोक्षतः ।

दुर्विनीत (विनय रहित) पुरुष पोताना कार्यनी सिद्धिने कदापि पामतो नथी. अविनीतनी कार्यसिद्धि यती नथी. ” ३४२.

विनयद्वार कष्टं हवे तपनुं द्वार कहे छे—

जह जह खेमइ सरीरं, धुवजोगा जह जहा न हांयति ।

कर्ममखओ अं विउलो, विविक्त्या इंदियेदमो अं ॥ ३४३ ॥

अर्थ—“ जेम जेम (जेवी रीते) शरीर सहन करे (वळहीन न थाय) अने जेम जेम ध्रुवयोग एटले प्रतिछेखना (पडिछेहणा) प्रतिक्रमण विगेरे नित्य योगो (क्रियाओ) हीन न थाय (करी शकाय), ए प्रमाणे तप करवो. तेवी रीते तप करवाथी विपुळ (विस्तारवाळा) कर्मनो सय थाय छे, तथा विविक्तताए करीने एटले ‘ आ जीव देहथी भिन्न छे अने आ देह जीवथी भिन्न छे ’ एवी भावनाए करीने इन्द्रियोनुं दमन पण थाय छे ” ३४३.

जइ तां असैकणिज्जं, नं तरंसि कारुणं तो इमं कीसं ।

अपायत्तं नं कुणंसि, संजर्मजयणं जईजोगं ॥ ३४४ ॥

अर्थ—“ जो कदाच हे शिष्य ! अशक्य एवी साधुप्रतिमा तपस्यादिक क्रिया करवाने तुं शक्तिमान न होय, तो हे जीव ! आ आत्माने स्वाधीन अने साधुजनने योग्य एवी संयम यतनाने (पूर्वे कहेला क्रोधादिकना जयने) केम करतो नथी ? अर्थात् तपस्या करवानी शक्ति न होय तो क्रोधादिकनो जय करवामां यत्न कर. ” ३४४.

॥ इति तपोद्वारम् ॥

जांयमि देहसंदेहयमि, जयणाए किंचिं सेविज्जा ।

अंह पुंण सज्जो अ निरुज्जमो अ, तो संजमो केत्तो ॥३४५॥

अर्थ—“ साधुए देहने विषे संदेह एटले महारोगादिक कष्ट उत्पन्न थाय त्यारे यतनावडे (सिद्धांतनी आज्ञापूर्वक) कांडक (सावध-अशुद्ध आहारादिक) सेवन करवुं-पण पळीथी ह्यारे सज्ज (नीरोगी) थाय त्यारे पण जो ते (साधु) निरुद्यमी थाय, एटले शुद्ध आहारादिक छेवामां उद्योग न करे अने अशुद्धज ग्रहण करे, तो तेतुं संयम शी रीते कहेवाय ? नज कहेवाय. केमके आज्ञा विरुद्ध आचरण करवाथी तेतुं संयम कहेवाय नहीं ” ३४५.

गाथा ३४३-जहा जहा । विवक्त्या । गाथा ३४४-यदि तावत् । जईजर्म ।

गाथा ३४५-जयणाई ।

मौ कुणैउ जई तिगिच्छं, अहियासेऊण जई तरेंइ सम्मं ।

अहियांसितस्स पुणो, जई से जोगां नं हांयति ॥ ३४६ ॥

अर्थ—“ जो (साधु) ते रोगने सारी रीते सहन करवाने समर्थ होय, तथा जो रोगने सहन करता एवा ते साधुना जोगो (प्रविच्छेखनादिक क्रियाओ) हीन न थाय तो यतिए चिकित्सा (रोगनी प्रतिक्रिया—औषध) न करता; अर्थात् जो संयमनी क्रियाओ रोगने लीधे सीदाती होय—शियिळ घती होय तो चिकित्सा करवी. ” ३४६.

निच्चं पवर्यणसोहाकराण, चरंणुज्जुआण साहूणं ।

संविग्गविहारीणं, सर्व्वपयत्तेण कांयव्वं ॥ ३४७ ॥

अर्थ—“ नित्य प्रवचननी (जिनशासननी) शोभा (प्रभावना) करनारा, चारित्रने विषे उद्यम करनारा अने संविग्ग एट्ठे घोक्षनी अभिलाषावडे विहार करवाना स्वमानवाळा एवा साधुओलुं सर्व प्रयत्न (शक्ति) वडे वैयावच करवुं. ” ३४७.

हीणस्सं विसुंद्धपरुवगस्स, नांणाहियस्स कायव्वं ।

जणंचित्तगहणत्थं, कंरिति लिंगावसेसे वि ॥ ३४८ ॥

अर्थ—“ विशुद्ध प्ररूपणा करनार अने ज्ञान (सिद्धान्तना ज्ञान) थी अचिक (संपूर्ण) एवा हीननुं पण एट्ठे थियिलाचारीनुं पण वैयावृत्त्य करवुं; अर्थात् क्रियाहीन छातां पण जो ज्ञानी होय तो तैनुं वैयावृत्त्य करवुं उचित छे. वळी जनना (लोकना) चित्तने ग्रहण (रंजन) करवा माटे एट्ठे के ‘ आ लोकोने घन्य छे के तैओ गुणवान छातां पण उपकारबुद्धिथी निर्गुणनुं पण वैयावृत्त्य करे छे. ’ एवी रीते लोकना चित्तने प्रसन्न करवा माटे मात्र लिंगधारीने विषे पण वैयावृत्त्य करे छे; अर्थात् लोकापवादनुं निवारण करवा माटे ज्ञान अने क्रियाथी हीन एवा वेपधारीनुं पण वैयावृत्त्य करवुं. ” ३४८

समिई कसायमारव० इत्यादि २९५ भी गायानो विस्तारार्थं कह्यो. हवे लिंगधारीनुं स्वरूप कहे छे—

दगंपाणं पुंप्फफलं, अणोसणिज्जं गिहंत्थकिच्चाइं ।

अजया पडिंसेवंती, जईवेसविडंबगा नंवरं ॥ ३४९ ॥

गाथा ३४६—तिगिच्छं=चिकित्सा। आहियासेऊण=अध्यासितुं—प्रथिलोहुं। अहियासंतस्स।

गाथा ३४७—सोहाकरण। गाथा ३४८—गाहणत्थं। गाथा ३४९—गिहत्थं।

१ टीकाकार अहीं दश गायानो अर्थ कह्यो पम कले छे, परंतु गाथा ५४ थाय छे.

અર્થ—“ અસંયમીઓ (શિથિલાચારીઓ), સચિત્ત જલ્દનું, પાન, જાત્યાદિક પુષ્પો, આન્નાદિકનાં ફલો, અપેક્ષણીય (આધાકર્મોદિ દોષવાલો) આહારાદિક, તથા વ્યાપારાદિક શ્રાવકનાં કાર્યોને કરે છે, સંયમને પ્રતિહૂલ્લ શ્રાવરણ આચરે છે, તેઓ કેવલ યતિવેષની વિદંબના કરનારાજ છે, પરંતુ અલ્પ પળ પરમાર્થના સાધક નથી. ” ૩૪૯.

ઓસન્નયા અવોહી, પવયણઠ્ઠભાવણા યં બોહિફેલં ।

ઓસન્નો વિ વરં પિહું—પવયણઠ્ઠભાવણાપરમો ॥ ૩૫૦ ॥

અર્થ—“ તેવા ઉપર કહેલા ધ્રુષ્ટ ચારિત્રવાલાનો અવસન્નતા કે ૦ પરામ્ભ થાય છે, તથા તેમને અવોધિ ઇટલે ધર્મની પ્રાપ્તિનો અભાવ થાય છે. કેમકે પ્રવચન (શાસન)-ની ઉદ્ભાવના—પ્રમાવનાની દૃઢિ કમ્વાધીજ બોધિરૂપ ફલની પ્રાપ્તિ થાય છે, પ્રવચનની હીલના ક વાથી બોધિલામ થતો નથી પરંતુ પૃથુ (વિસ્તાગ્વાલી) પ્રવચનની ઉદ્ભાવના (શોમા)ને વિષે નમ્પર રહેનો ઇવો અવમન્નો ઇટલે શિથિલાચારી પગ શ્રેષ્ઠ જાણવો; અર્થાત્ વ્યાખ્યાન વિનેરેથી શાસનની પ્રમાવના કરનાર શિથિલાચારી પણ શ્રેષ્ઠ જાણવો. ” ૩૫૦

ગુણંહ, ણો ગુણૈરયણાયરેસુ, જો કુર્ણંદૃ તુલ્લમ્પોંગં ।

સુર્નવસ્સિણો ઐ હીલ્હ, સમ્મંત્તં કોમ્લં તસ્સં ॥ ૩૫૧ ॥

અર્થ—“ જે ચારિત્રાદિક ગુણે કરીને હીન ઇવા સાધુ ગુણના સમુદ્ર રૂપ સાધુ-ધોની સાયે પોતાના આન્માને તુલ્ય કરે છે ઇટલે ‘અમે પણ સાધુ ક્રીઈ’ ઇમ માને છે, તથા જે સારા તપસ્વીઓની હીન્ના કરે છે તે પુરુષનું (ધ્રુષ્ટાચારી સાધુનું) સમકિત કોમલ—અસાર છે. અર્થાત્ તેને મિથ્યાદૃષ્ટિ જાણવો. ” ૩૫૧.

ઓસન્નસ્સ મિંહિસ્સ વં, જિણપવયણતિવ્વભાવિયમહ્સસ્સ ।

કં રંદૃ જં અણવજ્જં, દદ્ધસમ્મત્તસ્સ વંત્યાસુ ॥ ૩૫૨ ॥

અર્થ—“ જિનેશ્વરના પ્રવચન (સિદ્ધાન્ત ધર્મ) વડે જેની મતિ ભાવિત (રક્ત) થયેલી છે, અર્થાત્ જે જિનધર્મના રાગમાં રક્ત થયેલાં છે, તથા જે દૃઢ સમકિતવાલો ઇટલે દર્શનમાં નિશ્ચલ છે, ઇવા અવસન્ન (પોસંત્યાદિક) નું અથવા ગૃહસ્થીનું ક્ષેત્ર કાલાદિક અવસ્થાને વિષે (ક્ષેત્ર કાલાદિક જોઈને) જે વૈયાટ્ટપ્યાદિક કરવાનાં આવે તે અનવય-નિવવાપ ઇટલે દૂષણરહિત છે. ” ૩૫૨.

ગાથા ૩૫૦—અવસન્નતા—પરામ્ભઃ ।

ગાથા ૩૫૧—કોમલં—અસારં ।

ગાથા ૩૫૨—ગિહસ્સ । ભાવિયમયસ્સ ।

पांसत्थोसन्नकुसीलनीयसंसत्तजणमहाच्छंदं ।

नांऊण तं सुंविहिया, संव्वंपयत्तेण वज्जंति ॥ ३५३ ॥

अर्थ—“ पार्श्वस्थ (ज्ञान, दर्शन अने चारित्र्यनी पासे रहेनार—तेने नरो स्नेहनार पासध्या), अवमन्न (चारित्र्यने विषे शिथिलाचारी), कृशी ३ (साधुना शील—आचार रहिन), नीच (अविनयवडे भणवाथी ज्ञाननो विराधक), संन कनन (ज्ञां. जेरो—जेरो संग मळे त्यां—तेनी संगतियो तेवो थाय, ते संसक्त कहेजाय छे), तथा यथाच्छंद (पोतानी मतियो उत्सूत्रनी प्ररूपणादि करनार) एवा ते पार्श्वस्थादिकने जाणीने (तेमना स्वरूपने जाणीने) सुविहित साधुओ ते पार्श्वस्थादिकनो सर्व मयत्न (शक्ति) वडे त्याग करे छे; अर्थात् तेओ चारित्र्यना विनाश करनार होवाथी तेओनो संग करता नथी. ” ३५३. हवे पार्श्वस्थादिकनां लक्षणो कहे छे—

बायांलमेसणाओ, नं रख्खेइ प्राइंसिज्जपिंडं चं ।

आंहारेइ अभिख्वं, विगंइओ सन्निहिं खंइ ॥ ३५४ ॥

अर्थ—“ जे बेंताळीश एषणा—आहारना दोषोनुं. रक्षण करता नथी, अर्थात् बेंताळीश दोषरहित आहार छेता नथी, घाशीपिंड (छोरं रमाडवायी आहार मळे ते) निवारता नथी तथा शय्यातरपिंड ग्रहण करेछे; वळी जे कारण विना निरंतर (बारंवार) दूध दीं धी विगेरे विकृतिनुं भक्षण करे छे तथा जे रात्रिए खाय छे अथवा कावीने रात्रिए राखी हुकेळी वस्तुनुं दिवसे भक्षण करे छे, (ते पार्श्वस्थ कहेवांय छे.) ३५४.

सूरूपमाणभोजी, आंहारेइ अभिख्कमांहारं ।

नं यं मंडलीइं भुंजइ, नं यं मिख्वं हिंडंइ अलंसो ॥ ३५५ ॥

अर्थ—“वळी जे सूरूपमाण एटछे सूर्योदयथी मांडीने सूर्यास्त सुधी खावाना स्वभाववाळो छे एटछे आखो दिवप खाला करनारो छे, जे बारंवार आहार करे छे—खाय छे, अने जे साधुनी मंडळीमां (माये) वेसीने भोजन करतो नथी, एटछे एकचोळ भोजन करे छे, तथा आळसु एवो जे भिक्षाने माटे अटन करतो नथी, एटछे थोडे चेरथी घणो आहार ग्रहण करे छे. ” ३५५.

गाथा ३५३—पांसत्थो ओसन्नकुसीलनीयसंसत्तजण । नाऊण ।

गाथा ३५४—रख्खेइ ।

गाथा ३५५—ओइं । मंडलीय । हिंडय ।

કીવો નં કુર્ણંદ લોઅં, લજ્જઈ પંડિમાઈ જલ્મર્વણેઈ ।

સોવાંહણો અં હિંદેઈ, બંધેઈ કહિપંટ્ટમકેજ્જે ॥ ૩૫૬ ॥

અર્થ—“વઢી છીવ કે૦ કાયર ઇવો જે લોચ કરતો નયો, કાયોત્સર્ગ કરતાં જે લજ્જા પામે છે, શરીરના મેલને જે હાથવઢે અથવા જલ્મવઢે દૂર કરે છે, તથા જે ઉપાન (જોડા) સહિત ચાલે છે, અને જે કાર્ય વિના કેઢે ચોલપટ્ટો વાંધે છે.” ૩૫૬.

ગામં દેસં ચં કુલં, મંમાણ પીઠફલ્ગપડિવદ્ધો ।

ધર્સરણેસુ પર્સજ્જઈ, વિહરંદ યં સર્કિંચંણો રિક્કો ॥ ૩૫૭ ॥

અર્થ—“વઢી તે પાસત્યાદિક ગામ, દેશ અને કુલને વિષે મમતાઈ કરીને વિચરે છે; ઇટલે આ ગામ, આ દેશ, આ કુલ વિગેરે મારાં છે ઇવી મમતા રાખે છે પીઠફલ્કને વિષે પ્રતિવદ્ધ ઇટલે વર્ષાન્કતુ વિના ષણ પીઠ ફલ્કાદિકનો ઉપયોગ કરે છે—પ્રણ કરે છે ઘરો (ઉપાશ્રયાદિક) નવાં કરાવવાનો પ્રસંગ રાખે છે, ઇટલે તેની ચિંતા ઘરાવે છે, અને સુવર્ણાદિક દ્રવ્યનો પરિગ્રહ પાસે છતાં પણ હું રિક્ક (દ્રવ્યરહિત) હું—નિર્ગ્રીથ હું, ઇમ છોકો પાસે બોલતો વિહાર કરે છે—વિચરે છે—ફરે છે.” ૩૫૭.

નંહદંતતેસરોમે, જમેઈ અંચ્છોલઘોઅણો અંજઓ ।

વાહેઈ યં પંલિયંકં, અંદરેગપમાણમચ્છુંરંદ ॥ ૩૫૮ ॥

અર્થ—“ નલ, દાંત, (મસ્તકના) કેશ અને શરીરના રોમની શોભા કરે છે, ષણા જલ્મથી હસ્તપાદાદિક ધૂણ છે અને ચતનારહિત વર્તે છે, શુદ્ધસ્થીની જેમ પલ્યંકાદિક વાપરેછે તથા અધિક અમાણવાલા (પ્રમાણથી અધિક ઇવા ઉત્તરપદાદિક) સંચારાને પાથરે છે—ઇટલે સુલક્ષ્યા કરે છે.” ૩૫૮.

સોવંદ યં સંવરાઈ, નીસંદમચેયંણો નં વાંશરંદ ।

નં પમંજ્જંતો પંવિસઈ, નિસિહિયાવસ્સિયં નં કૈરંદ ॥ ૩૫૯ ॥

અર્થ—“ વઢી કાઠ્ઠની જેમ નિષ્પત્ત (અત્યંત) ચેતનારહિત ઇવો તે (પાર્શ્વ-સ્થાદિક) આસી રાત્રિ (ચારે પ્રહર) સુદ રહે છે રાત્રિઈ ગણના વિગેરે સ્વાધ્યાય

ગાથા ૩૫૬-સુવણેઈ । સોવાંહણોવિ । કહિપંટ્ટમકજ્જે । સોપાનત્=પાદરક્ષણસહિત ।

ગાથા ૩૫૭-મમાયણ । વિહરંદ ।

ગાથા ૩૫૮-લજ્જાલ । જમેઈ=મૂલવત્તિ । અસ્તોકજ્જલેન આબનં પ્રક્ષરંતેનં વંસ્ય સઃ ।

વાહેઈ । અચ્છુરંદ=આસ્તરતિ ।

ગાથા ૩૫૯-સોવંદ=સ્વપિતિ । નીસંદ=નિષ્પેદઃ । વાંશરંદ=સ્વાધ્યાય કરોતિ ।

करतो नयी. रात्रे रजोहरणादिक वडे प्रमार्जन कर्या विना उपाश्रयने विषे प्रवेश करे छे, तथा प्रवेशसमये नैषेधिकी अने निर्गमन वखते आवश्यकी इत्यादि साधु सामाचारीने करतो नयी. ” ३५९.

पाँय पंहे नै पॅमज्जइ, जुगमाँयाए नॅ सोर्हए ईरियं ।

पुंढवीदगअगणिमारुअवणस्सइतसेसु निरविस्सो ॥ ३६० ॥

अर्थ—“ मार्गमां जतां, गामनी सीमामां प्रवेश करतां अथवा नीकळतां पादरुं प्रमार्जन करतो नयी. युगमात्र (युगप्रमाण—चार हाथ)भूमिने विषे इर्यानी शुद्धि करतो चाळतो नयी. पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय ए छ जीवनिकायने विषे निरपेक्ष (अपेक्षा रहित) रहे छे; अर्थात् तेओनी विराघनाकरतां शंका पामतो नयी. ” ३६०.

संख्वं थोवं उर्वंहिं, नॅ पेहँए नॅ यं करेइ संज्जायं ।

सहँकरो शंझँकरो, लहुँओ गणँमेयतत्तिलो ॥ ३६१ ॥

अर्थ—“ सर्वथी अल्प एवी उपधि (मुखवह्निकापत्र) नी पण प्रतिछेखना करतो नयी, अने वाचनादिक स्वाध्याय करतो नयी. रात्रि ए मोटेथी शब्द करे छे. बीजाओं साथे कळह करे छे, तोछडाइ राखे छे एटछे गंभीरतानो गुण राखतो नयी, तथा गण एटछे संघावानो भेद करवामां—अंदर अंदर कुसंप करवामां तत्पर रहे छे. ” ३६१.

खिँत्ताईयं मुंजँइ, काँलाईयं तँहेव अँविदिन्नं ।

गिहँई अणुँइयसूरे, असँणाई अँहव उवंगरणं ॥ ३६२ ॥

अर्थ—“ क्षेत्रातीत (वे कोशथी वघारे दूर क्षेत्रथी आणेछो आहारादिक) खाय छे, कालातीत (त्रण प्रहर करतां अधिक कालनो लावेछो आहारादिक खाय छे, तथा अदत्त (नहा आपेछा आहारादि) नो उपभोग करे छे. वळी सूर्योदय पहेलां अन्ननादिक (चार प्रकारनो आहार) अथवा उपकरणोने (वह्नादिकने) ग्रहण करे छे. आवा प्रकारना साधु पासत्यादिक कहेवाय छे. ” ३६२.

ठ्वणकुले नॅ ठवेई, पौसत्येहिं चँ संगंयं कुणँइ ।

निर्चमवंज्जाणरआ, नॅ यं पेहपमज्जणाँसीलो ॥ ३६३ ॥

गाथा ३६०—पुढधि । मारिय ।

गाथा ३६१—शंझकरो कळहकरः । तत्तिलो । गणभेदे तत्परः ।

गाथा ३६२—अणुरय ।

गाथा ३६३—ठवेइय । कुणइ । पेहपमज्जणाँसीलो=अज्ञान मार्जनाशीलः ।

અર્થ—“સ્થાપના કુલ્લું એટલે વૃદ્ધ, ગ્લાન વિગેરેની અત્યંત ધંક્તિ કરનારા શ્રાવકના ગૃહોનું રક્ષણ કરતો નથી. એટલે કે કારણ વિના પળ તેમને ઘેર આહાર લેવા જાય છે, વાઙ્ઘી અઘાચારીઓ સાથે સંગતિ (દોસ્તી) કરે છે. નિરંતર અપધ્યાન (દુષ્ટ ધ્યાન) માં તત્પર રહે છે; તથા પ્રેક્ષા (દૃષ્ટિથી જોઈને વસ્તુ પ્રહણ કરવી તે) અને પ્રમાર્જના (રાજોહરણાદિક વહે પ્રમાર્જન કરીને—પુંજીને વસ્તુ શૂંપિપર ચૂકવી તે) કરવાના સ્વભાવવાળો હતો નથી.” ૩૬૩.

રીયંદ દંવદવાણ, મૂંદો પરિમંવદ તંહય રાયંણિણ ।

પરંપરિવાયં ગિંહ્દ, નિહુરંભાસી વિગંહસીલો ॥ ૩૬૪ ॥

અર્થ—“વઙ્ઘી જતાવઙ્ઘી (ઉપયોગ વિના) ચાલે છે, તથા મૂર્તિ ઇતો તે જ્ઞાનાદિક ગુણસ્તોથી અધિક ઇવા વૃદ્ધોનો પરામવ કરે છે, એટલે તેઓની સાથે સ્પર્શ કરે છે. પરનો પરિવાદ (અવર્ણવાદ) ગ્રંથે કરે છે—પરની નિંદા કરે છે; નિંહુર (કઠોર) ભાષણ કરે છે; અને રાજકયાદિક વિકયાઓ કરવાના સ્વભાવવાળો હોય છે—વિકયા કરે છે.” ૩૬૪.

વિજ્જં મંતં જોગં. તેગિંચ્છં કુણંદ મૂંદકમ્મં ચં ।

અર્લ્લરનિમિત્તજીવી, આરંમપરિગ્ગહે રંમંદ ॥ ૩૬૫ ॥

અર્થ—“દેવીઅધિષ્ઠિત તે વિદ્યા, દેવઅધિષ્ઠિત તે મંત્ર, અદ્વય કરણાદિક યોગ, રોગની પ્રતિક્રિયા (ઓષધ પ્રયોગ) અને ભૂતિકર્મ (રાસ વિગેરે મંત્રીને ગૃહસ્થીને આંપવાનું કર્મ) કરે છે. અક્ષર (લેલકોને અક્ષરવિદ્યા આપવી તે) તથા નિમિત્ત (શુભાશુભ લગ્નવઙ્ઘાદિકના પ્રકાશ કરવા) વહે આજીવિકા કરનાર ઇતો તે આરંમ (પૃથ્વાંકાયાદિકના ઉપમર્દન) અને અધિક ઉપકરણના સંચયરૂપ પરિગ્રહ તેને વિષે રમે છે—આસક્ત રહે છે.”

કંજ્જેણ વિણાં ઉમ્મંહમણુંજાણાવેદિ વિવંસઓ સુંઅદિ ।

અંજ્જિયલામં મુંજદિ, ઇંતિયનિસિન્જાસુ અંમિરમદિ ॥ ૩૬૬ ॥

અર્થ—“કાર્ય વિના (નિરર્થક) ગૃહસ્થોને રહેવા માટે અવગ્રહ શૂંમિની અજ્ઞા કરે છે—માર્ગે છે. દિવસે જ્ઞયન કરે છે. આયિકાના લાખને (સાધ્વીણ લાવેલા આહ-

ગાથા ૩૬૪—રીઅર્હય=ગચ્છતિ ચ ।

ગાથા ૩૬૫ તેગિચ્છં—રોગપ્રતિક્રિયાં ।

ગાથા ૩૬૬—સુપદ ।

रने) खाय छे. स्त्रीओनी निषेधा (आसनो) उपर क्रीडा करे छे, एटले स्त्रीओना उठ्या पछी तत्काल ते स्थाने बेसे छे." ३६६.

उच्चारें पोसवणे, खेले सिंघाणए अणाँउत्तो ।

संथारग उवहीणं, पडिकमई सवासपाँउरणो ॥ ३६७ ॥

अर्थ—“ उच्चार (मळ), प्रसवण (सूत्र), खेल (म्लेष्म बडखो विगेरे) अने सिंघाण (नामिकानो मळ) परठववाने विषे अनायुक्त (असावधान) एटले यतना त्रिना परठवनार होय छे—परठवे छे. संस्तारक अथवा उपधि उपर रहीनेज वखना प्रावरण (प्रकर्ष घेण) सहित प्रतिक्रमण करे छे; (अथवा स जूदू पद राखी, वा. एटले अथवा सपाउरणो प्रावरण सरित एवो अर्थ करवो.)” ३६७.

नै करेइ पंहे जंयणं, तँलियाणं तँह करेइ परिभोगं ।

चैइ अणुंबद्धवासे, संपंस्कपरपस्कओमाणे ॥ ३६८ ॥

अर्थ—“ मार्गमां चालतां यतना करतो नथी, तथा तलिक एटले पादत्राण (जोडा) भोजा विगेरेनो उपभोग करे छे अने पोताना पक्षमां एटले साधुओमां तथा परपक्षमां एटले अन्यदर्शनीओमां अपमान पामीने अनुबद्ध काळमां—वर्षाक्रहुमां पण विहार करे छे. ” ३६८.

संजोअइ अइ बहुअं, इंगाल सधूमगं अण्डाए ।

भुंजइ खंबलडा, नै धैरेइ अं पायंपुंछपणं ॥ ३६९ ॥

अर्थ—“ बळी संयोग करेले एटले स्वादने माटे जूदा जूदा द्रव्योने मिश्रित करे छे, अतिघणुं जमे छे, इंगाल के० सारं भोजन रागबुद्धिथी जमे छे अने सधुम-गं के० अनिष्ट भोजन मुखना विकारे करीने एटले मुख मरडीने खाय छे. अनर्थक के० घुघा वेदनीयना के वैयाहृष्य विगेरेना कारण विना रूप अने वळने माटे भोजन करे छे, तथा पादमौंछन—रजोहरणने पण धारण करतो नथी—पासे राखतो नथी.” ३६९.

अडूम छह चउत्यं, संवँच्छर चाउमास पख्वेसु ।

नै करेइ सायंबहुलो, नै यं विहँइ माँसकप्येणं ॥ ३७० ॥

अर्थ—“ सातावडे (मुखवडे) बहुल एटले मुखना शीलवाळो (मुखनी तीव्र

गाथा ३६८—अइर्ण । अणुबद्धवालो । परपक्खिओमाणे ।

गाथा ३६९—संजोयइ अइबहुयं ।

गाथा ३७०—चान्मास । न करइ सायाबहुलो । मासकप्येण ।

इच्छावाळी तें (पास्त्यादिक) सांवत्सरिक पर्व अष्टम, चातुर्मासीए छह अने पक्ष (चतुर्दशी) ने दिवसे चतुर्थ (उपवास) तप करतो नथी, तथा चातुर्मास शिवाय शेष काळे क्षेत्रो छतां पण मासकल्पनी मर्यादा प्रमाणे विहार करतो नथी. ” ३७०.

नीयं गिह्णं पिंडं, एगोंगि अत्थंए गिह्णकहो ।

∴ पार्वसुआणि अंहिज्जइ, अंहिगारो लोगंगहणंमि ॥ ३७१ ॥

अर्थ—“ नित्य एटले अमुक घेरथी आटलो आहार लेवो एम नियमित रीते पिंड (आहार) ग्रहण करे छे, एकाकी (एकलो) रहे छे, पण समुदायमां रहतो नथी- गृहस्थोनी कथा (प्रवृत्ति) जेने विषे होय एवी वातो करे छे, पापशास्त्रो (ज्योतिष तथा वैदक विगेरे) नो अभ्यास करे छे तथा लोकोने रंजन (वन) करवा माटे लोकोना मनमां अधिकार करे छे, एटले तेमनी वातोमां मोटाइपद धारण करो मुख्यता मेळवे छे, परंतु पोतानी संयमक्रियाना अधिकारी थता नथी. ” ३७१.

परिमवइ उगोङ्गारी, सुधं मग्गं निगूहए बांलो ।

विहरइ सायांगुरुओ, संजमविगलेसु खित्तिसु ॥ ३७२ ॥

अर्थ—“ वाळक (मूर्ख) एवा ते पासध्यादि उग्रकारीनो एटले उग्र विहार करनार मुनिओनो पराभव करे छे (तेओने उपद्रव करे छे). थुद्ध एवा मोक्षमार्गनुं आच्छादन करे छे-गोपवे छे. अने साता (मुख) ने विषे शुक्क (लंपट) एवो ते संयमथी विकल एटले सारा साधुओथी रहित एवा क्षेत्रोने विषे विहार करे छे. ” ३७२.

उगोङ्गं गाइ हसेइ, असंबुटो संइ करेइ कंदपं ।

गिह्णिकज्जचित्तगो विर्यं, ओसंभे देइ गिह्णं वं ॥ ३७३ ॥

अर्थ—“ असह्यत एटले मुखने पहोळं करीने मोटा शब्दबडे गायन करे छे अने हसे छे. हमेशां कंदर्प एटले कामने उत्पन्न करे तेवी कथाओ करे छे. वळी ते गृहस्थीओना कार्यनी चिंता (विचार) करे छे, तथा अवसन्न (भ्रष्टाचारी) ने वस्त्रादिक आपे छे अथवा तेनी पासेथी ग्रहण करे छे. ” ३७३.

धम्मकहाओ अंहिज्जइ, घरंघरं भमंइ परिक्हंतो अं ।

गण्णाइ पमाणेण यं, अंईरित्तं वेहइ उवगंरणं ॥ ३७४ ॥

गाथा ३७१-अत्थप-तिष्ठति । पावसुआणि ।

गाथा ३७२-निगूहइ । सायांगरूओ ।

गाथा ३७३-उगोङ्ग-उग्रतया । सय । सइ-सदा । असंबुट-प्रसारितमुखः । ओसन्नो ।

गाथा ३७४-गणणाय ।

अर्थ—“ धर्मनी कथाओने लोकना चित्तनुं रंजन करवा माटे भंगे छे, अने ते धर्मकथाओने कहेता छतो भिधाने माटे घेर घेर अटन करे छे—भमे छे; तथा गणना (गणतरी) एटले साधुओने चौद अने साध्वीओने पचीस कल्पक चोलपट्ट विगेरे उपकरणोनी गणना (संख्या) कहेली छे, तथा दरंकनुं प्रमाण कहेलुं छे. ते संख्या अने प्रमाणायी अधिक संख्या अने प्रमाणवाळां उपकरणोने धारण करे छे—राखे छे.” ३७४.

वारस वारस तिन्नि यं, काइंपउच्चारकालभूमीओ ।

अंतो बहिं चं अंहियासि, अणंहियासे नं पडि^२ लेहे ॥ ३७५ ॥

अर्थ—“ वार लघुनीतिनी भूमि, वार वहीनीतिनी भूमि अने व्रण काळग्रहणे योग्य भूमि; एम उपाश्रयनी अंदर अने बहार मळीने सतावीस स्थंडिल भूमिओ छे. तेमां जो शक्ति होय तो दूर जवुं योग्य छे, अने दूर जवानी शक्ति न होय तो—खमी शके तेम न होय तो समीप (नजीक)नी भूमि योग्य छे. तेवी भूमिने पडिलेहे नहीं—उपयोग पूर्वक जुए नहीं तेने पास थादिक जाणवा.” ३७५.

गीयंत्यं संविगं, आयरिअं मुंअइ वलइ गच्छसं ।

गुरुणो यं अणांपुच्छ, जं किंचि वि^२ देइ गिहइ वां ॥३७६॥

अर्थ—“ गीतार्थ (सूत्रार्थना जाणनार) अने संविग (मोक्षमार्गना अभिलाषी) एवा आचार्य (पोताना धर्माचार्य)ने कारण विना सूकी देछे—तजे छे. गच्छनी सामो थाय छे एटले समुदायने शीखामण आपता एवा गच्छ (समुदाय)नी—आचार्यनी सामे उत्तर आपे छे—साधुं बोले छे; तथा गुरुनी आज्ञा विना जे काइ पण वस्तु (वस्तु विगेरे) वीजाने आपे छे अथवा पोते बोजां पासेयी ग्रहण करे छे.” ३७६.

गुरुंपरिभोगं भुंजइ, सिंज्जासंथारउवकरणजायं ।

किंचित्तिय तुमं तिं भासंइ, अविणीओ गंविओ लुंछो ॥३७७॥

अर्थ—“ गुरुने उपभोग करवा लायक एवी अथवा गुरु वापरता होय ते शय्या (शयनभूमि), संस्कारक (तृण विगेरेनो संथारो) तथा कपडां कांबली विगेरे उपकरणोना समूहने पोते भोगवे छे—पोते वापरे छे; तथा गुरुए घोलाव्यो छतो अविनीत (विनय रहित), गर्बित (गर्विष्ठ) अने लुब्ध (विषयादिकमां लंपट) एवी ते

गाथा ३७६—आयरिअं । वलइ=बलति-सन्मुखमुत्तरं ददाति ।

गाथा ३७७—उवकरण । भासइ ।

‘तु’ एम कही जवाव आपे छे-तुंकारो करे छे; भगवन्! एवा बहुमान पूर्वक; बोलतो नथी. ” ३७७.

गुरुपंचरकाणगिलाणसेहबालाउलस्स गच्छस्सं ।

नै करैइ नेयं पुंच्छइ, निद्धंमो लिंगमुवजीवी ॥ ३७८ ॥

अर्थ—“ निधर्म (धर्मरहित) अने लिंगउपजीवी एटले मात्र वेप धारण करीने-वेचना निमित्तवडे ज आजीविका करनार एवो ते (पार्श्वस्थादिक) गुरु (आचार्य उपाध्यायादि), पच्चरुत्ताणवाळा (अनश्ननादि-उपवासादि तपस्यावाळा), ग्लान (रोगी), सेह-शिष्य (नवदीक्षित) अने बाळ (छुल्लक) साधुओथी आकुळ (भरेला) एवा गच्छनुं (समुदायनुं) अपेक्षित वैयाहत्यादिक पोते करतो नथी, तथा हुं श्रुं काम करूं ? एम बीजा जाण साधुआने पूछतो पण नथी. ” ३७८.

पंहंगमणवसहिआहारसुयणथंडिलविहिप्रिड्वणं ।

नौयरइ नेवं जाणंइ, अज्जावट्टावणं चैवं ॥ ३७९ ॥

अर्थ—“ मार्गे चालवानो, वसति (रहेवा माटे उपाश्रय) मागवानो, आहार लेवानो, सुवानो तथा स्थंडिलने विधि तथा परिष्ठापान एटले अशुद्ध आहारादिकहुं परठवहुं-तेने जाणतो छतो पण (धर्मबुद्धि रहित होवाथी) आचरतो नथी, अथवा जाणतो नथी तेथी आचरतो नथी. तेमज आर्या (साध्वी)ओने वर्तावहुं-धर्ममां भवर्तावहुं ते पण जाणतो नथी. ” ३७९.

संच्छंदगमणउट्टाणसोअणो अप्पणेण चरणेण ।

समंणगुणमुक्कजोगी, बहुंजीवखयंकरो ममइ ॥ ३८० ॥

अर्थ—“ स्वच्छंद (पोतानी मरजी प्रमाणे) गमन करनार, उठनार अने सुनार, तथा पोताना कल्पित आचरणवडे चालनार (वर्तनार), भ्रमण (साधु)ना ज्ञानादिक गुणोना योगने मूकनार (तजनार)-ज्ञानादि गुण विनानो तथा बहुजी-वनो क्षय करनार एवो ते (ज्यां त्यां) भ्रमण करे छे. ” ३८०.

चित्थिं अं वायुपुत्तो, परिभमइ जिणंमयं अयाणंतो ।

थद्धो निब्बिन्नाणो, नै यं पिच्छइ किंचिं अप्पंसमं ॥ ३८१ ॥

गाथा ३७८-निधम्मो । लिंगमुवजीवि ।

गाथा ३७९-सुअण । परिठवणं ।

गाथा ३८०-सोअणो । चरणेण । अप्पणेण=आत्मना कल्पितेन । भमइ ।

गाथा ३८१-वायुपुत्तो । चित्थि=चित्ति-वृत्ति ।

અર્થ—“ રાગાદિક રોગના ઔષધ તુલ્ય જિનમતને નહીં જાણતા એવો તે વાચુંથી પૂર્ણ (ભરેલા) ઘસ્ટિ (ચામડાની પાળી ભરવાની મસક) જેમ ઉછલે તેમ ગર્વથી મરપૂર થઇને સ્વચ્છંદલપણે પરિભ્રમણ કરે છે—કરે છે; તથા સ્તબ્ધ (અનમ્ન) અને નિર્વિજ્ઞાન—જ્ઞાનરહિત એવો તે કોઇને લવલેશ પણ પોતાની તુલ્ય જોતો—જાણતો નથી, અર્થાત્ સર્વને તુળ સમાન ગણે છે. ” ૩૮૧.

સ્વચ્છંદગમણુઠ્ઠાણસોઅણો મુંજેઈ ગિંહીણં ચં ।

પાસંત્યાઈઠ્ઠાણા. હંવતિ ઈમંદ્યા ઈં ॥ ૩૮૨ ॥

અર્થ—“ ઘઠી સ્વચ્છંદ ગમન, ઉત્થાન અને શયનવાલો એવો તે (આ વિશેષણ ૩૮૦ મી ગાથામાં આપ્યા છતાં અહીં ફરીથી આપવાનું કારણ ગુરુની આજ્ઞા વિના શુભપ્રાપ્તિ થતી નથી, એમ જાણાવવા માટે છે.) ગૃહસ્થીઓની મધ્યે મોજન કરે છે. ઇત્યાદિક પૂર્વે કહેલા પાર્શ્વસ્થાદિકનાં સ્થાનો (લક્ષણો) હોય છે. ” ૩૮૨.

ત્યારે કોઈ સાધુઓ છેજ નહીં ? એવી કોઈને શંકા થાય તે ઉપર કહે છે—

જો હુજ્જંઓ અસમત્યો, રોગેણ વં પિલ્લિંઓ ઇસિયંદેહો ।

સર્વ્વમવિ જહાંમણિયં, કયાઈ નં તરિજ્જં કાંઉં જે ॥ ૩૮૩ ॥

સોવિયં નિયંયપરિક્કમચવસાપધિઈવલં અંગૂહંતો ।

મુંત્તૂણ કૂહર્ચેસિયં, જેઈ જૈંયંતો અવસ્સ જેઈ ॥ ૩૮૪ ॥ યુગમ્મ ॥

અર્થ—“ જે સાધુ સ્વભાવેજ અસમર્થ (વઢહીન) હોય, અથવા શ્વાસ, કાસ અને જ્વરાદિક રોગથી પીડિત સતો જીર્ણ દેહવાલો હોય, તેથી કરીને સમગ્ર એવું પણ યથાભિગત જિનેશ્વરે જેવું કહ્યું છે તેવું (આચરણ) કરવાને કદાચ શક્તિમાન ન હોય (‘ જે ’ વાક્યાલંકારને માટે છે.) ૩૮૩. તે પણ (દુર્મિશ અને રોગાદિક આપ્રતિર્ષા પહેલો છતો પણ) પોતાના પરાક્રમ (સંહનન ઘઠ) ને, વ્યવસાય (શરીરના ઉદ્યમ) ને, ધૃતિ (સંતોષ) ને અને ઘઠ પટલે મનોવઢ્ઠને નહીં ગોપવતો તથા કૂટ ચરિત્ર (કપટ) ને મૂકીને (તજી દેને) ચારિત્રને વિષે (યથાશક્તિ) યતના (ઉદ્યમ) કરતો એવો યતિ અવત્રય યતિ કહેવાય છે. ” ૩૮૪. હવે માયાવી (કપટી) નું સ્વરૂપ વતાવે છે—

ગાથા ૩૮૨—સોયણો । મુંજેઈ । પાસંત્યાઈઠ્ઠાણા । ઈમંદ્યા ।

ગાથા ૩૮૩—શુરિયદેહો । કયાઈ । ગાથા ૩૮૪—પરિક્કમ ચવસાઈ વિહ ।

अलसो संदो वैलित्तो, आलंबणतप्परो अंडपमाई ।

एवं ठिओ वि मंडई, अंप्पाणं सुंठिओ मिं ति ॥ ३८५ ॥

अर्थ—“ धर्मक्रियामां आळसु, शठ (मायावी), अवलिप्त (अहंकारी), आलं-
वनमां तत्पर (कोइ पण विषे करीने प्रमादनुं सेवन करवामां तत्पर) तथा अति प्रमादी
(निद्राविक्रयादिप्रमादवान)—एवो छतो पण ‘ हुं सुस्थित (भव्य—सारो छुं ’ एम
पोताना आत्माने माने छे. ” ३८५. हवे मायावीने पाळ्ळथी पश्चात्ताप करवो पडे छे,
ते विषे कपटपक्ष तापसनुं दृष्टान्त—

जो वियं पांडेऊणं, मांयामोसेहिं खाई मुद्धंजणं ।

तिगर्गा ममज्झवासी, सो सोअई कवंडखग्गु व्वं ॥ ३८६ ॥

अर्थ—“ वळी जे (मायावी) माया (कपट) करवामां मृषा (कूट) भाषण
वडे करीने—माया मृषावादे करीने मुग्ध जनने पाडीने (वन्न करीने) छेत्तरे छे, ते
पुरुष त्रण गामनी मध्ये (वच्चे) रहेनारा कपटक्षप नामना तपस्वीनी जेम शोक
करे छे. ” ३८६. संमदायागत ते कथा अहीं कहे छे—

कपटक्षप तपस्वीनी कथा.

उज्जयिनी नगरीमां एक अघोरशिव नामनो महा धूर्त ब्राह्मण रहेतो हतो.
ते महाकपटी, महाधूर्त अने महापापी हतो. तेथी राजाए तेने देश बहार काढी मूक्यो,
एटले ते चर्मकारना (मोचीना) देशमां गयो. त्यां चोर लोकोनी पळ्ळीमां जइने ते
चोरोने मळी गयो. पळ्ळीं तेणे चोरोने कहुं के—“जो तमे लोकोमां मारी प्रशंसा करो,
तो हुं परित्राजकनो वेष धारण करीने आ त्रण गामनी वच्चेनी अटधीमां रहूं अने
तमने घणुं घन मेळवी आपुं. ” ते सांभळीने चोरोए तेनुं कहेवुं कबूल कर्युं. पळ्ळी
ते ब्राह्मण तापसनो वेष धारण करीने ते त्रणे गामनी मध्ये रहीं कपटवृत्तिथी मास-
क्षपण करवा लाग्यो, अने ते चोरो पण कूटवृत्तिथी सर्वत्र कहेवा लाग्या के—‘ अहो !
आ महात्मा धन्य छे. आ तपस्वी निरंतर मासक्षपण करीने पारणुं करे छे. ’ ते
सांभळी सर्वे मुग्ध जनो तेनी एवी प्रवृत्ति जोइ तेने वंदना—नमस्कार करवा लाग्या,
अने भोजनने माटे पोताने घेर निमंत्रण आपी लइ जवा लाग्या. पळ्ळी तेने इच्छा
भोजन करावी. पोताना घरनी लक्ष्मी वताववा लाग्या; पोताना घरनी सर्व हकीकत
तेने कहेवा लाग्या, अने प्रसंगे प्रसंगे निमित्त विगेरे पूछवा लाग्या. ते कपटी तापस
पण लग्ना वळ्या लोकोने आगामी स्वरूप कहेवा लाग्यो. पळ्ळी ते कूटक्षपक रात्रि
माथा ३८५ विलित्तो।अईपमाई।सुंठिओमि=सुस्थितोऽस्मि । माथा ३८६-आइ=अचयति।सोयइ

चोरोने बोलावीने पोते. दिवसे जोयेला गृहस्थोना गृहोमां वधी हकोकत समजावी खातर पडावीने चोरी कराववा लाग्यो. ए प्रमाणे इमेशां चोरी करावतां तेणे त्रणे गामना लोकोने निर्धन कर्या. एकदा ते एक खेडुतना धरमां खातर पाडवा चोरोने लहने गयो. त्यां खातर पाडती वखते ते खेडुतनो पुत्र जागी गयो, एटले सर्वे चोरो नासी गया, पण एक चोर पकडाइ गयो. तेने पकडीने ते राजा पासे लह गयो. राजाए ते चोरने धमकी आपी कथुं के—'बोल, सत्य वात कही दे, नहीं तो तने मारी नांखीश.' त्यारे ते भय पामीने बोल्यो के—'हे महाराजा ! अमने आ कूटक्षप तापस जे घर वताचे छे ते घरे अमे खातर पाडोए छीए.' पछी राजाए तापस सहित सर्वे चोरोने पकडी मंगाव्या अने सर्वे चोरोने मारी नंखांव्या, मात्र एक तापसने जीवतो राख्यो; पण तेनी वने आंखो कडावीने मूकी दीयो. पछी ते तापस महा वेदनाने अनुभवतो सतो मनमां पश्चात्ताप करवा लाग्यो के—'हा ! मने विंकार छे ! में ब्राह्मण थइने कूटतापसनो वेष धारण करी घणा लोकोने छेतर्या. में लोकोने महा दुःखनुं कारण उत्पन्न कथुं. मारो आत्मा में मलिन कर्यो. हुं वने भवहारी गयो. जोके जे कांड अशुभ कार्य करवामां आवे ते सर्वे निंदापात्र तो छेज, परंतु तजस्वी थइने जे पुरुष पापकर्म करे छे ते अत्यंत निंदापात्र छे अने मलिनमां पण अति मलिन छे.' ए प्रमाणे पोताना आत्मानो शोक करतो ते तापस अत्यंत दुःखनो भाजन थयो. आ प्रमाणे बीजो पण जे कोइ धर्मने विषे कपट करे छे ते अत्यंत दुःखी थाय छे. ए आ कथानुं तात्पर्य छे.

॥ इति कपटक्षप तापस दृष्टान्तः ॥ ६६ ॥

हवे विराधकनुं स्वरूप कहे छे—

एगांगी पासर्थो, सच्छंदो ढणंवासि ओसंज्ञो ।

दुंगमाईसंजोगा, जंह वैहुआ तंह गुरु हुंति ॥ ३८७ ॥

अर्थ—'एकाकी (धर्मबंधु—अन्यद्वनि अने धर्मशिष्यरहित एकलो), पार्श्वस्थ (ज्ञानादिकनी पासे रहेनार), स्वच्छंदी (गुरुनी आज्ञा नहीं माननार—स्वेच्छाप चालनार), स्थानवासी (एकज स्थाने निरंतर वसनार) अने अवसन्न (प्रतिक्रमणादिक क्रियामां शिथिल). ए दोषोनो द्विकादिक संयोग एटले वै दोष, त्रण दोष, चार दोष. अने पांचे दोष मळेला जे पुरुषने विषे होय, तेमां जेम जेम जेने विषे बहु दोष रहेला होय, तेम तेम ते पुरुष गुरु (मोटो) विराधक होय छे.' ॥ ३८७.

हवे आराधकनुं स्वरूप कहे छे—

ગચ્છગાઓ અર્ણુઓગી, ગુરુસેવી અંનિયવાસિ યાઉત્તો ।

સંજોષ્ણ પૈયાળં, સંજમઆરાહગા મંણિયા ॥ ૩૮૮ ॥

અર્થ—“ ગચ્છની મધ્યે રહેનાર, અનુયોગી ઇટલે જ્ઞાનાદિકનું સંવન કરવામાં ડયોગી, ગુરુની સેવા કરનાર, અનિયતવાસી ઇટલે માસકલ્પાદિક વિહાર કરનાર અને પ્રતિક્રમણાદિક ક્રિયામાં આયુક્ત—ઉદ્યુક્ત. એ પાંચ પદાના સંયોગે કરીને સંયમ(ચારિત્ર)-ના આરાધક કહેલા છે; ઇટલે જેને વિષે આ ગુણોમાંથી વધારે વધારે ગુણ હોય તેને વિશેષ વિશેષ આરાધક જાણવો. ” ૩૮૮.

નિર્મમ નિરહંકારા, ઉવેંઉત્તા નાણદંસણચરિત્તે ।

ઈર્ગંચિત્તે વિ ઠિયાં, સંવંતિ પોરાણ્યં કમ્મં ॥ ૩૮૯ ॥

અર્થ—“ નિર્મમ કે૦ મમતા રહિત, અહંકાર રહિત અને વિશેષ અવબોધ રૂપ જ્ઞાનને વિષે, તત્ત્વશ્રદ્ધાન રૂપ દર્શનને વિષે, તથા આશ્રવના નિરોધરૂપ ચારિત્રને વિષે ઉપ-યુક્ત—ઉપયોગવાલા—સાવધાન એવા મહાપુરુષો એક ક્ષેત્રને વિષે રહ્યા હોય, તોપણ તેઓ પુરાણા(પૂર્વ ભવે સંચય કરેલા) જ્ઞાનાવરણાદિક કર્મને સ્વપાવે છે—નાશ કરે છે. ” ૩૮૯.

જિંયકોહમાણમાયા, જિંયલોહપરીસહા યં જે ધીરં ।

વુદ્ધાંવાસે વિ ઠિયાં, સંવંતિ ચિરસંચિયં કમ્મં ॥ ૩૯૦ ॥

અર્થ—“ જેઓએ ક્રોધ, માન અને માયાનો જય કર્યો છે, જેઓ હોમસંજ્ઞા રહિત છે, અને જેઓએ છુદ્ધા પિપાસાદિક પરીપહોનો જય કર્યો છે એવા જે ધીર (સત્ત્વવાલા) પુરુષો છે તેઓ વુદ્ધાવસ્થામાં પણ એક સ્થાને રહ્યા સતા ચિરકાલના સંચય કરેલા જ્ઞાનાવરણાદિક કર્મને સ્વપાવે છે—નાશ કરે છે. સદાચારવાલા મુનિઓને કારણને લઈને એક સ્થાને વસવામાં પણ જિનેશ્વરની આજ્ઞા છે. એ આ ગાથાનું તાત્પર્ય છે. ” ૩૯૦.

પંચંસમિયા તિગુત્તા, ડડ્ડુત્તા સંજમે તેવે ચરણે ।

વાસંમયં પિ વસંતા, મુણિણો આરાહગા મંણિયા ॥ ૩૯૧ ॥

અર્થ—“ પાંચ સમિતિઓથી સખિત (યુક્ત), ત્રણ ગુણિઓથી ગુપ્ત (રક્ષણ કરાવેલા) અને સત્તર પ્રકારના સંયમને વિષે અથવા હ જીવનિકાયની રક્ષા રૂપ સંયમને વિષે, ચાર પ્રકારનાં તપને વિષે તથા ચરણ ઇટલે પાંચ મહાવ્રતરૂપ ક્રિયાને

ગાથા ૩૮૮—અનિયઓ ગુણાયત્તો । આઉત્તો । સંજોષ્ણ । આરાહગા ।

ગાથા ૩૯૦—નિમકોહ । જિયલોમ ।

विषे लक्ष्यमवन्त एवा भुनिओ सो वर्षं सुधी एक क्षेत्रने विषे रक्षा होय, तोपण तेओ (तेओने) आराधक कहेला छे, अर्थात् विनेश्वरनी आह्वानुं पालन करनारने एक स्थाने रहेवानां पण दोष नयी. ” ३९१

तंहा सँव्राणुना, सर्वनिसेहो यँ पवँयणे नँत्थि ।

आँय वँयं तुलिज्जा, लँहाकलि व्व वाँणियओ ॥ ३९२ ॥

अर्थ—“ तेथी करीने प्रवचन (जिनशासन)ने विषे एकति सर्वाज्ञा (सर्व वस्तुनी अनुज्ञा) एट्ठे अग्रक वस्तु अग्रक गीतेन करवी एवी (एकांत) आह्वा नयी; तथा एकति कोइ वस्तुनो सर्वथा निषेध एट्ठे अग्रक कार्यनु आचरण करवुंन नही एवो एकांत निषेध पण नथो. कारणकं आ जिनशासन स्याद्वादरूप छे. तेथी करीने लाभनी आकांक्षानाळा वणिकनी जेम साधुए आय (ज्ञानादिकं लाभ) अने व्यय (ज्ञानादिकनी हानि) ए वझेनी तुलना करो कार्य करवुं. जेम लाभनो अर्थी वणिक जे वस्तुमां लाभ देखे छे तेज वस्तु ग्र.ण करे छे, तेम साधु पण लाभालाभनो विचार करे छे. ” ३९२.

धम्ममि नँत्थि माया, नँ यँ कँवडं आणुंवत्तिभणियं वाँ ।

फुड पागँडमकुँडिल्लं, धम्मवयणमुज्जुयं जाँण ॥ ३९३ ॥

अर्थ—“ धमने विषे (सत्यने विषे—साधुधमने विषे) माया छेज नही, (क्रमके माया अने धर्म ए वझेने परस्पर वैर छे—ते वझे परस्पर विरुद्ध छे.) वळी धर्मने विषे कपट (बीजाने छेतरवुं) पण होतुं नथी, अथवा आज्ञवृत्ति एट्ठे बीजाने रंजन करवा माटे मायावःळं अनुवृत्तिवाळा वचननुं बोळवुं—ते पण होतुं नथी परंतु स्फुट के० स्पष्ट असरोवाळं लज्जा नही हावाथी प्रगट अने मायागहिन होवाथी अकुटिल एवुं धर्मनुं वचन ऋजु (सरल) अर्थात् मोक्षनुं कारण छे एम हे शिष्य ! तुं जाण ” ३९३.

नँ वि धँम्मस्स भडँका, उँकोडा वँचंग व कँवडं वाँ ।

निँच्छम्मो किरँ धँम्मो, सिँदेवमगुआसुरे लोए ॥ ३९४ ॥

अर्थ—“ धर्मनुं साधन आहंवर नथी. एट्ठे अत्यंत आहंवर देखाडवाथी कोइ धर्म सधातो नथी, तेपण जो तुं मने अग्रक वस्तु आपे तो हुं धर्म कळं, एवी तृष्णाए करीने पण धर्म सधातो नथी. अथवा वंचना एट्ठे बीजाने वंचना करवाथी (छेतरवाथी)

माया ३९२ वाणीओ ।

माया ३९३ आणुवत्ति । उरुजुयं=अनु=नरळं मोक्षकारणमिनि यावत् ।

माया ३९४ भडका=आहंवरः । उकोडा=लंचा । मणुया । निच्छम्मो=निच्छन्ना ।

ધર્મનું સાધન થતું નથી; અથવા કપટ દટણે માયાયુક્ત નેષ્ટા કરવાથી પણ ધર્મનું સાધન થતું નથી પરંતુ વિમાનવાસી દેવો, મૃદુ ઠોકવામી મદુષ્યો અને પાતાલવાસી અસુરો સહિત આ લોક (ત્રણ યુવન)ને વિષે નિષ્કપટ એવો ધર્મજ શ્રીતીર્થકરોણ કહેલો છે. ” ૩૧૪.

મિશ્લુ ગીયમગીણ, અમિસેણ ત્તેહય ચેવં રાયણિણ ।

એવં તુ પુરિસંવત્યું, દેવ્વાઈ ચેવંઝિહં સેસં ॥ ૩૧૫ ॥

અર્થ—“ આ મિશ્લુ (સાધુ) ગોતાર્થ છે અથવા અગીતાર્થ છે? ઉપાધ્યાય છે કે આચાર્ય છે? તેમજ રત્નાધિક છે? એ પ્રમાણે પ્રથમ પુરુષવસ્તુનો વિચાર કરવો; અને પછી વાકીના દ્રવ્યાદિક (દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ અને ભાવ) ચાર પ્રકારનો વિચાર કરવો, અર્થાત્ લાભાલાભનો વિચાર કરનારે પ્રથમ સંપૂર્ણ વિચાર કરવો—વસ્તુને ઓલસવી. ” ૩૧૫.

ચરણાયારો દુવિહો, મૂલ્લગુણે ચેવં ઉત્તરગુણે ય ।

મૂલ્લગુણે છં ઠાણા, પદ્મો પુણ નેવવિહો તંત્ય ॥ ૩૧૬ ॥

અર્થ—“ ચારિત્રાચાર વે પ્રકારનો છે. મૂલ્લ ગુણ—મૂલ્લ ગુણના વિષયવાલો તથા ઉત્તર ગુણ દટણે ઉત્તર ગુણના વિષયવાલો. તેમાં મૂલ્લ ગુણને વિષે છ સ્થાનો (છ પ્રકાર) છે. પાંચ મહાવ્રત અને છઠું રાત્રિભોજનત્યાગ. તેમાં પણ દટણે તે છ એ મૂલ્લ ગુણના સ્થાનોને વિષે પ્રથમ સ્થાન (પ્રાણાત્પિપાત વિરમણ રૂપ સ્થાન) નવ પ્રકારનું છે તે પૃથિ-વ્યાદિક પાંચ અને દ્વીંદ્રિયાદિક ચાર એ નવ પ્રકારના જીવ વધથી વિરામ પાનવો તે. ” ૩૧૬.

સેસુકોસમજ્ઞિમજહનઓ વા મંવે ચેવંઝાઓ ।

ઉત્તરગુણે અણેગવિહો, દંસણનાણેસુ અંઢઢ ॥ ૩૧૭ ॥

અર્થ—“ વાકીના દટણે વાંજા મહાવ્રતથી આરંભીને પાંચ મૂલ્લસ્થાનો ઉત્કૃષ્ટ, મધ્યમ અને જઘન્ય મેદે કરીને ત્રણ ત્રણ પ્રકારે અથવા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર કાલ અને ભાવમેદે કરીને ચાર ચાર પ્રકારે છે, તથા ગોચરી સમિતિ, ભાવનાદિક ઉત્તર ગુણ અનેક પ્રકારનો છે. (ઉત્તર ગુણને વિષે અનેક પ્રકારનો આચાર છે.) દક્ષિણ (સમક્ષિત) માં નિઃશક્તિ વિગેરે અને જ્ઞાનમાં કાલ વિનય વિગેરે આઠ આઠ આચાર છે ” ૩૧૭.

જં જયઈ અગીયત્યો, જં ચે અગીયત્યનિસિઓ જયઈ ।

વટ્ટાવેઈ મંચ્છં, અંણંતસંસારઓ હોઈ ॥ ૩૧૮ ॥

માથા ૩૧૬-પર્યં તુ દલ્લાઈ । માથા ૩૧૭ સેસુકોસો । ઉત્તરગુણેગવિહો ।
માથા ૩૧૮-જંજઈ વટ્ટાવેયઈ । વટ્ટાવેઈ=વર્તયતિ ।

अर्थ—“ अगीतार्थ (मिद्धान्ने न जाणनार) जे यतना (तप क्रियादिक्रमां उद्यम) करे छे, अने जे अगीतार्थ निश्चित पटले अगीतार्थनी निश्रामां रहिने-क्रियानुष्ठान करे छे; तथा पोते अगीतार्थ कर्ता जे गच्छने प्रवर्तवे छे—एटले क्रियानुष्ठानमां प्रेरणा करे छे, तो ते अगीतार्थ अननसंसारी थाय छे. अर्थात् गोतार्थ मुनिनुं अथवा तेनी निश्रामां रहिने करे छे—क्रियानुष्ठान मोक्षफलने आपनाहं थाय छे. ” ३९८.

अहीं शिष्य गुहने प्रश्न करे छे—

कँहउ जयंतो मांहू, वद्वं वैईय जोठ गच्छं तुं ।

संजमजुत्तो हीउं, अणंतसंसारिओ ”होइ ॥ ३९९ ॥

अर्थ—“ हे पूय ! जे साधु तपसंयमने विषे पोते यतना (उद्यम) करे छे, वळी जे तपसंयमने विषे गच्छने प्रवर्तवे छे ते साधु संयमयुक्त यइने पण अनंतसंसारी केप थाय ? तेने अनंतसंसारी केप कहाओ ? ” ३९९.

इहे गुरुमहाराज एतो उत्तर आपे छे—

दैव्वं खित्तं कालं, भावं पुरिसंपडिसेवणाओ यं ।

नं वि जाणंइ अग्गीओ, उस्संगववाइयं चैवं ॥ ४०० ॥

अर्थ—“ हे शिष्य ! अगीतार्थ साधु द्रव्य, क्षेत्र, काळ अने भाव जाणी शक्तो नयी, वळी पुण्य पटले आ पुरुष योग्य छे के अयोग्य ? ते जाणी शक्तो नयी, तथा प्रतिसेवना-पापसेवना पटले आ मनुष्ये स्ववशे पापसेवन कर्तुं छे के परवशे कर्तुं छे ते जाणतो नयी. तेज उत्सर्ग पटले सामर्थ्य छेते शास्त्रमां कहा प्रमाणेन क्रियानुष्ठान करवुं ते; तथा अपनाद पटले रोगादिक कारणे अल्प दोषतुं सेवन करवुं ते—जाणतो नयी तेयी अगीतार्थना क्रियानुष्ठान व्यर्थ छे. ” ४००.

जहइयदव्वं नं यागइ, सच्चिंत्ताचित्तमीसियं चैवं ।

कप्पांकप्यं च तँहा, जुंगं वा जँस्स ”जं होइ” ॥ ४०१ ॥

अर्थ—“ वळी अगीतार्थ यथास्थित द्रव्यस्वरूपने जाणतो नयी, तथा सच्चिन् (सजीव), अचित्त अने मिश्र द्रव्यने (वस्तुने) पण निश्चययी जाणतो नयी, तथा आ वस्तु कल्प्य छे के अकल्प्य छे ? ते पण जागतो नयी, अथवा जे वस्तु जे वाळ गळानादिकने योग्य होय ते पण ते जाणतो नयो. ” ४०१

गाथा ३९९-कइय । वद्वं वै । संसारिओ मणिओ ।

गाथा ४००-उमंगववायं । उस्संगववादं ।

गाथा ४०१-जहइय दव्वं-यथास्थितं द्रव्यं । होइ ।

जं हृदियस्वेत्त न जाणइ, अंधाणे जणंत्रएअं जं भणियं ।

कालंपि नवि जाणइ, सुभिस्सुदुभिस्सुव जं कंयं ॥ ४०२ ॥

अर्थ—“ वळी अगीतार्थ यथास्थित क्षेत्रने एटले आ क्षेत्र भद्रक छे के अमद्रक छे ? ते जाणतो नथी दूर मार्गवाळा जनपत्तां (देशमां) विहार कर्णे छते जे त्रिषि-
स्वरूप सिद्धान्तमां कहेतुं छे ते पण जाणतो नथी तथा काळ (काळतुं स्वरूप) पण
जाणतो नथ, तेमज सुभिक्ष (सुकाळ) अने दुर्भिक्ष (दुष्काळ)ने विषे जे वस्तु
कल्प्य के अकल्प्य कहेल. छे ते पण अगीतार्थ जाणतो नथी. ” ४०२;

भावे हृदगिलाण, नवि याणइ गाढगाढकण्यं च ।

सहुअसहुपुरिसवत्थुं, वत्थुमवत्थुं च नवि जाणइ ॥ ४०३ ॥

अर्थ—“ भावने विषे (भावद्वारे विषे) आ हृष्ट (नीरोगी) छे. म टे तेने आ
वस्तु देवा योग्य छे, अने आ ग्लान (रोगी) छे, माटे तेने आ वस्तुज देवा योग्य
छे, ते जाणतो नथी तथा गाढागाढ कण्य एटले गाढ (पोटा) कार्यमां अमुक करवा
योग्य छे अने अगाढ (स्वाभाविक) कायमां अमुकज करवा लायक छे, ते पण
जाणतो नथी. वळो समर्थ शरीरवाळं अने असमर्थ शरीरवाळं पुरुषवस्तुने पण जाणतो
नथी के आ समर्थ छे ने आ असमर्थ छे, तथा वस्तु एटले आचार्यादिकना स्वरूपने
अने अवस्तु एटले सामान्य साधुना स्वरूपने पण जाणतो नथी ” ४०३.

प्रतिसेवणा चउद्धा, औउट्टि प्पमाय दण्य कपेसु ।

नवि जाणइ अग्गीओ, पच्छित्तं चैव जं तंत्य ॥ ४०४ ॥

अर्थ—“ प्रतिसेवना (निषिद्ध वस्तुतुं आचरण) चार प्रकारे होय छे एक
पाप जाणीने करवुं ? एक पाप प्रमाद (निद्रादिक) वडे करवुं २, एक पाप दर्प वडे
एटले धावन वलनादिक वडे करवुं ३, अने एक पाप कारणने लहने क. तुं- ४. ए
चार प्रकारना पापने अगीतार्थ (सिद्धान्तना रहस्यनो अजाण) जाणतो नथी वळी
निश्चे आलोचनादिक जे प्रायश्चित ते वेवी जातनी प्रतिसेवनामां वेवी जातनुं आपवुं
ते पण अगीतार्थ जाणतो नथी. ” ४०४.

जं ह नाम कोइ पुरिसो, नयं गविहूणो अदेसकुसलो यं ।

कंताराडविभीमे, मंगपगडुस्स संत्थस्स ॥ ४०५ ॥

गाथा ४०२ याणइ कालंपि । याणइ ।

गाथा ४०३-विद्ध गिणाणं=हृष्ट ग्लानं । गाढागाढ । सुहुअसहुपुरिसवत्थं । याणइ ।

गाथा ४०४-प्रमाद्य । कपेसु । गाथा ४०५ कोइ । मार्गप्रणष्टस्य=मार्गप्रणष्टस्य ।

इच्छंइ य देसियंतं, किं सो उ संमत्थ देसियंतस्स ।

दुग्गाइं अयाणंतो, नयणविहणो केहं देसे ॥ ४०६ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—“जेम (नाम-प्रसिद्धिमाटे अव्यय) नयनरहित (अंध) अने अदेश कृच्छ के० मार्गना ज्ञानमां अकुशल एवो कोइ पुरुष भीम के० भयंकर एवी कांतार अटवीमां एटले विषम अटवीमां मार्गथी भ्रष्ट यगेळा (भूला पडेळा) सार्थने (जन-समुदायने) मार्ग बताववा इच्छे, के हुं तेओने माग वत वुं; पण थुं ते अंध पुरुष मार्ग बताववायां समर्थ-थाय ? नज थाय. कपके दुर्ग एटले रस्तायां आवता विषम स्थानोने नहीं जाणतो एवो ते नेत्रहीन (अंध) पुरुष केवी रीते मार्ग बतावी शके ? अर्थात् नज बतावी शके. ” ४०५.

एवमगीयंत्योवि हू, जिणवयणपईवचस्खुपरिहीणो ।

दवाइं अयाणंतो, उस्संगववाइयं चेव ॥ ४०७ ॥

अर्थ—“तेज प्रमाणे (हु इति निश्चये) जिनेषरनां कहेळां वचनो रूपी देदीप्यमान दीपक रूप चक्षुषी रहित एवो अगीतार्थ पण द्रव्यादिक वस्तुओने तथा उच्छेदी अपवाद मार्गने नहीं जाणतो सतो शी रीते वीजने मार्ग बतावी शके ? नज बतावो शके. ” ४०७.

कह सो जयेंओ अगीओ, केह वां कुगऊ अगीयनिस्ताए ।

केह वां केरेऊ गच्छं, सबालवुद्धाउलं सोऊ ॥ ४०८ ॥

अर्थ—“ते (उपर कक्षो तेवो) अगीतार्थ शी रीते पोते चारित्र्यां वर्तना करी शके ? अथवा अगीतार्थनी निश्चाए वर्तना वीजा मुनिओ पण तपसंगमने विषे यचना करवाने शी रीते समर्थ थाय ? अथवा तें (अगीतार्थ) बाळ अने वृद्धेथी आंकुळ (सहित) एवा गच्छने शी रीते प्रवर्तवी शके ? कांड न करी शके. ” ४०८.

सुत्ते य इमं भणियं, अपच्छित्ते यं देइं पच्छित्तं ।

पच्छित्ते अइमत्तं, आसायण तंस्स महइओ ॥ ४०९ ॥

अर्थ—“सिद्धान्तमां एवुं कळुं छे के जे अगीतार्थ वीजोने प्रायश्चित (पाप) बिना प्रायश्चित (तपस्या करवानुं) आपे, अथवा थोडा प्रायश्चित (पाप)मां अधिक

गाथा ४०६-इच्छंइ । सो समत्थो । देसियंतं-दर्शकृत्यं-मार्गदर्शकत्वं । दुग्गाइं-दु-
र्गानि-विषमप्रदेशान् । कहिं । देसे-दर्शनेत् ।

गाथा ४०७-दव्व इ । गथा ४०८-कुण्ड । केरेउ । वहुउलं । सोऊ ।

गाथा ४०९-अपच्छित्ते । अइमत्तं=अतिमात्रं । महइओ ।

(मोहं) प्रायश्चित्त (तपस्या) आपे, तो ते अगीतार्थने मोटी आश्वातना-जिनाज्ञानी विराधना. याय. छे-तेवा अगीतार्थने जिनेश्वरनी आज्ञानो विराधक जाणवा.?" ४०९.

आसायण मिच्छत्तं, आसायणवज्जणा उं सम्मत्तं ।

आसायणानिमित्तं, कुंवेइ दीहं चं संसारं ॥ ४१० ॥

अर्थ-“ आशातना शब्दे करीने जिनाज्ञानो भंग एज विध्यास्व कहेवाय छे, अने आशातनाने वजवी एटछे जिनाज्ञानुं पालन करवु एज सम्यक्त्व कहेवाय छे; तेमज आशातनाने निमित्ते एटछे जिनाज्ञानो भंग करवाथी प्राणी दीर्घ संसार एटछे चार गतिमां भ्रमण करवा रूप बहुल संसर उपार्जन करे छे. ” ४१०.

एण दोसा जेह्वागीयं जयंतस्सगीयंनिस्साए ।

वंट्ठावय गच्छस्स यं, जो अं गणं देयंगीयंस्स ॥ ४११ ॥

अर्थ-“ जेथी करीने तपसंयमने विषे यतना करता एवा पण अगीतार्थने ए (पूर्वोक्त-) दोषो लागे छे, अगीतार्थनी निश्चाए करीने (वचने करीने-) तपसंयम करता एवा वीजाने पण ए दोषो लागे छे, वळी गच्छना प्रवर्तवना (अगीतार्थ-)ने पण ए दोषो लागे छे; तथा जे अगीतार्थने (मूर्खने) गण (आचार्यपद) आपे छे-सोंपे छे तेने पण ए पूर्वोक्त दोषो लागे छे. ” ४११

अंबहुसुओ तवस्सी, विहरिउकामो अजाणिऊणपहं ।

अवंराहपयसयाइं, काऊण विं जो नं याणोइ ॥ ४१२ ॥

अर्थ-“ जे अबहुश्रुत (अल्प ज्ञाननो जाण) छतो तपस्वी होय एटछे गह तपस्या करतो होय; जे मार्गने (मोक्षमार्गने) जाणया विना विहार करवाने इच्छतो होय, जे अपराध (अतिचार) ना सेंकडो स्थानोने (सेंकडो अतिचारने) करीने-सेवीने पण जे अल्पश्रुत होवाथी जाणतो न होय. ” ४१२ (संबंध आगळी माखनां छे.)

देसियराइयसोहिय, वयाइयारे य जो नं याणोइ ।

अविसुधस्स न वद्धइ, गुणसेढी तित्थियां होइ ॥ ४१३ ॥

गाथा ४१०-वज्जणा य, वज्जणा इ । कुंवेइ ।

गाथा ४११-अगीअ जयंतस्स अगीयनिस्साए । जोवि गणं देइ अगीयस्स ।

गाथा ४१२-अबहुस्सुओ । काहण । याणोइ ।

गाथा ४१३-सोहि । वयाइचारेय । याणोइ । तत्थिया-तावती ।

अर्थ—“बळी जे दिवस अने रात्रि संबंधी अतिचारोनी, शुद्धिने, तथा ब्रताना (मूळोत्तर गुणाना) अतिचारोने जाणतो नथी, पटले अदपश्रुत होवाची शुद्ध-यतो नथी, ते अविशुद्ध (पापनी शुद्धिरहित एवा) पुरुषनी गुणश्रेणी (ज्ञानादिक गुणोनी परंपरा) वृद्धि पायती नथी, जेटळी होय तेटळीज रहे छे; अधिक थती नथी.” ४१३.

अप्यागमो किलिस्सइ, जइ वि करेइ अइदुकरं तु तव ।

सुंदरबुद्धीइ कइ, बहुयं पि न सुंदरं होइ ॥ ४१४ ॥

अर्थ—“अल्प सिद्धान्तने जाणनार (साधु) जोके मासक्षणिकादि अतिदुष्कर तप करे, तोपण ते कष्टनेज सहन करे छे (एम जाणुं). सुंदर बुद्धिए करेछे- वधुं एवुं ते तप-पण सुंदर थतुं नथी. ते तप अज्ञानकष्टनी बराबरज छे.” ४१४.

अपरिच्छिद्यसुयनिहसस्स, केवलमभिन्नसुत्तचारिस्स ।

सव्वुज्जमेण वि कैयं, अज्ञानतवे बहु पढइ ॥ ४१५ ॥

अर्थ—“नथी जाणुं श्रुतनिकष (सिद्धान्तनुं रहस्य) जेजे तथा केवल अभिन्न पटले टीकादिकना ज्ञानरहित मात्र श्रतना अक्षरने अनुसारेज ज्ञानवाना स्वभावाना एवा साधुनुं-सर्व उद्यमवडे करेछे क्रियानुष्ठानादिक जे ते अज्ञानतपने विषे-अज्ञानकष्टने विषेज अत्यंत पढे छे.” ४१५.

ते उपर दृष्टान्त कहे छे—

जह दार्यमि वि पंडे, तस्से विससे पडस्स धाणंतो ।

पहिओ किलिस्सइ चियं, तह लिंगायार सुअमित्तो ॥ ४१६ ॥

अर्थ—“जेम कोइ पुरुषे कोइ पथिक (भ्रुसाफर) ने मार्ग देखावथे सते पण ते मार्गना विशेषने पटले आ मार्ग दक्षिणे (जमणो) जाय छे के वाय (डावो) जाय छे ? इत्यादिक विशेषे स्वरूपने नहीं जाणतो एवो ते पथिक-निश्चे केश-पामे छे, पटले मार्गमां भूला पढीने अत्यंत दुःख पामे छे; तेम (आ दृष्टान्तवडे) लिंग (साधु-वेष) अने आचार (क्रिया) तेने धारण करनार पटले पोतानी बुद्धिची क्रिया करनार अने सूचना अक्षर मात्रनेज जाणनार एवो ते साधु पण ते पथिकनी जेम अत्यंत दुःख पामे छे.” ४१६.

गाथा ४१४-किलिस्सइ । दुकरंति तवं । बुद्धीय कथं । होइ ।

गाथा ४१५-निहिसस्स । बहुं पढइ ।

गाथा ४१६-दार्यमिचिपडे-दक्षितेपि पथे-मार्गं । किलिस्सइ । सुअमित्तो ।

कर्ष्याकर्ष्यं एसणमणेसंणं चरणकरणसेहविहिं ।

पायच्छित्तविहिं पि य, दव्वाइगुणेषु अ समगं ॥ ४१७ ॥

पद्दोत्रणविहिमुंहावगं च, अज्जाविहिं निरवेसेसं ।

उंसग्गववायविहिं, अयागमागो केहं जयंओ ॥ ४१८ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—“ कल्पने, अकल्पने, एषणा (आहारशुद्धि)ने, अनेषणा (आहारना दोष)ने, चरण सीत्तरीने, करण सीत्तरीने, नवरीक्षिनी शिक्षाविधिने, दक्ष प्रकारना प्रायश्चित्त (आलोचनादि)नी विधिने, द्रव्यादिक एटले द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावने विषे तथा शुणो (उत्तम अने मध्यम)ने विषे संपूर्णताने, प्रव्राजना विधि (नवाने दोषा आपवाना विधि)ने, उत्थापना एटले महाव्रतनो उच्चार करवो तेना विधिने, आर्या (साध्वी)ना विधिने तथा उत्सर्गमार्ग (शुद्ध आचारनुं पात्रन) अने अपन्नादमार्ग (कारणे आपत्ति वल्लते आदरवा लायक)ना विधिने संपूर्ण रीते नहीं जाननार एवो अल्पश्रुत लिंगधारी शी रीते मोक्षमार्गने विषे यतना (उद्यम) करी शके ? नञ करी शके. ४१८.

सीसायरियकमेण ये, जणेण गंहियाइं सिप्पसत्थाइं ।

नेज्जंति बहुविहाइं, न चस्कुमित्तागुसरियाइं ॥ ४१९ ॥

अर्थ—“ वळी (लौकिकमां) मनुष्योए शिष्य अने आचार्यना क्रमे करीने विद्या ग्रहण करायछे, एटले शिष्य विनय पूर्वक कळाचार्यादिकने प्रसन्न कराने. तेनी, पासेथी विद्या ग्रहण करे छे एवा विनयना क्रमे करीने बहु प्रकारनां शिल्पशास्त्रो एटले चित्रादिकनां अने व्याकरण विगेरेनां शास्त्रो ग्रहण करेलां (सारी रीते शीखेलां) जणाय छे जोवामां आवे छे; परंतु चक्षुमात्रे करीने (नेत्रथी जोवा मात्रे करीने) अनुसरेलां एटले पोतेज पोतानी मेळे (गुरुनो विनय कर्षा विना) शीखेलां जोवामां आवतां नथी; अर्थात् पोतानी मेळे शीखेलां ते लौकिक शास्त्रो पण शोभा पामतां नथी, तां पछी लोकोत्तर शास्त्रोने पाटे तो शुं कहेवुं ! ॥ ४१९ ॥

जह उज्जमिउं जाणइ, नाणी तवें संजमे उवायविउ ।

तहं चस्कुमित्तदरिसण, सामायारी नें योणंति ॥ ४२० ॥

गाथा ४१७-विहंपिय । दव्वायगुणेषु य । गाथा ४१८-अज्ञानमोघो ।

गाथा ४१९-गहियाइं । शिल्पशास्त्राणि । नज्जंति=जायन्ते ।

गाथा ४२०-उज्जमिउ=उद्यमं कर्तुं । उपायंविउ । अवायविउ ।

अर्थ—“ जेवी रीते उपायने जागनार ज्ञानी तप अने संयमने विषे उद्यम करवातुं जाणे छे; एटले ज्ञानी पुरुष सिद्धान्तन. ज्ञाने करीने जेवी रीते उद्यम करे छे, तेवी रीते, चक्षुमात्रना दर्शनवडे करीने एटले क्रिया घानादिक करनारा ए. त वीजानी समीपे रहूने, मात्र जोवाथी (सामाचारी) शुद्ध आचार जाणतो नथी. अर्थात् पोताना ज्ञानथी जेवुं जणाय छे तेवुं वीजाने करतां जोवामात्रथी जणातुं नथी. ” ४२०.

सिंप्याणि यं सत्थीणि यं, जाणंतो वि नं य जुंजई जो उ ।

तेसिं फलं नं मुंजई, इअं अजयंतो जई नांगो ॥ ४२१ ॥

अर्थ—“ शिल्पो (चित्रकर्म विगरे) अने व्याकरणादिक शास्त्राने जाणतो छतां पण जे पुरुष तेनी योजना नथी करतो एटले ते तें क्रियाओनी प्रवृत्ति नथी करतो, ते पुरुष ते शिल्पादिकथी धनारा धनलाभादिक फळने भोगवतो-पामतो नथी. तेंज प्रमाणे संयममां यतना (उद्यम) नहीं करनारो ज्ञानवान एवो यति (साधु) पण मोक्षरूप फळने पामतो नथी. ” ४२१.

गारवतियपडिवद्धा, संजमकरणुज्जमंमि सीअंता ।

निगंतूण गणाओ, हिंडंति पर्मायरंमि ॥ ४२२ ॥

अर्थ—“ रस, क्रद्धि अने सातारूपी त्रण गारवने विषे प्रतिबद्ध थयेला (आसक्त थयेला) अने संयम करणना (छ जीव निकायनी रक्षा करवाना) उद्यमने विषे थिपिल थयेला साधुओ गण (गच्छ)थी वहार नीकळीने प्रमादरूपी अरण्यमां स्वेच्छाए विहार करे छे-भ्रमण करे छे. ” ४२२.

नांणाहिओ वरंतरं, हीणो वि हुं पर्वयणं पमावंतो ।

नं यं दुकरं करंतो, सुहु वि अप्पांगमो पुंसिसो ॥ ४२३ ॥

अर्थ—“ चारित्रक्रियाए हीन छतो पण निश्चे जिनशासननी प्रभावना करनार एवो ज्ञानाधिक (ज्ञानवडे पूर्ण ज्ञानी) पुरुष श्रेष्ठ छे; पण सारी रीते मासधपणादिक दुष्कर तपस्या करतो छतो पण अल्पश्रत पुरुष श्रेष्ठ नथी, अर्थात् क्रियावान छतां पण ज्ञानहीन पुरुष श्रेष्ठ नथी. ” ४२३.

नांणाहियस्स नाणं, पुंज्जई नांणा पवत्तए चरणं ।

जैस्स पुंण दुह्मइकं पि, नंत्यि तैस्स पुंज्जए कैइ ॥ ४२४ ॥

गाथा ४२१-वि य न जुंजई । योजयति । इय यजयंतो ।

गाथा ४२२-हीयंता । चराओ । रणमि ।

गाथा ४२३-पुयज्जई । पवत्तई । दुह्मइकं । तसं पुंज्जए काउं । पुंज्जइ काइ ।

અર્થ-“ જ્ઞાનાધિક. (જ્ઞાનથી પૂર્ણ) પુરુષનું જ્ઞાન પૂજાય છે, કેમકે જ્ઞાનથી ચરણ (ચારિત્ર) પ્રવર્તે છે, પરંતુ જે પુરુષને જ્ઞાન અને ચારિત્ર એ બેમાંથી એક પણ નથી તે પુરુષનું શું પૂજાય ? શું પૂજવા યોગ્ય હોય ? કાંઈ પણ પૂજવા યોગ્ય ન હોય. ”

નાંઈં ચૈરિત્તહીણં, લિંગમ્ગ્રહણં ચં દંસૈળવિહીણં ।

સંજર્મહીણં ચં તંવં, જો ચૈરદ્વ નિરંત્યયં તસ્સ ॥ ૪૨૫ ॥

અર્થ-“ જે પુરુષ ચારિત્ર (ક્રિયા) રહિત જ્ઞાનનું આચરણ કરે છે, જે પુરુષ દર્શન (સમ્યક્ત્વ) રહિત લિંગ (મુનિવેષ)નું ગ્રહણ (ધારણ) કરે છે, અને જે પુરુષ સંયમ (છ જીવ નિકાયની રક્ષા રૂપ ચારિત્ર) રહિત તપનું આચરણ કરે છે-તે પુરુષોના એ સર્વે મોક્ષનાં સાધનો નિરર્થક છે-નિષ્ફલ છે. ” ૪૨૫.

જંહા સૈરો ચંદેણભારવાહી, મૌરસ્સ મૌગી નં હું ચંદંણસ્સ ।

એવં સું નૌણી ચૈરણેણ હીણો, નાણેસ્સ મૌગી નં હું સુમ્મંઈણા ॥ ૪૨૬ ॥

અર્થ-“ જેમ ચંદનના ભારને વહન કરનાર સ્ત્ર (ગધેદો) કેવલ ભારનોજ ભાગી થાય છે, પણ ચંદનના સુગંધનો ભાગી થતો નથી, તેજ રીતે નિશ્ચે ચારિત્રે કરીને હીન એવો જ્ઞાની પણ કેવલ જ્ઞાનનોજ ભાગી થાય છે, પણ મોક્ષરૂપ સુગતિનો એટલે જ્ઞાનના પરિમલનો ભાગી થતો નથી. માટે ક્રિયા સહિત જ્ઞાન હોય તોજ તે શ્રેષ્ઠ છે. ” ૪૨૬.

સંપાગડપડિસેવો, કાંણસુ વણ્ણસુ જો નં ઉજ્જમ્મઈ ।

પંવંયણપાડણપરમો, મમ્મત્તં કોમલં તસ્સ ॥ ૪૨૭ ॥

અર્થ-“ પ્રગટપણે (લોક સમક્ષ) પ્રતિકૂલ (નિષિદ્ધ) આચરણને આચરનાર એવો જે પુરુષ છ જીવનિકાદના પાત્રને વિષે અને પાંચ મહાવ્રતના રક્ષણને વિષે લઘ્ય કરતો નથી-પ્રાદનુંજ સેવન કરે છે, તથા જે પ્રવચન (જિનશાસન)નું પાત્રનું (લઘુતા) કરવામાં તત્પર છે, તેનું સમ્યક્ત્વ કોમલ એટલે અસાર જાણવું; અર્થાત્ તેને મિથ્યાત્વજ વર્તે છે એમ જાણવું. ” ૪ ૭.

ચૈરણકરણપરિહીણો, જંઈ વિ તંવં ચૈરદ્વ સુંહું અંહગુરુઅં ।

સો તિલ્લં વૈ કિંણંતો, કંસિય બુંદો મુણેયંવ્વો ॥ ૪૨૮ ॥

અર્થ-“ ચરણ એટલે મહાવ્રતાધિકનું આચરણ અને કરણ એટલે આહારશુદ્ધિ

ગાથા ૪૨૫-સંજર્મવિહીણં ।

ગાથા ૪૨૭-જો ઉ ન ઉજ્જમઈ । સંપાગડ=સંપ્રકર્ષ ।

ગાથા ૪૨૮-જયહ વિ । ગરુધં । કુહી ।

विगरे तेगे करीने हीन एवो कोइ पुरुष जोके सारी रीते वगुं मोडुं वा करे छे, परंतु तेने आदर्श करीने (आरोसाए करीने) तेलना बड्ळामां तळ आउनार बोद्र गामना निवासी मूर्खनी जेवो जाणवो, एठले थोडाना बड्ळामां घणुं आपी केनारो जाणवो. तळ आपीने तेल लेनारो ते मूर्ख घणा तळने हारी जाय छे: ते एवी रीते के आदर्शना पाछला भागे भरीने तळ आपे अने काचनी वाजुथी तेल ग्रहण करे तैथी तेल घणुं योडुं आवे अने तळ घणा जाय एवी रीते करार करनार बोद्रगामवासी मूर्खनुं दृष्टान्त अही जागवुं: एठले ते जेम थोडा तेलना बड्ळामां घणां तळ हारी गयो, तेम प्रमादी मुनि चारित्रनी थोडी शिथिलताना बड्ळामां वगुं तप हारो जाय छे. आ बोद्र गाम वासीनुं दृष्टान्त नातुं होवाथी अत्र लखुं नथी.” ४२८.

छंज्जीवनिकायमहव्याण, परिपालगाइ जेंद्वम्मो ।

जेंद्व पुणं ताई नं रखलइ, भगाहि 'को नाम' सो धंम्मो ॥ ४२९ ॥

अर्थ—“पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय ए छ जीवनिकायनुं अने प्राणातिशतविरमणादिक मांच महाव्रतोनुं परिपालन (सारी रीते रक्षण) करवाथी यनिधर्म थाप छे—कहेवा न छे. एण जो ते छ जीवनिकाय अने पांच महाव्रतोनुं रक्षण न करे, तो हे शिष्य ! तुं कहे के तेने कयो धर्म कहेवो ? अर्थात् तेना रक्षण विना धर्म कहेवायज नहीं.” ४२९

छंज्जीवनिकायदयाविवज्जिओ 'नेत्र दिखित्तओ नं गिंही ।

जेंद्वम्माआचुंको, चुकइ गिंहीदागम्मओ ॥ ४३० ॥

अर्थ—“छ जीवनिकायनी दयाथी रहित एवो वेषशरी दीक्षित (साधु) कहे-वायज नहीं, तेमज (मस्तक मुडेछ होवाथी) गृहस्थी पग कहेवार नहीं. ते यतिधर्मयी चुक्पो—भ्रष्ट थयो, अने गृहस्थना दानधर्मयी पण चुके छे—भ्रष्ट थायछे. केमके तेगे आपेछं दान पग शुद्ध संयमीने कल्पतुं नथी.” ४३०

सव्वाओगे जंह कोइ, अमच्चो नरवइस्स धित्तूणं ।

आण्णाहरणे पौवइ, वहंघगदव्वहरणं च ॥ ४३१ ॥

अर्थ—“जेम कोइ अमात्य (प्रधान) नरपति (राजा)ना सर्व आयोगो (अधिकारो)ने ग्रहण करीने (पामीने) पछी जो राजानी आज्ञानो भंग करे; तो ते

गाथा ४२९—परिपालणाय । ताई ।

गाथा ४३०—द्विच्छिन्न । गिह्द्विज्ञानधम्मओ ।

गाथा ४३१—नरवयस्स । अमच्चो=अमात्यः ।

वर्ष एटले लाकडी विगेरेना प्रहारने, सांफळ (बेडी) विगेरेना बंधनने तथा द्रव्य-हरण एटले सर्वस्वना नाशने अने चकारथी छेवट मरणने पण आज्ञानो भंग करवाथो पामे छे. ” ४३१.

तहं छंकायमहव्ययसव्वनिवित्तीउ गिह्णुण जई ।

एगंमवि विराहंता, अमंचरन्नो हणइ बोहिं ॥ ४३२ ॥

अर्थ—“तेबीज रीते छ जीवनिकाय तथा पांच महाव्रत संबंधी सर्व निवृत्ति (सर्वविरति) रूप प्रत्याख्यान (नियमो)ने ग्रहण करीने यति (साधु) एक पण जीव-निकायनी अथवा एक पण व्रतनी विराधना करतो सतो अमर्त्य राजा (देवोना राजा—तीर्थंकर)ए आपेली अथवा तेमगे प्ररुपेली बोधिने हणे छे—नाश पमाडे छे. अर्थात् जिनाज्ञानो भंग करवाथी बोधि (सम्यक्त्व)नो नाश थाय छे; अने तेथी ते अनन्त संसारी थाय छे. ” ४३२.

तो हयंबोहीय पच्छ, कथंवरहाणुसरिसमियममियं ।

पुण वि भवोअहिपडिओ, भमइ जरांमरणदुग्गंमि ॥ ४३३ ॥

अर्थ—“त्यार पछी हणी छे बोधि जेणे एवो ते भुनि करेला अपराध (जिनाज्ञा-भंगरूप)ने अनुसारे एटले अनुमाने करीने करीने समान आ प्रत्यक्ष एवा अमित एटले मानरहित (अति मोटा) फळने पामे छे. ते फळ कयुं ? ते कहे छे—दृढावस्था तथा मरणे करीने अत्यंत दुर्ग एटले गहन एवा भवसागरने विषे पड्यां छतो बारंवार परि-भ्रमण करे छे—अनंतकाल परिभ्रमण करवारूप फळने पामे छे. ” ४३३.

जइयाणेणं चंतं, अप्पणयं नाणंदंसणचरित्तं ।

तइया तंस्स परेसु, अंगुक्कंपा नैत्थि जीवेसुं ॥ ४३४ ॥

अर्थ—“ज्यारे आ निर्भागी जीवे आत्माने हितकारक एवा ज्ञान, दर्शन, चारि-त्रनो त्याग कर्यो, त्यारे समजहुं के ते जीवने बीजा एटले पोता शिवाय बीजा जीवोने विषे अनुक्कंपा नथी अर्थात् जे पोताना आत्मानो हितकारक नथी थतो ते बीजाओनु हित करी रीते करे ? पोताना आत्मापर दया होय तोज बीजा जीवोपर दया थइ शके छे. (आत्मदया मूलकज परदया छे.) ” ४३४.

गाथा ४३२-निवृत्तिओ । गिह्णुण । रणणे । अमचरन्नो=अमर्त्यराज्ञः । तीर्थंकरदेवस्य ।

गाथा ४३३-इयंबोधि पच्छा । इयंबोही । कृतापराधानुसहशाभिदममितम् । पुणो वि ।

गाथा ४३४-यदाऽनेन त्यक्तं । अप्पणय=आत्मनीनं । परेसुं ।

छंकायरिऊण अस्संजयाण लिंगावसेसमित्तणं ।

बहुअस्संजमो पव्हो, खारो मंडलेइ सुहुअरं ॥ ४३५ ॥

अर्थ—“ छ जीवनिकायना शत्रु एटले छकायनी विराधना करनार, असंयत एटले जेणे मन, वचन कायाना योगने मोकळा (छुटा) मूकी दीया छे एवा, तथा लिंगा-वशोपमात्र एटले केवल रजोहरण विगेरे वेपनेज धारण करनारा एवा पुरुषोनो मोटो असंयम (अनाचार) रूप पापनो प्रवाह द्वार एटले बाळेला तलनी भस्मनी जेम सुष्ठुतर एटले गाढ अथवा सम्यक् प्रकारे पोताना अने बीजाना आत्माने पण म-लिन करे छे. ” ४३५.

किं लिंविट्टरीधारणेण, कर्ज्जम्मि अंद्धिए ठण्णे ।

रायों नं होइं सयमेव, धोरयं चांमराडोवे ॥ ४३६ ॥

अर्थ—“ जेम स्थाने एटले श्रेष्ठ सिंहासने बैठेलो अने मात्र पोतेज एटले हाथी घोडा विगेरेया रहित एकलोज, चापरना आटोप (आढंवर)ने धारण करतो सती पण राजा होतो नथी—थइ शकतो नथी, तेबीज रीते कार्यने विषे एटले संयमनी यत-नाने विषे नहीं रहेलो—संयमथी रहित एवो साधु, लिंग एटले साधुवेप—तेनो आढंवर मात्र धारण करवावडे करीने थुं साधु कहेवाय ? नज कहेवाय- माटे गुण विनानो आढंवर करवो व्यर्थ छे. ए आ गाथानो तात्पर्य छे. ” ४३६.

जो सुं त्थविणिच्छियकयागमो मूलंउत्तग्गुणोहं ।

उंवहइ सयाज्वल्लिओ, सो लिंखवइ साहुल्लिख्वंमि ॥ ४३७ ॥

अर्थ—“ सूत्र अने अर्थनो विनिश्चय एटले तथ्य (सत्य) ज्ञान तेणे करीने कयों छे आगम जेणे अर्थात् जाणुं छे सिद्धान्तनुं रहस्य जेणे एवो (सिद्धांतज्ञाता) अने निरंतर अस्खलित एटले अतिचाररहित मूल अने उत्तर गुणना समूहने जे वहन करे छे—धारण करे छे एवो साधु साधुना लेखामां—साधुओनी गणतरीमां लखाय छे—गणाय छे. ” ४३७.

बंधुदोससंकिल्लिओ नंवरं मंडलेइ चंचलसहावो ।

सुहु विं वायोंमंतो, कायं नं करेइ किं चिं गुण ॥ ४३८ ॥

गाथा ४३५—छंकारिऊण । असंजयाण । षट्कायरिपूणाम् । लिंगावसेसमित्तणं । बहु-अस्संजमपव्हो । बहुअस्संजमपव्हो । सुहुअरं । गाथा ४३६—लिंगाढंवरधारणेण । किंविट्टरि । भारित्तो । गाथा ४३७ सुतथ्य । गुणेहि । सायाल्लिओ । साहुलि-ख्वंमि । गाथा ४३८—मंडलेइ, मेल्लेइ । कायामित्तो—परीवहादि दुःखं सहमानः ।

અર્થ—“ રાગદ્વેષરૂપી ઘના દોષોવહે સંક્લિષ્ટ (ભરેલો) ઇટલે દુષ્ટ ચિત્તવાઓ અને જેનો સ્વભાવ (અભિપ્રાય) ચંચલ ઇટલે િપયાદિકમાં લુબ્ધ છે એવા પુરુષ અત્યંત પરીસહાદિક કર્મને સહન કરતો છતો પણ માત્ર કાયાઈ કરીને કોઈ પણ (થોડો પણ) કર્મક્ષયાદિ રૂપ ગુણને કરતો નથી—મેઢવતો નયા; નવરં કે૦ ઉલ્લટો તે પોતાના આત્માને મલિન કરે છે. ” ૪૩૮.

‘કેસિંચિ વેરં મૈરણં, જીવિયમંન્નેસિમુર્ભયમંન્નેસિ ।

દંદુરદેવિચ્છાણ, ઐહિયં કેસિ ચં ઉર્ભયં પિ” ॥ ૪૩૯ ॥

અર્થ—“ દંદુર દેવની ઇચ્છામાં કેટલાઈકનું મરણજ શ્રેષ્ઠ છે, કેટલાઈક પુરુષોનું જીવવુંજ શ્રેષ્ઠ છે, કેટલાઈકનું જીવિત અને મરણ બન્ને શ્રેષ્ઠ છે, અને કેટલાઈકનું જીવિત અને મરણ બન્ને અહિતકારક છે. આ ગાથાનો સવિસ્તર ભાવાર્થ દંદુરંક દેવની કથાથી જાણવો. ” ૪૩૯. તે કથા નીચે પ્રમાણે—

દંદુરંક દેવની કથા.

પ્રથમ દંદુરંક દેવના પૂર્વભવનું સ્વરૂપ કહે છે—કૌશાંવી મહાપુત્રીમાં શતાતીક નામે. રાજા રાજ્ય કરતો હતો, તે વસ્તે તે ગામમાં એક સેઢુકનામની દરિદ્રી બ્રાહ્મણ રહેતો હતો. તેનો સ્ત્રી ગર્ભવતી થઈ. જ્યારે તેનો પ્રસૂતિસમય નજીક આવ્યો ત્યારે તેને પોતાના પતિને કહ્યું કે—‘ મારો પ્રસૂતિકાલ સમીપ આવ્યો છે, માટે મને ઘી, ગોઢ વિગેરે લાવી આપો. ’ ત્યારે સેઢુક વોહરો કે—‘ મારા પાસે ઈવી કોઈ પણ જાતની કબ્બા નથી, તેથી દ્રવ્ય વિના ઘી ગોઢ વિગેરે ક્યાંથી લાડું ? તે સાંમઢીને તે બોલી કે—‘ જો કોઈ પણ કબ્બા ન હોય તેાપણ ઉદયમ કરવાથી ફઢ્ઢની પ્રાપ્તિ થાય છે. કહ્યું છે કે—

પ્રાણિનામન્તરસ્થાયી, ન હ્યાલસ્યસમો રિપુઃ ।

ન હ્યુદયમસમં મિત્રં, યં કૃત્વા નાવસીદતિ ॥

“ પ્રાણીઓનો પોતાના અન્તઃકરણમાં રહેલા આઢસ જેવો બીજો કોઈ શ્રદ્ધવથી, અને ઉદયમ સમાન બીજો કોઈ મિત્ર નથી, કે જે (ઉદયમ) કરવાથી પ્રાણી કદિ પણ સીદાતો નથી—સેદ પામતો નથી. ”

આ પ્રમાણે પોતાની ક્ષાનું વાચ્ય સાંમઢીને તે સેઢુકે એક ફઢ્ઢ લઈ રાજાની સભામાં જઈ રાજાને તે શેદ કર્યું. ઈવી રીતે હંમેશાં તે રાજસભામાં ફઢ્ઢ લઈ જઈને શતાતીક રાજાની સેવા કરવા લાગ્યો.

एकदा कोइ कारणथी चंपा नगरीना राजा दधिवाहने आनीने कौशावी नगरीने बेरो घाल्यो. ते वजते शतानीक पासे अल्य सैन्य होवाथी ते किल्लानी अंदरज रह्यो. हमेशां युद्ध थतां अनुक्रमे वर्षाक्रिस्तु आनी. ते वखते दधिवाहन राजानुं केठळुंक सैन्य आम तेम जतुं रक्षुं, तेवामां पेलो सेडुक ब्राह्मण पुष्प फळ विगेरे लेवा माटे गाम बहार वाडीए गयो हतो. तेणे दधिवाहननुं सैन्य थोडुं जोइने शतानीक राजा पासे आनीने कळुं के- ' हे राजा ! आजे युद्ध करशो तो आपनो जय थशे. ' ते सांभळीने शतानीक राजा सैन्य सहित किल्ला बहार नीकळ्यो. युद्ध करतां दधिवाहननुं सैन्य भांग्यु. एटले तेना हाथी घोडा विगेरे लड लडने शतानीक राजा पोतानी नगरीमां आग्यो. पछी सेडुकने घशुं मान आपीने तेगे कळुं के- ' हे सेडुक ! हुं तारा पर प्रसन्न थयो छे, माटे इच्छानुसार माग. ' सेडुके कळुं के- ' हे स्वामी ! हुं घेर जइ मारी स्त्रीने पुछीने पछी मागीच. ' एम कही घेर जइने तेणे पोतानी स्त्रीने पुछ्युं के " हे भिया ! आजे शतानीक राजा मारा पर तुष्टमान थइने इच्छित वरदान आपे छे, माटे हुं शुं माशुं ? " ते सांभळीने तेणे विचार्युं के- ' जो आ घणा वैभवने पामशे तो मारुं अपमान करशे. ' एम विचारिने ते स्त्रीए कळुं के- " हे प्राणनाथ ! जी तमारा पर राजा प्रसन्न थया होय, तो हमेशां इच्छा प्रमाणे भोजन अने एक दीनार (महोर) दक्षिणानी मागणी करो. केमके निद्रा बेचीने ग्रहण करेछा उजागरा (जागरण) नी जेवां गाम के नगरना अधिपतिपणाए करीने शुं फळ छे ? (एटले गाम गरास मागवो ते तो निद्रा बेचीने उजागरा लीया जेवुं छे, माटे ते न मागवुं.) " आ प्रमाणे स्त्रीनुं वाक्य सांभळीने ते निर्भागीए पण तेज माग्युं. तेथी राजाए पण हमेशेने माटे वाराफरती दरेक घेर तेने जमाडीने दक्षिणा आपवानो हुकम कर्यो, एटले लोको तेने उपरा उपर निर्भरण करवा लाग्या. तेथी सेडुक पण दक्षिणाना लोभथी एक घेर भोजन करीने घेर जइ शुंखमां आंगळां नांली प्रथम खाथेलानुं वमन करी बीजे घेर जमवा जवा लाग्यो. ए प्रमाणे अदक्षिणी भोजन करता सेडुकने त्वचाविकार थवाथी गळत कोठनो व्याधि उत्पन्न थयो, एटले हाथ उग विगेरे अश्यो गळवा लाग्या; परंतु ते घन अने पुत्रादिकना परिवारथी घणो वृद्धि पाम्यो. पछी ते सेडुकना अंगमां रोगनी बहु वृद्धि थइ, एटले मंत्री प्रमुखे सेडुकने कळुं के- ' हवे तारे भोजनने माटे जवुं नहीं, तारे बदले तारा पुत्रने मोकळवो. ' त्यार पछी तेनो पुत्र हमेशां दरेक घेर जमवा जवा लाग्यो, अने दीनारनी दक्षिणा लेवा लाग्यो. सेडुक सर्व लोकोने अनिष्ट थइ पढथो. तेना पुत्रे पण तेने एक जुदा घरमां राख्यो, अने तेने भोजन पण एक काष्ठना पात्रमां जुडुं आपवा लाग्यो. तेनी साये कोइ वोलतुं पण नहीं, अने सर्वे घरना लोको तेने ' मर, अदीठ या ' एवां तिरस्कारनां वचनो कहेता हता. पुत्रोनी बहुओना शुलथी

પણ તેવાં તિરસ્કારનાં વચનો સાંભળીને સેહુકને ક્રોધ ચઢ્યો; તેથી તેણે વિચાર કર્યો કે—‘ આ સર્વેને કોઢીયા કરું ત્યારેજ હું સ્વરો. ’ એમ વિચારીને તેણે પોતાના પુત્રને બોલાવીને કહ્યું કે—‘ હે પુત્ર ! સાંભલ, હું વૃદ્ધ થયો છું, મારું મૃત્યુ હવે નજીક આવ્યું છે, તેથી મારે તીર્થયાત્રા કરવા જવું છે. પણ આપણા કુળનો એવો આચાર છે કે જે તીર્થયાત્રા કરવા જાય તે પ્રથમ જવ તથા ઘાસને મંત્રથી મંત્રીને એક વકરીના પુત્રને (બોકડાને) સ્વરાણે, અને તે વકરાને પુષ્ટ કરી તેનું માંસ સર્વ કુટુંબને સ્વરાણીને પછી તીર્થયાત્રા કરવા જાય. માટે હે પુત્ર ! મને પણ એક વકરીનું વચ્ચું લાવી આપ. ’ તે સાંભળીને તે પુત્રે તે પ્રમાણે કર્યું; એટલે તે બોકડાને સેહુકે પોતાની પાસે રાખ્યો. પછી પોતાના કુષ્ટ સંબંધી પરુ વિગેરેથી મિશ્રિત કરીને જવ તથા ઘાસ તેને સ્વરાણવા લાગ્યો. તેવી રીતે કરતાં કેટલેક કાલે તે બોકડો કોઢીયો થયો. એટલે તેને મારીને તેના માંસવડે કુટુંબનું પોષણ કરીને (સૌને જમાડીને) તેમની રજા છૂટ તે તીર્થયાત્રા માટે નીકળ્યો.

માર્ગમાં જતાં સેહુકને તૃષા લાગવાથી તેણે સૂર્યના તાપથી તપેહું, અંદર પડેલા ઘણાં પાંદડાંઓથી ઢંકાયેહું કાથ (ઉકાળા) જેહું કોઈક દૃઢ (સ્વાલોચીયા)નું જલ્પાન કર્યું. તેથી તુરતજ તેને વિરેચન થયું. એટલે તેનો સર્વ કુષ્ટક્રમિનો વ્યાધિ વહાર નીકળ્યો. પછી તેણે ઘણા કાલ સુધી તે જલનું પાન કર્યાં કર્યું. એટલે દૈવયોગે તે તદ્દન નીરોગી થયો. પરંતુ અહીં કુષ્ટરોગવાળા બોકડાનું માંસ લાવાથી તેનું આંહું કુટુંબ કોઢીયું થયું. પછી સેહુક પોતાના શરીરની નીરોગતા દેલાહવા માટે કૌશાંબી નગરીમાં પાછો આવ્યો. લોકોએ તેને પૂછ્યું કે—‘ તારોરોગ કેવી રીતે ગયો ? ’ ત્યારે તે બોલ્યો કે—‘ દેવના પ્રભાવથી મારો વ્યાધિ નષ્ટ થયો છે. ’ પછી ઘેર આવીને સેહુકે પોતાના કુટુંબને વ્યાધિગ્રસ્ત જાડને કહ્યું કે—‘ જેવી તમે મારી અવજ્ઞા કરી હતી તેહુંજ તમને સર્વેને ફલ મલ્લ્યું છે ? મેં કેહું કર્યું ? ’ તે સાંભળીને સર્વેએ તેનો અત્યંત તિરસ્કાર કર્યો, અને ‘ તું અદીઠ યા ’ એમ કહી કુટુંબે અને નગરના લોકોએ તેની નિર્મલ્સના કરી તેને નગર વહાર કાઢી મૂક્યો. ત્યાંથી ભમતો ભમતો તે રાજગૃહી નગરીમાં મલો-લિષ્ટ (દરવાજે) આવીને રહ્યો.

તે અવસરે શ્રીમહાવીરસ્વામી રાજગૃહી નગરીના ઉદ્યાનમાં સમવસર્યા. તે સાંભળીને દ્વારપાલોએ સેહુકને કહ્યું કે—‘ જો તું અહીં રહીને ચોકી કરે તો અમે વીરપ્રચ્છને વંદના કરી આવીશ. ’ તે સાંભળીને સેહુક હા કહીને બોલ્યો કે—‘ હું મૂલ્યો છું. ’ ત્યારે દ્વારપાલોએ કહ્યું કે—‘ અહીં દ્વારદેવીની પાસે જે નૈવેદ્ય આવે તે તુ યથેષ્ટપણે સ્વાજે. પરંતુ તારે

अर्धिन रहेतुं बीजे क्याह जनुं नहीं. " ए प्रमाणे कहीने ते सर्वे द्वारपाळो श्रीजिनेश्वरने वेदना करवा गया. पछी सुधातुर सेइके खीर, वडां विगेरे देवीना नैवेद्यने कंठ सुधी खावां एटके तेने अत्यंत तृषा लागी; पण द्वारपाळोए तेने ते स्थानेथी बीजे जवानो निषेध कर्यो हतो, तेथी ते जळपान करवा कांइ गयो नहीं, तेमज ए प्रमाणेना कर्मना उदयथी तृषातुरपणामां जळना ध्यानमांज ते मृत्यु पाभ्यो, अने ते दरवाजानी नजीक रहेली एक वापी (वाव)मां देइको थयो.

(केटलेक काळे फरीथी श्रीमहावीर स्वामी त्यां समवसर्या. ते वखते ते वावमां जळ भरती पौरलोकोनी स्त्रीओ परस्पर वातो करवा लागी के— " हे वहेनो ! उतावळ करो. आजे श्रीमहावीर मय्युने वांदवा जनुं छे आजनो दिवस धन्य छे के जेथी आजे श्री-वीर मय्युनुं आपणेने दर्शन थचो. " आ प्रमाणेनां ते स्त्रीओनां वाक्यो सांभळीने 'इहा-पोह करतां ते देइकाने जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयुं, अने पोतानो पूर्व भव (सेइकनो भव) तेणे जाण्यो. पछी ते देइको पण भगवानने वांदवा माटे वापीनी बहार नीकळी चाल्यो. मार्गमां श्रेणिकराजा सैन्य सहित भगवानने वांदवा जता हता, तेना अश्वना पगनी खरीना प्रहारथी दवाइ जहने ते देइको भगवानना ध्यानमांज मरण पापी प्रथम स्वर्गमां दुर्दुरांक नामे देवता थयो. अवधिज्ञानवडे पोतानो पूर्वभव-जाणीने ते क्रोधीयातुं रूप विकुर्वी श्रेणिक राजाना सभ्यक्त्वनी परीक्षा करवा माटे भगवानने वांदवा आब्यो. ते देव भगवाननी पासे बेसी पोताना शरीर परथी सौने देखातो कोडनो दुर्गन्धी रस (चेप) लह भगवंतना चरणे चंदनरस चोपडवा (छेप करवा) लाग्यो. ते जोइने श्रेणिक राजाने तेना पर क्रोध चढयो अने मनमां बोल्यो के 'कोण आ पापिष्ठ भगवाणनी अवज्ञा करे छे ? ज्यारे आ बहार नीकळ्यो, त्यारे हुं तेने सारी रीते शिक्षा करीश.' आ प्रमाणे ते विचार करे छे, तेन्नामां भगवानने छींक आवी. ते वखते पेळा देवे 'तमे मरो' एम भगवानने कहुं. थोडी वारे राजाने छींक आवी, न्यारे तेने 'घणुं जीवो' एम कहुं. थोडी वारे अभयकुमारने छींक आवी, त्यारे तेने 'जीवो अयवा मरो.' एम कहुं. पछी 'कालसौकरिकने पण छींक आवी. त्यारे तेने 'म जीव, म मर' एम कहुं आ चारे वचनोमां भगवानने मरवानुं कहुं ते वचनथी अति क्रोधातुर यथेला श्रेणिक राजाए पोताना सेवकोने कहुं के 'आ दुष्ट कोडीयो समवसरणनी ब-हार नीकळे के तरत तेने पकडीने बांधी छेजो.' पछी देशनाने अंते ते देव समवसर-रणनी बहार नीकळ्यो. ते वखते राजाना सुभटोए तेने चोतरफया घेरी छीथो. परंतु ते

१ इहा ते अपोह-सांभळेला वाक्य उपरथी आतुं पूर्व में कोइ वखत सांभळ्युं छे, पथी पुर्वतुं स्मरण करवा माटे गाढ विचारणा करथी ते.

२ काळ नामनी सौकरिक पटले कसाइ.

તો તરતજ આકાશમાં ઉત્પત્તી ગયો. તે જોઈ શ્રેણિક રાજા વિસ્મય પામ્યો. પછી પાછા ફરીને તેમણે ભગવંત પાસે આવી પૂછ્યું કે—‘હે સ્વામી ! તે કુટ્ટી કોણ હતો તે કહો.’ ત્યારે ભગવાને સેહુકના ભવથી આરંભીને તેનું સર્વ વૃત્તાંત રાજાને કહી સંભળાવ્યું. પછી કહ્યું કે ‘તે દર્દુરાંક દેવ જે હમણાજ ઉત્પન્ન થયો છે તેણે તારી પરીક્ષા કરવા માટે તને કુટ્ટીનું રૂપ વતાવાને મારે અંગે દિવ્ય ચંદનનો છેપ કર્યો છે.’ ફરીથી શ્રેણિક રાજા પૂછ્યું કે ‘હે સ્વામી ! ત્યારે કહો કે આપને ઈંક આવી, તે ચલતે આપને તેણે મરવાનું કેમ કહ્યું ?’ ભગવાન બોલ્યા કે ‘હે શ્રેણિક ! મને અહીં હું ત્યાં સુધી વેદનીયાદિક ચાર કર્મ વલ્ગોળાં છે, અને મૃત્યુ પામ્યા પછી તો મને શુક્તિમુક્ત મલ્લાનું છે, માટે મને મરવાનું કહ્યું. વળી તને ઈંક આવી ત્યારે તને જીવવાનું કહ્યું. તેનું કારણ એ છે કે હાલમાં તું જીવતો છે તો રાજ્યમુક્ત ભોગવે છે, પણ મૃત્યુ પછી તું નરકમાં જવાનો છે. માટે તને ‘ચિરં જીવ’ એમ કહ્યું. તથા અભયકુપાર અહીં પણ ધર્મકાર્ય કરતો સતો રાજ્યમુક્ત ભોગવે છે, અને પરમવમાં પણ તે અનુચર વિમાનમાં જવાનો છે. તેથી તેને ‘જીવ અથવા મર’ એમ કહ્યું; અને કાલસૌકરિક તો અહીં જીવતો છતો પણ વહુ હિંસાદિક પાપનું આચરણ કરે છે, અને મરણ પામ્યા પછી સાતમી નરકે જવાનો છે. માટે તેને ‘ન જીવ અને ન મર’ એમ કહ્યું. આ ચાર ભાંગા સર્વ જીવ પરત્વે લાગુ પડે છે. (વડછે કે ચાર ભાંગામાંથી કોઈ પણ એક ભાંગામાં હર-કોઈ જીવ આવી શકે છે). આ દર્દુરાંક દેવના મનનો અભિપ્રાય છે.” તે સાંભળીને શ્રેણિકે ભગવાનને વિનંતિ કરી કે “હે સ્વામી ! આપ જેવા મારે માથે શુરુ છતાં મારે નરકમાં જવું કેમ યોગ્ય કહેવાય ?” ભગવાન બોલ્યા કે “હે રાજા ! તે સમ્યક્ત્વ પામ્યા પહેલાં નરકનું આયુષ્ય વાંધેલું છે, તે કોઈથા પણ દૂર (મિથ્યા) થઈ શકે તેમ નથી. પરંતુ તું શ્રેદ ન કર. આવતી ચોવીશીમાં તું પદ્મનાભ નામે પ્રથમ તીર્થંકર થવાનો છે.” એ સાંભળીને રાજા એ હાંપત થઈ ફરીથી પ્રશ્નને પૂછ્યું કે ‘હે ભગવાન ! શું તેવો કોઈ પણ ઉપાય નથી કે જેથી મારે નરકમાં જવું ન પડે ?’ ત્યારે ભગવાન બોલ્યા કે ‘જો તારી કાપિલા નામની દાસી ભાવપૂર્વક સાધુને દાન આપે, અને જો કાલસૌકરિક હંમેશાં પાંચસો પાઠા મારે છે તે ન મારે તો તારે પણ નરકે જવું ન પડે.’ તે સાંભળીને રાણા ભગવાનને વંદના કરી ઘર તરફ ચાલ્યો. માર્ગમાં ફરીથી શ્રેણિક રાજાના સમક્ષિતની પરીક્ષા કરવા માટે દર્દુરાંક દેવ એક સાધુનું રૂપ વિકુર્વી ઘણા મત્સ્યોથી ભરેલી જાલ લઈને રાજાની સન્મુક્ત આવ્યો. તેને જોઈ શ્રેણિકે પૂછ્યું કે ‘અરે ! શુનિનો વેષ ધારણ કરનાર એવા તે આ જાલને કેમ ગ્રહણ કરી છે ? અને જો આ જાલ ધારણ કરે છે, તો શું તું મત્સ્યાદિકનો આહાર પણ કરે છે ?’ આ વિષય પર શ્રેણિકના પ્રશ્ન અને દેવના ઉત્તરવાલો શ્લોક આ પ્રમાણે છે—

કંથાચાર્ય શ્રુત્યા કિં નનુ શફસ્વઘે જાલમશ્રાસિ મત્સ્યાન્ ।
તાન્ વૈ મદ્યોપદંશાત્ પિબસિ મધુ સમં વેશ્યયા યાસિ વેશ્યામ્ ॥
દત્વારીણાં ગલેઽઙ્ગી નનુ તવ સિપવો યેન સાયં છિનન્તિ ।
ચૌરસ્ત્વં દ્યૂતહેતોઃ કિન્તવ્વ ઇતિ કથં યેન દાસીસુતોઽસ્મિ ॥૩॥

‘સાધુ ! આ તારી કંથા વહુ શ્લય (જીર્ણ) કેમ છે ?’ ‘હે રાજા ! આ કંથા નથી, પળ મત્સ્યને મારવા માટે પકડવાની જાલ છે.’ ‘અરે ! શું તું મત્સ્ય खाय છે ?’ ‘હા. મદિરાના લપદંશથી તે (મત્સ્યો) खाचું છે.’ ‘અરે ! શું મધ પળ પીવ છે ?’ ‘હા. વેશ્ય સાથે પ્રીતિ હોવાથી તેની સાથે પીવું પડે છે.’ ‘ત્યારે શું તું વેશ્યાગમન પળ કરે છે ?’ ‘હા. શત્રુઓના ગઢા ઉપર બે પળ મૂકીને વેશ્યા પાસે જાઉં છું.’ ‘અરે ! શું તારે શત્રુઓ પળ છે કે ?’ ‘હા. કેમકે રાત્રે ચોરી કરું છું, તેથી શત્રુઓ પળ છે.’ ‘અરે ! તું ચોરી પળ કરે છે ?’ ‘હા. દ્યૂત (જુગાર) રમું છું, તેથી પૈસાને માટે ચોરી પળ કરું છું.’ ‘અરે ! ત્યારે શું તું જુગારી પળ છે, પળ જુગારી યજ્ઞાનું કારણ શું ?’ ‘હે રાજા ! હું દાસીપુત્ર છું તેવા જુગારી થયો છું.’

આવાં અનેક ઉત્તરો આપવા વહે ઘણી રીતે રાજાની પરીક્ષા કરી, પળ રાજા સમ્યક્ત્વથી ચલિત થયો નહીં અને સાધુ ઉપરના રાગથી મ્રદ્ધ થયો નહીં, ત્યારે તે દેવ ગર્ભવતી સાધ્વીનું રૂપ ગ્રહણ કરી, સર્વ અલંકાર પહેરી, માથું ઘુંચી, તેલ નાંચી, કપાલે ઘાંડલો કરી રાજાની સન્મુખ આવ્યો. તેને જોઈ રાજાએ પૂછ્યું કે ‘તું સાધ્વી છે, છતાં આ ગર્ભ વિગેરે ક્યાંથી ?’ તેણે ઉત્તર આપ્યો કે ‘સર્વ સાધ્વીઓ આવાં જ કામો કરે છે.’ ત્યારે રાજાએ કહ્યું કે ‘તારેજ આવો માઠો કર્મોદય વતે છે, બીજા કોઈ પળ સાધુ સાધ્વી સર્વથા તારી જેવા હોતાજ નથી.’ આ પ્રમાણેનો ઉત્તર મઢવાથી રાજાનું ચિત્ત જરા પળ ચલિત થયું નથી એમ જાણીને દર્દુરાંકદેવે પ્રત્યક્ષ થઈ-રાજાની પ્રશંસા કરી, અને રાજાને એક હાર અને બે ગોઢા આપી તે દેવ સ્વર્ગે ગયો. રાજાએ હાર ચિહ્નના દેવીને આપ્યો, અને બે ગોઢા નંદા રાણીને આપ્યા નંદાએ ચિહ્નપાને હાર આપ્યો ને પોતાને માત્ર બે ગોઢા આપ્યા તે જોઈ ક્રોધ પામીને તે વણે ગોઢા ઇર્ષ્યાથી ચાંમલા સાથે અફઢાઢ્યા. એટલે તે ફૂટી જવાથી એક ગોઢામાંથી બે કુંડલ નીકઢ્યાં. અને બીજામાંથી બે દિવ્ય વલ્લો નીકઢ્યાં. તે જોઈ નંદા રાણી અત્યંત હર્ષ પામી-રાજાએ કપિલા દાસીને વોઢાવીને કહ્યું કે ‘તું સાધુઓને દાન આપ.’ તેણે કહ્યું કે ‘હે રાજા ! મને એ કામ વતાવશો નહીં. હું બીજું વધું કામ કરીશ પળ તે કામ કરીશ નહીં.’ તે સાંમઢીને રાજાએ વઢાત્કાર કરીને તેને હાથે દાન અપાવ્યું. ત્યારે તે દાન આપતી

आपत्ती बोली के 'आ दान हूं आपत्ती नहीं, पण श्रेणिक राजाना आ चाटवो दान आपे छे.' पछी तेने तजी दइने राजाए काळसौकारिकने बोलावीने कहुं के 'तु पाढा मारवानुं काम मूकी दे.' ते बोल्थो के 'हे राजा ! हूं प्राणथी पण प्रिय एबी हिंसानो त्याग नहीं करूं.' ते सांभळीने राजाए तेने एक अंधकूपमां नांख्यो. त्यां पण तेणे कादवनी माटीना पांचसो पाढा चीत्रीने (बनावीने) तेने मार्या (तेनी हिंसा करी). ते जाणीने राजाए विचार्युं के 'खरेखर जिनेश्वरनुं वचन सत्य छे, ते मिथ्या थायज नहीं.' आथी जोके तेने खेद थयो परंतु पोते पण तीर्थकर थवाना छे, ते हकीकत जाणेछी होवाथी मनसां आनंद पासवा लास्यां।

॥ इति ददुरांकदेवसंबन्धः ॥ ६७ ॥

केसिंचिय परलोगो, अन्नोसिं ईश्व होई इहैलोगो ॥

कैस्स वि दुंन्न वि लोगां, दोवि हैया कैस्सई लोगां ॥ ४४० ॥

अर्थ—“केटलाएक जीवोने परलोक (परभव) सारो होय छे, बीजा केटलाएकने अहीन आ लोक सारो होय छे, कोइ पुण्यशाली जीवने बन्ने लोक पण सारा होय छे, अने कोइ पापकर्म करनारा जीवने बन्ने लोक हत (नष्ट) होय छे.” ४४० : (आ हकीकतनो उपनथ उपर जणावेली छीकनी हकीकत परथी समजी छेवां, बली विशेष स्पष्ट करे छे—

छंज्जीविकायविरओ, कांयकिलेसेहिं सुहु गुंरुएहिं ।

न हूं तस्सं इमो लोगां, हँवइ 'स्सेगो' परो 'लोगो' ॥ ४४१ ॥

अर्थ—“छ जीवनिकानुं मर्दन (बध) करवामां विशेष आसक्त एवा ते तापसादिकने अतिशय मोटा एवा पंचाग्नि, मासक्षपण विगेरे कायह्लेशोए करीने आ लोक (भव) सारो होतो नहीं. परंतु तेने एक परलोक सारो थाय छे. केमके तेने अज्ञानतपथी परभवमां राज्यादिक सुखनी प्राप्ति थाय छे.” ४४१.

नरंयनिरुद्धमईणं, दंडियमईणं जीवियं सेयं ।

बँहुवायमि वि देहे, विसुज्जमाणस्स वंरं मरणं ॥ ४४२ ॥

अर्थ—“नरकने विषे बांधी छे (धारण करी छे) मति जेओए एटछे नरक-गतियमन योग्य कार्यना करनारा एवा मंत्री विगेरे राज्यधिता करनारनुं जीवित

गाथा ४४०—केसिंचि परो लोगां । हता । कस्सवि ।

गाथा ४४१—पट्टजीवकायमईने विशेषेण रतः । स. एगो परे लोगां । स्स=सत्य परः=पकः । गाथा ४४२—मईणं । जीविजं । सेयं=श्रेयः । दंडियमईणं=मंत्रिमखुलाणां । बहुवायमि वि=बहुरोगसमुत्पन्नेपि ।

एटले जीवुंज श्रेय (सारं) छे. केमके पापकर्मना आचरणने लीधे परभवमा अवश्य तेने नरकादिक दुःखनी प्राप्ति थाय छे, अने बहुरोगवाळा एटले वेदनाने सहन करवा असमर्थ एवा देहने विषे रखा सता—व्याधि सहन करतां छतां पण शुद्ध ध्यान करनार पुरुषनुं मरण श्रेष्ठ (कल्याणकारी) छे. केमके तेने परभवमा सद्गतिनी प्राप्ति थाय छे." ४४२.

तव नियमसुद्धियाणं, कर्त्तव्यं जीविअं पि^१ मरणं पि ।

जीवंतं ज्जंति गुणां, मयां वि पुणं सुग्गंइ^२ जंति ॥ ४४३ ॥

अर्थ—“ वार प्रकारना तपने विषे अने नियम (ग्रहण करैला व्रतो) ने विषे सुस्थित (दृढ) एवा साधुओनुं जीवित अथवा मरण वने कल्याणकारी छे (केमके तेमने जीवतां धर्मनी वृद्धि अने परभवमा सद्गतिनी प्राप्ति थाय छे तेज उत्तरार्धवडे कहे छे.) केमके तेओ (साधुओ) जीवतां छतां गुणोने उपार्जन करे छे, अने मृत्यु पाग्ग्या सता पण स्वर्ग मोक्षादिक सद्गतिने प्राप्त करे छे.” ४४३.

अहियं मरणं चं अहियं, जीवियं पावकम्मकारीणं ।

तमसम्मि पंडंति मया, वेरं^३ वेढंति जीवतां ॥ ४४४ ॥

अर्थ—“ पापकर्म करनार पुरुषोनुं मरण अहितकारी (अधम) छे, अने जीवित (प्राणनुं धारण) पण अहितकारी छे. केमके तेओ मरण पामीने परभवे तमोरूप नरकरूपने विषे पडे छे (नरके जाय छे). अने जीवता छता अनेक जीवोना बधवडे करीने ते ते जीवोनी साथे वैरभावने वृद्धि पमाडे छे.” ४४४.

अवि ईच्छंति अ मरणं, नं यं परपीडं करंति मणंसा वि^४ ।

जे सुविईपसुगइयहा, सोयरियसुओ जहा सुलंसो ॥ ४४५ ॥

अर्थ—“ कालशौकरिकना पुत्र सुलसनी जेम जेओए सुगतिनो मार्ग भली प्रकारे जाणेछो छे तेओ पोताना मरणने पण इच्छे छे, परंतु मनवडे पण परने पीडा उत्पन्न करता नथीज. मनमां पण परने पीडा करवानुं चितवता नथी, तो पछी बचन अथवा कायाए करीने तो केमज इच्छे? नज इच्छे. जेम सुलसे परपीडा न करी तेम बीजा पण तेवा सुविदित पुरुषो परपीडा करता नथी.” ४४५. अहीं सुलसनुं दृष्टान्त जाणुं.

गाथा ४४३—जीविअं । ज्जंति=अर्जयन्ति । सोगयं ।

गाथा ४४४—तमसम्मि=तमसि, तमोरूपे नरके । गाथा ४४५—सुविइअसुगइयहा । सुविदितसुगतिपथाः । सोअरियसुओ=कालशौकरिकसुतो ।

सुलसनी कथा.

राजगृह नगरमा महा क्रूर करनार अने अधर्मी कालसैकरीक नामे पशुवध करनार (कसाह) रहैतो हतो. ते हमेशा पांचसो पाढानो वध करतो हतो, अने तेवढे कुटुंबनु पोषण करतो हतो. तेने सुलस नामे एक पुत्र थयो. ते अभयकुमारना संसर्गथी श्रावक थयो. केदळेक काले काळसैकरीकना शरीरमा एवा मोटा रोगो उत्पन्न थया के जेनी वेदनाने ते सहन करी शकतो नहीं. तेथी ते अत्यंत विलाप अने पोकार करतो हतो. तेना स्वजनो अनेक प्रकारना औषधो करता हवा, पण वेदना शांत थती नहोती. एकदा पिताना दुःखथी दुःखी थनेला सुलसे अभयकुमारने ते बात कही, एदळे अभयकुमारने तेने क के “ हे सुलस ! तारो पिता महापापी होवाथी नरकमा जवानो छे, तेथी सारा औषधोथी तेने शांति थशे नहीं; माटे तेनुं तुं मध्यम (हल्का प्रकारनुं-कनिष्ठ) औषध कर के जेथी तेने कांडक सुख थाय.” आवी अभयकुमारने आपेछी बुद्धिथी सुलसे घेर आवी पिताना शरीरपर विद्या विगेरे दुर्गन्धी वस्तुओनुं विछेपन कराव्युं, घोरडी अने वावळ विगेरेना कांटानी शय्या करी तेमां सुवाढथा, कडवां कषायळां ने तीखां औषधो पावा मांढथां, माय भेंस विगेरेनां मूत्र पायां, कुतरा अने शुंड विगेरेनी विद्यानो धूमांडो दीधो, तथा राक्षस अने वेताळ विगेरेना भयंकर रूपो देखढाव्यां. एवी रीते करवाथी तेना शरीरने महा सुख उत्पन्न थयुं, तैमज ते पोताना मनमां पण अत्यंत सुख मानवा लाग्यो. पछी ते काळसैकरीक मृत्यु पापीने सातमी नरकमा नारकीपणे उत्पन्न थयो.

तेनुं भेतकार्य (भरणक्रिया) कर्मा पछी सुलसने तेना कुटुंबे कर्मुं के “ तुं पण हवे तारा पितानी जेप हमेशा पांचसो पाढानो वध करीने कुटुंबनुं पोषण कर, अने आपणा कुटुंबनी रीति प्रमाणे वर्तीं सर्व कुटुंबमां मोटो था.” ए प्रमाणे कुटुंबीओनुं वाक्य सांभळीने सुलस बोल्थो के “ ए पापकर्म हुं कदी करवानो नथी. केमके तेनुं पाप करीने हुं नरके जावं, ते बलते मारो कोइ आधा थवानुं नथी. जिहाना स्वादने माटे थइने जे पुरुषो आवी हिंसा करे छे तेओ अवश्य दुर्गतिने पाये छे. त्यारे एक कांटो लागवाथी पण प्राणोने मोडुं दुःख उत्पन्न थाय छे, त्यारे अनाथ अने अज्ञरण एवा पशुओने शस्त्रादिकवडे मारवाथी तेमने दुःख उत्पन्न थतुं हशे तेनुं तो कहेवुं न थुं ! माटे आवा पापकर्मवडे कुटुंबनुं पोषण करवाथी सर्थुं. मारे हिंसा करवानुं कांइ पण प्रयोजन नथी.” ते सांभळी कुटुंबवर्ग बोल्थो के “ तने जे पाप लागशे तेना अमे पण भागीदार थइथुं, माटे तारे कुळक्रमने त्याग करवा नहीं.” इत्यादि कुटुंबनो बहु आग्रह जोइने तेमने प्रतिबोध करवा माटे सुलसे एक कुहाडी छइने पोताना पण

पर मारी, तेयी ते अचेतन यह पृथ्वीपर पडी गयो. थोडीचारे चेतना (शुद्धि) आव्या पछी पोकार करी तेणे सर्व कुटुंबने बोलावीने कहुं के 'मने घणी वेदना थाय छे, माटे तमे बधा थोडी थोडी वहेचीने छइ ल्यो.' ते सांभळीने कुटुंबी बोल्या के 'बीजानी वेदना शी रीते छइ शकाय ?' त्यारे सुलसे कहुं के 'त्यारे मारी आ वेदनामार्थी जरा पण तयारार्थी छइ शकाती नयी, त्यारे मारुं पाप लेवाने तमे शी रीते शक्तिमान थसो ?' आ प्रमाणे कहीने पोतानी बुद्धिथी तेणे पोताना आखा कुटुंबने प्रतिबोध पमाडयो.

पछी ते सर्व वृत्तांत जाणीने अभयकुमार सुलसने घेर आवीतेने सुखसाता पूछीने बोल्यो के 'हे सुलस ! तने धन्य छे. कैमके तें नीच कुळमां उत्पन्न थया छतां पण हिंसामां आदर कर्यो नहीं.' इत्यादिक घणे प्रकारे तेनी प्रशंसा करीने अभयकुमार पोताने घेर गयो. पछी सुलस पण श्रावकधर्मनुं पाळन करीने अनुक्रमें स्वर्गे गयो एवी रीते बीजाओ पण जेओ परने पीडा करता नथी तेओ. स्वर्गना सुखने पामे छे.

॥ इति सुलसदृष्टान्तः ॥ ६८ ॥

मूलग कुदंडगा दामगाणि, उच्छूल घंटिआओ यं ।

पिंडेई अपरितंतो, चउंपया नैत्थि यं प्सु विं ॥ ४४६ ॥

अर्थ—“ मूलग एट्ठे पशुओने बांधवाना मोटा खीळा, कुदंडगा एट्ठे नाना वाछरदाने बांधवानी खीळीओ जेने कोलीडो कहे छे ते, दामग एट्ठे पशुओंना रज्जुमय बांधवो (दामण, मोरी, पग बांधवानां दोरडां विगेरे), उच्छूल एट्ठे पशुओने गळे बांधवानुं दोरडुं तथा पशुओने गळे बांधवानी घंटडीओ इत्यादि पड्डने योग्य एतां उपकरणोने अश्रांतपणे एकठां करे छे; परंतु पोताने घेर तो चतुष्पद एट्ठे गाध, भेंस विगेरे तथा पशुओ एट्ठे बकरी बोकडी विगेरे कांड नथी, तो ते बधा उपकरणां एकठां करवा व्यर्थ छे.” ४४६. तेवीज रीते—

तंह वैत्थपायदंडगउवगारणे जयणकज्जमुज्जुत्तो ।

जंस्सहाए किंलिस्सई, तं चियं मूढो नं वि करेई ॥ ४४७ ॥

अर्थ—“ तेवीज रीते जे अविवेकी पुरुष बल्ल, पात्र अने दांडो विगेरे उपकरणो यतना रूप कार्यने माटे मेळववा सारु उद्यमवंत छतो मेळवे छे अने तेने माटेज एट्ठो

गाथा ४४६—नत्थि अ प्सु वि । अपरितंतो—अपरिआंतः सन् ।

गाथा ४४७—जसहाए—यस्यार्थे । फिलस्सइ । करेई ।

हेतु सहै छे, छतां ते यतनानेज निश्चे ते मूर्ख माणस करतो नथी; तो ते भूर्खने उपरना पशु विना पशुनां उपकरणो मेळवनारनी जेवो जाणवो; अर्थात् यतनाने माटेज उपकरणो मेळववानी जरूर छे, छतां ते मेळवीने पछी यतनाज जो न करे तो ते उपकरणो एकठां करवा व्यर्थ छे.” ४४७.

अरिहंता भगवंतो, अंहियं व हियं^{१०} व नं वि इहं किंचि ।

वैरंति कारंति यै, घित्तेण जेणं बल्लो हंत्थे ॥ ४४८ ॥

अर्थ—“ अरिहंत (रागद्वेष रहित) भगवान् (ज्ञानी) मनुष्योने बळात्कारे हाथे पकडीने आ संसारमां कांड पण (थोडुं पण) तेना अहितनुं निवारण करावता नथी. तेमज तेना हितने करावता नथी. अर्थात् जेम राजा माणसने हाथे पकडीने बळात्कारे पोतानी हितकारी आझा मनावे—पळावे छे अने अहितकारी मार्ग छोडावे छे तेम अरिहंत भगवान् करता नथी.” ४४८. त्यारे शुं करे छे ते ते कहे छे—

उवएसं पुणं तं दिंतिं, जेणं चरिणं किंत्तिनिलयाणं ।

देवाणं वि हुंति^{११} पंहुं, किंभंमं पुणं मंणुअमित्ताणं ॥ ४४९ ॥

अर्थ—“ परंतु तेने (मनुष्यने) उपदेश—धर्मोपदेश आपे छे, के जे आचरवाथी (जे धर्मनुं आचरण करवाथी) कीर्तिना स्थानरूप एवा देवोने पण ते प्रभु—स्वामी थाय छे; ता पछी हे अंग ! (हे शिष्य !) मनुष्यमात्रने स्वामी थाय, तेमां तो शुं आश्चर्य ! ” ४४९

वरंमउडकिरीडयरो, चिंत्तेओ चंवलकुंडलाहरणो ।

संको हिओवएसा, एरावणवाहणो जाओ ॥ ४५० ॥

अर्थ—“ दर (प्रधान) छे मउड एटछे आगळनो भाग जेनो एवा किरीड के० मुकुटने धारण करनार (श्रेष्ठ मुकुटने धारण करनार), बाहुरक्षा (बाहुबंध बेरखा) विगेरे आभरणोथी शोभित तथा कर्णने विषे चपळ कुंडळना आभरणने धारण करनार एवो शकेन्द्र हितोपदेशथी एटछे हितकारी जिनेश्वरना उपदेशथी (उपदेश प्रमाणे आचरण करवाथी) ऐशवणना वाहनवाळो थयो; एटछे कार्तिक शेटना भवमां हितकारक जिनेश्वरने उपदेश अंगीकार करवाथी तेणे इन्द्रपणुं प्राप्त कर्तुं.” ४५०.

र्यणुज्जलाइं जाइं, बैत्तीसविमाणसयसहस्साइं ।

वंज्जहरेण वंराइं, हिओवएसेण लंछाइं ॥ ४५१ ॥

गाथा ४४८—हियं च। वारिंति। कारंति। य। घित्तेणं। गाथा ४४९—निलगाइं। गाथा ४५०—चंचाओ—बाहुरक्षायांभरणो। दिववपसा। गाथा ४५१—र्यणुज्जलापल।

अर्थ—“ वक्त्रे वज्रधरे (इन्द्रे) रत्नोयी उज्वल (देदीप्यमान) अने श्रेष्ठ एवां जे वत्रीशसो हजार (वत्रीश लाख) विमानो प्राप्त कर्या—तेनुं स्वामीगणुं मेळव्युं ते हितोपदेशे करीनेज एटले वीतरागना वचननुं आराधन करवायीज मेळव्युं.” ४५१.

सुखइसमं विभूई, जं पत्तो मरहचक्रवृत्ती विं ।

मांगुसलोगस पंह, तं जांग हिंआवएसेण ॥ ४५२ ॥

अर्थ—“ मनुष्यलोकनां (छलंड भरतक्षेत्रनां) स्वामा भरत चक्रवर्ती पण जे सुर-पतिने (इन्द्रे) तुल्य एवी विभूति पाम्यो. ते पण हे शिष्य ! हितोपदेशे करीने (वीत-रागना वचननुं आराधन करवायी) ज जाण.” ४५२.

लक्ष्मण तं सुइसुहं, जिणवयणुवएसममंयविंदुसमं ।

अप्यहियं कांयव्वं, अहियंसु मणं नं दायव्वं ॥ ४५३ ॥

अर्थ—“ ते (प्रसिद्ध एवो) श्रुतिने (कर्णेने) सुखकारक तथा अमृतना विंदु स-मान एवो जिनवचनना उपदेश पामीने (सांभळीने) पंडित पुरुषे आत्माने हितकारक धर्मानुष्ठानादिक करवुं. परंतु अहित (पाप)ने विषे मन पण न आपवुं—राखवुं. तो पछी काया अने वचनवळे तो पाप करवानी वातज शी ?” ४५३.

हियमप्यणो करितो, कस्सं न होई गरुओ गुरुं गण्णो ।

अहियं समीयरंतो, कस्सं नं विपव्वओ होई ॥ ४५४ ॥

अर्थ—“ आत्माने हितकारक धर्मानुष्ठानादिक करतो मनुष्य कोने गुरुस्थानीय (सुख्य) अने गण्य (गणना करवा लायक—पुछवा योग्य) एवो गुरु न थाय ? अर्थात् सर्वना मध्ये गुरु थाय छे; अने आत्मानुं अहित आचरण करनार पुरुष कोने विप्रत्यय एटले अविश्वासनुं पात्र नथी यतो अर्थात् सर्वने अविश्वासनुं स्थान थाय छे.” ४५४.

जो नियमसीलतवसंजमेहिं, जुत्तो करेई अप्यहियं ।

सो देवयं व पुंज्जो, सीसे मिद्धंत्यओ व्वं जणे ॥ ४५५ ॥

अर्थ—“ विनय (प्रत्याख्यान), शील (सदाचार), तप (छह अहम विगेरे) अने संयम (चारित्र), एटलाए करीने युक्त एवो जे पुरुष आत्माने हितकारक एवुं

गाथा ४५२—सुखइसमं । मणुस्त ।

गाथा ४५३—अप्यहियं ।

गाथा ४५४—हिय अप्यणो । गुरुओ गुरुगणो । होई । विपव्वओ=विप्रत्ययोऽविश्वास्त्यः

गाथा ४५५—नीयम । सिद्धार्थकः सपेपः । जणो ।

धर्मानुष्ठानादिक करे छे ते पुरुष देवतानी जेम पूज्य थाय छे. तथा लोकना मध्ये ते सिद्धार्थक (श्वेत सरसव)नी जेग मस्तकपर चढे छे. अर्थात् जेम सरसवने मनुष्यो पोताना मस्तकपर चढावे छे, तेम लोको तेनी आज्ञाने मस्तकपर वहन करे छे—अंगी-कार करे छे.” ४५५.

संघो गुणोहिं गण्णो, गुणां हिअस्स जेह लोगवीरस्स ।

“संमंतमउडविडवो, संहस्सनयणो सययमेइं ॥ ४५६ ॥

अर्थ—“ सर्व जीव गुणोवडेज गण्य (माननीय) थाय छे. जेमेके सत्त्वादिक गु-णोयी अधिक अने लोकवीर के० लोक मध्ये प्रसिद्ध एवा श्रीमहावीर स्वामीने चपल छे मुकुटनो भ्रान्त भाग जेनो एवो सहस्र नेत्रवाळो इन्द्र पण निरंतर वंदना करवा आवे छे. माटे गुणवानगुंज पूज्यपणामां हेतु छे, एम सिद्ध थाय छे.” ४५६.

चोरिकत्रं च गाकूडकवडपरदारदारुगमईस्स ।

तस्स चियं तं अंहियं, पुंणोवि वेरं जणो वंहइ ॥ ४५७ ॥

अर्थ—“ चोरो, वंचना—परने छेतरखुं, कूट—मृषा बोलखुं, कपट—माया करवी तथा परस्त्रीसेवन एटलां पापस्यानोने विषे जेनी दारुण—मलिन मति (मननी प्रवृत्ति) छे एवा ते पुरुषने निश्चे ते पूर्वे कहेला पापना आचरण अहितकारी एटले नरकनां हेतु भूत छे एम जाणखुं, तेमज तेवा पुरुषनी उपर लोको पण वेर (द्वेष)ने वहन करे छे—धारण करे छे; माटे तेखुं आचरण करखुं नहीं.” ४५७.

जेइ तां तणकंचणलड्डुरयणसरिसोवमो जणो जाओ ।

तइया नैणु वुंच्छिन्नो, अंहिलासो दर्व्वहरणम्मि ॥ ४५८ ॥

अर्थ—“ ज्यारे (तावत्—प्रथम) तृण अने कंचन, छेष्टु (हेफुं—पाषाण) अने रत्न—तेमने विषे समान उपमावाळो माणस थाय, एटले के ज्यारे माणसनी तृण तथा कांचनने विषे अने पथ्थर तथा रत्नने विषे समान वृद्धि थाय, त्यारे खरेखर (पारक) द्रव्य हरण करवानो अधिलाष तेनो तुटी गयो छे एम समजखुं.” ४५८

आजीवगगणनेया, रज्जंसिरिं पंहिऊण ये जंमाली ।

हियंमर्षणो करिंनो, नै य वर्येणिज्जे इहं पदंतो ॥ ४५९ ॥

भाषा ४५६—गुणादियस्य । संभ्रांतमपको मुकुटविटपो मुकुटप्रालो यस्य ।

भाषा ४५७—मस्स ।

भाषा ४५८—लिड्डु । तइया । वोच्छिन्नो ।

भाषा ४५९—आजीविकानां निह्वानां गजस्य नेता । पंहिऊण=द्वयवत्त्वा । पडितो ।

अर्थ—“राज्यलक्ष्मीनो त्याग करीने तथा च शब्दे सिद्धान्तनो अभ्यास करीने पण श्रीमहावीर स्वामीनो जमाइ जमाली के जे आजीवक एटले केवळ वेपने धारण करीने तेनावडे आजीविकानाज करनारा एवा निन्हवाना समूहनो नेता थयो हतो, तेणे जो आत्माने हितकारक एवुं धर्मानुष्ठान कर्युं होत, तो ते आ लोकमां जिनशासनने विषे वचनीयता-निदाने पामत नहीं—अर्थात् धर्मानुष्ठान नहीं करवायीं ते निदानाज थयो छे एम यात नहीं. ४५९.” अहीं जमालिनुं दृष्टांत जाणवुं.

जमालिनी कथा.

कुंदपुर नगरमां जमालि नामनो एक मोटी ऋद्धिवाळो क्षत्रिय रहेतो हतो. ते युवावस्था पाच्यो त्यारे श्रीमहावीर स्वामीनी पुत्री साथे परण्यो, तथा बीजी पण राजकन्याओ परण्यो. ते सर्वेनी साथे पंचेन्द्रिय संवधी सुख भोगवतो सतो एकद्रा ते श्रीमहावीर स्वामीने वांदवा गयो. त्यां वंदना करीने भगवानना मुख्तीयी देशना सांभळी. तेथी संसारनी असारता जाणी एटले तेणे पांचसो राजकुमारो सहित महोत्सव पूर्वक चारित्र ग्रहण कर्युं. भगवाननी पुत्री सुदर्शनाए पण घणी स्त्रीओ सहित चारित्र ग्रहण कर्युं. भगवाने जमालिने पांचसो राजकुमारो शिष्य तरीके सोंप्या. जमालि ए अनुक्रमे एकदाशांगनो अभ्यास कर्यो, अने छह अष्टमादि तप करवा लाग्यो. अन्यदा तेणे भगवाननी पासे आचीने भिन्न विहार करवानी आज्ञा मागी. परंतु भगवाने आज्ञा आपी नहीं. त्यारे भगवाननी आज्ञा विनाज पांचसो शिष्यो सहित तेणे जुदो विहार कर्यो. अनुक्रमे विहार करतां ते श्रावस्ती नगरीना कोटक नामना वनमां आय्यो, त्यां तेना शरीरमां महा ज्वर उत्पन्न थयो. ते ज्वरनी वेदना सहन न थवाथी तेणे पोताना एक शिष्यने बोलावीने कर्णुं के ‘मारे माटे संथारो कर.’ त्यारे शिष्ये संथारो करवा मांडयो. फरीथी जमालि ए वेदना सहन न थवाथी पूछ्युं के ‘संथारो कर्यो ?’ शिष्ये जवाब आय्यो के ‘हा कर्यो.’ ते सांभळीने जमालि त्यां आवी जोडने बोल्यो के ‘हे शिष्य ! तूं हळु संथारो करे छे, अने कर्यो एम असत्य केम कर्णुं ?’ शिष्ये जवाब आय्यो के ‘कडेमाणे कडे—करवा मांडेछें ते कर्णुंज कडेवाय एवुं भगवानतुं वचन छे.’ ते सांभळी जमालि बोल्यो के “ हे शिष्य ! ए भगवानतुं वचन असत्य छे, केमके ए वचन प्रत्यक्ष रीतेज विरुद्ध देखाय छे. भूतकाळ अने वर्तमान काळमां मोटो विरोध आवे छे, माटे. कर्या पळीज कर्णुं एम कहेवुं पण करातु होय तेने कर्णुं न कहेवुं.” ते सांभळीने सर्व शिष्यो बोल्यो के “ जेम कोइ पुरुष कर्णाइक दूर गाम जवा तैयार थइने नीकल्यो ने गाम बहार वयो होय तोपण ते अमुक गामे गयोज कडेवाय छे. जेम कोइ भाजन

ચોટું ભાંગ્યું હોય તોપણ તે વાસણ ભાંગ્યું કહેવાય છે. જેમ વસ્ત્રનો થોડો ભાગ-ફાટ્યા છતાં પણ વસ્ત્ર ફાટ્યું એવો વચનવ્યવહાર થાય છે, તેવીજ રીતે કરાતું એવું કાર્ય પણ કર્યું એમ કહેવાય છે. ‘કહેમાણે કહે’ એ નિશ્ચય-સૂત્ર છે. જો પ્રથમ સમયે કાર્યની હત્પત્તિ ન માનીએ, તો પછી વીજે ક્ષણે પણ કાર્ય થયું નહીં કહેવાય, એમ ત્રીજે વાચ્યે વિગેરે ક્ષણે પણ કાર્ય હત્પન્ન થયેલું કહેવાશે નહીં. માત્ર એક છેલ્લેજ ક્ષણે કાર્યસિદ્ધિ કહેવાશે. તેમ માનવાથી પ્રથમાદિક ક્ષણોની વ્યર્થતા થશે. ત્રીજી અંત્ય ક્ષણેજ કાંઈ સર્વ કાર્યસિદ્ધિ દેખાતી નથી. માટે ‘કહેમાણે કહે’ એ ભગવાનનું વાક્ય યુક્તિયુક્ત અને સત્યજ છે. ” इत्यादिक अनेक युक्तियी बोध कर्या छतां पणजमालिए पोतानो कदा-ग्रह छोडयो नहीं, त्यारे केटलाक शिष्यो ‘आ (जमालि) अयोग्य छे, जिनवचननो उत्थापक छे, अने पोताना मततुं स्थापन करनार निद्रव छे.’ एम जाणी तेने-तजीने भगवंतनी पासे गया.

પછી જમાલિ પણ નીરોગી થયો ત્યારે વિહાર કરતો કરતો ચંપાનગરીમાં ભગવાનની પાસે આવી કહેવા લાગ્યો કે ‘હું તમારા વીજા શિષ્યોની જેમ છદ્મસ્મ નથી, પણ હું તો કેવલી છું.’ તે સાંભળીને શ્રીગૌતમસ્વામીએ પૂછ્યું કે ‘જો તું કેવલી હો તો કહે કે આ લોક શાશ્વત છે કે અશાશ્વત ? તથા જીવ શાશ્વત છે કે અશાશ્વત ?’ તે સાંભળીને તેના પ્રત્યુત્તર આગવાને અસમર્થ એવો જમાલિ મૌન ધારીનેજ રહ્યો. ત્યારે શ્રીગૌતમસ્વામી બોલ્યા કે ‘હે જમાલિ ! તું કેવલીનું નામ ધારણ કરે છે અને ઉચર કેમ આપી શકતો નથી ? હું છદ્મસ્મ છું તોપણ તેનો ઉચર જાણું છું તે સાંભળ-લોક બે પ્રકારનો છે. શાશ્વત અને અશાશ્વત. તેમાં દ્રવ્યમી આ લોક શાશ્વત (નિત્ય) છે, અને પર્યાય થકી ઘટલે ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણી વિગેરે કાઠમાણથી અશ્વાન (અનિત્ય) છે. તથા જીવ પણ દ્રવ્યથી નિત્ય છે, અને દેવ, મનુષ્ય, તિર્યંચ તથા નરકાતિરૂપ પર્યાયથી અનિત્ય છે. ” તે સાંભળીને તેના ઉત્તર ઉપર શ્રદ્ધા નહીં રાખતો જમાલિ વિહાર કરી શ્રાવસ્તી નગરીએ ગયો.

સુદર્શના સાધ્વીએ પણ જમાલિનો મત અંગીકાર કર્યો હતો. તે સુદર્શના પણ તેજ નગરીમાં ઢંક નામના ભગવાનના ઉપાસક કુંભારની શબ્દામાં રહીને લોકોની પાસે જમાલિના મતની પ્રસ્થાપના કરવા લાગી. તે સાંભળી ઢંકે વિચાર્યું કે “જુઓ ! કર્મની કેવી વિચિત્રતા છે ? આ સુદર્શના ભગવાનની પુત્રી થઈને પણ કર્મના વશથી અસદ્ પ્રસ્થાપના કરે છે, તોપણ જો આને હું કોઈ પણ કાર્યથી પ્રતિવેદ્ય પમાહું તો મને મોહું-ફલ પ્રાપ્ત થાય. ” એમ વિચારીને તેણે એકદા પોરસીના મધ્યમાં સ્વાધ્યાય કરતો સુનંદા (સુદર્શના) સાધ્વીની સાઢીપર એક અંગારો નાંખ્યો, તેથી સાઢીમાં-બે ત્રણ હિટ્ટ પહ્યાં

ते जोडने सुदर्शनाए कहुं के 'हे श्रावक ! आ तें शुं क्युं ? मारी आ आस्त्री साडी वाळी नांस्त्री' त्यारे ढंक वोल्यो के 'हे साध्वी ! तमे एम न वोळो, ए तो भगवानो मत छे; केमके 'वळवा मांड्युं होय ते वळ्युं कहेवाय' एतुं भगवाने कहेछें छे. तमारो मत तो समग्र वळ्या पछीज वळ्युं कहेवानो छे, माटे हवे तमे भगवाननुं वचन सत्य मानां, " आ प्रमाणे ढंकनी बुद्धिची सुदर्शनाए भगवाननुं वचन सत्य मान्युं. पछी तेणे जमालि पासे आवीने कहुं के 'भगवाननुं वाक्य सत्य छे, अने तमारो मत प्रत्यक्ष रीते असत्य छे.' एम कखा छातां पण जमालिए कर्मना वशथी ते वचन अंगीकार क्युं नहीं.

पछी सुदर्शना भगवाननी पासे आवी मिथ्यादुष्कृत आपी चारित्रनुं प्रतिपालन करी केवळज्ञान पामीने मोक्षे गइ; अने जमालि तो घणा दिवसो सुधी कष्ट सहीने प्रांते पंदर दिवसनुं अनशन करी विराषक होवाथी कित्विषी देव थयो. त्यांथी चवीने चिर-काळ सुधी संसारमां परिभ्रमण करशे.

आ प्रमाणे जमालिए जेम जिनवचननुं उत्थापन करवाथी बहु संसार उपार्जन कर्यो, तेवीज रीते वोजो पण जे कोइ जिनाज्ञानी विराषन करे ते आ लोकां निंदा अने परलोकमां दुर्गतिने प्राप्त थाय तथा बहुल संसारी थाय, माटे श्रीजिनेचरनुं वचन सत्यपणे सर्दहवुं, ए आ कथानुं तात्पर्य छे.

॥ इति जमालि संबन्धः ॥

इंदियकसायगारवमएहिं, संययं किंलिहपरिणामो ।

कर्मघणमहाजालं, अणुंसमयं वंधइ जीवो ॥ ४६० ॥

अर्थ—“ स्वर्षी विगेरे इन्द्रियो, क्रोधादिक कषायो, रस सात ने ऋद्धि ए ऋण गारव तथा जाति विगेरेनो मद-एटलाए करीने निरंतर छिष्ट परिणामवाळो (मलिन परिणामवाळो) एटले दुष्ट परिणाममां वर्ततो. एवो संसारी जीव दरेक समये कर्मरूपी मेघना मोटा समूहने वांधे छे (उपार्जन करे छे). अर्थात् कर्मरूपी मेघना एटले करीने ज्ञानरूपी चंद्रनुं आच्छादन करे छे.” ४६०.

परंपरिवायविसाला, अंणेगकंदप्यविसयभोगेहिं ।

संसारस्था जीवां, अरंडविणोअं करंते वं ॥ ४६१ ॥

गाथा ४६० वंधइ ।

गाथा ४६१-विणोयं । करितेवं ।

અર્થ—“ પર (અન્ય) ના પરિવાદ (અવર્ણવાદ—નિંદા) વહે વિશાલ ઇટલે પર-પરિવાદમાં—પારકી નિંદા કરવામાં આસક્ત ઇવા સંસારમાં રહેલા (સંસારી) જીવો અનેક પ્રકારના કંદર્પ (હાસ્યાદિક કરવું તે) અને શબ્દાદિક વિષયોના ભોગ ઇટલે સેવનવહે કરીને અન્યને અરતિ ઉત્પન્ન કરે તેવા વિનોદને કરે છે. ઇવં ઇટલે ઇ પ્રમાણે ળીજાને પરિવાપ ઉત્પન્ન કરીને પોતાના આત્માને સુસ્વ-ઉત્પન્ન કરે છે. ” ૪૬૧.

ઔરંભપાયનિરયા, લોઈઁઅરિસિણો તહાં કુલિંગી ં.

દુહેઓ ચુકાં નવરં, જીવંતિ દરિદ્રં જિયલોષ ॥ ૪૬૨ ॥

અર્થ—“ આરંભ (પૃથ્વીકાયાદિકનું ઉપમર્દન) અને પાક તે રંધનક્રિયા—તેમાં નિરત (આસક્ત) ઇવા લૌકિક ઋષિઓ (તાપસ વિગેરે) તથા ત્રિદંડી વિગેરે કુલિંગીઓ યતિધર્મથી અને શ્રાવકધર્મથી ઇમ બન્ને ધર્મયા ભ્રટ યદને માત્ર આ જીવલોકને વિષે દરિદ્ર (ધર્મ રૂપી ધન રહિત) ઇવા છતા જીવે છે. ” ૪૬૨.

સંવો નેં હિંસિયવ્વો, જહેં મેંહિપાલો તહાં ઉદંયપાલો ।

નેં ય અર્મયદાણવઙ્ગા, જંણોવમાણેણ હોયેવ્વં ॥ ૪૬૩ ॥

અર્થ—“ સાધુ ઇ સર્વ જીવ (કોઈ પળ જીવ) ની હિંસા કરવી નહીં. જેવો મહિ-પાલ કે૦ રાજા તેવોજ ઉદકપાલ કે૦ રંક પળ જાણવો. (ઘુનિ રાજાને અને રંકને સમાન ગણે છે, ઇટલે ઇકેને મારતા નથી.) અમયદાનના વ્રતવાલા સાધુ ઇ સામાન્ય જનની ઉપમાવહે યવું નહીં. ઇટલે કે કરેલાનો પ્રતિકાર કરવો (કોઈ ઇ આપણને માર્યાં હોય, તો તેનું વૈર લેવું) ઇત્યાદિક સામાન્ય જનના કહેણી છે અને કૃતિ પળ હોય છે તેની સમાનતા ધારણ કરવી નહીં. ”

પાંવિજ્જહ્ ઇહે વસંણં, જંણેણ તં છમંલઓ અંસંતુત્તિ ।

નેં ય કોઈ સોણિયંવલિં, કેરેહ વઘેણં દેવાંણં ॥ ૪૬૪ ॥

અર્થ—“ ક્ષમા કરનાર પ્રાણી આ સંસારમાં વ્યસન ઇટલે નિંદારૂપ કષ્ટને પામે છે. કેમકે લોકમાં ક્ષમાવાન પ્રાણીને ઇવું કહેવામાં આવે છે કે ‘ આ તો અસમર્થ (વિચારો) બકરા જેવો છે. ’ ઇવી રીતે લોકો તેનો ઉપહાસ કરે છે, ળીજાથી પીઠા પામતો છતો પળ તે ક્ષમાજ કરે છે, માટે આ અસમર્થ બકરા જેવો છે, ઇમ લોકો કહે છે; વળી કોઈ

ગાથા ૪૬૨—ઔઈય । કુલિંગીય । જીયલોષ ।

ગાથા ૪૬૩—ઉદકપાલો—રંકઃ । હોયેવ્વં ।

ગાથા ૪૬૪—છમ્મલજ્જો । અસસોત્તિ ।

पुढे देवोने बाधना रुधिरवडे बळिदान करतो नथी. तेथी करीने जे असमर्थ होय तेज हणाय छे, पण बळवानने कोइ हणतुं नथी. आ प्रमाणे सांभळीने पण साधु क्षमाने तजता नथी-ते तो क्षमाज करे छे." ४६४.

वर्चंइ खैणेण जीवो, पित्तानिलधाउसिंभलोमेहिं ।

उज्जमह मां विसीअह, तरंतमजोगो ईमो दुलेंहो ॥ ४६५ ॥

अर्थ-“ आ जीव पित्त (पित्त विकार), अनिल (वात-वायु विकार), धाउ के० धातु अने सिंभ के० श्लेष्मना श्लोभ (विकार) वडे करीने एक क्षणवारमां नाश पावे छे-पावे तेवो छे, माटे हे भव्य प्राणीजो ! क्षमादिक धर्ममां उद्यम करो अने वि-पाद न करो एदले धर्ममां शिथिल आदरवाळा न थाओ. केमके आ तरतम योग एदले इदि पामतो धर्मसामग्रीने योग करीयो (प्राप्त यवो) दुर्लभ छे." ४६५.

पंचिंदियेत्तणं माणुंसत्तणं आयरिणं जेणे सुकुळं ।

सांहुसमागम सुणणा, सर्हहणारोग पव्वंज्जा ॥ ४६६ ॥

अर्थ-“ आ संसारमां पंचेन्द्रियपणुं (पंचेन्द्रिय जातिपणुं) पामवुं दुर्लभ छे, ते पाम्या छतां पण मनुष्यपणुं (पामवुं) दुर्लभ छे, ते पाम्या छतां पण मगधादिक आर्य वेशने विषे उत्पत्ति दुर्लभ छे, आर्य वेशमां उत्पत्ति यथा छतां पण सुकुळ (उत्तम कुळमां जन्म) दुर्लभ छे, सुकुळ पाम्ये सते पण साधुसमागम दुर्लभ छे, साधुनो संयोग मळ्या छतां पण सूत्रनुं (धर्मनुं) श्रवण (करवुं) दुर्लभ छे, श्रवण कर्यां छतां पण तेनापर श्रद्धा यवी दुर्लभ छे, श्रद्धा यथा छतां पण नीरोगता (इन्व्यभाव आरोग्यता) रहेवी दुर्लभ छे अने नीरोगता रत्ना छतां प्रव्रज्या ग्रहण करवी अति दुर्लभ छे." ४६६.

आउं संविलंतो, सिंदिलंतो नैधणाइं सघाइं ।

देहंष्टिअं मुयंतो, क्षायइ कलुणं नैहुं जीवो ॥ ४६७ ॥

अर्थ-“ आयुष्यनो संक्षेप करतो (ओळुं करतो-घटावतो), सर्व अंगोपांगादिक बंधनोने शिथिल करतो अने देहनी स्थितिने सूक्तो एवो आ धर्मरहित जीव छेवट अंतसमये कल्प (दीन) स्वरथी घणो त्रोक करे छे. हा ! मे बंधं कर्यो नहीं. ए प्रमाणे अति त्रोक करे छे." ४६७.

गाथा ४६५-पित्तानिल । कळमेहिं ।

गाथा ४६७-संविहंतो । संविलंतो=संक्षेपवत् । सिंदिलंतो । सिंदिलंतो=शिथिलवत् ।

बंधनाह । सन्धाह । सुहंतो । सुहंतो । कलुणं=कल्प-दीनस्वर ।

ईकं पि नैत्थि जं सुद्ध, सुचरियं जेह ईमं वलं मज्झ ।

को नाम ददंकारो, मरणंते मंदंपुन्नस्स ॥ ४६८ ॥

અર્થ—“ એક પળ તેહું સુષ્ટ (સારું) સુચરિત (સારું આચરણ) નથી, કે જે સુચરિત મારું વલ (આધાર રૂપ) થાય. માટે મંદ પુણ્યવાલા એવા મારો મરણને એતે કોણ આધાર થશે ? ” ૪૬૮.

सूलविसअहिविसूईपाणीसत्थग्गिसंभमेहिं च ।

देहंतरसंकमणं, કેરેइ जीवो मुहुत्तेण ॥ ४६९ ॥

અર્થ—“ શૂલ (કુક્ષિમાં શૂલ આવહું તે), વિષ (ક્ષેરનો પ્રયોગ), અહિ (સર્પનું વિષ), વિસુચિકા (અજીર્ણ) પાણી (જલમાં વૂઢવું), શસ્ત્ર (શસ્ત્રનો પ્રહાર) અગ્નિ (અગ્નિમાં વઢવું), તથા સંભ્રમ એટલે મૃચ-સ્નેહાદિક વઢે એકદમ દુઢવનું લેખાઈ જવું-આટલા પ્રકારે કરીને આ જીવ-એક મુહૂર્ત માત્ર (ક્ષણવાર) માં દેહાન્તરમાં સંક્રમણ (વીજા દેહમાં પ્રવેશ) કરે છે. એટલે મૃત્યુ પામી પરમવમાં જાય છે. અર્થાત્ પ્રાણીઓનું આયુષ્ય અતિ ચપલ છે. ” ૪૬૯.

कत्तो चिंता सुचरियतवस्स गुणंसुद्धियस्स सांहुस्स ।

सोगइगमपडिहत्थो, जो अच्छेइ नियमभरियभरो ॥ ४७० ॥

અર્થ—“ સદ્ગતિમાં જવાને પ્રતિહસ્ત (દક્ષ) એટલે સમર્થ અને નિયમ (અભિગ્રહ) વઢે મર્યો છે ધર્મકીર્ણ (ધર્મમંદાર) નો મારું જેણે એવા જે સાધુ રહે છે (હોય છે), તે સુચરિત તપ એટલે ક્ષમા સહિત આચરણ કર્યું છે તપ જેણે એવા અને ચારિત્રાદિક ગુણને વિષે સુસ્થિત એટલે દુઢ થયેલા સાધુને ક્યાંથી ચિંતા હોય ? એટલે તેવા સાધુને મરણકાલે પણ ક્યાંથી ફીકર હોય ? નજ હોય. ” ૪૭૦.

सांहंति अ फुहं विअंडं, मांसाहसउणसरिसया जीवा ।

नं य कर्मभारगरुयत्तणेणं तं आयरंति तर्हा ॥ ४७१ ॥

गाथा ४६८-एकंपि । सुद्ध । ददंकारो । ददंकारो=अवर्द्धम आधाराः ।

गाथा ४६९-विसुईअ । पाणिअ । सत्थग्गि=शस्त्राग्नि । मुहुत्तेण ।

गाथा ४७०-कुत्तो । सुचरिय । गुणंसुद्धियस्स । सांहुस्स । अच्छय । सुगइ-सुगइ । सद्गतिगमनप्रतिहस्तः ।

गाथा ४७१-वियडं । सउण=पक्षी । गुहअत्तणेण ।

अर्थ—“ पर्वतनी शुक्रामां रहेनार मासाहस नामना पक्षीनी जेवा जीवो प्रकटपणे विस्तारथी अन्यने उपदेश आपे छे. परंतु तेओ कर्मना भारना शुरुपणाए करीने (भार-कर्मि होवाथी) ते प्रमाणे (पोते उपदेश करे छे ते प्रमाणे) ते उपदेशनुं आचरण करता नथी, उपदेश प्रमाणे करता-वर्तता नथी. अर्थात् उपदेश देवामां कुशल होय, पण आचरण करवामां तत्पर न होय ते जीवो मासाहस पक्षी जेवा जाणवा.” ४७१.

वंग्घमुहम्मि अहिगओ, मंसं दंतंतराउ कंहेइ ।

मां साहसं ति जंपइ, कैरेइ नं य तं' जहांभिणियं ॥ ४७२ ॥

अर्थ—“ वाघना मुखमां पेठेछो मासाहस नामनो पक्षी (वाघना) दांतनी मध्येथी मांसने काढे छे. पछी मांसना कटका छइने झाडपर वेसी ते खाइने 'आहुं साहस (विश्वास) कोइ करशे नहीं' एम पोतेज बोछे छे. परंतु जेवुं पोते कहुं ते प्रमाणे ते करतो नथी, तेथी ते नाश पामे छे. एटछे वाघना मुखमां पेसीने ते पक्षी मांस काढे छे. एटछो बधो वाघनो विश्वास राखवाथी वीजा पक्षीओए तेने वार्या छतां पण ते वाघनाज मुखमां नाश पामे छे. ते प्रमाणे अन्य मनुष्य पण जेओ पोते सदुपदेश आपे छे, परंतु पोते तेनुं आचरण करता नथी तेओ ते मासाहस पक्षीनी तुल्य जाणवा एटछे तेओ पण नाश पामे छे.” ४७२.

परिअट्टिऊण गंथंथवित्थरं निंहिसिऊण पंसमत्थं ।

तं तंह कैरेइ जह तं, नं होइ संव्वं पि' नंडपट्ठियं ॥ ४७३ ॥

अर्थ—“ ग्रन्थार्थ (सूत्रार्थ)ना विस्तारनुं परावर्तन करीने (सारी रीते गोखीने-कंठे करीने) तथा परमार्थनी (तत्त्वार्थनी) सारी रीते परीक्षा करीने पण बहुलकर्मी जीव ते सूत्रार्थने तेवो करे छे के जेथी ते मोक्षरूप कार्यसाधक न थाय, परंतु ते सर्व (सूत्रार्थ) पण नटना भण्या (बोल्या) जेवुं निष्फल थाय. जेम नटनुं उपदेशयुक्त बो-छेछं न्यर्थ छे, एटछे तेने कांइ पण गुणकारी नथी, तेम बहुलकर्मीनुं सूत्रार्थ पठनादिक सर्व न्यर्थ छे. ४७३.

पंडइ नंडो वेरंगं, निंविज्जिज्जा य वहुंजणो जेणं ।

पंडिऊण तं तंह संबो, जालेण जलं समोअइ ॥ ४७४ ॥

गाथा ४७२-अहिगओ । दंतंतराओ । केहेइ । महुस । मणिअं । गाथा ४७३-निहिसि-ऊण । निहिसिऊण=निरीक्ष्य=परीक्ष्य । नटपट्ठिअं=नटपट्ठिअं । गाथा ४७४-निंविज्जिज्जा बहुउ जणो जेण । निंविज्जिज्जा=निवेदं प्राप्नुयात् । सट्ठिओ । समोअइ

अर्थ—“ जे नट होय छे ते वैराग्यनी एवी वातो कहे छे के जेवी घणा लोको निवेद (वैराग्य) पाये छे. तेवी रीते मूर्ख माणस सूत्रार्थ भणीने पण (बोळीने—उप-देश आपीने पण) पळीधी ते प्रमाणे वर्तता नथी, परंतु माछळां पकडवा माटे जाळ लडने जळमां उतरे छे. (उतर्यां जेवुं करे छे.) अर्थात् मूर्ख माणस सूत्रना अध्ययन (अभ्यास)ने विपरीत आचरण करवायी व्यर्थ करे छे.” ४७४.

कह कह करेमि कह मांकरेमि, कह कह कयं वहुकयं मे ।

जो हियंसंपसारं, करैइ सो अइ करैइ हियं ॥ ४७५ ॥

अर्थ—“ हुं केवी केवी रीते धर्मानुष्ठान करं ? जेवी रीते न करं ? अने केवी केवी रीते करेछं ते धर्मानुष्ठान मने बहु करेछं एट्ठे घणुं गुणकारी थाय ? आवी रीते जे पुरुष हृदयमां संसार (आलोचना—विचार) करे छे ते पुरुष अत्यंत आत्महित करे छे (करी शके छे).” ४७५.

सिंदिलो अणांयरकओ, अवस्सवसकओ तंहा कंयावकओ ।

सयंयं पमत्तसीलस्स, संजमो केरिसो होज्जो ॥ ४७६ ॥

अर्थ—“ थिथिल, अनादर वढे (आदर रहित) करेछो, अवज्ञपणाधी एट्ठे गुरुनी परतंत्रतायी करेछो अने काइक पोतानी स्वतंत्रतायी करेछो, तथा कृतापकृत एट्ठे काइक (संपूर्ण) करेछो अने काइक विपरीत करेछो एट्ठे विराधेछो एवो निरंतर प्रमत्तशील (प्रमादना आचरणना स्वभाववाळा)नो संयम एट्ठे प्रमादीप ग्रहण करेछो तेवा प्रका-रनो संयम केवो होय ? अर्थात् सर्वथा तेनो ते संयम (चारित्र) कहेवायज नहीं.” ४७६

चंदुं व्व कालपरुखे, परिहाइ पए पए पर्मायपरो ।

तंह उंघरविग्घरनिरंगणो य णं य ईच्छियं लहंइ ॥ ४७७ ॥

अर्थ—“ कृष्ण पक्षमां चंद्रनी जेम एट्ठे जेम कृष्ण पक्षमां चंद्र द्विसे दिवसे हीन थाय छे, तेम प्रमादवान पुरुष पगळे पगळे हानि पाये छे. जोके ते गृह्नो (गृहस्थप-गाना गृह्नो) त्याग करीने घरना आश्रयरहित थया छतां अने स्त्रीरहित थया छतां पण इच्छित एट्ठे स्वर्गादिक वाञ्छित फळने पामतो नथी.” ४७७.

गाथा ४७५—कहवा करेमि । हियइ संपसारो । गाथा ४७६—अणायायरकओ । कदाविकओ । कयावकओ=कृतापकृतः । हुक्का ।

गाथा ४७७—कालपरुखे=कृष्णपक्षे । विहघर । ण य । उट्टुगृहविगृहमिरंगनः=कृच्छितं गृहं येन, गृहान्निरहितो विगृहः, निर्गता अंगना अस्य, स्त्री रहित इत्यर्थः ।

भीओव्विग्ग निलुक्को, पागडपच्छन्नदोससयकारी ।

अपंचयं जणंतो, जणस्स धी जीवियं जिंयइ ॥ ४७८ ॥

अर्थ—“ भय पामेळो (पापाचरण करेळ होवाची हवे थुं यशे ? एम भय पामेळो) उद्दिग्ग (मननी समाधि रहित), निलुक्क (पोताना पापने ढांकनारो), अने प्रकट तेमज प्रच्छन्न सेंकडो दोषने करनारो तथा माणसोने अविश्वास उत्पन्न करनारो एवो जे पुरुष जीवे छे ते थिक्क छे. अर्थात् निंद्य जीवित छे—तेना जीवतरने धिक्कार छे. ” ४७८.

नं तंहिं दिवसा पख्खा, मासां वरिसां विं संगणिज्जंति ।

जे मल्लउत्तरगुणा, अख्खल्लिया ते गणिज्जंति ॥ ४७९ ॥

अर्थ—“ ते दिवसो, ते पक्षो (पख्खादीयां), ते महिनाओ अने ते वर्षो पणगण-तरीमां गणवांज नहीं. अर्थात् धर्मरहित व्यतीत थयेळा दिवसो, पक्षो, मासो के वर्षो निष्कळज छे. परंतु जे (दिवसो विगोरे) मूल अने उत्तर गुणे करीने अस्तत्कित-निर-तिचारवाळा (आराधन करेळा) गया हीय-जता हीय तेज ! दिवसो विगोरे गणतरीमां आवे छे. गणना करवा योग्य तेज दिवसो छे, अर्थात् धर्मयुक्त दिवसोज छेत्तामां छे, वाकीना न्यर्थ छे. ” ४७९.

जो नं वि दिंणे दिंणे संकळेइ, के अंज्ज अंज्जिया मए गुणा ।

अंगुणेषु अं नं हु खल्लिओ, कंह सोउ कंरिज्ज अयं हिअं ॥ ४८० ॥

अर्थ—“ आज्ञे में क्या गुणो उपाजित कर्या ? एटले मने आज्ञे ज्ञानादिक कयो गुण प्राप्त थयो ? ए प्रमाणे जे पुरुष दिवसे दिवसे (दररोज) संकलना करतो नथी-विचार करतो नथी तथा जे (पुरुष) प्रमाद अने अतिचार रूप अगुणने विषे स्तलना पापतो नथी—तेने तजतो नथी अर्थात् अगुणनी आराधनामां—आचरणामांज तत्पर रहे छे ते पुरुष पोताना आत्मानुं हित शी रीते करी शके ? नज करी शके. ” ४८०

इयं गणियं इयं तुल्लिअं, इयं बहुआदरिसियं नियमियं चं ।

जंह तंह विं नं पंडिबुज्झइ, किं कीरइ नूण भवियव्वं ॥ ४८१ ॥

अर्थ—“ जोके आ प्रमाणे (पूर्वे कक्षा प्रमाणे) एटले श्री ऋषभवीरनी जेम धर्ममां उद्यम करवो एम कहुं. आ प्रमाणे अवंतीसुकुमारादिकनी जेम प्राणांते पण धर्मनो त्याग

गाथा ४७८-निलुक्को=स्वात्मपापाच्छादकः । वई जीविअं जइइ । गाथा ४७९-तिहिं । धिक्कं । गाथा ४८०-संकलेअ । मी गुणा । य ण य खल्लिओ ।

गाथा ४८१-बहुहा । दरिसिअं । नियमयं । निऊण । भवियव्वं ।

करवो नहीं एम तुळना करी, आ प्रमाणे आर्यमहागिरि विगेरेना दृष्टांते करीने घणे प्रकारे वताच्युं, तथा घणे प्रकारे सभिति, कषायादिकना फळभूत दृष्टांतो देखाववा वडे नियंत्रणा देखाडी, तोपण आ जीव जो प्रतिबोध न पामे तो शुं करीए? खरेखर ते जीवनी चिरकाळ भवभ्रमण रूप भवितव्यताज छे; नहीं तो ते केम प्रतिबोध न पामे? माटे जरूर तेनी एवीज भवितव्यता छे एम जाणवुं." ४८१.

किंमगं तु पुणो जेणं, संजमसेढी सिदिलीक्या होई ।

सी तं विअ पडि वंज्जइ, दुँख्व पँच्छा हु उँज्जमई ॥ ४८२ ॥

अर्थ—“ वळी हे शिष्य ! जे पुरुषे संयमश्रेणी (ज्ञानादिक गुणश्रेणी) शिथिल करेछी छे ते पुरुषे करीने शुं ? (ते पुरुषे शा कामनो ? कांइज नहीं). केमके ते पुरुषे निश्चे ते (शिथिलपणा) नेज पामे छे, अने पछी (शिथिल थया पछी) दुःखे करीने उद्यम करी शके छे. एटले शिथिल थया पछी उद्यम करवो अशक्य छे. माटे प्रयमशीज शिथिल थवुं नहीं, ए अहीं तात्पर्य छे.” ४८२.

जँइ सँव्वं उँवलदुं, जँइ अँप्या भाँविओ उँवसमेणं ।

कायं वायं चँ मँणं, उँप्यहेण जँह नँ देई ॥ ४८३ ॥

अर्थ—“ वळी हे भव्य प्राणी ! जो तें पूर्वोक्त सर्व सामग्री प्राप्त करी होय, अने जो उपशमवडे आत्मा भावित (वासित) कर्यो होय, तो तुं काययोग वचनयोग अने मनयोगने जे प्रमाणे उन्मार्गे न जाय तेम कर-तेवी रीते प्रवर्ताव.” ४८३.

हँथ्ये पाँए निँख्ववे, काँयं चाँलिज्जं तं पिँ कँज्जेण ।

कुँम्मो उँव संया अँगे, अँगोवंगाँइ गोविज्जो ॥ ४८४ ॥

अर्थ—“ हाथ तथा पगने संकोचवा एटले कार्य विना हलाववा नहीं, अने जे कायाने एटले काययोगने चलाववो ते पण कार्य करीने एटले कार्य होय तोज चलाववो, कार्य विना चलाववो नहीं; अने काचबानी जेम निरंतर अंगोने विषे शुज, नेत्र विगेरे अंगोपांगने शुप्त राखवां एटले तेने पण कार्य विना चलाववां नहीं.” ४८४.

अहीं कूर्म (काचवा) नुं दृष्टांत जाणवुं.

कूर्मनी कथा.

चाराणसी नामनी महापुरीवां गंगानदीनी पासे एक मृदुगंगा नामनो मोटो द्रह छे. तेनी समीपे माल्लुया कच्छ नामे एक मोटुं गहन वन छे. ते वनवां वे दुष्ट शी-

गाथा ४८२-होई । विषय । सज्जमइ । गाथा ४८३-भावित । उद्यममेण । उप्प-
द्विअं मइ न देइ । देही=प्रवर्तय । गाथा ४८४-कलिहवे । चालिज्ज । कम्म व सप अंगंशि ।

याळ रहेता हता. ते महा प्रचंड अने भयंकर-(क्रूर)-कर्म करनार हता. एकदा ते द्रुहमांथी वे कूर्म (काचवा) वहार नीकळ्या. तेमने पेळा दुष्ट श्रीयालोए जोया. तेथी ते कूर्मना तरफ तेमने मारवा दोड्या. ते पापी श्रीयालोने आवतां जोइने वझे कूर्मों पोतानां अंगोने संकोचीने रखा. पापी श्रीयालोए आवीने ते कूर्मोंने उंचा कर्या, पछाड्या, घणा नखना प्रहार दीया तथा तेमने मारवा माटे घणो प्रयत्न कर्यो. परंतु ते काचवाओए पोतानुं एके अंग वहार काढ्युं नहीं, तेथी ते भेद न पास्या. एटछे ते वझे मायावी श्रीयाल थाकीने नजीकना भागमां संताड रखा. थोडी वारे एक काचवाए तेमने गयेला घारीने पोतानां अंगो वहार काढ्यां. ते पेळा पापी श्रीयालोए जोयुं. पेळा काचवाए धीरे धीरे चारे पग तथा ग्रीवा विगेरे सर्व अंगो वहार काढ्यां. एटछे तरतज अकस्मात् आवीने ते श्रीयालोए तेने ग्रीवामांथी पकडी पृथ्वीपर नांकी नखना प्रहारयी तेने मारी नाखीने खाड गया. तेने मारी नाखेलो जाणीने पेळा वीजा काचवाए पोतानां अंगो वधारे वधारे संकोची छीयां. पेळा दुष्ट श्रीयालोए तेने मारवा माटे घणा उपायो कर्या, तोपण तेने कांड करी शक्या नहीं. घणीवारे थाकीने ते श्रीयालीया दूर चाल्या गया. पछी ते काचवो तेमने घणा दूर गया जाणीने प्रथम पोतानी ग्रीवा अरा वहार काढी चोतरफ जोवा लाग्यो. एटछे तेमने वधारे दूर गया जाणीने (जोइने) एकदम चारे चरणो वहार काढी तरतज जळदीथी दोडतो मृद्गंगा नामना हृदमां पेसी गयो अने पोताना कुडुंघने मळी सुखी थयो.

आ दृष्टांत प्रमाणे बीजा पण जे साधु पोतानां अंगोपांगने गोपवीने तेनुं रक्षण करे छे-तेने कुमार्गमां प्रवर्तावता नथी, ते मोक्षसुखने पामे छे, अने जे पोतानां अंगोपांगनुं संगोपन करता नथी ते बीजा काचवानी जेम दुःखनुं पात्र थाय छे.

॥ इति कूर्मदृष्टान्तः ॥ ७१ ॥ कथाओ संपूर्णः ॥

विकेहं विणोयमासं, अंतरमासं अवकभासं च ।

जं जैस्स अणिण्हमपुच्छिंओ यं भासं नं भासिज्जा ॥ ४८५ ॥

अर्थ-“ स्त्रीकथादिक विकथाने, विनोदभाषा (कौतुकनी वार्ता)ने, अंतर भाषाने (शुरू बोलता होय, तेनी वरुचे बोलुं तेने), अवाक्य भाषा (नहीं बोलवा लायक मकार चकारादिक भाषा)ने, जे (भाषा) जेने अनिष्ट (अप्रीति) कारा होय तेवी भाषाने तथा कोइए पूळ्या विना बोलुं ते अपृष्टभाषाने सारा साधु कडी पण बोलता नथी. ”

अणवद्वियं मैणो जैस्स, ज्ञायंइ बँहुयाइं अँट्टमट्टाइं ।

तँ चिंतितं चं नँ लँहइ, संचिणँइ पाँवकम्माइं ॥ ४८६ ॥

अर्थ—“जेतुं अनवस्थित (अति चपळ) मन घणा दुष्ट विचारोने (आढां त्रे-
ढाने—आळजाळने) हृदयमां चिंतवे छे. ते चिंतित (मनोवांछित)नें पामतो नथी, पण
उळढां दरेक समये पापकर्मोनें एकठां करे छे—वृद्धि पमाडे छे, घाटे मनने स्थिर करीने
सर्व अर्थने साधनार एवा संयमने विषे यतना करवी—उग्रम करवो. ४८६.

जँह जँह मँवुँवलँदँ, जँह जँह सुँचिरं तँवोवणे वुँच्छं ।

तँह तँह कँम्मभरगुरु, संजँमनिव्वाहिरो जँओ ॥ ४८७ ॥

अर्थ—“कर्मना भर (समूह) थी गुरु (व्याप्त) थयेला पुरुषे (भारेकर्मी जीवे)
जेम जेम सर्व सिद्धान्तनुं रहस्य उपलब्ध (प्राप्त) कर्युं, अने जेम जेम चिरकाळ सुधी
तपोधन (तप रूपी धनवाळा) साधुओने विषे (साधुसमूदायने विषे) निवास कर्यो,
तेम तेम ते (गुरुकर्मी) चारित्र्य थकी वाह्य करायो—भ्रष्ट थयो.” ४८७.

ते उपर दृष्टान्त कहे छे.—

विज्जपो' जँह जँह ओसँहाइं पिज्जेइ वाँयहरणाइं ।

तँह तँह से' अँहिययरं, वाँएणा ओरिअं' पुँट्टं ॥ ४८८ ॥

अर्थ—“प्राप्त (हितकारी) वैद्य जेम जेम वायुने हरण (नाश) करनारं सुंद,
मरी विगेरे औषधो पाय छे, तेम तेम ते (असाध्य रोगवाळा) हुं उदर (पेट) वायुण करीने
अधिकतर पूर्ण (भरायेळें) थाय छे ते दृष्टान्त प्रमाणे श्रीजिनेश्वर रूपी वैद्य पण ज्ञाना-
वरणादिक कर्म रूपी वायुने ज्ञात करनार सिद्धांतरूपी घणुं औषध पाय छे, तो पण
(बहुकर्मी जीवो) असाध्य एवो कर्म रूपी वायु उळढो वृद्धि पामे छे.” ४८८

दँद्वजउमकँज्जकरं, मिँन्नं संखं नँ होई पुणँकरणं ॥

लोँहं चं तंबँविद्धं, नँ एँइ परिकँम्मणं किंचि ॥ ४८९ ॥

अर्थ—“बळेळी जतु (लाख) अकार्यकर छे—कांइ पण कामनी नथी. भांगी (फूटी)
गयेला संखनुंफरी सांधुं थतुं नथी (फरी संघातो नथी). तथा तांवावडे विंघायेळें
मळेळें—एकरूप थयेळें लोहुं कांइ पण (जरा पण) परिक्रमण (सांधवा) ना उपायने पा-
ळतुं नथी. तेवीज रीते असाध्य कर्मथी वींटायेळो भारेकर्मी जीव धर्मने विषे सांघी-
जोडी शकातो नथी.” ४८९.

गाथा ४८६—संचिणय । गाथा ४८७—सुचिरो । वुच्छइति डचितं । भारगुरु । संय-
मान्निसतः । निव्वादिउ जाओ ।

गाथा ४८८—वाइहरणायं । ऊरिय पोट्टं । गाथा ४८९—होइ ।

कौ दाँही उर्वएसं, चरुणालसयाण दुँव्विअट्टाणं । . . .

इंदस्स देवलोगो, नं कंहिज्जइ जाणमाणस्स ॥ ४९० ॥

अर्थ—“चारित्र्ये विषे आळसु अने दुर्वीग्ध (खोटा पंडित-पंडितमानी) अथवा दुर्वाक्य पुरुषोने वैराग्य तत्त्वोने उपदेश कोण आपे? (अगे पोतेज सर्व जाणीए छीए. तैथी अमने उपदेश आपनार आ कोण छे? एम जाणनारा दुर्वीदग्ध कहेवाय छे). जेम देवलोकना स्वरूपने जाणनार एवा इन्द्रनी पासे देवलोकनुं स्वरूप कोण कही शके? (कहे?) कोइ कही शके नहीं (कहे नहीं) तेम जे जाणता छतां ममादी थाय छे, तेने धर्मोपदेश आपवा कोण समर्थ छे? कोइ समर्थ नथी.” ४९०.

दो चैव जिणवरेहिं, जांइ जरामरणविप्पमुक्केहिं ।

लौगंमि पँहा भणिंया, सुसंमण सुसांवगो वां वि” ॥ ४९१ ॥

अर्थ—“जाति (एकेन्द्रियादिक), जरा (दृढावस्था) अने मरण (प्राणवियोग) तेनाथी मुक्त थयेला एवा जिनवरो (तीर्थकरो)ए आ लोकने विषे बेज मार्ग (मोक्षे जवाना) कहेला छे. एक सुश्रमण-सुसाधुधर्म अने बीजो सुश्रावक धर्म. तेमज अपि शब्दथी बीजो संविद्य वक्ष पण ग्रहण करवो-जाणवो” ४९१.

भावंच्चणमुंग्गविहारया यं, दव्वच्चणं तुं जिणपूआ ।

भावंच्चणा य भँटो, हँविज्ज दव्वच्चणुजुत्तो ॥ ४९२ ॥

अर्थ—“उपविहारता (सत्य क्रियानुष्ठाननुं करवुं-शुद्ध यतिमार्गनुं पाळन करवुं) ते भावार्चन-भावपूजा कहेवाय छे, अने जिनविंघनी पुष्पादिकथी पूजा करवी ते द्रव्यपूजा कहेवाय छे. तेमां जो भावपूजाथी एट्ठे यतिधर्मना पाळनथी झगट (अस-मर्थ) थाय, तो तेणे द्रव्यपूजामां (श्राद्ध धर्ममां) उद्यमवंत थवुं. श्राद्ध धर्मनुं पा-ळन करवुं.” ४९२.

जो पुण निरँश्चणो च्चिअ, संरीसुहकज्जमित्ततल्लिच्छो ।

तँस्स नं हि बोहिलाभो, नँ सुग्गइ नेर्यं परँलोगो ॥ ४९३ ॥

अर्थ—“पण जे पुरुष निरर्चन एट्ठे द्रव्यपूजा अने भावपूजाथी रहिनज होय तथा निश्चे शरीरना सुखकार्यमांज मात्र लोलुप (तत्पर) होय तेवा पुरुषने बोधिनो लाभ यतो नथी एट्ठे आवता भवमां धर्मनी प्राप्ती यतीं नथी, तेनी सद्गति (मोक्षगतिरूप)

गाथा ४९०-दुँव्विअट्टाणं-दुर्वाक्यानां । गाथा ४९१-सुस्सावगो ।

गाथा ४९२-दव्वच्चणुजुत्तो ।

गाथा ४९३-निरच्चणु । तल्लिच्छो=लोलुपः । न थ । न सोगई ।

यती नयी, तथा तेने परलोक पण (परभवमां देवपणुं के मनुष्यपणुं) प्राप्त यतो नयी." ४९३ द्रव्यपूजा अने भावपूजामां भावपूजा श्रेष्ठ छे ते बतावे छे.

कंचणमणिसोवाणं, थंभसहस्रसूसिअं सुवन्नतलं ।

जो कारिज्ज जिणहरं, तंओ वि तवंसंजमो अंहिओ ॥ ४९४ ॥

अर्थ—“कांचन (सुवर्ण) अने चंद्रकांतादिक मणिओना सोपान (पगथीयां)-वाळं, हजारो स्तंभोए करीने उच्छित्त एटछे विस्तारवाळं अने सुवर्णनी भूमि (तळ) वाळं जिनघट्ट (जिनमंदिर) जे कोइ पुरुष करावे, जेना करतां पण एटछे तेहुं जिन-मंदिर कराववा करतां पण तप अने संयमनुं पाळन (करहुं ए) अधिक छे, अर्थात् भावपूजा अधिक छे.” ४९४.

निब्बीए दुंठिभख्वे, रंआं दीवंतराओ अंआओ ।

आणेऊणं बीअं, इंह दिन्नं कांसवजणस्स ॥ ४९५ ॥

अर्थ—“आ लोकमां निर्वीज एटछे वीज पण न मळी शके एवा दुकाळसमयमां राजाए लोकने माटे वीजा द्वीपमाथी वीज अणावीने (मंगावीने) ते (वीज) कर्षक लोकने एटछे खेडुतोने आप्युं.” ४९५.

केहिंचि सव्वं खइयं, पइन्नमंनेहिं सव्वमद्वं चं ।

वुत्तगयं चं केइ, खित्ते खुट्टंति संतंत्था ॥ ४९६ ॥

अर्थ—“ते राजाए आपेळा वीजने केटलाएक वधुं खाइ गया, बीजा केटलाएक खेडुतोए ते सर्व वीजने वावीने उगाडयुं, केटलाएके अर्थुं खाधुं ने अर्थुं वान्युं, तथा केटलाक खेडुतो वावीने पछी ज्यारे ते उग्युं के तरतज एटछे पूरुं पाकवा दीवा पहे-लांज त्रास पामीने एटछे पाछळथी राजसेवकों आ धान्य लइ जशे एवा भयथी ते धान्य पीताने घेर लइ जवा माटे क्षेत्रमां कूटवा लाग्या. कूटीने दाणा काढवा लाग्या.” तेने पण राजसेवकोए गुन्हेगार गणी पकड्या अने घणुं दुःख आप्युं. ४९६.

हवे आ वे गाथांमां कहेला दृष्टान्तनो उपनय बतावे छे—

राया जिणवरचंदो, निब्बीयं धम्मविरहिओ कालो ।

विंत्ताइं कम्म भूमीं, कासंगवग्गो र्य चंत्तारि ॥ ४९७ ॥

गाथा ४९४—थंभसहस्रसूसिअं=स्तंभसहस्रोच्छ्रितम् ।

गाथा ४९५ बीअं । कासवजणस्स=कर्षकजनस्य ।

गाथा ४९६—केहिं वि । पयज्ज । पइन्नं—उत्तम् । वुत्तगयं—उत्तं

च तदुद्गतं च खुट्टंति सुट्टंति । संतंत्था—संतंत्था ।

गाथा ४९७—निब्बीयं । विहरीओ । कासवग्गो ।

अर्थ—“ जिनवरचंद्र (तीर्थकरदेव)ने राजा जाणवा, धर्मरहित काळने निर्बीज-समय (गद्युं छे धर्मरूपी वीज जे काळे एवो समय)- जाणवो; पंदर कमधूमिने क्षेत्रो जाणवां, तथा कर्षकं (खेडूत) वर्ग चार प्रकारनो जाणवो. असंयत, संयत, देशविरति अने पार्श्वस्थ ए रूप चार प्रकारना जीवोने खेडूत वर्ग जाणवो- ४९७.

असंसंजएहिं सव्वं, खंडं अं अं चं देसविरएहिं ।

साहूहिं धर्मवीजं, उचं नीजं चं निष्पत्तिं ॥ ४९८ ॥

अर्थ—“ हवे ते अरिहत राजाए धर्म रूपी वीज चारे वर्गना कर्षकोने आद्युं तेमां असंयत (विरति रहित) पुरुषो ते धर्मवीज वधुं खाई गया, अने देशविरतिवाळा एटले स्थूल प्राणातिपात थकी विरति विगरे व्रतने धारण करनार श्रावकोए अधुं धर्मवीज खाद्युं अने अधुं वाच्युं- तथा साधुओए ते विरतिधर्मरूपी वीज वधुं आत्मारूपी क्षेत्रमां वाच्युं, अने तेने निष्पत्ति (उत्पत्ति) पमालथं एटले सारी रीते तेनुं पालन कर्तुं.” ४९८

जे ते सव्वं लंहिउं, पच्छां खुंटंति दुव्वलधिइया ।

तवसंजमपरितंता, इहं ते ओहरिअसौलमरा ॥ ४९९ ॥

अर्थ—“ तथा जेओ पार्श्वस्थादिक छे, जेओ विरतिधर्मरूपी सर्व वीजने पामीने पछीयी जेओनुं धैर्य दुर्वल छे, तप अने संयमे करीने जे खेद पामेला- छे-थाकी गयेला छे अने जेपणे झील (संयम)ना भारनो त्याग करीं छे एवा ते पार्श्वस्थादिक आ जिनशासनने विषे पोताना आत्मारूपी क्षेत्रमांज ते धर्मवीजने कूटे छे-विनाश पमाडे छे.” ४९९.

आणं सर्वजिणाणं, भंजइ दुंविहं पंहं अइकंतो ।

आणं चं अइकंतो, भंमंइ जरांमरणदुग्गमि ॥ ५०० ॥

अर्थ—“ धर्मवीजने विनाश पमाडवायी ते (पार्श्वस्थादिक) सर्व जिनेश्वरोनी आ-ज्ञानो भंग करे छे, अने साधुधर्म तथा श्रावकधर्मरूप वक्षे प्रकारना मार्गनुं अतिक्रमण (उल्लंघन) करता सता तेपज सर्वज्ञनी आज्ञानुं उल्लंघन करता सवा जरा अने मरणे करीने अति दुर्ग (गहन) एवा अनंत संसारमां चिरकाळ परिभ्रमण करे छे.” ५००.

जंइ नं तरंसि धारेउं, मल्लं गुणभरं सउत्तरगुणं च ।

मुंचूण तो तिभूमी, सुसावगतं वरतरागं ॥ ५०१ ॥

गाथा ४९७-जिन्वीए । चिरहीओ । कासगवगो ।

गाथा ४९८-अइयं । विरएहि । धर्मवीजं । नीयं । निष्पत्ति ।

गाथा ४९९-कहिउं । खोहंति । धिआ-धिआ । तपःसंयमाम्नां परिबिल्लाः ।

अबहतशीलमराः त्यक्तसंयमभाराः । गाथा ५००-अइकंतो ।

गाथा ५०१-तरंसि=शक्तोषि । धारेउं । तिभूमि ।

अर्थ—“ हे भव्य जीव ! जो कदाच तुं समिति विगेरे उत्तर गुणना भार (समूह) सहित मूलगुणना भारने (पंचमहात्रांना भारने) धारण करा (वहन करा) शक्ति मान न हो तो तारे जन्मभूमि, विहारभूमि अने दीक्षाभूमि ए त्रण भूमिनो त्याग करीने सुश्रावकपणुं अंगीकार करतुं ते अति श्रेष्ठ छे; अर्थात् तुं अति श्रेष्ठ एवा सुश्रावकपणाने अंगीकार कर.” ५०१

अरिहंतचेइआणं, सुसाहू पूंयारओ दंढायारो ।

सुसांवगो वरंतरं, न सांहुवेसेण चुंअघम्मो ॥ ५०२ ॥

अर्थ—“ वळी हे भव्य प्राणी ! जो तुं साधुपणुं धारण करवा असमर्थ हो, तो अरिहंतना चैत्य (विंव)नी पूजांमां तत्तर अने सुसाधु एटले उत्तम साधुओनी सत्कार सन्मानादिरूप पूजांमां आसक्त अने दहाचारवाळो (अणुव्रत पाळवार्मां कुशल) एवो सुश्रावक था ते घणुं श्रेष्ठ छे, एटले तेवुं श्रावकपणुं धारण करतुं ते बहु सारं छे. परंतु साधुवेष करीने—साधुवेष धारण करीने धर्मथी च्युत भ्रष्ट थवुं ए श्रेष्ठ नथी. केमके आचारभ्रष्ट थइने मात्र वेष धारण करवाथी कांइ पण फळ नथी.” ५०२.

संवं तिं भाणिउणं, विरंइ खंलु जंस्स संव्विया नत्थि ।

सो संव्विविइवाइ, चुंकाइ देसं चं संवं च ॥ ५०३ ॥

अर्थ—“ सर्व एटले ‘संवं सावज्जं जोगं पच्चळ्कामि’ हु सर्व सावध योगनुं प्रत्याख्यान (निषेध) करुं लुं एम प्रतिज्ञा करवावढे सर्व सावध योगनुं प्रत्याख्यान करीने पण जेने निशे सव (संपूर्ण) षट्कायना पालन रूप विरति नथी ते सर्व विरतिने कहेनारो (हुं सर्वविरति लुं एम प्रलाप करनारो) देशविरतिने (श्रावक धर्मेने) अने सर्वविरतिने (साधुधर्मेने) बनेने चूके छे—हारे छे, अर्थात् वनेथी भ्रष्ट थाय छे.” ५०३.

जो जंहवायं नं कुणइ, मिच्छदिट्ठी तंओ हुं को अंनो ।

बुद्धेइअ मिच्छंत्तं, परंस्स संकं जणेमाणो ॥ ५०४ ॥

अर्थ—“ जे पुरुष यथावाद एटले जेवुं वचन बोले तेवुं क्रियानुष्ठानादिक करतो नथी ते पुरुषथी बीजो कयो पुरुष मिथ्यादृष्टि जाणवो ? एनेज मिथ्यादृष्टि जाणवो. तेनाथी बीजो कोइ विशेष मिथ्यादृष्टि नथी. केमके ते पुरुष बीजा लोकोने शंका उत्पन्न करावतो सतो मिथ्यात्वने वृद्धि पमाडे छे.” ५०४.

भाषा ५०२-चेइआणं । पुंयारओ । सुसावगो । च्युतधर्मः ।

भाषा ५०३-भाणिउणं । विरंइ । संव्विया=सर्विका-सर्वा । विरंइवाही ।

भाषा ५०४-बुद्धेइ मिच्छंत्तं । जणेमाणे ।

आणांए चिंय चरणं, तँभंगे जांग किं नं मंगं ति ।

आंणं चं अइकंतो, कस्सांएसा कुंगइ सेसं ॥ ५०५ ॥

अर्थ—“ निश्च जिनेचरनी आझाए करीनेज चारित्र छे, एटले जिनाझानुं पालन करवुं एज चारित्र छे; तो ते आझानो भंग कर्ये सते थुं न भांग्युं ? एटले शेनो भंग न कर्यो ? अर्थात् जिनाझानो भंग करवाथी सर्व चारित्रादिकनो भंग कर्यो, एम हे शिष्य ! तुं जाण; अने जिनाझानुं उछंघन करनार पुरुष शेष—क्रियानुष्ठानादिक कोना आदेश (आझा)थी करे छे ? जो जिनाझानुं उछंघन कर्युं, तो पछी क्रियानुष्ठानादिक कोनी आझाथी करवुं ? अने आझानुं उछंघन करीने (आझा विना) जे क्रिया करवी ते केवल विहंवनज छे—निष्फल छे.” ५०५

संसारो अ अणंतो, भट्टं चरित्तस्स लिंगजीवस्स ।

पंचमहव्वयतुंगो, पांगारो भल्लिओ जेण ॥ ५०६ ॥

अर्थ—“ वळी जे निर्भागी पुरुषे पंचमहाव्रत रूपी तुंग (उंचो) प्राकार (किछो) भेधो छे—नष्ट पमाढयो छे—पाढी नांख्यो छे ते भ्रष्ट (छत्र) चारित्रवाळा अने मुख-वस्त्रिका रजोहरण विगेरे लिंग (वेष) मात्र कर,ने आजीविका करनारानो संसार अनंत जाणवो; एटले ते निर्भाग्यशेखर अनंत काळ सुधी चतुर्गतिभां भ्रमण करे छे.” ५०६.

नं करेमि तिं मणिता, तं चेंव निसेवए पुंणो पावं ।

पंचंक्खमुसावाइ, मायानियडीपसंगो यं ॥ ५०७ ॥

अर्थ—“ जे पुरुष ‘न करेमि इत्यादि’ नहीं करं इत्यादि एटले मन वचन अने कायाए करीने नहीं करं, नहीं करावुं अने करता एवा वीजाने अनुमोदन नहीं करं, एम नव कोटी सहित प्रत्याख्यान भगीने (करीने) पण फरीथी तेज पापनुं सेवंच करे छे (आचरण करे छे) ते पुरुषने प्रत्यक्ष मृषावादी जाण तो. केमते ते जेवुं बोले छे तेवुं पाळतो नथी; तथा माया एटले अंतरं असत्यपणुं अने निहृति एटले बाध असत्यपणुं ते बनेनो जेने प्रसंग छे एवो तेने जाणवो, अर्थात् तेने अन्तरंग अने बाह्य बन्ने प्रकारनो असत्यवादी मायाकपटी जाणवो.” ५०७.

गाथा ५०५—जाणाएचवअ । त भंगे । भंगंति । कस्सादेशात् । गाथा ५०६—नष्टच-रित्तस्स । लिंगजीवस्स । महाव्वय । भल्लिओ । भिल्लिओ । भेल्लिओ=भेदितः ।

गाथा ५०७—मुसावाइ । नयरि । मायानिकृत्योः प्रसंगो यस्य सः ।

लोए विं जो संसूगो, अलिअं सहसा नं भांसए किंचि ।

अहं दिक्खिअओ विं अलियं, भांसइ "तो" किंचि दिक्खिआए ॥

अर्थ—“ लोकने विषे पण जे ससूक (पापभीरू—पापयी भय पावतो) माणस होय छे ते सहसा (विचार कर्या विना) कांइ पण असत्य बोलतो नयी; त्यारे जो दीक्षित यईने (दीक्षा लइने) पण ते असत्य बोले, तो दीक्षाए करीने थुं ? अर्थात् दीक्षा लेवानुं थुं फळ ? कांइज नहीं.” ५०८.

महं वयअणुव्वयाइं, छंडेउं जो तंव चरइं अन्नं ।

सो अर्नाणी मुंदो, नावां बुद्धो मुंणेयव्वो ॥ ५०९ ॥

अर्थ—“ जे पुरुष महाव्रताने अथवा अणुव्रताने तजीने बीजुं तप करे छे, एटले महाव्रत अने अणुव्रत शिवाय बीजां तप करे छे ते अन्नानीं अने मूर्ख माणस (अज्ञान कष्ट करनार माणस) नाववडे करीने पण एटले हाथमां नावा अन्न्या छातां पण बूडेलो जाणवो. जेम कोइ समुद्रमां रहेलो मूर्ख माणस हाथमां आवेली नावने तजीने ते नावना लोढाना खीलाए करीने समुद्र तरवाने इच्छे तेनी रीतनो तेने जाणवो.” ५०९.

सुबहुं पासं त्यजणं, नाउणं जो नं होइ मज्झंत्यो ।

नं य संहेइ सर्कज्जं, कांगं चं कैरेइ अप्पाणं ॥ ५१० ॥

अर्थ—“ बहु प्रकारे पासत्यानुं स्वरूप जाणीने पण (पार्श्वस्थ जन संबंधी द्विधित्वाने जाणीने पण) जे मध्यस्थ होतो नथी ते पोतानुं मोक्षरूप कार्य साधी सकतो नथी, अने पोताना आत्माने कागदा तुल्य करे छे.” ५१०.

परिचित्तिज्जणं निउणं, जइं नियमभरो नं तीरं ए वीहुं ।

परचित्तरं जणेणं, नं वेसंमित्तेणं सांहीरो ॥ ५११ ॥

अर्थ—“ निपुणतायी (सूक्ष्म बुद्धियी विचार करीने जो नियमनो भार (मूल अने उत्तर गुणनो समूह) वहन करवा (धारण करवा) शक्तिमान न थंवाय, तो पछी बीजाना चित्तने रंजन (प्रीति) करनार एवा वेषभात्रे करीने (मात्र वेष धारण

गाथा ५०८—ससूगो । अलिअ । अहि दिक्खिअओ वि । किंचि ।

गाथा ५०९—छंडेउ=स्यक्त्वा । छंडेउं । अज्ञाणो । बुद्धो=बुद्धित्वः ।

गाथा ५१०—कांगं=काकतुल्यं ।

गाथा ५११—जय । वेसमित्तेण-

करी राखवायी) परभवे दुर्गतिमां पढता माणसने ते (वेच.) आधार रूप-यतो नयी, एटले मात्र वेच धारण करवायी कांइ दुर्गतियी रक्षण थतुं नयी." ५११.

निच्छयनयस्स चरणेस्सुवंग्घाए नाणेंदंसणवहो वि ।

वैवहारस्स उ चरणे, ह्यंमि भयणाउ सेसाणं ॥ ५१२ ॥

अर्थ—“ निश्चय नयना मतमां (परामार्थवृत्तियी कहीए तो) चारित्रनो उपघात थये छते ज्ञानं अने दर्शननो पण वध (विनाश) थाय छे. केमके चारित्रनो विनाश थये आश्रावतुं सेवन करवायी ज्ञान दर्शन पण नष्ट थाय छे; अने व्यवहार नयनां मतमां तो (बाह्यवृत्तियी कहीए तो) चारित्रनो घात थये छते शेष-ज्ञान दर्शनने विषे भजना (विकल्प) जाणवो. एटले कदाच ज्ञान दर्शन होय पण खरां अने न पण होय. ” ५१२.

सुंज्झइ जई सुंचरणो, सुंज्झइ सुस्सांवओ वि गुणंकलिओ ।

ओसन्नचरणकरणो, सुंज्झइ संविंगपख्वरुई ॥ ५१३ ॥

अर्थ—“ सारा चारित्रवाळो यति (साधु) शुद्ध थाय छे. ज्ञानादिक गुणोए कळना करेलो (गुण सहित) सुश्रावक पण शुद्ध थाय छे. तथा शिथिल छे चरणं अने करणं जेनुं एवो संविग पक्षनी रूचिवाळो पण शुद्ध थाय छे; (संविग एटले माक्षनी अभिलाषावाळा साधुओ. तेमना पक्षमां एटले तेमनो क्रियामां जेनी रुचि छे ते पण शुद्ध थाय छे.) ” ५१३.

संविंगपख्लियाणं, लखणमेयं समांसओ भणियं ।

ओसन्नचरणकरणा वि, जेणं कम्मं विमोहंति ॥ ५१४ ॥

अर्थ—“ संविग्न (मोक्षाभिलाषी) साधुओनो जेमने पक्ष छे, एटले जेवो संविग्नना क्रियाअनुष्ठानमां आसक्त छे तेवा पुरुषोनुं (संविग्न पक्षीनुं) लक्षण समासयी (संक्षेपयी) तीर्थकरोए आ प्रमाणे (हवे करे छे ते प्रमाणे) करेछे छे, के जेणे करीने चरणं अने करणने विषे शिथिल थयेला मनुज्यो पण ज्ञानावरणादिक कर्मने शुद्ध करे छे-खपावे छे. ” ५१४.

सुंदं सुसां हूधम्मं, कैहेइ निंदइ यं निर्ययमांयारं ।

सुंतवस्सियाणं पुंसओ, होइ यं सज्जोभयणीओ ॥ ५१५ ॥

गाथा ५१३-जह । सुस्तावणो । कइ ।

गाथा ५१४-पखिआणं । मेअं । जेणविकम्मं । गाथा ५१५-सुइं । निरयमायां । सज्जोभयणीओ । सर्वेभ्योऽपि अथभरात्रिको लंघुः ।

अर्थ—“ शुद्ध (निर्दोष) एवा साधु धर्मनी लाको पासे प्ररूपणा करे, अने पोताना आचारनी—शिक्षिलपणा विगेरेनी निर्दा करे, तथा सारा तपस्वी साधुओनी पासे सर्वथी पण लघु थाय एटले तरतना दीक्षितं साधुथी पण पोताना आत्माने लघु माने. ” ५१५.

वंदइ नइ वंदौइइ, किंयकर्म कुंगइ कौरवे नेयं ।

अर्तच्छा नं वि दिख्वेइ, देइ सुसाहूग बोहेउं ॥ ५१६ ॥

अर्थ—“ वळी लघु एवा पण संविग्न साधुने पोते वंदि, पण तेमनी पासे पोताने वंदावे नहीं. तेमनुं कृतिकर्म (विग्रामणा विगेरे वैयाहृत्य) करे, पण तेमनी पासे पोतानी विश्रामणा विगेरे करावे नहीं; अने पोताने माटे (पोतानी रासे दीक्षा लेवाने माटे) आवेला शिष्यने पोते दीक्षा आपे नहीं, पण तेने प्रतिबोधं पमाडीने सुसाधु पासे मोकले—तेनी पासे दीक्षा आवे, पण पोते अपापे नहीं. ” ५१६.

औसन्नो अत्तद्धा, परमर्पांगं च हणइ दिख्वंतो ।

तं लुहइ दुग्गइए, अहिययरं बुहइ संयं च ॥ ५१७ ॥

अर्थ—“उपरली गाथामां कळा प्रमाणे न करतां अवसन्न के० शिथिल एवो छतो जे पोताने माटे बीजाने दीक्षा आपे छे ते तेने (शिष्यने) अने पोताना आत्माने हणे छे. केमके ते शिष्य)ने दुर्गतिमां नांखे छे, अने पोताना आत्माने पण पूर्वनी अवस्था करतां अधिकतर संसारसमुद्रमां डुवावे छे. ” ५१७,

जह संरणमुवगयाणं, जीवाण निकिंतए सिरे जोउं ।

एवं आर्यरिओ वि हूं, उस्सुत्तं पंन्नवंतो य ॥ ५१८ ॥

अर्थ—“ जेम कोइ माणस पोताने आश्रये आवेला जीवोनुं मस्तक छेदे, तेम आचार्य पण जो श्रये आवेला जीवोनी पासे उत्तम प्ररूपणा करे—तेने कुमार्गे प्रवर्तवि, तो तेने पण तेना मस्तक छेदनार जेवो एटले विश्वासघाती जाणवो. ” ५१८.

सावज्जजोगपरिवज्जणाउ, संवुत्तमो जइधम्मो ।

वीओ सावंगधम्मो, तईओ संविगंगपख्वपहो ॥ ५१९ ॥

गाथा ५१६—वंदवेइ । कृतिकर्म=विश्रामणादि । जेय ।

गाथा ५१७—दुग्गइए । बुहइ ।

गाथा ५१९—सव्वंतसो । जइधम्मो । तईओ ।

अर्थ—“ सावद्य योगो (पाप सहित योगो)ना वर्जनं यकीं (सर्व सावद्य योग वर्जना यका) यतिधर्म सर्वोत्तमं छे ते पहेलो मार्ग छे; बीजो श्रावकधर्म पण मोक्षमार्ग छे, अने त्रीजो संविप्रपक्षनो मार्ग छे. ए त्रणे मोक्षमार्ग छे. ” ५१९

सेसा मिच्छद्दिट्ठी, गिहिलिंगकुलिङ्गदव्वलिङ्गेहिं ।

जहं तिन्नि र्यं मुण्व्वपहा, संसारपहा तह्हा तिन्नि ॥ ५२० ॥

अर्थ—“ शेष एटले उपर कहेला त्रण मार्ग शिनाय वाकीना गृहिलिंग (गृहिलिंगने धारण करनार), कुलिङ्ग एटले योगी भरवा विगेरे कुलिङ्गने धारण करनार तथा द्रव्यलिङ्ग एटले द्रव्ययी यतिवंधने धारण करनार—ए त्रणेने मिथ्यादृष्टि जाणवा. जेभ उपरनी गायामां त्रण मोक्षमार्ग कहा तेभ आ गृहिलिंगादिक त्रणे संसारना मार्ग जाणवा, एटले ते त्रणे संसारना हेतु छे. ” ५२०.

संसारसागरमिणं, परिममंतेहिं सर्व्वेजीवेहिं ।

गंहियाणि र्यं मुक्काणि र्यं, अणंतसो दव्वलिङ्गाइं ॥ ५२१ ॥

अर्थ—“ आ (प्रसिद्ध एवा) अनादि अनंत संसारसागरमां परिभ्रमण करता सर्व जीवोए अनंतीवार द्रव्यलिङ्गोने ग्रहण करीं छे, अने (ग्रहण करीने) मूकी दीघां छे; तोपण तेमनी कांइ पण अर्थसिद्धि यइ नयी. ” ५२१.

अच्चणुरत्तो जो पुण, नं मुंयइ वहुंसो विं पन्नविज्जंतो ।

संविग्गपख्खियत्तं, कंरिज्ज लंब्भिसि तेणं पेहं ॥ ५२२ ॥

अर्थ—“ वळी अ यंत अनुरक्त एटले वेष रात्रवामां गाढ आसक्त थयेलो एवो जे पुरुष घणी वार गीतार्थोए हितशिक्षा कहा (दीघा) छतां पण ते वेपने सूके नहीं, तो तेणे संविग्गननुं पक्षपातीपणुं अंगीकार करवुं. (संविग्ग पक्षनो आश्रय करवो). तेभ करवाथा आवता भवमां ते मोक्षमार्ग पामे छे. ” ५२२.

कंतारोहमद्दाणओमगेलन्नमाइकज्जेसु ।

सव्वायरेण जयणाए, कुणइ जें सार्हुंकरणिज्जं ॥ ५२३ ॥

गाथा ५२०—मिच्छद्दिट्ठी । तिन्नि जो । संसारपहा ।

गाथा ५२१—गहीआणि म ।

गाथा ५२२ पन्नविज्जंतो—प्रज्ञाप्यमानः । पख्खियत्तं । लज्जहसि—लज्जिहसि ।

गाथा ५२३—मायकज्जेसु । मद्दाण—विषममार्गचलनं । ओम=दुर्भिक्षकालः । गेल-

न—गलानत्थम् । सव्वायरेण । जयणाइ ।

अर्थ—“ कांतर (मोट्टे अरण्य एटले अटवीमां आवी चढुं), रोध (राजानी लडाइ विगेरे प्रसंगे दुर्गमां रंधावुं), मंदाण (विषममार्गे चालवुं) ओम (दुष्काळ) अने गेलन्न (ग्लानत्व—रोगीपणुं) इत्यादिक कार्यने (प्रसंगोने) विषे पण एटले एवा कारण प्राप्त थया छतां पण सर्वे आदर (शक्ति) वडे करीने यतना पूर्वक साधुने जे करवा लायक कार्य छे तेज सुसाधु करे छे; अर्थात् प्रबळ कारण प्राप्त थया छतां पण साधुए पोतानी सर्वे शक्तिथी पोतानुं जे कर्तव्य छे ते यतना पूर्वक अवश्य करवुं. ” ५२३.

आर्यस्तरसंमाणं, सुदुंकरं माणसंकडे लोए ।

संविगंगपस्त्रियत्तं, ओसन्नेणं फुंडं काउं ॥ ५२४ ॥

अर्थ—“ अहंकारे करीने सांकडा एटले अभिमानथी भरेला एवा आ लोक (संसार) ने विषे अत्यंत आदरे करीने (संविग्न पणाए करीने) सुसाधुओनुं सन्मान करवुं ए अति दुष्कर छे, तेमज अवसन्न एटले शिथिल आचारवाळाने स्फुट—प्रगटपणे संविग्ननुं पक्षपाती पणुं करवुं एटले संविग्न पक्षना अनुरागी थवुं ए दुष्कर छे. ” ५२४.

सारणचइआ जे गच्छंनिमाया पविहंरति पासंत्था ।

जिणवयणबाहिरा वि य, ते अ पर्माणं नं कैयव्वा ॥ ५२५ ॥

अर्थ—“ सारणा के० स्मरणा—भूली गयेलांनुं स्मरण आपवुं एटले आ काम आवी रीते करवुं एवी वारंवार शिक्षा आपंवाथी उद्देग पायेला अने तेथी करीने गच्छ बहार नीकळी गयेला (स्वेच्छाए वर्तवा माटे गच्छ बहार थयेला) एवा जे पासत्थाओ स्वेच्छाए विहार करे छे तेओ जिनवचनथी बाह्य छे, अर्थात् प्रथम भुद्ध चारित्र्यनुं पालन करीने पछी प्रमादी थयेला छे तेओने प्रमाण रूप गणवा नहीं, एटले साधुपणाभा गणवा नहीं. ” ५२५.

हीणंसस विमुद्धपरुवगस्स, संविगंगपस्त्रवायस्स ।

जां जां हविज्जं जयणा, सां सां से निज्जंरा होइ ॥ ५२६ ॥

अर्थ—“ विशुद्ध प्ररूपणा करनार, अने संविग्नो पक्षपात छे जेने एवा हीननी (उत्तरगुणमां कांडक शिथिल थयेलानी) जे जे यतना (बहु दोषवाळी वस्तुनुं वर्जन अने अल्प दोषवाळी वस्तुनुं ग्रहण करवुं ते रूप यतना) होय छे, ते ते यतना तेने निर्जरा रूप कर्मेने क्षय करनारी) थाय छे. ” ५२६.

भाषा ५२४—सुदुंकरं । पस्त्रियत्तं । ।

भाषा ५२५—सारणचइआ । सारणचोईआ । बाहिरो । ते अ प्यमाणं ।

भाषा ५२६—वाइस्स । जइणा ।

सुकाइयपरिसुद्धे, सइ लामे कुणइ वॉणिओ विंहुं ।

एमेव य गीर्यत्थो, आयं देहुं समार्यइ ॥ ५२७ ॥

अर्थ—“ शुल्कादिके करीने पट्ठे राजानो कर (दाण) विनेरे आपवाए करीने शुद्ध अर्थात् दाणनुं द्रव्य तथा बीजो खर्च काढया पछी जो लाभ प्राप्त थाय तेम होय तो वणिक चेष्टा (वेपार) करे छे; एवीज रीते गीतार्य मुनि पण शास्त्रना ज्ञानथी आय के० कामने जोइने आचरण (कार्य) करे छे, अर्थात् अल्प दोषवाळं अने बहु लाभवाळं कार्य यतना पूर्वक करे छे.” ५२७.

आमुक्कजोगिणो चिंअ, हवई थोवा विं तैस्स जीवदया ।

संविग्गपस्वजयणा, तो दिंझी सांहुवग्गस्स ॥ ५२८ ॥

अर्थ—“ निश्चे चोतरफथी सर्वे प्रकारे मूषया छे संयमना योग (व्यापार) जेजे एवा ते साधुना हृदयमां थोडी पण जो जीवदया होय, तो ते संविग्ग पसवाळा (मोक्षना अभिलाषी) साधुवर्गनी यतना (जीवदया) तीर्थकरोए जोएली छे; अर्थात् ते मोक्ष-भिलाषी ने संविग्गपक्षी होवाथी तेनी यतना तीर्थकरोए प्रमाण रूप गणी छे.”

किं मूसंगाण अत्येण, किं वॉ कांगाण कणगमालाए ।

मोहमलखविल्लिआणं, किं कंज्जुवंपसमालाए ॥ ५२९ ॥

अर्थ—“ मूषको (उद्धो)ने सुवर्ण विनेरे अर्थ (धन) बढे करीने शुं प्रयोजन छे? मूषक पासे धन होय तो तेथी तेजुं शुं कार्य साधी शक्य? कांइज नहीं: अथवा काग-दाओने सुवर्णनी माळाए करीने शुं प्रयोजन छे? कागदा पासे सुवर्णनी माळा होय तो तेथी तेने शो फायदो? कांइज नहीं: तेवीज रीते मोहमळ (मिथ्यात्वादिक कर्म रूपी मळ) बढे करीने लींपाएळा प्राणीओने आ उपदेशमाळा (उपदेशनी परंपरा) ए करीने शुं प्रयोजन छे? अर्थात् बहुलकर्मिने आ उपदेशमाळा कांइ पण कामनी नथी.” ५२९.

चरणकरणालसाणं, अविणयं बहुलाण संययजोगमिणं ।

न मणी संयसाहस्सो, आवज्झइ कुंच्छमासस्स ॥ ५३० ॥

गाथा ५२७—सुकाइपरिसुद्धे—संकाइपरिसुद्धं । शुल्कादिना राज्यदेयद्रव्यादिना परिसुद्धे । विंहुं । गाथा ५२८—जोगिण-जोगिणु । हवइइ ।

गाथा ५२९—सुसंगाण—मूषकाणाम् । कणयमाकाए । मोहमलखविल्लिआणं—मोहमल-खल्लितानाम् । गाथा ५३०—कुत्थिता भावा यस्य तस्य काकस्वेत्रपर्यः ।

अर्थ—“पांच महाव्रतादिक चरण अने पिंडविशुद्ध्यादिक करणने विषे आळसु तथा अविनयवडे बहुल एटले घणा अविनयवाळा एवा पुरुषोने आ उपदेशमाला प्रकरण निरंतर अयोग्य छे, अर्थात् तेओने आ उपदेश आपवा योग्य नथी. ‘केमके सो हजार (लाख)ना मूल्यवाळो मणि कुत्सित भाषावाळा कागडाने (कागडानी कोटे) बांधवा कायक नथी.” ५३०.

नाऊण करयलगायामलं वं सन्भावओ पंहं सँव्वं ।

धम्मंमि नांम सीइज्जइ त्ति कम्मोइं गुरुआइं ॥ ५३१ ॥

अर्थ—“करतळपां रहेला आमलक (आमळाना) फळनी जेम अथवा अमळ के० निर्मळ क के० पाणीनी जेम सद्भावथी (सत्य बुद्धिथी) सर्व (ज्ञानादि रूप). मोक्षमार्ग जाणने पण आ जीव धर्मने विषे (नाम संभावनाने अर्थ छे) ६ गदी थाय छे. तेमां ते प्राणीना गुरुकर्मोज कारण छे अर्थात् ते जिव भारे कर्मी होवाथी—ज्ञानावरणी यादि कर्मनी बहुलता होवाथी ते जाणतो सतो पण धर्म करतो नथी.” ५३१.

धम्मत्थकाममुख्वेसु, जैस्स भावो जँहिं जँहिं रँमइ ।

वेरँगोगतस्सं, नँ इमं सँव्वं सुँहावेइ ॥ ५३२ ॥

अर्थ—“धर्म, अर्थ, काम अने मोक्ष ए चार पुरुषार्थोनि विषे जे प्राणीनो भाव (अभिप्राय) जे जे (भिन्न भिन्न) पदार्थोनि विषे रमे छे (वर्ते छे); एटले प्राणी-ओनो अभिप्राय भिन्न भिन्न पदार्थोमां होय छे, माटे जेने विषे वैराग्यनोज एकांत रस रहेळो (भरेळो) छे एवुं (वैराग्य रसमय) आ उपदेशमाला प्रकरण सर्व प्राणीओने सुखकर नथी (सुख उत्पन्न करतुं नथी); किंतु वैराग्यवाळा पुरुषोनेज आ प्रकरण सुख उपजावे छे.” ५३२.

सँजमतवालसाणं, वेरँगकहा नँ होइ कँन्नसुहा ।

सँविग्गपख्वियाणं, हुँज्ज वँ केसिं चि नांणीणं ॥ ५३३ ॥

अर्थ—“सत्तर प्रकारना संयम तथा तपस्याने विषे आळसु (प्रमादी) एवा पुरुषोने वैराग्यकथा कर्णने सुखकारी थती नथी, प्रमादीने वैराग्यनी वार्ता रुचता नथी; परंतु संविग्ग पक्षवाळा (मोक्षनी अभिलाषावाळा)ने अथवा केटलाएक ज्ञानीनेज वैराग्य-कथा कर्णने सुखकारी थाय छे, सर्वने सुखकारी थती नथी.” ५३३.

गाथा ५३१-सीइज्जइ=चिबीदत्ति-प्रमादी भवति ।

गाथा ५३२ मोख्वेसु । वेरँगोगतस्सं । सुहावेइ ।

गाथा ५३३-हुज्जवि । केसिं च । नाणेणं ।

सोऽङ्गं परैरणं मिण, धम्मं जाओ न उँज्जमो जँस्स ।
 नं यं जँणियं वेरँगं जाँणिज्ज अँणतसंसारी ॥ ५३४ ॥

अर्थ—“ आ उपदेशमाला प्रकरण सांपन्नीने धर्मे विषे जेनो उद्यम थयो नयी (जे धर्म करवामां उद्यम थयो नयी), तथा जेने पंचेन्द्रिय विषय त्यागरूपवैराग्य उत्पन्न थयो नयी तेने (ते प्राणीने) अनंतसंसारी एट्ठे ए जीव अनंतसंसारी छे एम जानुं, अर्थात् अनंतसंसारी जीवनेज घणो उपदेश पण वैराग्यजनक थतो नयी. ” ५३४.

कम्ममाण सुबहुआणुंसमेण उवंगच्छई इमं संवं ।
 कम्ममलचिक्कणाणं, वंचइ पांसेण भन्नंतं ॥ ५३५ ॥

अर्थ—“ प्राणी अत्यंत घणां कर्मोना उपशमे करीने (क्षयोपशमे करीने) एट्ठे ते ते जातिना कर्मना आवरणना क्षयवडे करीने आ (प्रत्यक्ष) सर्व (उपदेशमाला रूप तत्त्वार्थना समूह)ने पामे छे; परंतु कर्मना मळवडे चिक्कणा थयेला (कीपायेला) एट्ठे जेणे गह कर्म बाधेलां छे एवा पुरुषोने आ प्रकरण कहुं छतुं पण तेनी पासे थइने चाल्युं जाय छे. एट्ठे बारंवार तेने उपदेश कयां छतां पण तेना हृदयमां कर्मनी बीकाश होवायी प्रवेश करतुं नयी. ” ५३५.

उवएसमालमेयं, जो पढई सुणइ कुणइ वां हिर्यए ।

सो जाणइ अप्पहियं, नोऊण सुँहं समीयरई ॥ ५३६ ॥

अर्थ—“ आ उपदेशमालाने जे पुरुष भणे छे, श्रवण करे छे अथवा हृदयमां धारण करे छे एट्ठे हृदयमां तेना अर्थनी भावना करे छे ते पुरुष आत्महित (आलोक तथा परलोकना हित)ने जाणे छे, अने तेने प्राणीने शुभ एट्ठे सम्यक् प्रकारे ते हितनुं आचरण करे छे. ” ५३६.

धंतमणिदामससिगयणिहि, पयपढमख्वराभिहाणेण ।

उवएसमालपगरणमिणमो रईअं हिअँट्ठाए ॥ ५३७ ॥

अर्थ—“ धंत, मणि, दाम, ससि, गय अने णिहि—एट्ठलां पदोना जे प्रथम अक्षरो घंकार, मकार, दाकार, सकार, गकार अने णिकार तेणे कराने जेनुं नाम जणाय

गाथा ५३४—सोऽङ्ग ।

गाथा ५३६—मेयं । अप्पहियं । समाहरई ।

गाथा ५३७—पढमख्वराभयाणेण । रईयं । हियट्ठाए ।

हे एवाए एटळे धर्मदासगणिए आ उपदेशमाला प्रकरण पोताना अने परना (भव्य जीवोना) हितने माटे रच्युं छे. ” ५३७.

जिणवयणकप्परुख्वो, अणेगसुत्तथसालिविच्छिन्नो ।

तवनियमकुसुमगुच्छो, सुग्गइफलवंत्रणो जयइ ॥ ५३८ ॥

अर्थ—“ अनेक सूत्रार्थ रूपी शाखाओवडे विस्तार पामेळो, तप अने नियमरूप पुष्पोना गुच्छवाळो तथा देव मनुष्यरूप सद्गति रूपी फळनी निष्पत्तिवाळो (सद्गतिने बंधावनारो) आ भिनवचन (द्वादशांगी) रूप कल्पवृक्ष (मनवांछित फळ आपनार) जय पाये छे—सर्वोत्कृष्टपणे वर्ते छे. ” ५३८.

जुग्गो सुंसाहुवेरग्गिआण, परंलोगपत्थिआणं चं ।

संविग्गपख्खीआणं, दायंवा बहुंसुआणं च ॥ ५३९ ॥

अर्थ—“ सुसाधुओने, वैराग्यवाळा श्रावकोने अने परलोकना साधनमां प्रस्थित बयेला—चालेळा (उद्यमवाळा) एवा संविग्र पक्षीओने योग्य एवी आ उपदेशमाला बहुश्रुत (पंडितो) ने आपवा योग्य छे. एटळे आ उपदेशमाला पंडितोनेज आनंद आपनारी छे, पण मूर्खने आनंद आपनारी नथी. ” ५३९.

इयं धर्मदासगणिणा, जिणवयणुवएसकज्जमालाए ।

मॉल व्व विविहं कुसुमा, कंहीआय सुंसीसवग्गस्स ॥ ५४० ॥

अर्थ—“ आ प्रमाणे श्रीधर्मदासगणिए (श्रीधर्मदासगणि नामना आचार्य महा-राजे) जिनवचनना उपदेशना कार्यनी माळां (परंपरा) ए करीने पुष्पवाळानी जेम विविध प्रकारना उपदेशना असरोरूपी पुष्पवाळी आ उपदेशमाला सारा विष्योना समूहने अभ्यास करवा माटे कहीछे—करी छे. ” ५४०.

संतिकेरी तुंठिकेरी, कंल्लणकरी सुमंगलकेरी र्यं ।

होइ कहंगस्स परिसाए, तंह य निव्वाणफलदाई ॥ ५४१ ॥

अर्थ—“ आ उपदेशमाला कथक के० वक्ताने (व्याख्या करनारने) तथा पर्वदने (श्रवण करनारने) क्रोधादिकनी शान्ति करनारी, ज्ञानादिक गुणोनी वृद्धी करनारी,

गाथा ५३८—साल-शाखा । सोग्ग ।

गाथा ५३९—जोग्गो । वेरग्गियाण । पत्थियाणं । परलोयातुच्छियाणं च । पत्थि-
याणं । बहुसुंधियाणं । गाथा ५४०—वयणवएस । कज्जमलयाओ । मालु व्व । कुसमा ।
कहिआय । गाथा ५४१—कल्लणकरि सुमंगलकरेअ । होइ । तइइ । फलदाइ । परिसाय=वचनः

कल्याण करनारी एटछे आं लोकमां धनादिक संपचि-अने परभवमां-बैमानिक ऋद्धिने प्राप्त करावनारी, सुमांगल्य (भळा मंगलिकने) करनारी अने परछोकने विषे निर्बाण (मोक्ष) रूप फळने आपनारी थाय छे. अर्थात् आ प्रकारजुं न्याख्यान करवायी तथा श्रवण करवायी मोहुं फळ प्राप्त थाय छे.” ५४१.

इत्थं समर्पेह इणमो, मालाजवएसपगरणं पैगयं ।

गाहाणं संव्वाणं, पंचसया चैवं चालीसा ॥ ५४२ ॥

अर्थ—“ आ प्राकृत उपदेशमाला प्रकरण अहींआं समाप्त करीए छीए. प्रबन्ध आरंभीने अहींआं सुधी जो छन्दविशेष गाथा गणीए तो सर्व गाथाओनी संख्या पांचसो अने चालीस छे. (बे गाथाओ प्रक्षेप समजवी) ” ५४२.

जावय लवणसमुद्रो, जावय नखत्तमंडिओ मेरु ।

तावय रइया माली, जयंमि थिरंथावरा होऊं ॥ ५४३ ॥

अर्थ—“ ज्यां सुधी (आ जगतमां) लवण समुद्र शाश्वतो वर्ते छे, अने ज्यां सुधी नक्षत्रोपी शोभित थयेछो शाश्वत मेरु पर्वत वर्त छे, त्यां सुधी आ रचेछी उपदेशमाला जगतने विषे स्थिर (शाश्वत) पदार्थनी जेम स्थावर के० स्थिर थाओ. ” ५४३.

अखत्तरमत्ताहीणं, जं चियं पैढियं अंयाणमाणेणं ।

तं खंमह मज्झ संव्वं, जिणवयणविणिग्गया वंणी ॥ ५४४ ॥

अर्थ—“ आ प्रकरणने विषे अक्षरयी अथवा मात्रायी हीन के अधिक एवं कांइ पण में अजाणतां (अज्ञानपणायी) कहुं होय ते सर्व मारी भूलने जिनेश्वरना मुखयी नीकलेली वाणी श्रुतदेवी क्षमा करो. ”

गाथा ५४१-इणिमो । पर्य-प्राकृतम् । सव्वग्गं । चालिसा ।

गाथा ५४३-जावह । मेरु । होह ।



॥ इति श्रीधर्मदासगणिविरचित-
मुपदेशमालाप्रकरणम् ॥



॥ अथ श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ जिनजिनुं स्तवन ॥

महावीर प्रभु घेर आवे ॥ ए देशी ॥

नित्य समयं साहेब सयणां, नाम सुगतां सीतल वयणां, गुण गातां उलसे नय-
गारि शंखेश्वर साठिव साचो; बीजानो आंसरो काचोरे शंखे० ॥ १ ॥ ए आंकणि ॥
द्रव्यधि देव दानव पूजे । गुण संचितसो पण लीजे । अरिहापदपर्यव छाजे । मुद्राप-
भासन राजेरे ॥ शंखे० बी० २ ॥ संवेग तजी घरवासो । प्रभु पासना गणघर थासो ।
बवं मुक्तिपुरीमां जासो । गुण लोकमां वयणे गवाशोरे ॥ शंखे० बी० ३ ॥ एम दामोदर
जिनवाणी । अषाढा श्रावक जांणी । जिनवंदी निजघर आवे । प्रभु पासनी प्रतिमा
भरावेरे ॥ शंखे० बी० ४ ॥ त्रणकाल ते धूप उखेवे । उपकारी श्री जिनसेवे । पछी
तेह वैमानिक थावे । ते प्रतिमापण तिहां लावेरे शंखे० बी० ५ ॥ घणा काल पूजी
बहूपाने । बली सूरज चंद्र विमाने । नाग लोकनां कष्ट निवार्या । ज्यारे पार्श्व प्रभुजी
पधायंरि ॥ शंखे० बी० ६ ॥ यदुसेन रक्षो रणधेरी । जीत्या नविजाये वैरी । जरा-
सेनें जरा तव म्हेली । हरि बल विना सघले फेळीरे ॥ शंखे० बी० ७ ॥ नेमीश्वर
चोंकी विशाली । अहम करे वनमाली । तूठी पद्मावती बाली । आपे प्रतिमा झाक
झमालीरे । शंखे० बी० ८ ॥ प्रभु पासनी प्रतिमा पूजी । बलवंत जरातव धूजी ।
छंटकावन्हवण जळ जोती । जादवनी जरा जाय रोतीरे ॥ शंखे० बी० ९ ॥ शंखपू-
रीने सहने जगावे । शंखेश्वर गाय वसावे । मंदिरमां प्रभु पधरावे । शंखेश्वर नाम
धरावेरे ॥ शंखे० बी० १० ॥ रहे जे जिनराज हजरे । श्रेवक मनचछित पूरे । ए भेटण
प्रभुजीने काजे । श्रेठ मोतांभाईने राजेरे ॥ शंखे० बी० ११ ॥ नाना माणक केरा
नंद । शंखनी प्रेमचंद वीरचंद । राजनगरथो संघ चळावे । गामोगामना संघ मिळा-
वेरे ॥ शंखे० बी० १२ ॥ अंडार अडोत्तर वरवे । फागण वदि तेरथी दिवसे ।
जिन वंदीने आणंद पावे । श्रुमबोर वचन रस गावेरे शंखे० बी० १३ ॥ इति श्री
शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन संपूर्ण ॥

॥ श्री महावीर निर्वाण सङ्घाय प्रारंभ ॥

आषारजहंतोरे एक मुने ताहोरे । हवे कुण करस्येरे सार । भांतडी हंतोरे पेहेळा
 भवतणीरे । ते किम विमरीरे जाय ॥ आ० ॥ १ ॥ मुझने मेहेल्योरे टळवलतो इहारे ॥
 नथी कोई आंख लक्षणहार ॥ गौतम कहिनेरे कौण बोलावस्येरे । कौण करस्ये मोरी
 सार । आ० २ । अंतरजांमीरे अणघटतुं करधुरे ॥ मुझने भोकलियो गांम । अंतःकाळेरे
 हूं समज्यो नहीरे । जेछेहदेस्ये मुज आम । आ० ३ । गई हवे सोमारे भरतना लोक-
 नीरे ॥ हूं अज्ञानि रखो छुं आज ॥ कुमति मिथ्यात्विरे जिमतिम बोळस्येरे । कुण रा-
 खशे माहारी लाज । आ० ४ । बली सूपानिरे अज्ञानी घणोरे । दीधूं तुजनेरे दुःख ॥
 करुणा आंणीरे तेहना उपरेरे ॥ आप्युं बहोछेरे मुख । आ० ५ । जे आई मुत्तोरेवाळक
 आवीयोरे । रमतो जळस्युरे तेह ॥ केवल आपीरे आपसमोकियोरे । पवढी स्यो तस
 नेह । आ० ६ । जे तुज चरणे आवी डंछियोरे । कीचो तुजने उपसर्ग । समतावाळीरे
 ते चंडकोसियेरे । पांम्यो आठ्ठुं स्वर्ग । आ० ७ । चंदन वालारे अडदना वाकुळारे ।
 पहिळाभ्यां तुमने स्वाम । तेहने कीधीरे साहूणिमां वडिरे । पहोंचाढी शिवधाम ।
 आ० ८ । दिन छयासीनारे मातपिताहुवेरे ॥ ब्राह्मण ब्राह्मणी दोय । शिवपुर संगीरे
 तेहने तें करारि । मिथ्या मळ तसधोय । आ० ९ । अर्जून मालीरे जेमहापातकीरे ।
 मनुष्यनो करतो संहार । ते पापीने मशु तुमे उधरयोरे । करि तेह स्युं सुपसाय । आ०
 १० । जे जळचारीरे हुंतो देडकोरे । ते तुम ध्यान मुहाय । सोमवासिरे तें सुरवर
 कियोरे । समकित केरे सुपसाय । आ० ११ । अघम उधरधारे एहवा तें धणारे । कहुं
 तसकेधारे नाम । माहारे तारा नामनो आसरोरे । ते मुज फळस्येरे काम । आ० १२ ।
 हवे में जाण्युरे पद वीतरागनुंरे । जोते न धरयोरे राग ॥ राग गयेथी घुण भगटथा
 सवेरे ॥ ते तुज वांणि महाभाग । आ० १३ । संवेने रंगीरे क्षपक श्रेणी चढधारे ॥
 करता गुणनो जमाव । केवल पांम्यारे लोकालोकनारे । देखे सघळारे भाव । आ०
 १४ । इंद्रे आवोरे जिनपद थापीयोरे । देशना दिये अघृतधार । पर्षदा बोधिरे । आतम
 रंगधीरे । बरिया शिवपद सार । आ० १५ । इति श्री महावीर निर्वाणसङ्घाय समाप्त ॥
 श्री कल्याण मस्तु ॥

जाहेर खबर.

—१९६६—

अमारी पासेथी जैनधर्मनां दरेक जातना उपयोगी पुस्तको मलशे.

१	पंच प्रतिक्रमण गुजराती नव स्मरण तथा जीवविचारादि चारे प्रकरणो अर्थ साथे आट्टि आठमी. १-८-०
२	देवसीराइ अर्थ सहित	०-८-०
३	जीवविचारादि चार प्र. अर्थ साथे....	०-६-०
४	सामायक सूत्र अर्थ साथे....	०-१-०
५	लुटक बोलो सीद्धांतना शास्त्री मोटा टाइपमां	०-५-०
६	नवाणुं प्रकारनी पूजा भाषांतर साथे.	०-८-०
७	विविध पूजासंग्रह भाग १-२-३-४ दरेक आचार्योनी पूजाओ तथा ज्ञातिनाथना मोटा कलस सहित	२-०-०
८	देवदंनमाला गुजराती...	१-४-०
९	स्तोत्र संग्रह तथा जैन वार्षिक पर्वो.	२-०-०
१०	जीन शतक टीका सहित, संस्कृत ग्रंथ.	०-१२-०
११	नीत्य स्मरणीय श्रेत्रुंजा प्रकरण	०-२-०
१२	रत्नाकर पचीसी	०-२-६
१३	देवसीराइ मूल मोटा अक्षर शास्त्री टाइप	०-६-०
१४	देवसीराइ गुजराती मूल मोटा टाइपमां	०-५-०
१५	दंडक प्रकरण (४१) द्वारवाळुं शास्त्री.	०-६-०
१६	दीवाळी कल्प भाषांतर सहित गुजराती.	०-६-०

ते सीवाय दरेक जातनां जैनधर्मनां पुस्तको तेमज छापवा छपाव-
खाना कागलो पण अमारी पांसेथी मलशे.

मलवाळुं ठेकाणुं:—

मास्तर—उमैदचंद रायचंद.

ठे. पांजरापोळ—अमदावाद.

